हिंदी के यूरोपीय विद्वान: व्यक्तित्व और कृतित्व

डा॰ मुरलीधर श्रीवास्तव

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

हिंदी के यूरोपीय विद्वान्

(व्यक्तित्व और कृतित्व)

हिंदी के यूरोपीय विद्वान्

(व्यक्तित्व और कृतित्व)

डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव

पूर्ववर्ती प्राचार्य, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना—८०००३

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत सरकार (शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : ८४

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, ७३
२०००

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन-भवन, पटना—८००००३

मुद्रक :
प्रकाश चन्द्र गुप्त
श्री श्याम बिहारी प्रेस
पटना—८००००४

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ 'हिंदी के यूरोपीय विद्वान् : व्यक्तित्व और कृतित्व' डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव की मौलिक कृति है, जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के लिए लाभदायक सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

(हस्ताक्षर)

पटना, अध्यक्ष

दिनांक १६-१२-७३ बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ 'हिंदी के यूरोपीय विद्वान् : व्यक्तित्व और कृतित्व' राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के पूर्ववर्ती प्राचार्य डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव की मौलिक रचना है। डॉ० श्रीवास्तव लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् और कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुभवी लेखक हैं। इन्होंने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण होगा, ऐसी आशा की जाती है।

इसका मुद्रण-कार्य श्री श्याम बिहारी प्रेस, पटना—८००००४ ने किया है और प्रूफ-संशोधन का कार्य श्री कृष्णमोहन प्यारे ने किया है। प्रूफ पर मुद्रणादेश लेखक ने स्वयं देने की कृपा की है। इसके आवरण-चित्र का निर्माण, ब्लॉक और आवरण-छपाई का काम नेशनल ब्लॉक ऐण्ड प्रिंटिंग वर्क्स, पटना—८००००४ ने किया है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

शिवचन्द्र प्रसाद

पटना,
दिनांक : १६–१२–७३

निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी



डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव

आमुख

'हिंदी के यूरोपीय विद्वान् : व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक यह ग्रंथ कदाचित् अपने विषय की पहली महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें प्रथम बार, यूरोप से आगत पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और विशेषतः अंग्रेज जाति के हिंदी भाषा और साहित्य को जानने-सीखने और अनेक क्षेत्रों में व्यवहृत कर उसे उन्नत करने में, उनके आरंभिक मूल्यवान प्रयासों की सविस्तर चर्चा है। विधि-विधान से भारत प्रायः आठ सौ वर्षों तक विदेशी और विधर्मी शासन के तले पीड़ित और त्रस्त था, पहले मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा और फिर यूरोपीय जातियों द्वारा। पृथिवीराज से माउंटबैटन तक की लंबी अवधि में भारत के राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन में अनेक उथल-पुथल और हलचल के समय आए और भाषा तथा साहित्य के स्वरूप और प्रवृत्तियों पर विजातीय प्रभाव से अनेक परिवर्तन हुए। हिंदी पराधीन भारत में ही उभरी, पनपी तथा फली-फूली और उसका श्रेष्ठ साहित्य इस दीर्घ संघर्ष तथा संक्रांति-काल में ही रचा गया। इसी अवधि में मुख्यतः व्रजभाषा और अवधी के साथ ही, हिन्दू-मुस्लिम-संपर्क और परस्पर प्रतिवेशी सान्निध्य के प्रभाव से हिंदी के, एक नवोदित रूप का, कुरु-पांचाल जनपदों में, अमीर खुसरो के समय 'जबाने देहली' के नाम से उदय हुआ, जिसे बाद में किसीने खड़ी बोली कहा, किसी ने 'खरी बोली' माना, किसीने रेख्ता या उर्दू नाम दिया और बाद में जो हिंदी नाम धारण कर कालक्रम से, 'हिंद देश की रानी' भारत की राज-भाषा (या राष्ट्रभाषा) बन गई। राज्याश्रय पाकर इस हिंदी का चारों ओर व्यापक प्रचार हुआ, साहित्य में व्रज और अवधी के सिर मौर चढ़ा, पर व्यवहार में, व्यापार में और प्रसार में यह हिंदी मुस्लिम-काल में ही राज्य के प्रमुख केन्द्रों और बड़े-बड़े शहरों में फैल गई और जब १५वीं-१६वीं सदी में इस विशाल देश के समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों में यूरोपीय जातियों का आगमन हुआ तब उन्हें एक सामान्य जनभाषा के रूप में, व्यवहार और व्यापार में, सर्वत्र इसी हिंदी से परिचय हुआ। यूरोप के सौदागर आए तो थे अहिन्दी क्षेत्रों—कोचीन, सूरत, बम्बई, गोआ, मद्रास और बंगाल—में; किंतु उन्होंने पाया कि हिंदुस्तानी या हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिससे उनका सब जगह काम

चल सकता है। भले ही हिंदी राजभाषा कहीं न हो, साहित्य का माध्यम भी न हो, शिष्ट समाज में भी उसका प्रवेश न हो, पर प्रायः वह सर्वत्र काम-चलाऊ ढंग से बोली और समझी जाती है और उसे छोड़कर कोई अन्य भाषा इस प्रयोजन को पूरा नहीं कर सकती। यूरोप की जातियाँ सौदागरी करने आई थीं—न कि सिकन्दर की तरह दिग्विजय करने और न बुतशिकन गजनी-गोरी की तरह मुल्क फतह कर इस्लाम फैलाने। अतः, यूरोपियनों को यहाँ की आम जुबान—हिंदुस्तानी सीखने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किसी पाठ्य-पुस्तक के अभाव में, बिना किसी लिखित गद्य के, बिना भाषा सिखाने की व्यवस्था के, बिना किसी व्याकरण के, कैसी परेशानियाँ उठानी पड़ी होंगी—यह कोई भी अनुमान कर सकता है। इन कठिनाइयों, बाधाओं और परेशानियों को झेलते हुए शुरू में यूरोपियनों ने जो हिंदुस्तानी सीखने के उद्योग किए, जो परिश्रम किया और बाद में अँग्रेजों के पैर जम जाने पर कंपनी के शासन-काल में हिंदी सीखने-सिखाने के जो कार्य किए और हिंदी प्रेस को खड़ा करने, टाइप बनाने और ढालने में जो मुसीबतें उन्हें झेलनी पड़ीं, उसकी कहानी बहुतेरे हिंदी के विद्वानों के लिए अनजानी रही है। इस ग्रंथ में हमने यूरोपीय विद्वानों के विविध क्षेत्रों में योगदान पर प्रकाश डाला है। हिंदी भाषा और साहित्य को इन समुद्रपारवासी विदेशियों ने क्या दिया, इस भाषा को जानने-सीखने के क्रम में उन्होंने क्या परिश्रम किया, व्याकरण-कोश आदि रचने की पद्धति में, उन विदेशियों ने कौन-सा नवीन मार्ग दिखाया, उनकी भाषा-विषयक रीति-नीति क्या थी, और हमारे प्राचीन साहित्य के अनुशीलन में प्रवृत्त यूरोपीय विद्वानों ने उसका क्या मूल्यांकन किया, ये सब प्रश्नोदित विषय, इस ग्रंथ से उद्घाटित और प्रकाशित हुए हैं।

प्रायः हिंदी के धुरंधर इतिहास-लेखक गद्य के आरंभ का इतिहास लिखते हुए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और उसके अधीनस्थ भाषा-मुंशियों, लल्लूजी लाल, सदल मिश्र आदि की कृतियों की चर्चा के प्रसंग में अँग्रेज अधिकारियों के संरक्षण-प्रोत्साहन का चलता-सा उल्लेख तो करते हैं, पर इसके पूर्ववर्ती और परवर्ती अनेक यूरोपीय विद्वानों की सेवाओं को या तो अज्ञानवश अनावृत्त ही छोड़ देते हैं अथवा उनका अवमूल्यन करते हैं। मेरे विचार में वह भी इतिहास का एक अंग ही है और किसी अच्छे तथा निष्पक्ष इतिहास-लेखक को उसके प्रति उपेक्षा-भाव, उसका अवमूल्यन, विस्मरण या

अनुल्लेखन उचित नहीं है। इतिहास न किसी को छोड़ता है, न कुछ जोड़ता है, न वह किसी अंश को तोड़ता हैं, न किसी अंश को मनमाना मोड़ता है। हिंदी गद्य को निश्चित रूप देने और उसे एक साँचे में ढालने में अँग्रेज अधिकारियों ने बहुत काम किया है और उनके राज्याश्रय को प्राप्त कर ही हिंदी अपने से समृद्ध माध्यमों को, अपने ही ब्रजभाषा और अवधी रूपों को अपदस्थ करने में समर्थ हुई और उनके ही राज्य में गद्य को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। अब, जब अँग्रेज शासकों का आधिपत्य हमारी भूमि पर नहीं रहा और १९४७ के बाद हम स्वतंत्र हो गए, उनके परार्धानता-पाश से मुक्त हो गए, तब सत्याग्रह से विजयी भारतीयों को पूर्वाग्रह या दुराग्रह छोड़कर यूरोपियनों के योगदान का पुनर्मूल्यांकन करना उचित ही है।

उत्तर भारत के पूर्वांचल में प्रवेश के पूर्व भी यूरोपियनों ने हिंदुस्तानी की व्यापकता और उपयोगिता को अनुभव कर लिया था और इसे ठीक से जानने तथा सीखने का प्रयास किया था; और, इसके सामान्य ज्ञान के लिए हिंदुस्तानी का व्याकरण अपने ढंग से रचने का कार्य भी आरंभ कर दिया था। जबसे इस विशाल देश में उनका आगमन हुआ था तबसे उनके सौदागरों को यहाँ की देशी भाषाओं का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक जान पड़ा और उन्होंने यहाँ की अनेक भाषाओं को बोलचाल के माध्यम से सीखने की कोशिश की। उन्हें तत्काल बोध हो गया कि मुगल-साम्राज्य से राजकीय स्तर पर संपर्क स्थापनार्थ राजभाषा फारसी की उपयोगिता है, पर लोक-व्यवहार और व्यापार में यहाँ की बहुप्रचलित भाषा हिंदुस्तानी और स्थानीय भाषाओं का जानना ही विशेष लाभकारी है।

यूरोपीय विद्वानों ने न केवल संस्कृत भाषा के, विशेषकर वैदिक साहित्य के अनुशीलन में घोर श्रम कर, अपनी तीव्र मेधा और लगन का परिचय दिया और भारत के प्राचीन धर्म, संस्कृति और साहित्य के अनुशीलन द्वारा इस देश की प्राचीन धार्मिक अवस्था तथा संस्कृति के आधार को जानने की चेष्टा की, वरन् हिंदी का भी व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन-अनुशीलन आरंभ कर, हिंदी व्याकरण तथा कोशादि बनाने और हिंदी गद्य के पोषण-संवर्धन में भी उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही।

जब मैंने कतिपय हिंदी विद्वानों से इस विषय पर विचार-विमर्श किया, तब उनमें कुछ ने केवल ग्रियर्सन, बीम्स आदि दो-चार नाम गिनाते हुए

कहा कि इस विषय पर सामग्री अत्यल्प और दुर्लभ है। सचमुच विषय-संगत सामग्री हिंदी के नामी पुस्तकालयों में भी दुष्प्राप्य और अप्राप्य थी, पर मैंने जब राष्ट्रीय पुस्तकालय और एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की पुरानी प्रकाशित पुस्तकों और शोधपत्रिकाओं में संचित सामग्री का अवलोकन किया तब मेरे उत्साह की रक्षा हुई और मैं इस काम में जमकर लग गया। अब मैंने यह निश्चय किया कि मैं अपने अनुशीलन के क्रम में प्राप्त ज्ञान और अनुभव के मुख्यांश को हिंदी के अध्येताओं के सम्मुख रखूं, जिससे हिंदी गद्य के इतिहास का एक अर्द्धतमसावृत्त पक्ष किंचित् प्रकाशित हो उठे। विदेशियों को उन सभी समस्याओं पर विचार करना पड़ा, जिनपर अब भी विद्वद्वर्ग में विचार-विवाद चलता रहता है। हिंदी गद्य की विविध शैलियाँ, हिंदी लेखन-रीति, एक लिपि की उपयोगिता-ग्रहण, देवनागरी लिपि का रोमन में लिप्यंतरण तथा व्याकरण की कतिपय जटिलताओं पर उन्हें भी मनन-चिन्तन करना पड़ा। यह सब सामग्री मुख्यतः अँग्रेजी में ही उपलब्ध है और १९वीं सदी की शोध-पत्रिकाओं में संचित है। अतः, उक्त विषय से संबद्ध अधिकांश सामग्री अँग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में ही उपलब्ध है। एक बार मन में हुआ कि अँग्रेजी में ही यूरोपीय विद्वानों के हिंदी-विषयक कार्य का परिचय देना सरल होगा, पर फिर मन में आया कि इससे हिंदी भाषा और साहित्य के पाठकों का क्या लाभ होगा ; अतः मैंने हिंदी में ही इस विषय को प्रस्तुत किया। मेरी यही इच्छा है कि हिंदी गद्य के आदि रूप और हिंदी-शिक्षण के इतिहास को प्रस्तुत करनेवाले इस उपेक्षित क्षेत्र का भी अवलोकन और मूल्यांकन करें, जिसे कोड़ने-जोतने, जिसकी हदबंदी और सिंचाई करने तथा बीज बोने आदि में यूरोप से नवागत विदेशियों ने भी अपने ढंग से, एक समय मेहनत कर पसीना बहाया था।

इस ग्रंथ के प्रकाशन का श्रेय बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी को है, जिसकी उन्नति और प्रगति उसके विद्वान् निदेशक डॉ० शिवनन्दन प्रसाद की निष्ठापूर्ण दक्षता, क्षमता और तत्परता के कारण सुनिश्चित है, ऐसी मेरी प्रतीति है। उनके 'कर्मसु कौशलम्' का ही यह फल है कि यह ग्रंथ इस रूप में आपके हाथ में इतना शीघ्र आ गया है।

हिंदी में शुद्ध और स्वच्छ मुद्रण कठिन है। कभी 'मुद्राराक्षसों' का कोप, कभी 'टंकासुरों' का प्रहार, कभी प्रकाशन-संस्था की अक्षर-संबंधी नीति–

रीति और अधिकतर प्रूफशोधक का प्रमाद तथा लेखक की अपनी लेखन-रीति में अंतर तथा बीच में आकस्मिक और अनपेक्षित बाधाओं की उपस्थिति, इन अनेक कारणों से निर्दोष मुद्रण नहीं हो पाता। पर, सबके लिए लेखक ही उत्तरदायी है—चूँकि ऐसा प्रायः हिंदी में मान लिया जाता है ; अतः मुद्रण-दोषों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

ग्रंथ में कई उपयोगी परिशिष्ट जोड़ दिए गए हैं। इनमें कुछ प्रमुख अँग्रेज लेखकों के ग्रंथों और निबंधों की सूची भी दे दी गई है, जो इस विषय को अग्रसर करने के इच्छुक लेखकों के लिए लाभकारी होगी, ऐसी आशा है।

अपने श्रमबिन्दुओं को प्रकाश में मुक्ताविन्दु की तरह चमकता देखकर कौन प्रसन्न नहीं होगा ? 'काव्यशास्त्रविनोदेषु' शेष काल भी बीते और कुछ उपयोगी लेखन आगे भी हो सके तो जीवन की गोधूलि भी मनोरम मानूँगा। हिंदी भाषा की श्रीवृद्धि हो और इस ग्रंथ के प्रकाशन से विदुषों को परितोष हो, यही मेरा संतोष होगा।

हिंदी के विदेशी सेवकों ने भी भारत-भारती की सेवा की थी, उस सेवा का विस्मरण कर हम अन्याय न करें—सबको अपना-अपना प्राप्य मिले। अब हिंदी भवन से निकलकर भुवन में जा चुकी है, वह विदेशों में विश्वविद्यालयों में भी प्रतिष्ठित स्थान पाने लगी है, और संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश पा सकती है ; अतः वह दिन दूर नहीं है, जब हम अपने इतिहास में 'विदेशी हिंदी साहित्य' की भी चर्चा करेंगे। अब हिंदी का वर्त्तमान भूगोल विगत इतिहास को चुनौती दे रहा है और जब भावी इतिहासकार हिंदी के इतिहास का पुनर्लेखन करेगा तो वह विदेशों में रचित हिंदी साहित्य और विदेशियों की हिंदी-सेवा को विस्मृत और उपेक्षित नहीं करेगा। आगामी साहित्येतिहास को नवीन आयाम प्रदान करने में यदि यह ग्रंथ किंचित् भी प्रेरक-सहायक सिद्ध हो, तो लेखक अपने श्रम को सार्थक मानेगा।

राजेन्द्रनगर, पटना

मुरलीधर श्रीवास्तव

विषय-क्रम

विषय-प्रवेश

अध्याय १ पृ० सं०

यूरोप और भारत का संपर्क : ३-२६

यूरोपियनों का आगमन और भारतीयों की प्रतिक्रिया :— (१) पुर्तगालियों का आगमन-अलबुकर्क का शासन, पुर्तगाली भाषा और उसका हिंदी पर प्रभाव, (२) डचों का आगमन, (३) अँग्रेजों का भारत में आगमन, ईस्ट इंडिया कंपनी का जन्म, सूरत में अँग्रेजों का प्रवेश, मद्रास, बम्बई और बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का जन्म, (४) डेनों का आगमन, (५) फ्रांसीसियों का आगमन, यूरोपियनों के प्रवेश का प्रभाव।

अध्याय २

यूरोपियनों द्वारा भारतीय भाषाओं का अनुशीलन : ३३-४४

यूरोपियनों का संस्कृत-अनुशीलन, यूरोपियनों का हिंदुस्तानी का अनुशीलन।

खंड १

(क) हिंदी के प्रमुख यूरोपियन सेवक। ४७-१८४

१. चार्ल्स विल्किंस, २. डॉ० गिलक्रिस्ट, ३. डॉ० हेनरी थामस कोलब्रूक, ४. कैप्टेन रॉबेक, ५. हेनरी मापर्स इलियट, ६. गार्सा-द-तासी, ७. ब्रियान हाटर हाडसन, ८. डॉ० मोनियर विलियम्स, ९. जॉन साहब, १०. जॉन क्रिश्चियन, ११. जॉन बीम्स और ग्रियर्सन, १२. जॉन ब्लाख, १३. ग्राउज, १४. डॉ० अब्राहम ग्रियर्सन, १५. रेवरेंड टी० ग्राहम बेली, १६. डॉ० हार्नले, १७. फ्रेडरिक पिन्काट, १८. डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी, १९. ए० पी० बरान्निकोव, २०. सेवस्तिवा रोडल्फ दाल्गादा, २१. एफ० ए० की, २२. डॉ० एल० डी० बार्नेट, २३. ए० जी० शेरिफ, २४. डॉ० कामि[illegible]े।

(ख) प्रमुख व्याकरण-लेखक : २८५-२९५

१. केटलर, २. बेंजामिन शुल्जे, ३. हेरासिस लेवेडेफ, ४ जॉन शेक्सपियर, ५. विलियम प्राइस, ६. विलियम येट्स ७. पादरी आदम, ८. वैलेन्टाइन, ९. सैण्डफोर्ड आर्नेट, १०. डंकन फोर्ब्स, ११. रेवरेंड विलियम एथरिंगटन, १२. रेवरेंड एच० एच० केलाग, १३. एडविन ग्रीव्स।

हिंदी में व्याकरण-लेखन के प्रेरक-पोषक अँग्रेज और परवर्ती व्याकरण-लेखन पर उनका प्रभाव।

(ग) प्रमुख कोशकार : २६९-२८९

१. गिलक्रिस्ट का अँगरेजी-हिंदुस्तानी कोश, २. कर्कपैट्रिक का कोश, ३. विलियम हंटर का कोश, ४. शेक्सपियर का कोश, ५. थामस रॉबेक का लोकोक्ति-संग्रह, ६. रॉबेक का नाविक कोश, ७. ओरियंटल प्रोवर्बियल डिक्शनरी, ८. शरीर-रचना और चिकित्सा-शब्दावली, ९. एम० टी० आदम का कोश, १०. द रोजारियो का अँग्रेजी, बंगला और हिंदुस्तानी कोश, ११. ग्लॉसरी का निर्माण, १२. फैलन का कोश, १३. फैलन का लोकोक्ति-कोश, १४. फैलन का कानून और वाणिज्य-कोश, १५. येट का कोश, १६. डंकन फोर्ब्स का कोश, १७. थामसन की स्कूल डिक्शनरी, १८. जॉन प्लाट्स का कोश।

खण्ड २

१. यूरोपियन—हिंदी-साहित्य के प्रेरक और प्रेषक-रूप में : २९३-२९९

ईसाई-पाठ्यपुस्तकें, उदंत मार्तण्ड और अँग्रेज, भूगोल-सार, भूगोल हस्तामलक, रानी केतकी की कहानी और अँग्रेज।

२. फोर्ट विलियम कॉलेज और उसकी देन। ३००-३२३

हिंदुस्तानी का शिक्षण-स्तर। सार्वजनिक विवाद-योजना। कॉलेज का पुस्तकालय, कॉलेज के साहित्यिक कार्यों का महत्त्व, कॉलेज के प्रकाशन। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदुस्तानी प्रोफेसर—मि० डब्लू० वी० बेली का हिंदुस्तानी-

विषयक दावा, कॉलेज में हिंदुस्तानी-व्याकरण का शिक्षण-स्तर। कंपनी और फोर्ट विलियम कॉलेज की भाषा-नीति। विलियम प्राइस और हिंदुस्तानी।

३. नागरी-मुद्रण और यूरोपियन : ३२४-३३४

यूरोप में नागरी-मुद्रण का आरंभ, बंगाल में मुद्रण का आरंभ, हिंदी-मुद्रण का आदिकाल।

४. देवनागरी की रोमन लिप्यंतरण : ३३५-३४६

गिलक्रिस्ट और जोन्स प्रणाली की तुलना, गिलक्रिस्ट की रोमन-प्रणाली, एम० ऑ० की प्रणाली, भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि, देवनागरी के प्रचार में अंग्रेजों का योगदान।

खण्ड ३

यूरोपियनों के द्वारा लिखित हिंदी पद्य और गद्य के कतिपय उदाहरण। ३५१-३८६

परिशिष्ट भाग

परिशिष्ट १

(क) सहायक और संबंधित ग्रंथ (अंग्रेजी) : ३६१-३६५

(ख) राष्ट्रीय पुस्तकालय में उपलब्ध हिंदी और हिंदुस्तानी-विषयक यूरोपियन के ग्रंथों की सूची, जिससे पुस्तक-लेखन में सहायता ली गई ३९७-४०२

(ग) सहायक और संबंधित ग्रंथ (हिंदी) ४०३-४०५

परिशिष्ट २

(क) इंडिया-आफिस-लाइब्रेरी की ग्रंथ-सूची से संकलित सूचना के अनुसार यूरोपियनों के लिखित ग्रंथ ४०३-४०९

(ख) ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी की ग्रंथ-सूची में हिंदी-हिंदुस्तानी-विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ४१०-४१२

परिशिष्ट ३

(क) सर जॉर्ज ग्रियर्सन की हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित प्रकाशित रचनाओं की कालक्रमानुसार सूची ४१३-४२२

(ख) जॉन बीम्स की रचनाएँ ४२३-४२४
(ग) १८०० ई० के पूर्व प्रकाशित हिंदुस्तानी ग्रामरों की काल-क्रमानुसार सूची ४२५-४२७

परिशिष्ट ४
(क) फोर्ट विलियम कॉलेज की सामग्री से एक अंश ४२८-४३०
(ख) फोर्ट विलियम कॉलेज की हिंदवी ४३१-४३२
(ग) फोर्ट विलिमम कॉलेज की प्रश्नावली ४३३-४३५
(घ) रॉबेक के अनुसार कॉलेज के प्रकाशन ४३६
(ङ) गिलक्रिस्ट के स्ट्रेनजर्स गाइड से उद्धरण ४३७-४३९

परिशिष्ट ५
(क) शुल्जे की लैटिन भूमिका ४४०-४४२
(ख) लेबेडेफ के व्याकरण के कुछ अंश ४४३-४४६

परिशिष्ट ६
(क) प्राचीन हिंदी पुस्तकों के अँग्रेजी अनुवाद ४४७-४४९
(ख) हिंदी के यूरोपियन डाक्टर ४५०
(ग) यूरोप के विश्वविद्यालयों से हिंदी में डॉक्टर की उपाधि-प्राप्त भारतीय विद्वान् ४५१

★

प्रथम अध्याय

यूरोप और भारत का सम्पर्क

प्रायः ऐसा मान लिया जाता है कि यूरोपियनों के भारत में प्रवेश से नवयुग का आरम्भ होता है, पर वास्तव में यह इतिहास की एक भ्रांति है। जब वास्को-द-गामा दक्षिण-पश्चिमी तट पर १४९८ ई० में पहुँचा, तब भारत मध्ययुग में ही था और लगभग अढ़ाई सौ साल तक भारत मध्ययुगीन स्थिति में ही पड़ा हुआ था। प्रायः हमें यह ध्यान नहीं रहता कि पानीपत-विजेता बाबर से २८ वर्ष पूर्व भारतभूमि की दक्षिण-पश्चिमी वेला पर पुर्तगाली जाति का प्रवेश हो चुका था एवं दक्षिण के एक राजा ने वास्को-द-गामा को व्यापार की अनुमति और सुविधाएँ प्रदान की थीं। १४५३ ई० में यूरोप में दीर्घकालीन युद्धों के पश्चात् कुस्तुनतुनिया में तुर्क-यूरोपियन ईसाइयों पर विजयी हुए और इस महत्त्वपूर्ण युद्ध का परिणाम यह हुआ कि पश्चिमी यूरोप का, बीच में विरोधी तुर्की साम्राज्य के पड़ जाने के कारण, पूर्व की ओर जाने का स्थल-मार्ग अवरुद्ध हो गया। भारत से संपर्क अब केवल जलमार्ग से संभव था। अतः, पश्चिमी यूरोप की जातियाँ भारत का नवीन जलमार्ग खोजने को बाध्य हो गईं। उस समय समस्त यूरोप में पुर्तगाल नौबल में अग्रणी था, वहाँ के साहसी नाविक अतलान्त महासागर की छाती पर निर्भय पोत चला कर अपने अदम्य शौर्य एवं साहस का परिचय दे रहे थे। सोने की खोज में निकले पुर्तगाली साहसी नाविक कोलम्बस के नेतृत्व में अतलान्त महासागर का वक्ष चीरते हुए अमेरिका के तट पर १४९२ ई० में पहुँच चुके थे। जिसे भ्रमवश कोलम्बस ने इण्डिया समझा था, वह नया महादेश अमेरिका निकला। भारत की खोज अब भी चलती रही। कुछ वर्षों बाद अफ्रिका महादेश का चक्कर काटते हुए पुर्तगाल का एक साहसी पोत, उत्तमाशान्तरीप पार करते हुए भारत के दक्षिण-पश्चिम तट पर आ पहुँचा। उस समय वह समुद्रतट एक प्रकार से अरक्षित ही था। भारत का दिल्ली-स्थित केंद्रीय शक्तिमान्

राज्य समुद्रतट पर अधिकार नहीं रखता था। यह विशाल देश अनेक राज्यों में बँटा हुआ था और दक्षिण के लघु राज्य भी तट की रक्षा से उदासीन थे। किसी समुद्री आक्रमण की आशंका भी नहीं थी। लगता था कि देश समुद्री आक्रमण से निश्चित सोया पड़ा हो। पंजाब, सिंध और पश्चिमोत्तर सीमांत के उसपार के मुस्लिम राज्यों के कारण हिन्दुओं का संवंध स्थल-मार्ग से पश्चिमी राष्ट्रों से टूट चुका था। वारहवीं सदी के बाद से अरब सागर पर अरब नाविकों का प्रभुत्व या आधिपत्य था। यूरोप के नगरों में और एशिया तथा अफ्रिका के देशों में भारतीय व्यापारियों के पण्यवाहक-अरब नाविक ही थे। भारत के पश्चिमवर्त्ती देशों में इस्लाम के उदय के वाद हिन्दुओं का वाह्य संवंध टूट चुका था। जातिभेद और आहार की शुद्धता में विश्वासी रूढ़िग्रस्त संकीर्ण हिन्दू जाति कूपमण्डूक हो गयी, बाहर के समुद्र में उसने पैर ही नहीं रखा। दक्षिण के छोटे-छोटे राजा तटवर्ती संबंध के लिए छोटे-वेड़े रखते थे, उन्होंने सुदृढ़ नौशक्ति स्थापित करने पर ध्यान ही नहीं दिया। मुसलमानों के साथ यह बात नहीं थी। तुर्की से मंगोलिया तक मुस्लिम राज्य स्थापित हो चुके थे, हिन्दुस्तान में भी उनकी विजयपताका फहरा रही थी, सभी देशों के धार्मिक मुस्लिम अपने धर्मपीठ मक्का का दर्शन करने की कामना से अरव जाते थे। अरब नाविकों के माध्यम से न केवल अरब सागर तटवर्ती देशों का ही 'हज' का संवंध था वरन् इराक, ईरान, अफगानिस्तान और भारत से भी अरव नाविक ही एशिया और अफ्रिका के देशों में माल ले जाते थे। अतः, जब वास्को-द-गामा का पोत भारतीय तट पर पहुँचा, तब अरव नाविकों को ही उन्होंने अपना प्रबल प्रतिद्वन्द्वी और विरोधी पाया। यूरोप में विगत धर्मयुद्धों (क्रूसेडों) के कारण ईसाई मुस्लिम वैमनस्य और विरोध का विषाक्त वातावरण था ही, अब व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता भी आरम्भ हो गयी। अतः, उस समय पुर्तगालियों के सहज शत्रु मुसलमान थे। नवागत पुर्तगालियों और अरवों में संघर्ष केवल धर्म को लेकर नहीं, मुख्यतः स्वार्थ को लेकर हुआ। उत्तमाशान्तरीप होकर भारत का जलमार्ग मिल जाने से अब यूरोप का व्यापार भूमध्यसागर से न होकर अब अतलान्त महासार की पूर्वी तटभूमि से होकर होने लगा। इस संघर्ष में अन्त में अरब नाविकों की हार हुई। पुर्तगालियों की विजय का मुख्य कारण यह था कि अरबों के पोत प्रायः तटवर्ती व्यापार के योग्य थे, जबकि पुर्तगालियों के पोत महासागर की छाती को चीर कर

चल सकने में समर्थ थे। उनके सुदृढ़ नौबल को देखकर पोप अलेक्जेन्डर षष्ठ ने पूर्वीय गोलार्द्ध के सागरों पर आधिपत्य स्थापित करने का अधिकार पुर्तगालियों का है, ऐसा घोषित कर दिया था। बैरोस के अनुसार पुर्तगाली यह मानते थे कि यूरोप के बाहर के सागरों पर बिना उनकी अनुमति के चलने वाले पोतों को लूट लेने का अधिकार उन्हें प्राप्त है। अपने साहसी नाविकों की आरम्भिक सफलताओं के कारण पुर्तगाल नरेश ने अपने को 'इथियोपिया, अरब, फारस और हिन्द' का, नौसंचरण (नैविगेशन) विजय और व्यापार के हेतु 'लार्ड' (स्वामी) समझने लगे थे। अतः, पुर्तगाली नौवीरों को भारतीय समुद्रद्वार के कपाट की क्षीण अर्गला को तोड़कर अंदर पैठने में कठिनाई नहीं हुई। जब एक बार अरब सागर के मार्ग से पुर्तगाली इस देश में प्रविष्ट हो गए, तब अन्य देशीय यूरोपीय जातियों ने भी भारत में आकर व्यापार की योजनाएँ बनायीं। यूरोप के अनेक देशों से आगत जातियों में सागर पर प्रभुत्व के लिए दीर्घकालीन संघर्ष और विवाद चलते रहे, पर स्वयं अपनी ओर से भारत नौबल में क्षीण होने के कारण विदेशी आक्रामक व्यापारियों को रोकने में असमर्थ सिद्ध रहा। पुर्तगाली प्रभुत्व को पहले-पहल डचों ने तोड़ा और बाद में १६ वीं सदी के बाद इंगलैंड ने अपने को यूरोप में सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध कर दिया, तो वही भारत में पुर्तगाल का प्रबलतम प्रतिद्वन्द्वी बन गया। लगभग अढ़ाई सौ वर्षों तक (१४९८-१७५७ ई०) तक यूरोपियन इस देश में दक्षिण में समुद्रवर्ती भागों में सौदागर बने रहे और अपने व्यापार के हेतु स्थान-स्थान पर छोटी-बड़ी कोठियाँ कायम कर समृद्ध हो गए। उसके बाद व्यापार से समृद्ध होने की कामना से आगत फिरंगियों में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेज सौदागर, उत्तरापथ के पूर्वांचल में अर्थात् बंगाल में अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो गए।

अब हम किंचित् विस्तार से यूरोप से आगत विभिन्न जातियों के आगमन का इतिहास प्रस्तुत करते हैं, जिसकी पृष्ठभूमि में ही हम यूरोपियनों के हिन्दी भाषा और साहित्य-विषयक योगदान को समझ सकते हैं।

यूरोपियनों का आगमन और भारतीयों की प्रतिक्रिया :

भारत में मुसलमानों के प्रवेश का जिस प्रकार भारतीय राजाओं ने पारस्परिक स्पर्धा और द्वेष-भाव के कारण, संयुक्त और एक होकर प्रतिरोध नहीं किया था, उसी प्रकार प्रथम यूरोपियन विजेता वास्को-द-गामा के समय

भी इतिहास की पुनरावृत्ति हुई। जब वास्को-द-गामा यहाँ के समुद्रतट पर आया, तब उसे भारत का दक्षिण-पश्चिमी द्वार खुला हुआ मिला, मानो हमारे समुद्रद्वार के कपाट पर अर्गला ही नहीं लगी हो। भारत की केंद्रीय राजशक्ति दिल्ली में प्रतिष्ठित थी तथा उसकी सीमा से यह भाग बाहर पड़ता था, अतः विदेशी आगन्तुकों को दिल्ली की राजशक्ति से मुठभेड़ का अवसर ही नहीं मिला। जिस भाग में पुर्तगालियों का आगमन हुआ, वहाँ एक छोटे राजा का राज्य था। कालीकट का ज़मोरिन एक साधारण राजा था। वह विदेशी आगंतुकों को शीघ्र ही व्यापार का अधिकार देने को तैयार हो गया। उसके मन में यह कल्पना उठने का कोई कारण नहीं था कि समुद्रपार से आगत ये मुट्ठी भर पुर्तगाली इस देश के किसी भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगे। पर पुर्तगालियों को शीघ्र ही यहाँ की राजनीति में उलझने का अवसर मिल गया, उस समय ज़मोरिन और कोचीन नरेश में अनबन थी और वे एक-दूसरे के विरोधी थे। ऐसी स्थिति से लाभ उठाकर, दोनों में भेदनीति से फूट पैदा कर पुर्तगालियों ने दोनों को ही पराजित कर दिया। कुछ समय बाद कालीकट की आँख खुली, तब वहाँ के वीर नौसेनानियों ने अरब सागर में अपना पराक्रम दिखलाना शुरू किया और उत्तर में डिउ और दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक के भाग में पुर्तगालियों के छक्के छुड़ा दिए। कालीकट के दक्षिण में पोन्नानी और कोट्टकल में नौसेना का अड्डा बनाकर कुंजली नामक नौसेनानी पुर्तगालियों को बराबर खदेड़ता रहा। जब ज़मोरिन को आसन्न संकट का आभास हुआ, तब उसने गुजरात के सुलतान से ही नहीं, तुर्की के सुलेमान की सहायता ली। यद्यपि भारतीय कई बार समुद्र में पुर्तगालियों से मुठभेड़ और मुकाबले में प्रबल सिद्ध हुए, पर अंत में उनकी सुदृढ़ नाविक शक्ति के आगे वे परास्त हो गए। गुजरात के बहादुर शाह की मृत्यु यूरोपियन आक्रामकों से युद्ध करते ही हुई थी। सत्य यह है कि भारतीयों ने हिंदू और मुसलमान दोनों ने मिलकर पुर्तगालियों का विरोध किया था, पर चूंकि इस देश की समुद्री शक्ति अपेक्षाकृत पुर्तगालियों के समकक्ष सुदृढ़ और संगठित नहीं थी, अतः भारतीय नरेश पुर्तगाली बाढ़ को रोकने में समर्थ नहीं हुए। हमारी पराजय का प्रमुख कारण यह था कि पुर्तगालियों के रणपोत महासागर में लड़ने योग्य थे, जबकि हमारे लड़ाकू बेड़े तटवर्ती संचरण के ही योग्य थे। पुर्तगाल की नाविक-शक्ति बाद में अपने प्रतिद्वन्द्वी डचों की नौ-शक्ति से ही आहत हुई। डचों ने भारत

में आने के बाद ज़मोरिन और मलाबार नरेश से मित्र-भाव स्थापित कर लिया और उनके सहयोग से पुर्तगाली शक्ति पर प्रहार कर उसे क्षीण करने में सफल हुए। १७०० ई० के लगभग डच पुर्तगालियों से अधिक शक्तिशाली हो गए। उनका ध्यान शांतिपूर्वक व्यापार को बढ़ाने पर था। उनमें पुर्तगालियों के समान धर्मांधता और ईसाइयत के प्रचार-प्रसार का विशेष उत्साह नहीं था। इस प्रसंग में एक यह बात भी उल्लेख्य है कि पुर्तगाली मुसलमानों के अधिक विरोधी थे और हिन्दुओं के प्रति साधारणतः उनमें सद्भाव था। इसका कारण यह था कि उनके मन में यूरोप के धर्मयुद्धों (क्रूसेडों) की कटु स्मृति बनी हुई थी। पुर्तगालियों ने विजयनगर के राज्यों से मित्रभाव दिखलाया तथा उनकी उदार नीति से लाभ उठाया। चूँकि पुर्तगालियों का विरोध बीजापुर और गुजरात के सुलतानों से हो चुका था, अतः अन्य मुस्लिम शासक भी उनके प्रति द्वेष और घृणा करते थे। पुर्तगाली प्रायः स्वार्थांध और धर्मांध थे, पर डच शांतिप्रिय और व्यापार कुशल। पुर्तगाली कट्टर कैथोलिक थे। जेसुइट पादरियों को धर्म-प्रचार का ऐसा उत्साह था कि उन्होंने अपने धर्मोपदेश से बादशाह अकबर को भी प्रभावित करना चाहा था। अकबर ने उनके धर्म की बातें ध्यान से सुनीं, पर इन पादरियों का उसपर इतना ही प्रभाव पड़ा, कि उसने उन्हें अपने धर्मपालन और धर्म-प्रचार की खुली छूट दे दी। अब पुर्तगाली बंगाल में, डचों से पराजित होने के बाद, आश्रय के लिए आए। बर्नियर ने लिखा है कि उस समय हुगली में ही आठ-नौ हजार ईसाई थे और राज्य के अन्य भागों में उनकी संख्या लगभग २५ हजार थी। बंगाल में उस समय विदेशियों में पुर्तगाली, डच और अंग्रेजों के बीच एक कहावत चल पड़ी थी कि 'बंगाल राज्य में घुसने के सैकड़ों द्वार हैं, पर निकलने का एक नहीं'। अकबर के बाद जहाँगीर के शासन में भी पुर्तगालियों का बढ़ना जारी रहा। शाहजहाँ के समय उनकी हिम्मत और भी बढ़ गयी और बंगाल में उन्हें नमक व्यापार का एकाधिकार मिल गया था और वे प्रजा पर खुल कर अत्याचार और ईसाइयत का प्रचार करने लगे थे। वे शेखी से यह कहने लगे थे कि दूसरों ने १० वर्षों में जितने ईसाई बनाए हैं, उतने हमने साल भर में बना लिए हैं। बंगाल में हिन्दू राज्य नहीं था और मुगल बादशाहों ने पुर्तगालियों द्वारा ईसाई बनाने पर कोई बंधन नहीं लगाया था। पर जब पुर्तगालियों के अत्याचार बढ़ने लगे तब प्रजा की तबाही देखकर शाहजहाँ ने

दमन का आरंभ किया। 'बादशाहनामा' के अनुसार '४४०० ईसाई स्त्री-पुरुष कैद कर लिए गए और लगभग दस हजार लोगों को इन आतातयियों की कैद से छुड़ा कर आजाद कर दिया गया।'

कंपनी का व्यापार शांतिपूर्वक चलता था, पर जब अंग्रेजों की शक्ति बढ़ने लगी, तब हिंदुस्तान की हुकूमत से वे भी उलझने और उसके आदेशों की अवमानना करने की ढिठाई करने लगे। शाहशुजा से अंग्रेजों ने १६५२ ई० में एक 'निशान' ३,०००) सालाना देय पर लिया था। बाद में, १६८० ई० में औरंगजेब ने अपने संपूर्ण राज्य में व्यापार करने की अनुमति ३½ प्रतिशत सूरत में ड्यूटी लगाकर अंग्रेजों को दे दी। इन्हीं करों की अदायगी को लेकर अंग्रेजों से मुगलों का मतभेद बढ़ा। १६८६ ई० में अंग्रेजों ने हुगली पर धावा बोल कर उसे लूट लिया, चटगाँव पर भी अधिकार करने की चेष्टा की। इसपर औरंगजेब ने अंग्रेजों की बदतमीजी, ढिठाई और बढ़ती हिम्मत को देखकर अंग्रेजों की फैक्टरियों को जब्त कर उनका रोजगार रोक दिया। इसपर अंग्रेजों का दिमाग ठंढा हो गया। बाद में, डेढ़ लाख मुआवजा देकर अंग्रेजों ने माफी माँगी। फिर, १६९१ ई० में तीन सभी व्यापारी करों के स्थान पर देकर बंगाल में रोजगार करने का अधिकार पाया। बंबई में भी अंग्रेजों को अपनी करनी का फल भुगतना पड़ा। जब अंग्रेजी फैक्टरियों के मुख्य डाइरेक्टर सरजान चाइल्ड ने छेड़खानी की, तब मुगल फौजों ने सूरत को घेर लिया और वहाँ के अधिकारी को १६ महीने तक कैद में रखा।

समुद्री लुटेरे के रूप में उस समय अंग्रेज भी बदनाम थे। सागरतट से माल लदे हिंदुस्तानी पोतों पर ये लुटेरे छापा मार कर सब माल लूट लेते थे। यहाँ तक कि 'गंज-सवाई' नामक शाही जहाज को भी लूट लिया गया। इसपर ६ लाख का माल लदा था। सफीखान के अनुसार अंग्रेज आततायियों से अपने सतीत्व की रक्षा के हेतु स्त्रियों ने समुद्र में कूद कर या छुरे भोंक कर अपनी रक्षा की थी। शाही इतिहास लेखक के अनुसार अंग्रेजों की कर से आय दो-तीन लाख से ज्यादा नहीं थी, पर लूट से बीस लाख से भी अधिक थी। मक्काशरीफ जाने वाले जहाजों पर भी ये लुटेरे आक्रमण किया करते थे। जब इनकी लूट-पाट की हरकतें असह्य हो गईं, तब सूरत के हाकिम अमानत खाँ ने इन लोगों को दस दिन के अंदर देश को छोड़ देने या समुद्र की हिफाजत करने का अंतिमेत्थम (अल्टीमेटम) दिया। इसके

परिणामस्वरूप अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और डचों ने हरजाना देकर आगे के लिए आश्वासन दिया। फिर भी, उनके उत्पात बिलकुल समाप्त नहीं हुए। १७०२ ई० में सूरत में १०९ कैदी पकड़ कर लाए गए। इनमें कंपनी के २१ अफसर भी थे।

जब शिवाजी की शक्ति बढ़ी, तब अंग्रेजों ने उनके साथ भी चालाकी की नीति अपनायी। कभी तो यूरोपियन लोग शिवाजी की सेना के आगे झुक जाते थे और फिर कभी अपनी शरारतभरी हरकतों से बाज नहीं आते थे। १६६४ ई० में शिवाजी को सूरत में हमला करना पड़ा। पर, १६७४ ई० में अंग्रेजों को शिवाजी के अभिषेक समारोह में उपस्थित होने का निमंत्रण मिला। अंग्रेज सतर्क नीति का अवलंबन कर रहे थे। उन्होंने शिवाजी से अच्छा संबंध बनाए रखने की चेष्टा की। बीच-बीच में अंग्रेजों और मराठों में अनबन भी हो जाती थी। शिवाजी के राज्य काल के अंत के लगभग फिर एक बार अंग्रेज शिवाजी से उलझ गए और उनकी करारी हार हुई। यह लड़ाई हेंदरी केंदरी नामक दो छोटे टापुओं को लेकर हुई थी। कुछ समय बाद मराठों में कान्होजी नामक एक नौसेनापति का उदय हुआ, जिसके प्रहारों से यूरोपियन थर्रा उठे। यूरोपियनों की सम्मिलित शक्ति भी उसके प्रहारों को सहने में समर्थ नहीं हुई। पेशवा बालाजी विश्वनाथ की बुद्धिमानी से कान्होजी मराठों के पक्ष में रहा, पर उसके बाद बालाजी बाजीराव ने विद्रोही तुला जी आंग्रेजों को दबाने के लिए अंग्रेजों की सहायता ली। १७५७ ई० में क्लाइव और वाट्सन के अधीन अंग्रेजी फौज की मदद से उसने विजय दुर्ग पर अधिकार किया। भारतीय नरेशों ने अपनी अदूरदर्शिता से अपने गृहकलहों में कंपनी की मदद लेकर अपने विदेशी शत्रुओं को मजबूत बनने का मौका दे दिया। पुर्तगाली पहले ही कमजोर हो चुके थे, अब अंग्रेजों के उदय में कोई बाधक नहीं रह गया। धीरे-धीरे नियति-चक्र के उलट-फेर से यूरोपियनों में अन्त में अंग्रेज ही प्रबल सिद्ध हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १८ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रवेश करने के समय तक यूरोपियनों में सबसे प्रबल कंपनी की फौजें थीं और उस समय बंगाल की दुर्बल राजशक्ति से उन्होंने पूरा लाभ उठाया। अब कंपनी सौदागरी के साथ-साथ हिंदुस्तान के राज्यों के कलह और उनकी दुर्बलता के कारण यहाँ की राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगी थी। बंबई में अंग्रेजों

के पैर जम चुके थे। दक्खिन में मराठों और निजामउल मुल्क के संघर्षों के कारण अंग्रेज मद्रास में मुक्त होकर अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे थे। बंगाल में कंपनी का व्यापार बढ़ जाने से कलकत्ता अंग्रेजों का दृढ़ केन्द्र बन गया था। बंगाल का सूबेदार नवाब अली वर्दी खाँ ने अपने को दिल्ली की बादशाही के अधीन नाममात्र को मानता था। पर, जब उसका मराठों से पराजित होने के कुछ काल बाद ही निधन हो गया, तब बंगाल कमजोर हो गया और स्वार्थी नवाबों के परस्पर वैमनस्य और कलह के कारण कूटनीति में निपुण अंग्रेजों के हस्तक्षेप को सहन करने की स्थिति में विवश हो गया। पलासी और बक्सर के युद्धों के फलस्वरूप कंपनी बंगाल में प्रबल शक्ति के रूप में उदित हुई और उसे बंगाल की दीवानी मिल गयी।

१. पुर्तगालियों का आगमन :

वास्को-द-गामा ने मई १४९८ ई० को भारत-भूमि पर पैर रखा। यह प्रथम यूरोपियन था, जिसका प्रकट उद्देश्य भारत में रहकर व्यापार करना और ईसाई धर्म का प्रचार करना था। उसके पूर्व भी यूरोप से आगत कुछ यात्रियों का उल्लेख मिलता है, जो मात्र पर्यटक थे, जो कुछ काल भारत भ्रमण कर अपने देश लौट गए। अपने यात्रा-विवरणों में इन्होंने भारत का वर्णन किया है और यहाँ की विविध रीतियों और प्रथाओं तथा भाषाओं के संबध में भी लिखा है, पर वे यात्री न तो यहाँ बसने को आये थे और न इस देश के व्यापार वाणिज्य संबंध स्थापित करना ही उनका उद्देश्य था। मोम्बासा में वास्को-द-गामा को एक हिंदुस्तानी मिला, जो उसके पोत का पथ-प्रदर्शक बना। भारत पहुँचने पर जब वह ज़मोरिन से मिला और उसने वास्को-द-गामा से यहाँ आने का प्रयोजन पूछा, तो कहा जाता है कि उसने यह स्पष्ट उत्तर दिया था कि मैं "ईसाइयों और मसालों की खोज में आया हूँ।" यह तो ठीक ज्ञात नहीं कि दोनों के बीच किस भाषा में बातचीत हुई थी, पर लगता है कि बातचीत किसी दुभाषिए के माध्यम से ही हुई होगी। इन पुर्तगालियों ने भारत के ऐसे भाग में अपना व्यापार आरंभ किया, जहाँ की देशभाषा हिंदुस्तानी नहीं थी।

आरंभ में हिंदू ज़मोरिन ने पुर्तगालियों को आश्रय देने की उदारता दिखलाई, पर बाद में अरबों के भड़काने और कान भरने से वह वास्को-द-गामा और उसके दल का विरोधी हो गया। अतः, कालीकट में स्थिति अनुकूल

न देखकर वह कन्नानोर चला गया। यहाँ उसने खूब माल खरीदा और जहाजों पर लादकर १४९९ ई० में लिस्बन लौट गया। स्वदेश पहुँचने पर राजा ने उसे बहुत सम्मान दिया और उसकी ख्याति बहुत बढ़ गयी। १५०२ ई० में वह दस पोत लेकर पुनः भारत आया। इस बार कालीकट में प्रवेश कर उसने निःशंक हो वहाँ की प्रजा पर अत्याचार किए। किंतु, बाद में कन्नानोर के राजा से उसकी मैत्री हो गई और उसे कुछ व्यापारिक सुविधाएँ मिलीं।

समुद्री शक्ति में पुर्तगाल उस युग में यूरोप का अग्रणी था। साहसी पुर्तगाली नाविकों ने शीघ्र ही अरब सागर पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यूरोप के अन्य देशों पर पुर्तगाल की नाविक शक्ति का और उनके समुद्र पर प्रभुत्व का आतंक छाया था। पुर्तगाल ने भारत में अपना सर्वोच्च अधिकारी फ्रान्सिस्को-द-अलमिदा को बनाया, जिसने अपने को कोचीन में 'वाइसराय ऑफ इंडिया' घोषित किया। उसकी स्पष्ट नीति थी पुर्तगाल की समुद्री शक्ति को सुदृढ़ करना। उसके बाद १५०९ ई० में अलबुकर्क सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया गया। अब तक पुर्तगाली केंद्र कोचीन और कन्नानोर में ही थे। पर, कालीकट के ज़मोरिन के दृढ़ विरोध के कारण एक सुरक्षित स्थान की आवश्यकता थी। गोआ ऐसा ही स्थान था, जिसे उसने १८१० ई० में हस्तगत किया। अब उसने अपने को सगर्व 'कैप्टेन जेनरल' और 'गवर्नर ऑफ इंडिया' ही कहा। अब उसका लक्ष्य हुआ अरब सागर और हिंद महासागर को पुर्तगाली झील बनाना। १५११-१५१५ ई० के बीच 'फारस की खाड़ी' में स्थित आर्मुज और मलाया प्रायद्वीप के 'मलक्का' पर भी पुर्तगालियों का अधिकार हो गया। इन पर आधिपत्य हो जाने से १५१५ ई० के बाद लगभग सौ वर्षों तक एकमात्र यही यूरोपियन जाति अरब सागर और हिंद महासागर में प्रबल बनी रही। धीरे-धीरे ड्यू, हुगली, सूरत, डेमन, वसीन, बसइ, बंबई, कन्नानोर, कोचीन, नेगापट्टम, सेन्टथामस (मद्रास), मछलीपट्टम आदि तटवर्ती स्थानों में भी पुर्तगालियों के व्यापारी अड्डे कायम हो गए और कोठियाँ बन गईं। बंगाल में उनका एक ही केन्द्र था—हुगली। वहाँ वे व्यापारी ही बने रहे, शासक कभी नहीं बन सके। भारत में सदा गोआ ही पुर्तगालियों का प्रमुख केन्द्र बना रहा। इतिहास की क्रूर परिणति यह है कि यूरोपियनों में पुर्तगाल ही वह राष्ट्र है, जिसका शासन सबसे पहले इस देश में स्थापित और सबसे बाद में समाप्त हुआ।

पुर्तगाली क्रूर शासक और धर्मांध थे। उनकी कठोर और धर्मांध नीति से भारतीय प्रजा त्रस्त और पीड़ित थी। मध्ययुग में यातायात के साधन इतने कम थे कि इस विशाल प्रायद्वीप में यदि कोई घटना किसी कोने में घटित होती, तो उसकी जानकारी भी बहुत दिनों तक दूसरे भाग को नहीं हो पाती थी। भारत भूमि पर बाबर से १५ वर्ष पहले पुर्तगाली सुदूर दक्षिण के अंचल में प्रविष्ट हो चुके थे, पर उनके पैर जमने या दक्षिण-पश्चिमी समुद्री तट पर प्रबल होने का समाचार भी कदाचित् 'हिंदुस्तान' में (हिंदी भाषी क्षेत्र में) नहीं पहुँचा था तथा उत्तर भारत की राजशक्ति को इसका आभास भी नहीं था। भारतीय शक्ति भारत के अंतर्गत ही आपस में लड़कर बिखर रही थी। हम असावधान थे, हमारे देश के एक-एक भाग के राजे अपने-अपने राज्य की सीमा को ही महत्त्व देते थे तथा इस भारतीय प्रायद्वीप की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर क्या हो रहा है, उसके प्रति उदासीन थे। ऐसी थी हमारी राजनैतिक जड़ता, संकीर्णता और अदूरदर्शिता। ठीक है समुद्री मार्ग से आगत आदि यूरोपियन आक्रामक होकर नहीं आये थे, वे सौदागरी के लिए ही भारत की धरती पर उतरे थे, पर यह तो हमने नहीं देखा कि वे दक्षिण के कई स्थानों पर प्रबल होकर अधिकार बढ़ाते जा रहे थे और कभी अपने को 'भारत का वाइसराय' और कभी 'गवर्नर' कहने का दुस्साहस कर रहे थे।

अलबुकर्क का शासन

शासन में पुर्तगालियों ने सभी विभागों में भारतीयों का सहयोग प्राप्त किया। देशीजनों में से थानेदार, सिपाही, चपरासी तो लिये ही जाते थे, कुछ भारतीय बड़े पदों पर भी नियुक्त किए गए। मुसलमानों से अधिक हिंदुओं का पक्ष लिया जाता था। कनारा और मलाबार के ८०० देशियों ने अलबुकर्क के 'लालसागर अभियान' में भाग लिया था। गोआ में शिक्षा के लिए स्कूल खोले गये। १५२६ ई० में पुर्तगाली शासकों के निर्देशन (गाइड) के लिए स्थानीय रीति-रिवाजों के विषय में एक पुस्तक (फ्लोरल द यूसोस ए कस्ट्यूम्स) प्रकाशित की गयी। माल और न्याय विभाग एक ही अधिकारी के जिम्मे किया गया। अलबुकर्क ने गोआ में अत्याचारपूर्ण सतीप्रथा को बन्द कर सुयश कमाया। यदि पुर्तगाली कैथोलिक धर्म का प्रचार करने का जोश न दिखलाते और अपने धर्म के नाम पर प्रजा पर घोर अत्याचार न करते, तो उनके शासन से भारतीयों में उतना असंतोष जाग्रत नहीं होता। मूर्तिपूजा

और मन्दिरों के वे कितने विरोधी और ध्वंसक थे, यह केवल उस आदेश से व्यक्त होगा जो पुर्तगाल नरेश जान चतुर्थ ने इंडिया के वाइसराय 'जान द कैस्ट्रो' को भेजा था।

"आप जानते हैं कि हमारी दृष्टि में मूर्तिपूजा कितनी घृणित वस्तु है : भविष्य में हमारे राज्य में उसे सहन नहीं किया जा सकता। हमें यह सूचना मिली है कि गोआ के चतुर्दिक पैगनों (हिंदुओं) के सार्वजनिक या निजी मंदिरों में अनेक प्रकार के भेद वाले पैगन जाते हैं, हम आपको सदा के लिए आदेश देते हैं कि उन्हें ध्वंस कर देना, जला देना या उन्मूलित कर देना चाहिए और इस पर ध्यान रखना चाहिए कि किसी प्रकार की काष्ट, धातु, मिट्टी या किसी वस्तु की मूर्ति का आना बंद कर देना चाहिए।"[1]

पुर्तगालियों ने जहाँ-तहाँ हिंदुस्तान की प्रजा पर जुल्म भी किए। मनूची ने चटगाँव में पुर्तगालियों के अत्याचार का विशद वर्णन किया है। गोआ में धर्मांध पुर्तगालियों ने कैथोलिक धर्म को फैलाने में बड़ा जोश दिखलाया। गोआ को तो उन्होंने अपना 'उपनिवेश' ही बना लिया था। अलबुकर्क के समय में ४५० पुर्तगालियों ने भारतीय स्त्रियों से, विशेषकर लड़ाई में मारे हुए मुसलमानों की बेवाओं से जबरन व्याह कर लिए। कुछ समय बाद भारतीय स्त्रियों म विवाह की नीति का त्याग कर दिया गया; क्योंकि इस प्रकार का अन्तर्जातीय मिश्रण भयावह जान पड़ा। विवाह संबंध द्वारा जातीय मिश्रण अन्य यूरोपियन जातियों द्वारा सामूहिक रूप में कभी नहीं अपनाया गया।

---

1. You knowing what an abominable thing Idolatory is in our eyes, the same shall for the future not to be tolerated in my dominions. Being informed that in the country about Goa the Pagan Temples are suffered and frequented both public and private, as well as diverse sorts of Pagan diversions, we command you once for all to have the same demolished, burnt and rooted out, and that all imaginable care be taken to prevent the importation of Idols, either of wood, metal, earth or any other matter.

Quoted on p. 316—The Making of Modern India.

पुर्तगाली कठोर और क्रूर तथा अपने धर्म में कट्टर थे। व्यापार के अतिरिक्त उनका इष्ट था इस देश में अपने धर्म का प्रचार। अपने इलाके में वे भले-बुरे सभी तरह के उपायों से प्रजा को कैथोलिक बनाने की चेष्टा करते थे। उनके क्षेत्र की भाषा मराठी थी, अतः पुर्तगालियों में कुछ ने मराठी सीख कर उसमें भी धार्मिक पुस्तकें लिखीं। गोआ के जसुइट पादरियों के कई मिशन अकबर के दरबार में हाजिर होकर ईसा मसीह का संदेश सुनाने को गए। इन पादरियों में सभी पुर्तगाली न थे, अन्य यूरोपियन जातियों के भी सदस्य थे। कहा जाता है कि ईसाई धर्म के प्रति अकबर भी काभी सहानुभूतिशील था। उस समय कि पादरी या तो फारसी के माध्यम से या दुभाषिये द्वारा राजसम्पर्क स्थापित करते थे। अकबरी दरबार में जेसुइट मिशन के पादरियों में फादर एक्वावीवा और मॉसरोटी का नाम लिया जाता है। यह मिशन २८ फरवरी, १५८० ई० को दरबार में गया था। बादशाह अकबर को सब धर्मों के उपदेश और संदेश सुनने का चाव था, अतः उसने पादरियों के मत की बातें भी बड़े प्रेम से सुनीं। किंतु, जेसुइट पादरी बादशाह को बहुत प्रभावित नहीं कर सके। मिशनरियों का उद्देश बादशाह को ईसाई बनाना और सौदागरी में लाभ उठाना भी था। १५८० ई० में नवोदित स्पेन ने अपने राज्य में पुर्तगाल को मिला लिया और इसके बाद पुर्तगालियों की शक्ति क्षीण पड़ने लगी। वास्तव में, इस विशाल देश में कुछ बस्तियाँ स्थापित करने में समर्थ पुर्तगाली भारत पर अपना अधिक प्रभाव नहीं डाल सके।

पुर्तगाली भाषा और उसका हिंदी पर प्रभाव :

मुगल काल में राजभाषा फारसी थी, पर स्थानीय स्वतंत्र राज्यों में स्थानीय भाषाएँ लोक व्यवहार में चलती थीं। पर उस समय भी व्यापारी क्षेत्रों में हिंदुस्तानी का कुछ-न-कुछ व्यवहार व्यापक था। हिंदुस्तानी सौदागरों, गुमाश्तों और दूकानदारों से देश भाषा में ही दैनिक और व्यापारिक व्यवहार चल सकता था। पुर्तगालियों के संपर्क के कारण अनेक पुर्तगाली शब्द देश भाषाओं में चल पड़े, ऐसे कुछ शब्द हिंदुस्तानी में भी प्रविष्ट हुए, जो अब इतने घुल मिल गए हैं कि वे अब हिंदुस्तानी ही समझे जाते हैं। केवल विद्वान् ही जानते हैं कि ये शब्द कभी पुर्तगाली भाषा से अपनी भाषा में आए थे।

पुर्तगाली भाषा का इतना अधिक प्रचार यूरोपियन जातियों में उस काल में हो गया था कि उन जातियों के बीच बहुत दिनों तक पुर्तगाली भाषा सामान्य भाषा के रूप में व्यवहृत होती थी। फ्रांसीसी, अँग्रेज, डन और डच लोगों के बीच परस्पर व्यवहार की भाषा पुर्तगाली हो गयी थी। पुर्तगाली भाषा की भारत में स्थिति के संबंध में हाबसन-जाबसन की भूमिका से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

'जो देशी लोग पोर्चुगीजों के संपर्क में रहते थे, उन्होंने पोर्चुगीज़ भाषा के एक संकर रूप को सीख लिया था, जो परस्पर व्यवहार की भाषा न केवल यूरोपियनों और देशी लोगों के बीच बन गयी थी, बल्कि कभी-कभी भिन्न-भिन्न यूरोपियन कौमों की भी वही भाषा थी। यह हिन्द-पोर्चुगीज़ बोली इस प्रयोजन में पिछली शताब्दी तक (१८ वीं तक) चलती रही और कुछ स्थानों पर लगभग हम लोगों के समय तक बनी रही (प्वाइंट् द गैले में १८६० ई० तक हमने इसे आम व्यवहार में और कुछ बाद तक कालीकट में पाया)।'

बर्नियर सुलतान शुजा के बारे में लिखता है—'वह (औरंगजेब का भाई सुलतान शुजा) प्रांत के इन पुर्तगाली पादरी मिशनरियों को अपने दरबार में बहुत स्थान देता था....और वे सचमुच उसकी सेवा करने के योग्य थे। यह निश्चित है कि बंगाल राज्य में ८-९ हजार से कम फिरंगियों के परिवार नहीं थे।'[१]

उसी सदी के अन्त में ए० हैमिल्टन कहता है (यद्यपि उसकी पुस्तक १७२७ ई० में प्रकाशित हुई) :

'समुद्र-तट पर पुर्तगालियों ने अपनी भाषा का चिह्न रख छोड़ा है। यद्यपि वह बहुत विकृत है, पर वही भाषा अधिकतर यूरोपियन सीखते हैं, जिसके द्वारा आमतौर से वे आपस में या भारत के नाना प्रकार के निवासियों के साथ बातचीत करते हैं।'[२]

---

१. बर्नियर १६८४ का ई० टी० पे० २७।

२. आमुख पेज १२।

The Portuguess language is spoken and is current from Gujrat to Cape Comorin. It is not unknown

इन वर्णनों से स्पष्ट है कि चूँकि पुर्तगाली ही भारत में पहले आए, इसलिए उनकी भाषा विकृत रूप में इस देश में काफी प्रचलित हो गई थी और वही यूरोपियनों के बीच और यूरोपियन जातियों और हिंदुस्तानियों के बीच १८ वीं सदी तक संपर्क-भाषा बनी हुई थी। कहा जाता था कि लार्ड क्लाइव इसी टूटी-फूटी पोर्चुगीज में अन्य यूरोपियनों से बातें करता था।

पुर्तगालियों का प्रभाव भारत की आबादी, रीति और भाषाओं पर पड़ा है। 'पोर्चुगीज़ इन्डिया' हिंदी-क्षेत्र से बहुत दूर था, अतः हिंदी में आगत उस भाषा के शब्दों की संख्या अधिक नहीं है, पर चूँकि यह भाषा १८ वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक, यूरोपीय भाषाओं से सर्वाधिक महत्त्व की थी, अतः इसका प्रभाव भारत की सभी भाषाओं पर पड़ा। राज्यारम्भ में सैकड़ों पुर्तगालियों ने इस देश की नारियों से विवाह भी किए थे। इस प्रकार भारत में प्रथम आगत यूरोपियन भाषा का देशभाषाओं में मिश्रण आरम्भ हुआ। हिंदुस्तानियों के साथ वे मिल-जुल कर रहते थे और उनके जहाजों पर प्रायः मुसलमान और हिंदू ही काम करते थे। भारत में विदेशी पौधों, वनस्पतियों और वस्तुओं को पहले-पहल पुर्तगाली अपने साथ लेकर आए थे अतः उनके दिए नाम ही प्रचलित हो गए।

पुर्तगाली भाषा का प्रभाव कई प्रकार से भारतीय भाषाओं पर पड़ा। इसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) ईसाई धर्म-संबंधी शब्द :

क्रूस (Cruz), गिरजा (Igrega), पादरी (Padre), पापा, कलीसा Calix (Calica)।

(२) नवागत वस्तुओं के नाम :

अलमारी—Armario or Almario
बाल्टी —Balde
बम्बा —Bamba

---

on the Coromandel Coast as far as Bengal. "Cunha Rivera Grammatica da lingua Conkani—(Grammar of the Konkani language.)

बुताम —Botao (Button)
कमीज़ —Camisa
फीता —Fita
पीपा —Pipa
पिस्तौल —Pistola
मोज़ा —Meias

(३) नवागत वनस्पति और पौधे :

अनानास —Ananas
काज —Casa
कोबी —Couve
पपैया —Papaiuo
तमाखू —Tobacco

(४) भोज्य-पदार्थ :

पाव (रोटी)—Pao

अन्य वस्तु बोधक :

आया —Aia
नीलाम —N Leilao
चाभी —Chave
पगार —Pagar
अचार —Aachar ?
बुरनल —Embornal
मेज़ —Masa
कोच —Coche (Coach E)
तौलिया —Tollha (Towel E)
कर्नल —Cornel (Colonel E)
ट्रंक —Tronceo (Trunk E)
टोप —Topo
छापा —Chapa ?
वरान्दा —Varanda

(२) डचों का आगमन

पुर्तगालियों के बाद यहाँ नेदरलैंड के डचों का आगमन हुआ। ये ईसाई धर्म की प्रोटेस्टेंट शाखा के अनुयायी थे और कैथोलिकों से इनकी पटती नहीं थी। पोप अलेक्जेंडर षष्ठ ने आइवीरियन प्रायद्वीप (स्पेन-पुर्तगाल) को, यूरोप के बाहर के सागरों पर आधिपत्य स्थापित करने की छूट दे रखी थी। डचों ने इस अन्याय को नहीं माना। १५८८ ई० में जब स्पेनिश जंगीबेड़े (अरमेडा) की हार हुई, तब से समुद्र पर स्पेन-पुर्तगाल का दीर्घ-कालीन प्रभुत्व समाप्त हो गया। पुर्तगाल पर स्पेन का अधिकार १६४० ई० तक बना रहा। बाद में दक्षिण अमेरिका में राज्य-विस्तार में स्पेन की अधिक दिलचस्पी हो गई। भारत आने पर उनके पहले प्रतिद्वन्द्वी डच ही हुए। डचों ने पुर्तगाली शक्ति को जावा-बोर्नियो और मलक्का आदि से उखाड़ फेंका था और भारतीय द्वीप समूह में उनकी शक्ति को तोड़ने के बाद उन्होंने भारत में प्रवेश किया। १६०२ ई० में हॉलैंड में 'ऊस्ट इंडिके कंपनी'[1] की स्थापना की गई। इस कंपनी को व्यापार करने के अधिकार के साथ किले बनाने और हिंदुस्तानी शासकों से जरूरत पड़ने पर संधि-विग्रह करने का भी अधिकार मिला था। पुर्तगालियों की समुद्र-शक्ति की रीढ़ जब टूट चुकी, तब इंगलैंड में भी १६०० ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई थी। मोटे रूप में कहा जा सकता है कि अँग्रेजों और डचों ने हिंदुस्तान की जमीन पर साथ ही कदम रखा। कोरामंडल तट पर ही डचों को अपनी कोठियाँ और बस्तियाँ बनाने में सफलता मिली। मछलीपट्टम, पेटापोली, पुलीकट और रेगनापटम में उनकी कोठियाँ बनीं। पुलीकट में डचों ने किला बनवाया और वही उनका मुख्य केंद्र हो गया। इन लोगों ने सूरत, कालीकट और कोचीन में तथा बंगाल में चिनसुरा और पटने में भी कोठियाँ स्थापित कीं। डचों का व्यापार अच्छा चला और वे इसी धंधे में लगे रहे। वे राजनीति और ईसाई मत के प्रचार का खतरा मोल लेना नहीं चाहते थे। डचों की नीति और व्यवस्था से अँग्रेजों ने भी सबक सीखा। देशी सौदागरों से भी इन डचों ने अच्छा संबंध प्रायः बनाए रखा। भारत में डचों की कोठियाँ बहुत-से स्थानों में थीं। पश्चिमी तट पर सूरत, कालीकट और कोचीन में, बंगाल में चिनसुरा और बिहार में पटना में इनकी कोठियाँ कायम

---

1. Ooost Indiche Compagne

थीं। वे प्रायः गोलमिर्च, अदरख, जायफल, जावित्री, लौंग आदि का व्यापार करते थे। बाद में वे कपूर, चंदन, रत्न, नील और कपड़े भी खरीदने लगे। बदले में विलायती सिल्क, मखमल, पोर्सलीन के सामान लाते थे। अनेक देशी राजाओं ने इन्हें व्यापारी सुविधाएँ और छूट प्रदान की थीं, पुर्तगालियों के विपरीत डचों को धर्मप्रचार का उत्साह नहीं था, अतः वे उनकी तुलना में अधिक लोकप्रिय थे। १६४८ ई० में हॉलैंड और पुर्तगाल में एक संधि हो गई, जिसके अनुसार पुर्तगाल को गोआ, डामन, ड्यू के अतिरिक्त अन्य स्थानों को छोड़ना पड़ा। बहुत दिनों तक इस देश में डचों का कारबार शांति के साथ चलता रहा। पर १८२५ ई० में उन्हें अँग्रेजों ने इस देश से हटने को विवश कर दिया।

डचों के प्रकाशन :

भारत की अवस्था और तत्कालीन स्थिति के बारे में डचों ने भी कई मूल्यवान ग्रंथ रच कर अच्छा प्रकाश डाला है।[1] ऐसे ग्रंथों में लिसौटन का इटिनेटारियो और रेयेसजेशिफ्ट है, जो भारत में डचों के आगमन के समय रचे गए थे। डेनिपल हेवर्ट ने १६८६ ई० के लगभग डच फैक्टरियों के संबंध में विस्तृत विवरण दिए हैं। १६७२ ई० में फिलिपस वाल्डेयस ने सिलोन और मलाबार के संबंध में लिखा था। फ्रांसि ओइस वैलैंटीन ने १७२४-१७२६ ई० के बीच अपना महाग्रंथ प्रकाशित किया। अब्राहम रोजेरियस ने जेंटिलि-टेसेट्स लिखा, जिसमें दक्षिणी हिंदू धर्म का विवरण है। वे १६३१-१६४१ ई० के बीच पुलीकट में रहे थे। जोहानस सीजेरियस ने १६७८ ई० में 'हार्टस मलाबारिकस' में मलाबार की वनस्पतियों पर एक पुस्तक प्रकाशित की।

(३) अँग्रेजों का भारत में आगमन :

अब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं ज्ञात है कि भारत में सर्वप्रथम कौन अँग्रेज आया था। अनेक इतिहासकारों के अनुसार फादर स्टीफेंस (१५४६-

---

1. Linschoten के Iteneraio और Reyesgeschrift. Phillippus Baldaeus के सिलोन और मलाबार के विवरण। Abrahaham Rogerius—Gentilismus Resartus. Hortus Malabaricus—by Johannes Casearius.

१६१९ ई०) ही प्रथम पादरी था, जो १५७९ में आक्सफोर्ड से ईसाई धर्म के प्रचारार्थ गोआ आया था। कुछ वर्षों बाद जॉन न्यूबरी और राल्फरिच नामक दो सौदागर, विलियम लीडेन जौहरी और जेम्स स्टोरी आदि चित्रकार भी आये। फादर स्टीफेन चालीस साल तक गोआ में रहा। उसने मराठी में 'ख्रीस्ट पुराण' रचा, जिसकी भाषा को कुछ विद्वान् कोंकणी बताते हैं, पर जो वास्तव में पुरानी मराठी ही है। उसने उस भाषा का एक व्याकरण भी बनाया। यह किसी आधुनिक देशभाषा का किसी यूरोपियन द्वारा लिखित प्रथम व्याकरण है। चूंकि उक्त नवागंतुक प्रोटेस्टेंट थे, अतः कैथौलिक पुर्तगालियों ने उन्हें भी पीड़ित किया और बाद में बंदी बना लिया। पर अंत में फादर स्टीफेंस[1] के प्रभाव और प्रेरणा से वे जमानत पर रिहा कर दिए गए। चित्रकार जेम्स स्टोरी को स्थानीय गिरजे को अलंकृत करने का काम सौंपा गया। अन्य तीन सज्जन किसी तरह बच कर गोआ से भाग निकले और पथ के संकट झेलते हुए बेलगांव, गोलकुंडा, बुढ़हानपुर और मांडू आदि होते हुए आगरा पहुँचे। फिच के अनुसार उस समय के आगरा और फतहपुर लंदन से बड़े शहर थे। वह लिखता है, 'फारस और भारत के बाहर के सौदागरों का यह बहुत बड़ा आश्रय है। यहाँ सिल्क, हीरा, मोती, लाल और दूसरे कीमती पत्थर मिलते हैं।' फिच अकेला ही १५९१ ई० में इगलैंड वापस लौट गया।

१६०३ ई० में मिल्डेन हाल नामक एक अंग्रेज कंदहार के रास्ते लाहोर आया। वह १८ फरवरी, १५९९ ई० को लंदन से स्थल मार्ग से रवाना हुआ था। उसने २९ घोड़े नजर में अकबर को दिए। अंग्रेजों के पहले पुर्तगालियों का बोलबाला था। उन लोगों ने द्वेष और प्रतिस्पर्धा से प्रेरित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध प्रवाद फैला दिया था कि अँग्रेज भेदिया और चोर हैं तथा विश्वसनीय नहीं हैं। फिर भी, अकबर ने मिल्डन हाल को एक फरमान दिया था।

ईस्ट इंडिया कंपनी का जन्म :

३१ दिसम्बर, १५९९ ई० को २१८ व्यक्तियों की 'ईस्ट इंडीज और भारत' में व्यापार करने को लंदन के सौदागरों की एक कम्पनी को उसके गवर्नर के नाम से एक रायल-चार्टर मिला, जिसके द्वारा उस क्षेत्र में पूरा, सब ओर

---

१. इन्होंने मराठी में बाइबिल का अनुवाद किया था, जो १६१६ ई० में प्रकाशित हुआ।

एक मात्र व्यापार का अधिकार उसे ही मिला। इसमें ३०१३३ पौ० ६ शि० ८ पं० की पूँजी हिस्सेदारों ने लगाई थी और प्रबंध का भार १५ व्यक्तियों की एक कमिटी को मिला। कंपनी के एजेंटों ने १६१२ ई० में पश्चिमी समुद्र तट पर सूरत में एक फैक्टरी (कोठी) खोली। उस समय सूरत विशाल अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र था।[1] यहाँ बहुतेरे आर्मीनियन बसते थे, जो भारत, तुर्की और फारस के एजेंट के रूप में व्यापार करते थे। चूँकि इस व्यापार-नगर में विभिन्न देशों के व्यापारी आते-जाते थे, अतः वहाँ हिंदुस्तानी बोली समझी जाती थी।

सूरत में अँग्रेजों का प्रवेश :

भारतीय समुद्रतट पर लंगर डालने वाला पहला अँग्रेजी पोत हेक्टर था, जो १६०८ ई० में सूरत आया। इस पर हाकिंस नाम का एक अँग्रेज था, जो तुर्की के साथ फारसी भी बोल लेता था। उसकी पहुँच जहाँगीर तक हो गयी, पर वहाँ जेसुइटों के कुत्सित प्रचार के कारण वह कुछ कर न सका। उसने दुभाषिये की मदद लिए बिना जहाँगीर से बातें की थीं। जेसुइटों ने उसके एक साथी को ईसाई कब्रगाह में दफन तक नहीं होने दिया। विष दिए जाने से अपने को बचाने के ख्याल से जब उसने एक आर्मीनियम महिला से विवाह करने का निश्चय किया, तो वे उसका विवाह संस्कार कराने को भी तैयार नहीं हुए। अन्त में १६११ ई० में भारत छोड़ कर वह भग्न-हृदय चला गया। तब नवजात कंपनी के बारंबार अनुरोध करने पर राजा जेम्स ने १६१४ ई० में दिल्ली दरबार में एक दूतमंडल भेजने का निश्चय किया। इस दौत्य कर्म के लिए सर टामस रो को चुना गया, जो सुशिक्षित, शिष्ट और राजदूत के कार्य के सर्वथा योग्य था। उस ज़माने में, पुर्तगालियों के कुत्सित और दूषित प्रचार और कुचक्रों से अँग्रेजों को सशंक भाव से देखा जाता था। जहाँगीर के दरबार में हाजिर होकर सर टामस रो अपनी शालीनता, व्यवहार-पटुता और निपुणता से बादशाह को शीघ्र ही प्रभावित करने में सफल हुआ। रो स्वयं फारसी नहीं जानता था, उसका एक सहयोगी फारसी का जानकार

---

१. कोबे की खाड़ी के अन्त में सूरत है, जो मुगल बादशाह के शासन में है, जहाँ सब देशों के व्यापारिक केन्द्र हैं— खास कर आर्मीनियनों का, जो तुर्की फारस और हिंदुस्तान के एजेंट हैं—वाल्टेयर।

था। अतः, रो ने दुभाषिय के जरिए बातें कीं। मुगल दरबार की राज--भाषा फारसी थी, अतः फारसी से उस समय विदेशी अपना काम चलाते थे। चूँकि फारस से ब्रिटेन का व्यापार चलता था, इसलिए कुछ अँग्रेज फारसी जानते थे। साक्ष्य के आधार पर रो ने भारत का अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है। जहाँगीर बादशाह ने रो को सलाह दी कि 'आप लोग इस देश में किसी से तकरार न करें और समुद्र छोड़ कर कहीं किसी से न उलझें। बस इसी में आप लोगों की भलाई है।' अतः रो ने भी कंपनी को शान्तिपूर्वक व्यापार करने और सागर के अतिरिक्त कहीं संघर्ष न करने की सलाह दी। पर सत्य यह है कि यदि अपने राजदूत की इस नेक सलाह को मान कर कंपनी चलती तो न वह इतना सफल होती और न भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित करने में समर्थ ही होती। आरंभिक दिनों में ब्रिटिश फैक्ट्रियों ने दुभाषियों की सहायता ली होगी, जिनसे वे पोर्चुगीज़ में बातें करते थे। उस समय समुद्र पार के व्यापार से संबंधित लोग पोर्चुगीज़ जानते थे। बम्बई द्वीप जब अँग्रेजों को मिला, वहाँ पोर्चुगीज़ समझी जाती थी। पीटर मुंडी (भारत में १६२८-३४, १६३६-३७ ई०) ने कुछ डायरियाँ, पत्रादि छोड़ा है, जिनसे ज्ञात होता है कि सूरत के कई उच्चाधिकारी हिंदुस्तानियों से खुलकर बातें कर लेते थे। हेनरी लार्ड १६२४ ई० में चेपलेन होकर भारत गए थे। उन्हें केरिज ने यहाँ के धर्मों के बारे में तहकीकात करने को कहा था। इन्होंने १६३० ई० में एक अंग्रेजी पुस्तक लिखकर हिन्दू बनियों और पारसियों के धर्म का परिचय दिया था। उन्होंने यह जानकारी एक ब्राह्मण और अँग्रेजी के जानने वाले पारसी से पाई थी। इसके फ्रेंच अनुवाद की बर्नियर ने प्रशंसा की थी। बंबई के गवर्नर हेनरीप्रे के बारे में कहा जाता है कि वह खूबी के साथ इस देश की भाषाएँ बोल लेता था। उस समय बहुत-से अँग्रेज युवकों को हिंदुस्तानी सीखने को भेजा गया, जिसमें देशी व्यापारियों से संबंध स्थापित किया जाए. (देखिए—ब्रिटिश कन्ट्रीब्यूशन टु इंडियन स्टडीज़)।

मद्रास और बंबई :

१६१२ ई० में ब्रिटिश नौसेनाध्यक्ष थामस वेस्ट ने पुर्तगालियों के एक समुद्री बेड़े को सूरत से कुछ फासले पर हरा दिया और फिर दस साल बाद औरमज़ पर भी कब्जा कर लिया। सूरत ही ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य केंद्र था और आरंभ से तब तक उसका यह महत्त्व बना रहा, जब तक कि १६८७ ई०

में बंबई (मुम्बई) अंग्रेजों को नहीं मिली। १६३५ ई० में एक शर्तनामे पर पुर्तगालियों के साथ अंग्रेजों ने हस्ताक्षर किया, जिससे उन्हें मछलीपट्टम में बस्ती बसाने की अनुमति मिल गई। १६३९ ई० में चन्द्रगिरि के राजा से १२०० पैगोडा में मद्रास ले लिया गया।

१६६१ ई० में चार्ल्स द्वितीय और राजकुमारी कैथरीना का विवाह हुआ, और बंबई राजा को दहेज में मिली। राजा ने २३ सितंबर, १६६८ ई० में उसे कंपनी को १० पोंड सालाना मालगुजारी पर ठीका दे दिया। इस प्रकार 'भारम का द्वार' कहलाने वाली बंबई कंपनी को मात्र दस पौंड में मिली थी।

बंगाल में अंग्रेजों का प्रवेश :

बंगाल में अंग्रेजों के प्रवेश की कहानी बड़ी रोचक है। जब शाहजहाँ दकन (दक्खिन) में १६३८ ई० में ठहरे हुए थे तब एक दिन बादशाह की बेटी के कपड़े में आग लग जाने से उनकी जान खतरे में पड़ गयी। जब अपने हकीमों के इलाज से फायदा न हुआ, तब वजीर असद खाँ की सिफारिश पर बादशाह ने सूरत से एक सर्जन बुलाने को आदमी भेजा। वहाँ से 'होपवेल' जहाज के सर्जन मि० गैबरोल ब्राउटन ने आकर राजकुमारी का इलाज किया और वह शीघ्र ही ठीक हो गयीं। अब इस डाक्टर का नाम दरबार में बढ़ गया और इसे मुँह-माँगा इनाम माँगने को फरमाया गया। इस देशभक्त डाक्टर ने अपने लिए कोई इनाम न माँग कर अपनी जाति के लिए बंगाल में करमुक्त व्यापार करने की अनुमति माँगी। यह माँग बादशाह ने मंजूर की और वहाँ एक कोठी (फैक्टरी) खोलने की अनुमति मिल गयी। ब्राउटन पिपले पहुँचे, वहाँ एक माल लदा हुआ जहाज ही खरीद लिया। उन्हें व्यापारार्थ कोई कर नहीं देना पड़ा। जब बंगाल के सूबेदार शाहशुजा राजमहल में थे, ब्राउटन उनसे मिलने को गए। उस समय भी हरम में एक महिला बगल के दर्द से पीड़ित थीं। फिर सर्जन साहब की बुलाहट हुई और रोग अच्छा हो गया। अब इस डाक्टर का आदर और बढ़ा। जब १६४० ई० में वही जहाज इंगलैंड से वापस लौटा, उस पर से बिजमैन नामक एक अँग्रेज उतरे, जो बंगाल में फैक्टरी खोलने आए थे। ब्राउटन ने उनका परिचय शुजा से कराया। इस प्रकार एक देशभक्त डाक्टर की विद्या का पुरस्कार अँग्रेजों को बंगाल में कोठी कायम करने और तिजारत में रियायत के रूप में मिला।

ब्रूस के अनुसार २ फरवरी, १६३४ ई० के फरमान से बंगाल में व्यापार का अधिकार मिला था। पर पुर्तगालियों की हरकत से आशंकित होने के कारण अंग्रजों को गंगा नदी में आने और हुगली में फैक्टरी खोलने में मुगल सरकार खतरा देखती थी, इसलिए पिपले को छोड़ कर किसी दूसरे बंदरगाह में अंग्रेजों को घुसने की मनाही थी। स्टीवार्ड ने कई महत्त्वपूर्ण पत्रों और फरमानों के अनुवाद अपनी पुस्तक में दिए हैं।[१] उनके अनुसार ये अनुवाद आर्मीनियनों ने किए थे, चूँकि उस समय कंपनी के सेवकों में कोई फारसी नहीं जानता था। उन्हें यह अजीब लगता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 'राइटर' क्राइस्ट चर्च अस्पताल से आते थे, पर कंपनी उनमें से कुछ को भी प्राच्य भाषाएँ पढ़ने को चुनती नहीं थी। इससे बहुत पैसा भी बचता और झगड़े भी रुक जाते।[२] बाद में, १६५१ ई० में 'हुगली' में कोठी खोलने और १६७६ में ई० गंगा में जहाज चलाने की अनुमति भी अंग्रेजों को मिल गयी। १६५६ ई० में शुजा ने एक 'निशान' के जरिए यह हुक्म दिया कि अंग्रेजों से किसी तरह आयात-निर्यात का कर (कस्टम) न लिया जाए। १६७२ ई० में नवाब शाइस्ता खाँ ने इन अधिकारों की पुष्टि की। इस तरह धीरे-धीरे बंगाल में अंग्रेजों को कदम रखने और पाँव पसारने का अवसर मिल गया।

अंग्रेजों का व्यापार जब बढ़ने लगा, तब उन्होंने कलकत्ते में अपने राजा विलियम के नाम पर १६९० ई० में एक किला 'फोर्ट विलियम' नाम से बनाया। बहुत दिनों तक अँग्रेजों में किसी ने यहाँ की भाषाओं को ठीक से जानने की चेष्टा नहीं की।अँग्रेजों का काम टूटी-फूटी हिंदुस्तानी से या आर्मीनियन और पुर्तगाली दुभाषियों के जरिये चल जाता था। चूँकि आर्मीनियन और पुर्तगाली इस देश में पहले से विदेशी व्यापार से संबद्ध थे, अतः इनमें कुछ लोग हिंदुस्तानियों से कामचलाऊ ढंग पर बातचीत कर लेते थे। इस तरह करीब सौ साल तक अँग्रेज बंगाल में सौदागरी करते रहे और उन्हें यहाँ की राजनीति में दखल देने की न ताकत थी, न हिम्मत।

---

१. चार्ल्स स्टीवार्ट. हिस्टरी ऑफ बंगाल (१८१३ ई०), पे० २७२ ब्रूस ऐनल्स ऑफ द ईस्ट इंडिया कंपनी १८३३-३४ भी देखिए।

२. It appears extra-ordinary that the East India Company were then supplied with writers from Christ church Hospital they did not select a few of them to learn the oriental languages. It would have saved much money and prevented many quarrels.—Steward

इसके बाद कंपनी को वह स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया कि बंगाल में नवाब के उत्तराधिकारियों की आपसी लड़ाई में भाग लेकर अपना राजनैतिक प्रभाव बढ़ावें। नये नवाब सिराजुद्दौला ने १७५६ ई० में गद्दी पर बैठते ही अंग्रेजों से झगड़ा मोल ले लिया। अँग्रेजों के उच्छृंखल व्यवहार से रुष्ट होकर नवाब ने कलकत्ते पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। मद्रास से क्लाइव दौड़ा हुआ बंगाल पहुँचा और वहाँ पलासी के युद्ध मे (१७५७ ई०) विजय पायी। मीरजाफ़र ने नवाब से गद्दारी की और वह क्लाइव से मिल गया। इसके बाद पुन: बक्सर युद्ध में कंपनी की सेना विजयिनी हुई और इस विजय के फलस्वरूप बंगाल की दीवानी कंपनी को १७६५ ई० मे मिल गयी। भाग्यचक्र अँग्रेजों के पक्ष में वेग से चल रहा था। अँग्रेजों की कूटनीति और इस नीति के आगे बंगाल के दुर्बल नवाबों की एक न चली। उधर मुगलिया खानदान का बादशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा हुआ बंगाल में तेजी से होने वाले राजनैतिक उथल-पुथल और परिवर्तनों को देख रहा था, पर परिस्थिति की विवशता से कुछ भी करने में असमर्थ था। मुगल प्रताप का सूर्य अस्तंगत हो रहा था, राजकीय आकाश में घुँधलका छाया था, बाबर और अकबर के वंशधर दिल्ली के दुर्बल क्लीव 'अधिराज' में क्लाइव के बढ़ते चरण को रोकने का साहस नहीं था। बंगाल की नवाबी, गद्दार वजीरों और गैरवफादार दरबारियों एव हाकिमों की हरकत से, सात आठ साल के अंदर अंग्रेजों के हाथ में खिसक कर आ गयी और पलासी एव बक्सर में पराजित बंगाल पर कंपनी के फौजी अफसरों ने अपना राज्य कायम कर लिया। इन युद्धों ने कंपनी को 'पूर्वी भारत की प्रबलतम शक्ति' बना दिया।

क्लाइव का अधिकांश समय लड़ने में ही बीता। बंगाल में उसने अँग्रेजी राज कायम तो कर दिया, पर समुचित शासन का आरंभ उसके उत्तराधिकारी वारेन हेस्टिंग्स द्वारा हुआ। १७७३ ई० के रेगुलेटिंग ऐक्ट के अनुसार जब शासन का उत्तरदायित्व वारेन हेस्टिंग्स को गवर्नर जनरल के रूप में सँभालना पड़ा, तब उन्हें यह आवश्यक बोध हुआ कि इस देश की रीति-नीति, प्रथा, भाषा कानून आदि का विजेताओं को उचित ज्ञान हो तथा वे यहाँ के धर्म, साहित्य और संस्कृति से परिचित हों जिससे यहाँ की प्रजा सुशासन से सुख-संतोष प्राप्त कर सके। हेस्टिंग्स ने विधिवत् फारसी पढ़ी थी। उसके

फारसी शिक्षक थे शोयाबाजार के राजा नवकृष्ण, जिनसे उसने १७५० ई० में ही फारसी सीखी थी।[१] अतः, हेस्टिंग्स ने सरकार की ओर से प्रथम बार अँग्रेजों को भारत में प्रचलित भाषाओं के ज्ञानार्जन के लिए प्रोत्साहित किया।

१७८४ ई० में भारतीय शासन की नवीन व्यवस्था १७८४ ई० के पिट के इंडिया ऐक्ट से आरंभ हुई। इसके अनुसार गवर्नर जनरल को अधिक अधिकार दिए गए और उसे लंदन में बने बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अधीन कर दिया गया। अब कुलीन अँग्रेज ही गवर्नर जनरल बनाए जाने लगे। मार्क्विस कार्नवालिस (१७८६-९३ ई०) भारत के प्रथम उच्चवंशीय गवर्नर जनरल थे।

इन्हीं के समय अँग्रेज अफसरों की उचित शिक्षा के लिए कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज स्थापित हुआ, जिससे भारत की आधुनिक देशभाषाओं, विशेष कर हिंदुस्तानी के उभय रूपों—हिंदी और उर्दू के निर्माण में ऐतिहासिक योग रहा है।

(४) डेनों का आगमन :

भारत से व्यापार कर समृद्ध बनने के लोभ में यूरोप के लघु देश डेनमार्क ने भी कंपनी बनाकर व्यापार करने का निश्चय किया। १६१६ ई० में डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी बनी और इसने १६२० ई० में ट्रेन्क्वेवार में और १७५५ ई० में बंगाल में, कलकत्ते के पास श्री रामपुर में अपनी फैक्टरी कायम की। यह डेनिश सेटलमेंट श्री रामपुर में आगे चलकर बैपटिस्ट प्रचार का प्रमुख केंद्र बना और अँग्रेज विलियम केरे के संगठन के फलस्वरूप, बाइबिल के विभिन्न देशभाषाओं में अनुवाद के कारण बड़ा विख्यात हुआ। इस श्री रामपुर के मिशन के हिंदी और शिक्षा-संबंधी सत्प्रयास का हम यथोचित विस्तार से अन्यत्र वर्णन करेंगे। डेनिशों का कारबार बहुत दिनों तक नहीं चला। १८४५ ई० में अपनी फैक्टरियाँ इन लोगों ने अँग्रेजों को बेच दीं।

(५) फ्रांसीसियों का आगमन :

सबसे बाद फ्रांसवासी इस देश में आए। भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से १६६४ ई० में फ्रांस में 'कम्पेन द इंडेश ओरियेन्टलिस' की

१. जे० आर० ए० एस० १८४३ ई० वाल्यूम ७ पेज २२००। के० के० दत्त के हिस्ट्री ऑफ बंगाल सूबा में उद्धृत।

स्थापना हुई थी, पर भारत में आने पर ये फ्रांसीसी भारतीय राजाओं की सेना में काम करने लगे और उनके पारस्परिक झगड़ों और लड़ाइयों में बड़ी दिलचस्पी दिखलाने लगे। यहाँ कुछ फ्रांसीसी अफसरों ने अपनी सैनिक योग्यता दिखला कर सैन्य-संचालन का काम भी करने लगे। कुछ फ्रांसीसियों के मन में शुरू से ही इस देश में फ्रांसीसी राज्य का सपना जगा। इसी लोभ में पड़कर डूप्ले (१७४१-५४ ई०) नाम के सरदार ने अँग्रेजों से युद्ध ठान लिया और युद्ध में पड़कर अपना व्यापार और तिजारती आमदनी सबको खतरे में डाल दिया। डूप्ले और उसके सहयोगियों की बढ़ती हुई राजनैतिक आकांक्षा से खतरा देखकर १७५४ ई० में उसे पेरिस बुला लिया गया, जहाँ वह विपन्नावस्था में मरा। फ्रांसवालों के हाथ में केवल दो स्थान बचे रहे—बंगाल में चन्दर नगर और पूर्वी समुद्रतट पर पांडीचेरी। लड़ाई और राजनैतिक दावपेंच में पड़ जाने के कारण ही फ्रांसीसियों को मुँह की खानी पड़ी। सेरिंगापट्टम के युद्ध और टीपू सुलतान की पराजय हो जाने के बाद भारत में फ्रेंच-शक्ति का ह्रास हो गया। टीपू ने न केवल भारत में बसे फ्रांसीसियों से लाभ उठाना चाहा, बल्कि उसने गुप्त रूप से क्रांतिकारी फ्रांस से भी संबंध रखने की चेष्टा की थी। मुसलमानों और मराठों की सेना में अनेक फ्रांसीसी कमांडर का काम करते थे। निज़ाम की फौज में भी रेमांड नाम का एक फ्रांसीसी अफसर था।

चूँकि व्यापार के क्षेत्र में फ्रांस वालों ने विशेष उत्साह नहीं दिखलाया, अतः जन-संपर्क कम हुआ, और फ्रेंच शब्द हिंदी में बहुत कम प्रविष्ट हो सके। हम पहले बता चुके हैं कि यूरोपियन जातियों में भी परस्पर व्यवहार में विकृत पुर्तगाली भाषा चलने लगी थी, इसलिए हिंदी में उसी माध्यम से यूरोपियन शब्द प्रविष्ट हुए थे।

यूरोपियनों के प्रवेश का प्रभाव :

प्रसिद्ध लेखक वाल्टेयर की भारत-विषयक रचनाओं का एक संग्रह 'फ्रेगमेंन्ट आफ इंडिया' निकला है, जिससे उस समय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कालीकट के डिप्टी गवर्नर के मि० हालवेल के संबंध में वे लिखते हैं कि—"यह हालवेल न केवल आधुनिक ब्राह्मणों की भाषा

जानता था, वरन् वह प्राचीन ब्राह्मणों की भाषा का ज्ञाता भी था। इसी व्यक्ति ने भारत-विषयक अपने सुन्दर संस्मरण लिखे थे और उनकी पवित्र भाषा के धर्मग्रंथों के अद्भुत अशों का अनुवाद किया था।" अन्यत्र वाल्टेयर यूरोपियन जातियों के भारत में प्रवेश की चर्चा करते हुए लिखते हैं :

'अनेक विद्याओं के जनक, शांति के स्थापक और ब्राह्मणों के उत्तराधिकारी हमारे एजेंट और पैसे पर काम करने वाले दलाल बन गए हैं। हमने उनके देश को उजाड़ दिया और उसे हमने अपने खून के खाद से पाट दिया। हमने उन्हें यह दिखलाया कि हम साहस और दुष्टता में उनसे कितने बढ़चढ़ कर हैं और बुद्धि में कितने घट कर हैं। हमारी यूरोपियन जातियों ने इसी धरती में अपने को मार डाला जहाँ हम धनी बनने गए थे और जहाँ प्रारंभिक (यूनानी) ज्ञानार्थ यात्रा करते थे।"

अन्त में, पुनः हम वाल्टेयर के एक अवतरण को देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। इससे यह प्रकट होगा कि भारत के व्यापार ने किस प्रकार सारे यूरोप को १६ वीं सदी के आरंभ में प्रभावित किया था। वाल्टेयर लिखता है :—

'पेरिस और लंदन एवं अन्य बड़े नगरों के नागरिकों के टेबुलों पर इतना मसाला रखने को, जितना कभी राजाओं के टेबुलों पर खर्च होता था और साधारण नागरिकों की पत्नियों को इतने हीरों से लादने को, जितना कभी रानियाँ अभिषेक के समय पहनती थीं, और नासापुटों में इतना कुत्सित चूर्ण (नस) ठूँस कर हमारे पूर्वजों को भी अज्ञात, ऐसे व्यर्थ मदों को पीने का शौक पूरा करने को बहुत बड़ा व्यापार चलता था, जिससे तीन-चौथाई यूरोप को हानि हुई, और इसी व्यापार को बनाए रखने को (यूरोपीय) शक्तियों ने परस्पर युद्ध किए, जिसमें हमारे प्रदेशों में छूटी हुई पहली तोपों ने अमेरिका और एशिया के हृदय की सभी बैटरियों को प्रज्ज्वलित कर दिया।[1]

---

1. It is in order to provide the tables of the citizens of Paris, of London, and of other big towns with more spices, that used to be consumed at one time at Prince's tables, it is in order to load simple citizen's wives with more diamonds than queens used to wear at their coronation, it is

यह मूल्यांकन कुछ एकांगी और अत्युक्तिपूर्ण भले जान पड़े, पर इसमें संदेह नहीं कि इस देश से व्यापार कर यूरोप में स्थापित कंपनियों ने इनता धन खींच कर यूरोप में पहुँचा दिया कि वहाँ नगरों में विलास की बाढ़ आ गयी और वे शीघ्र ही सम्पन्न और समृद्ध हो गए।

यूरोप के संपर्क ने भारत के मानस को झकझोर दिया, नए विचार नए आविष्कारों के साथ आए और सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य का विकास हुआ। छापाखाने खुलने के बाद जब गद्य की पुस्तकें लिखी गयीं और देशभाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था स्कूलों में हुई, तब से सभी देशभाषाओं में नवीन जीवन संचारित हो गया। यदि इस देश में अँग्रेज नहीं आये होते, तब भी गद्य का उदय होता, पर कदाचित् उसमें कुछ और विलम्ब होता।

● ●

---

in order to infect the nostrils with a disgusting powder, to drink deep, because the fancy took them, of certain useless liqoures unknown to our fathers, that a huge trade was carried on, always disadvantageous to three quarters of Europe, and it is in order to keep up this trade that the powers made a war on each other, in which the first canon Shots fired in our climes set fire to all the batteries in America and in the heart of Asia.

Fragments on India—Voltaire p. 2.

द्वितीय अध्याय

यूरोपियनों द्वारा भारतीय भाषाओं का अनुशीलन

भारत में आगत यूरोपियन जातियों में प्रथम होने के कारण पुर्तगालियों को ही अपने केन्द्रों में स्थानीय देश-भाषा सीखने की आवश्यकता का बोध हुआ और व्यापार में सुविधा के लिए और मुख्यतः ईसाई धर्म के प्रचारार्थ विदेशियों ने इस देश की भाषा सीखने में श्रम किया। १५२६ ई० में पोर्चुगीज़ में, पुर्तगाली शासकों के लिए एक पुस्तक लिखी गयी—'फोरेल डी यूसोस एकास्ट्यूमस'। फादर स्टीफेंस (१५४९-१६१९ ई०) नामक एक अंग्रेज गोआ आया और उसने धर्मप्रचार के लिए मराठी सीखी और उसमें ख्रीष्ट पुराण रचा। वह आक्सफोर्ड से आया था। उसने बाइबिल का अनुवाद भी किया, जो १६१६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके बाद एतियेन दलाक्रुवा का उल्लेख मिलता है, जिसने लगभग १५००० ओवियों (एक मराठी छंद) में संत पीटर का चरित लिखा है, जिसमें हिन्दू देवों की निंदा है। यह १६२६ ई० में रोमन लिपि में मुद्रित हुआ था।

यह तो मराठी में यूरोपियनों की कृतियों का परिचय हुआ। पर, इसके पूर्व भी भारत में पुर्तगाली क्षेत्र में पुर्तगाली और भारतीय भाषा के आदान-प्रदान-संबंधी बिखरे उल्लेख मिलते हैं। पुर्तगाली इतिहासकार बारूंश ने १५३२ ई० में एक ब्राह्मण का उल्लेख किया है, जिसने किसी संस्कृत ताम्रपत्र का पुर्तगाली में अनुवाद किया था। पंजिम के ऐतिहासिक लेख-संग्रह (पुर्तुगाली) में एक उल्लेख है कि १५५३ ई० में एक सांत रोणाय नामक ब्राह्मण था, जो उस समय दुभाषिए का काम करता था। पुर्तगाली इतिहासकार वियोग द कांतु का कथन है कि 'हिन्दू विद्वानों से परिचय कर हमें बहुत जानकारी मिली' तथा बहुगुण काम त वाद्य नामक विद्वान् पुर्तगालियों का लिंग्विस्ताद ही था, जिसने एक ऐतिहासिक सूची बनाई थी।

जब १६९८ ई० में राजा विलियम तृतीय ने ईस्ट इंडीज़ में व्यापार करने के लिए इंगलिश कंपनी को चार्टर दिया (यह प्रथम कंपनी की प्रतिद्वंद्विनी थी), उसमें एक आदेश था कि भारत में स्थित सभी "मिनिस्टरों को वहाँ पहुँचने के साल भर के अंदर ही पुर्तगाली भाषा और अपनी निवास-भूमि की देश-भाषा को सीखना होगा, ताकि वे हिंदुओं को, जो कंपनी या उसके एजेंटों के सेवक या दास होंगे, प्रोटेस्टेंट मत की शिक्षा दे सकें।[१] कंपनी के सेवकों में कुछ विशिष्ट पुरुषों के विषय में उल्लेख मिलता है कि वे हिंदुस्तानी में बातचीत करने में कुशल थे। १७१५ ई० में जब बंगाल के सूबेदार जाफ़र खाँ ने फरुखशियर की दी हुई रियायतों को मानना इंकार कर दिया, तब ऐसा उल्लेख मिलता है कि मि० फीक्र ने जाफर खाँ के मुँह पर हरेक बात का जवाब हिंदुस्तानी में दिया था, जिस पर सारा दरबार दंग रह गया। बंगाल की दीवानी, कंपनी को १७६५ ई० में मिली थी और यह व्यवस्था १७७२ ई० तक बनी रही। जब हेस्टिंग्स को पूरा अधिकार मिला, तब भी दीवानी की अवधि में न्याय का प्रशासन बंगाल के नवाब के ही हाथ में था। वारेन हेस्टिंग्स फारसी अच्छी तरह जानता था। वह १७५० ई० में ही इस देश में 'राइटर' हो कर आया था और तभी उसने फारसी सीख ली थी। सेमुएल जॉनसन को एक पत्र में उसने फारसी का एक व्याकरण लिखने का इरादा जाहिर किया था। हेस्टिंग्स बंगाल में बोली जाने वाली बोलियों को ठीक से जानता था। जोंस ने भी १७७१ ई० में फारसी व्याकरण रचा था, जिसमें उसने इतिखामउद्दीन से मदद ली थी। शायद इंगलैंड जाने वाला यही पहला शिक्षित मुसलमान था।

१७६५ ई० के बाद से ही अँग्रेज बंगाल के शासक के रूप में प्रतिष्ठित हुए और तभी से अंग्रेज शासकों के मन में यहाँ की प्राचीन और नवीन भाषाओं को जानने की आवश्यकता और उपयोगिता का पहले-पहल बोध हुआ। बक्सर युद्ध के बाद पाँच-सात साल तो पैर जमाने में ही लगा और तब कंपनी के अधिकारियों को कुछ सोचने-समझने का अवसर मिला। मुगल-सलतनत के उत्तराधिकारी के नाते राजभाषा फारसी को महत्त्व देना आवश्यक था, पर इससे शुद्ध बंगला-भाषी देश में जनसंपर्क स्थापित नहीं किया जा सकता था। उस समय भी पटना, मुर्शिदाबाद, ढाका आदि मुस्लिम नवाबों के शहरों में ही नहीं, कलकत्ते में भी तिजारती लोगों और देश के भिन्न-भिन्न भागों से

१. वही, पेज १०।

आए हुए सौदागरों के बीच हिंदुस्तानी चलती थी, ऐसी स्थिति में कंपनी का ध्यान बंगाल और हिंदुस्तानी पर जाना आवश्यक था। अँग्रेज अधिकारी फारसी के राजभाषा पद पर पहले से प्रतिष्ठित होने के कारण उसके ज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे। व्यावहारिक दृष्टि से उस समय उनका काम फारसी और अपने पूर्व भारत के राज्य की भाषा बंगला और हिंदी (जिसे वे हिंदुस्तानी नाम से जानते थे) के सीखने से ही चल सकता था। पर, अँग्रेजों को यह स्पष्ट हो गया कि मुसलमानों को अपनी धर्म-भाषा से मोह है और हिन्दुओं का धर्म अथवा संस्कृति-विषयक ज्ञान संस्कृत ग्रंथों में ही निहित है। अतः केवल बोलचाल की हिंदुस्तानी से हिन्दुओं की रीति-नीति, प्रथा और कानून, धर्म और संस्कृति का समुचित ज्ञान नहीं हो सकता। अतः हेस्टिंग्स के काल से ही इस देश की प्राचीन भाषा संस्कृत, मुस्लिमों की भाषाओं (राजभाषा फारसी और धर्मभाषा अरबी) और देश-भाषाओं के सीखने के लिए कुछ अँग्रेजों को कंपनी-सरकार की ओर से प्रोत्साहित किया गया। इसके पहले कुछ यूरोपियनों ने शौकिया या ईसाइयत के प्रचार के लिए इस देश की भाषाओं को सीखा था, पर वारेन हेस्टिंग्स के समय उन्हें सरकार की ओर से भारतीय भाषाएँ सीखने को प्रेरित और प्रोत्साहित किया गया। उस समय कंपनी की सेवा में कम पढ़े लिखे 'राइटर' थे। केवल जान मार्शल को ही विश्वविद्यालय की शिक्षा मिली थी। उस समय की स्थिति पर एशियाटिक रिसर्चेज से अच्छा प्रकाश पड़ता है—

'संसार से अवकाशप्राप्त और केवल साहित्य सेवा को ही समर्पित शुद्ध साहित्य का व्यक्ति उस समय भारत में बसनेवाले यूरोपियनों से अज्ञात था। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति किसी सिविल या सैनिक स्थिति में सरकारी काम के लगन या न्याय के प्रशासन में या माल विभाग या वाणिज्य किसी उदारपेशे में लगा हुआ है।'

ऐसे ही अन्य कार्यों में व्यस्त यूरोपियनों से कुछ ने इस देश की भाषा, साहित्य ज्ञान-विज्ञान के अनुशीलन में अपने अवकाश को लगाया था।

कोलब्रुक १७८३ ई० में जब भारत में आए तब वे हिंदुस्तानी सीखने को प्रवृत्त हुए, पर जब उन्हें प्रतीत हुआ कि इसमें लिखित साहित्य का अभाव है, तब वे संस्कृत पढ़ने लगे; क्योंकि कुछ दिनों बाद ही उन्हें यह बोध हो गया कि हिंदू जाति प्राचीनतम जाति है, जिसके पास मूल्यवान ज्ञान अवशिष्ट है और जिससे उत्कृष्ट गुणों और सभ्यता में कोई जाति आगे नहीं बढ़ सकी।

जब वारेन हेस्टिंग्स अभी बंगाल के गवर्नर ही थे (१७७२-७४ ई०) तभी उनके मन में भारतवासियों को शिक्षित करने का विचार जगा। उस समय बेनजामिन जोवेट ने अपना यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि 'इंगलैंड अपनी प्रजा को जाने बिना उस पर शासन नहीं कर सकता और प्रजा को तभी जाना और समझा जा सकता है, जब उसकी भाषा और उसके साहित्य, उसके काव्य और पुराश्रुति का पूर्ण ज्ञान हो जाए।[१] वारेन हेस्टिंग्स ने मेंसफील्ड को एक में लिखा था—'मेरी इच्छा है कि ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व बंगाल में उसके प्राचीन कानूनों की नींव पर स्थापित हो।' हैलहेड १७७० ई० में कंपनी की सेवा में आए। हेस्टिंग्स ने उन्हें संस्कृत पढ़ने को प्रेरित किया और वे इस हेतु काशी भेजे गए। हेस्टिंग्स ने कलकत्ते में पंडितों को नियुक्त कर उत्तराधिकार-संबंधी हिंदू व्यवस्था (हिंदू लॉ) का एक हिंदू कोड तैयार कराया। उस समय ऐसा कोई नहीं मिला, जो 'विवादार्णव सेतु' का अंग्रेजी में अनुवाद कर सके, अतः पहले उसका बंगाली मुंशियों से फारसी में अनुवाद कराया गया। फिर, इस फारसी रूपांतर का अँग्रेजी अनुवाद हैलहेड ने 'कोड आफ जेन्टू ला' नाम से किया। जब हेलहेड की पुस्तक 'ए कोड आफ जेन्टू ला' १७७६ ई० में प्रकाशित हुई, तब उसने यह आशा व्यक्त की कि यह प्रजा के विचारों, रीतियों और पूर्वाग्रहों के अनुसार उस पर सुगमता और संयम से शासन करने में सहायक होगा।

१७८१ ई० में शिक्षा के क्षेत्र में कंपनी की ओर से हेस्टिंग्स ने पहला कदम उठाया—कलकत्ते में एक 'मदरसा' खोला। इसका उद्देश्य था 'शरीफ़ मुसलमानों के लड़कों को राज्य के उत्तरदायी और लाभदायक पदों के योग्य बनाना'। इसमें एक मौलवी मुसलमान लड़कों को धर्मशिक्षा देने के लिए रखा गया था। इसके बाद दूसरा कदम था—जोनाथन डंकन की प्रेरणा से बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना। डंकन उस समय बनारस में रेसीडेंट थे। हिंदुओं के केन्द्र काशी में—उनकी विधि-व्यवस्था, साहित्य और धर्म के रक्षण के उद्देश्य से संस्कृत कालेज खोला गया था। 'कलकत्ता मदरसा' और

---

1. 'England can not govern a people without understanding it and an understanding can only be gained through a thorough knowledge of its literature, its customs, its poetry and its mythology' —Benjamin Jowett.

बनारस का संस्कृत कालेज मुसलमानों और हिंदुओं के प्राचीन साहित्य और भाषा के अनुशीलन और उन्नति के लिए खोले गए थे। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि कंपनी का ध्यान पहले मुसलमानों की शिक्षा पर था, बाद में हिंदुओं पर। इसका शायद एक कारण था कि राज-काज से ज्यादातर मुसलमान संबंधित थे और राजभाषा फारसी थी।

यूरोपियनों का संस्कृत-अनुशीलन :

१६ वीं सदी में ससेती नामक एक इटेलियन के संस्कृत पढ़ने का उल्लेख मिलता है, जिसने संस्कृत पढ़ी और Deo और Deva की एकता की चर्चा की। उसके बाद १६५१ ई० में अब्राहम रोजेरियस ने यूरोप से भर्तृहरि का एक अनुवाद निकाला। दक्षिण भारत के जेसुइट पादरियों में हेक्सलेडन (१६९९-१७३२ ई०) ही प्रथम यूरोपियन था, जिसने मलाबार में संस्कृत सीखी। उसने एक संस्कृत व्याकरण रचा था, जो अमुद्रित रह गया। उसी के लगभग अनेक फ्रेंच और वेलजियम मिशनरियों ने थोड़ी संस्कृत और तमिल सीख ली थी। इसी समय एक अजुर्वेदम् निकला, जिसकी वाल्टेयर ने कड़ी आलोचना की थी। ऐनक्विरिल दुपेटों की पुस्तक निकलने पर जोंस ने संस्कृत ग्रंथों के पाठों के साथ खिलवाड़ करने का उपहास किया था। फादर कोर्डो ने १७६७ ई० में संस्कृत पढ़कर मन में संस्कृत और प्राचीन यूरोपीय भाषाओं के सगोत्र होने की बात सोची। पर, अभी तुलनात्मक भाषाशास्त्र के उदय में कुछ विलम्ब था। इनके भी पहले तमिल में बाइबिल के अनुवादक शुल्ज ने संस्कृत जर्मन और लैटिन के संख्यावाचकों में सादृश्य पर ध्यान आकृष्ट किया था।

कंपनी के शासनकाल में अँग्रेजों में संस्कृत पढ़ने वाले प्रथम व्यक्ति थे नेथानियल ब्रेसी हेलहेड, जिन्होंने वारेन हेस्टिंग्स से प्रेरित हो कर संस्कृत पढ़ी। हेलहेड के मित्र चार्ल्स विलकिंस का कथन है कि मैं अपने मित्र को संस्कृत पढ़ते देख कर बहुत प्रभावित हुआ और १७७८ ई० के लगभग मुझे भी संस्कृत सीखने का उत्साह हुआ। विलकिंस से विलियम जोंस (१७४६-१७९४ ई०) ने संस्कृत का आरंभिक ज्ञान प्राप्त किया और फिर बंगाली पंडितों से विधिवत् पढ़कर अपना संस्कृत ज्ञान बढ़ा लिया। वाल्टेयर ने संस्कृतज्ञों में मि० हालवेल का भी नाम दिया है, जो डिप्टी गवर्नर थे, जिनके संबंध में वे बताते हैं कि वह

केवल आधुनिक ब्राह्मणों की भाषा ही नहीं वरन् ब्राह्मणों की प्राचीन भाषा भी जानते थे। (फ्रेगमेन्ट्स ऑन इंडिया)।

विलियम जोंस १७८३ ई० में जज होकर आए थे। जब वे इंगलैंड में ही थे, तभी अरबी, फारसी, तुर्की और हेब्रू से सुपरिचित हो गए थे। उनके पूर्व यूरोपीय भाषाविद् प्रायः यही मानते थे कि सब भाषाओं का मूल हेब्रू है। संस्कृत ज्ञान प्राप्त होने पर जोंस ने इस मत को अमान्य ठहराया और संस्कृत तथा ग्रीक की सगोत्रता का स्पष्ट अनुभव किया। संस्कृत के ज्ञानार्जन के लिए उन्होंने कठोर श्रम किया और चूँकि वे पहले से ही बहुभाषाविद् थे, शीघ्र ही इस भाषा के अच्छे ज्ञाता हो गए। उस समय तक कंपनी के सेवकों में अनेक ज्ञानपिपासु और जिज्ञासु व्यक्ति थे, जो भारत की नवीन और प्राचीन भाषाओं के अच्छे जानकार थे। इन विद्वानों के मन में एक प्राच्य विद्या संस्थान स्थापित करने की उमंग थी। अंत में प्राच्य विद्याप्रेमियों के उद्योग से १ जनवरी, १७८४ ई० को एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। इसके प्रथम अध्यक्ष विलियम जोंस चुने गए। इसकी स्थापना नव-भारत के सांस्कृतिक इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इसका मुखपत्र 'एशियाटिक रिसर्चेज़' भारतविषयक विद्याओं और ज्ञान का उद्घाटक और प्रकाशक सिद्ध हुआ। जैसा कि नाम से प्रकट है सोसाइटी का अध्ययन क्षेत्र संपूर्ण एशिया था। इसी के द्वारा प्राचीन साहित्य-संस्कृति इतिहास और पुरातत्व, भौतिक विद्याओं से संबंधित पांडित्यपूर्ण शोधप्रबंधों से यूरोप के प्राच्य विद्याविशारदों में भारती (इन्डोलोजी) का अनुराग जगा तथा भारतीयों में अपने अतीत के प्रति नवीन आस्था और गौरव बोध जागरित हुआ। विलकिंस, जोंस, कोलब्रूक आदि के सम्मिलित प्रयत्नों से भारती का उदय हुआ, जो बाद में यूरोप के और भारत के विद्वानों के योगदान से स्वतंत्र विद्या के रूप में विकसित हुई।

इस सोसाइटी द्वारा सैकड़ों प्राचीन ग्रंथ सुसंपादित होकर प्रकाश में आए। भारत की इन प्राचीन निधियों को पश्चिम के साथ पूर्व ने अपूर्व रूप में प्राप्त किया। यह महत्त्व की बात है कि संस्कृत से अँग्रेजी में अनूदित होने वाली प्रथम पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता है, जिसका अनुवाद विलकिंस ने १७८४ ई० में किया। बाद में उन्होंने संस्कृत विद्यार्थियों में बहुप्रचलित हितोपदेश

भी अँग्रेजी में रूपांतरित किया। इसके बाद विलियम जोंस ने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला का १७८९ ई० में और जयदेव के गीतगोविन्द का अनुवाद १७९२ ई० में प्रकाशित किया। इन दो महार्घ साहित्य-रत्नों के अनुवाद के बाद यूरोप को संस्कृत की काव्य-संपदा का मूल्यांकन करने का अवसर मिला। जोंस का 'इन्स्टिट्यूट्स ऑफ हिंदू लॉ' भी १७९४ ई० में प्रकाशित हुआ।

विलकिंस और जोंस के बाद संस्कृत के अनुशीलन क्षेत्र में हेनरी कोलब्रुक (१७६५-१८३७ ई०) और होरेस हेमन विलसन का उदय होता है। इन सब संस्कृतज्ञों की श्रम-साधना का फल यह हुआ कि यूरोप में हिंदू दर्शन और संस्कृत के प्रति आकर्षण और अनुराग बढ़ा और वहाँ के अनेक देशों के विद्वान् इसके अनुशीलन में प्रवृत्त हुए। संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए यूरोप के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में, फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड में संस्कृत के 'चेयर' स्थापित हुए।

एनक्वीलेल दुपटो नामक फारसी के एक फ्रांसीसी विद्वान् ने १७८६ ई० में फारसी के एक पुराने अनुवाद के सहारे चार उपनिषदों का अनुवाद निकाला, जिसके माध्यम से प्राचीन ऋषियों के उच्च आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय यूरोप को प्राप्त हुआ। १७९५ ई० में 'यकोल द लैंगुए ओरियन्ताल बिवान्ते' (प्राच्य भाषा विद्यालय) स्थापित हुआ। संयोग से उस समय फ्रांस में, एशियाटिक सोसाइटी का एक सदस्य हेमिल्टन (१७६२-१८२४ ई०) बंदी था जो वहाँ संस्कृत की शिक्षा देने लगा। जर्मनी के प्रथम संस्कृतज्ञ श्लीगेल ने इसी हेमिल्टन से संस्कृत पढ़ी थी। १८१४ ई० में 'कालेज द फ्रांस' मे संस्कृत का चेयर स्थापित किया गया, जिस पर लियोनार्द द शेजी नियुक्त हुए। १८१८ ई० के बाद जर्मन यूनिवर्सिटियों में भी संस्कृत 'प्रोफेसरशिप' स्थापित हुए। भारत में भी जब अँग्रेज अफसरों को भारताय भाषाओं की शिक्षा देने के लिए फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई, तो उसमे संस्कृत शिक्षण को भी स्थान मिला। वहाँ विलियम केरे बंगला-संस्कृत के प्रथम प्रोफेसर नियुक्त हुए, इंगलैंड में जब हर्टफोर्ड में अफसरों के लिए कालेज खुला, तब वहाँ संस्कृत को स्थान मिला। अन्त में, १८३२ ई० में आक्सफोर्ड ने भी पाठ्यक्रम में में संस्कृत को स्थान दिया जहाँ प्रथम संस्कृत प्रोफेसर एच० एच० विलसन

नियुक्त हुए। उसके कुछ समय बाद लंदन, कैम्ब्रिज और एडिनबरा में भी संस्कृत के चेयर स्थापित हुए।

बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के महत्त्वपूर्ण कार्यों को देखकर यूरोप में भी एशियाटिक सोसाइटी का आरंभ हुआ। पेरिस में १८२१ ई० में फ्रेंच सोसाइटी एशियाटिक, और लंदन में १८२३ ई० में रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई।

यूरोप में संस्कृत का प्रवेश होते ही वहाँ के चिंतन और ज्ञान पर उसका प्रभाव पड़ना आरंभ हुआ। प्राच्य विद्यावाद (ओरियंटलिज्म) की नवीन लहर यूरोप में उठी, और 'ओरियन्टलिस्टों की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। एक लेखक के शब्दों में, 'प्राच्यविद्या का जो उन्माद वेलेज़ली-सरकार के अधीन उठा, लार्ड मिन्टो के समय में वेगवान हुआ, लार्ड हेस्टिंग्स के समय उत्कर्ष पर पहुँचा, वह लार्ड एम्हर्स्ट के काल में मंद होता हुआ लार्ड वेंटिक तक पूर्णतः मंद हो गया।[१]

यूरोपियनों का हिन्दुस्तानी का अनुशीलन :

जब कंपनी का राज्य बंगाल में स्थापित हो गया, तब उनके सामने इस देश की बहु-प्रचलित भाषा हिंदुस्तानी और स्थानीय भाषा बंगला के जानने की आवश्यकता का बोध हुआ। इन देशी भाषाओं को जाने बिना अँग्रेज अधिकारियों को प्रजा से संबंध बनाये रखने में पगपग पर कठिनाई का अनुभव होने लगा। केवल फारसी के ज्ञान से दैनिक कार्य चल नहीं सकता था। फौज में जो देशी सिपाही भर्ती हुए थे, वे प्रायः अपनी बोली को छोड़कर कोई दूसरी बोली समझते ही नहीं थे। व्यापार-कार्य में भी बिना ठीक से हिंदुस्तानी जाने काम नहीं चलता था, क्योंकि व्यापारियों के बीच हिंदुस्तानी का ही अधिक व्यवहार होता था। अतः, आरंभ में कुछ दूरदर्शी अँग्रेज

---

1. 'The Oriental mania, which broke under Wellesley's Government, advanced under Lord Minto's, was in the height of its career under Lord Hastings and began to flag under Lord Amherst's has completely exhausted itself in the time of Lord Bentick'.

अफसरों ने हिंदुस्तानी सीखने पर ध्यान दिया। ये लोग प्राइवेट रूप में किसी हिंदुस्तानी मुंशी को, जो प्रायः मुसलमान होते थे, अपना शिक्षक बना लेते थे और उससे हिंदुस्तानी का काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। फिर, इसी के सहारे अपना काम चलाते थे। ऐसे लोगों में गलस्टन नामक फारसी के एक दुभाषिए का उल्लेख मिलता है, जिसने हिंदुस्तानी पर एक लेख लिखा है। यह लेख लेखक के निधन के बाद छपा था। यह लेख गिलक्रिस्ट को मिल गया। इसके बाद मद्रास के डा० हेरिस ने एक अँग्रेजी-हिंदुस्तानी कोश निकाला। हिंदुस्तानी के व्याकरण पर किसी के लेख या पुस्तक का उल्लेख जार्ज हेडले के पहले नहीं मिलता।

जार्ज हेडले प्रथम अँग्रेज थे, जिन्होंने १७७२ ई० में 'मूरभाषा का व्याकरण' नाम से हिंदुस्तानी का पहला व्याकरण लंदन से छपाया था, जिसमें हिंदुस्तानी की एक शब्दावली भी दी गयी थी। इस पुस्तक का पूरा नाम इस प्रकार है: 'ग्रामेटिक्लारिमार्कस आन दि प्रेक्टिकल ऐंड वलगर डायलेक्ट्स आफ इन्दोस्तान लैंग्वेज, कामनली काल्ड मूर्स विथ ए वोकेबुलरी, इंगलिश ऐंड मूर्स।' इसका प्रथम संस्करण लंदन से १७७२ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके अनेक संस्करण हुए। द्वितीय संस्करण १७७४ ई०, तृतीय १७८४ ई०, चतुर्थ १७९७ ई० में, पंचम संस्करण परिवर्धित और मिर्जा मुहम्मद फितरत द्वारा संशोधित १८०१ ई० में निकला। षष्ठ संस्करण १८०४ ई० में और पुनःपरिवर्धित संस्करण १८०९ ई० में प्रकाशित हुआ। अपने समय में यह संस्करण लोकप्रिय था। हेडले बंगाल आर्मी (बंगाल-सेना) में थे। इसके बाद हेलहेड का बंगला व्याकरण निकला, जिसे छापने के लिए विलकिंस ने, जिनका उल्लेख संस्कृतज्ञ रूप में हम कर चुके हैं, बंगला टाइप बनाया था। इन्हीं विलकिंस ने पहले-पहल भारत में नागरी टाइप भी बनाए और इसे बनाने की विधि पंचानन को सिखलाई। हिंदुस्तानी सीखने वालों में डा० गिलक्रिस्ट का नाम चिरस्मरणीय है। इन्होंने एशियाटिक सोसाइटी के जन्म से पूर्व ही अच्छी हिंदुस्तानी और फारसी सीख ली थी और न केवल हिंदुस्तानी के समर्थक थे, वरन् अनेक प्रकार के पाठ्य ग्रंथों के संकलन-संपादन और व्याकरण एवं कोशादि के निर्माण से, उसमें पूर्ण निपुणता प्राप्त कर ली थी। हिंदुस्तानी का इन्हें इतना अच्छा ज्ञान था कि ये अपने से पूर्व के हिंदुस्तानी जानने वालों की अल्पज्ञतता का उपहास

करते थे। गिलक्रिस्ट और हेडले के पहले भी बहुतेरे अँग्रेज हिंदुस्तानी जानते और बोल लेते थे, पर उस समय इस भाषा को विधिवत् सीखने की न कोई सुविधा थी और न उस भाषा का गद्य कहीं ठीक से मिलता था। न हिंदी में और न उर्दू में १७७२ ई० के पहले किसी का लिखा हुआ व्यवस्थित व्याकरण का कोश था न कहीं हिंदी की पढ़ाई चलती थी। ऐसी अवस्था में प्रायः नौकरों-खानसामों या फौजी सिपाहियों या तिजारत के सिलसिले में संपर्क में आए लोगों से ही हिंदुस्तानी सीखी जा सकती थी। संस्कृत और फारसी-अरबी के साथ यह बात नहीं थी—उनका उन्नत साहित्य था, भाषा-व्याकरण-शासित थी और उनमें गद्य भी सुलभ था। अतः, यह स्वाभाविक था कि उस समय अंग्रेजों में कम लोग हिंदुस्तानी की ओर आकृष्ट हुए। जो भारत के ज्ञान-विज्ञान, धर्म-संस्कृति आदि को जानने के इच्छुक थे, वे चाहे संस्कृत की ओर झुकते थे या फारसी-अरबी की ओर। पर, प्रचलित देशभाषा को काम चलाऊ ढंग से सीखे बिना समकालीन जनता से संपर्क नहीं रखा जा सकता था। बंगाल में, कलकत्ता, ढाका मुर्शिदाबाद आदि में भी सौदागरी और तिजारत में हिंदुस्तानी की जरूरत थी, क्योंकि पूर्वी भारत का व्यापार-व्यवसाय मुख्यतः हिन्दी भाषियों के हाथ में था।

अतः, जब हिंदुस्तानी के न उर्दू रूप में और न हिंदी रूप में गद्य मिलता था, और जो मिलता भी था, वह इस लायक नहीं था कि जिसे पढ़ कर उसका शुद्ध रूप जाना जा सकता था। उर्दू और दक्खिनी में भी कुछ पद्य मिलता था, जिससे उसका पर्याप्त परिमार्जित रूप सुलभ था। पर, खड़ी बोली हिंदी में तो पद्य भी नहीं था। उस समय जिन थोड़े से अँग्रेजों ने उसे ठीक से बोलने-लिखने का अभ्यास कर लिया था, उनकी आरंभिक कठिनाई का हम आज केवल अनुमान कर सकते हैं। ऐसे अंग्रेजों में गिलक्रिस्ट का सबसे बड़ा नाम है, जो उस समय उपलब्ध उर्दू पद्य से भी परिचित थे। और वे इसी से अपने समय में हिंदुस्तानी के सबसे बड़े विद्वान् माने जाते थे। वे १७८२ ई० से ही हिंदुस्तानी सीख रहे थे। फोर्ट विलियम कालेज खुलने पर, वे ही उसके बृहत् व्याकरण और कोश के निर्माता होने के कारण, पहले हिंदुस्तानी प्रोफेसर नियुक्त हुए। उनके संपर्क में आये हुए कुछ अँग्रेजों ने हिन्दुस्तानी सीखने में काफी उत्साह दिखलाया। उनके समकालीन अँग्रेजों में कुछ का पता उस समय की प्रकाशित पुस्तकों से चलता है, जो हिन्दुस्तानी के अच्छे

जानकार थे, पर चूँकि वे स्वयं उसके लेखक नहीं थे या उस विषय में कोई पुस्तक नहीं लिख सके, अतः वे प्रायः विस्मृत हो गए हैं। गिलक्रिस्ट का हिंदुस्तानी के इतिहास में वही स्थान है, जो संस्कृत अनुशीलन के इतिहास में विलियम जोंस का। उस समय के संस्कृतज्ञ अँग्रेज भी बोलचाल की हिंदुस्तानी जानते थे, पर वे मामूली बोलचाल से ज्यादा उसमें काम नहीं कर सकते थे। जब विलियम कैरे ने बाइबिल का हिंदी में अनुवाद करने का निश्चय किया, उसी समय उन्हें यह मालूम हुआ कि कोलब्रुक भी ऐसा ही काम कर रहे हैं। इससे मालूम होता है कि कोलब्रुक भी काफी हिंदी जानते थे। जोंस भी कामचलाऊ हिंदी बोल लेते थे।

गिलक्रिस्ट का फोर्टविलियम कालेज से संबंध कुछ काल ही तक रहा। १८०४ ई० के बाद ही वे कुछ खिन्न होकर स्वदेश लौट गए, पर वहाँ जाकर भी वे अपने हिंदुस्तानी शिक्षण और लेखन-कार्य में लगे रहे। रॉबक उनके योग्यतम प्रशंसक और समानधर्मा निकले। कालेज के कई अफसरछात्रों को उन्होंने हिंदुस्तानी का अच्छा जानकार बना दिया, जिन्होंने आगे चलकर विविध रूप में हिंदी-हिंदुस्तानी की सेवा की। आरंभ से ही हिंदी की शैली को लेकर दो दल हो गए। एक उर्दू की ओर झुकी हुइ शैली थी और दूसरी तद्भव तत्सम युक्त शैली। पहली शैली का समर्थक और पोषक प्रायः अफसर वर्ग था, दूसरे दल में मिशनरी-वर्ग। गिलक्रिस्ट ने इन दोनों शैलियों के महत्त्व को समझा था, पर तात्कालिक उपयोगिता की दृष्टि से वे कोर्ट स्टाइल (उर्दू) के हिमायती थे। पर, खड़ी बोली के लेखक लल्लू जी और सदल मिश्र से पुस्तकें लिखवाने का श्रेय भी उन्हें ही था। कालेज की स्थापना के बाद तो हिंदुस्तानी के विविध रूपों के कई जानकार अँग्रेज हुए।[१]

पुराने अंग्रेज व्याकरण-लेखकों में जान शेक्सपियर भी प्रसिद्ध हैं। जिनका 'ए ग्रामर आफ हिंदुस्तानी लैंग्वेज़' १८१३ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके भी कई संस्करण हुए। क्रमशः १८१८, १८२६, १८४६ ई० और १८५६ ई० में इसके परवर्ती संस्करण प्रकाशित हुए थे।

---

१. गिलक्रिस्ट के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए अन्यत्र देखिए।

आरंभिक कोशकार जान फरगुसन भी हिंदुस्तानी के सेवक थे। आपका कोश ए डिक्शनरी आफ द हिंदोस्तान लैंग्वेज लंदन से १७७३ ई० में प्रकाशित हुआ था। प्रथम खंड में अंग्रेजी और हिंदोस्तान और द्वितीय खंड में हिंदोस्तान ऐंड इंगलिश का कोश है। इसमें पहले 'हिंदोस्तान' भाषा का व्याकरण भी दिया गया था।[१]

● ●

१. परिशिष्ट में इन आरंभिक ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

खंड (१)

(क) हिंदी के प्रमुख यूरोपियन सेवक

(ख) प्रमुख व्याकरण-लेखक

(ग) प्रमुख कोशकार

हिंदी के प्रमुख यूरोपियन सेवक

चार्ल्स विल्किंस (१७५०-१८३६ ई०)

आपका जन्म १७५० ई० में सोमरसेट में फ्रोम नामक स्थान में हुआ था। अपने मित्र हेलहेड को देखकर आपके मन में भी १७७८ ई० में संस्कृत सीखने की इच्छा हुई। यों तो आपका विशेष महत्त्व संस्कृत ज्ञान प्राप्त करने वाले प्रथम अँग्रेजों में ही है, पर आपकी प्रसिद्धि इसलिए है कि आपने ही फारसी और बंगला टाइप का आविष्कार किया और बंगाल के कैक्सटन का विरुद्ध प्राप्त किया।

आपने हुगली में अपना प्रेस स्थापित किया। बेपटिस्ट मिशनरियों का प्रेस भी रामपुर में था। इसलिए कंपनी के राज्य-क्षेत्र में विलकिन्स का प्रेस ही पहला प्रेस था। इसी प्रेस में फिरंगियों को बंगला सिखाने को पहला बंगला व्याकरण छपा था। बाद में विलियम भगवद्गीता का अनुवाद कर संस्कृतज्ञ विद्वान् के रूप में विख्यात हुए। वे इंडिया आफिस लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन नियुक्त हुए और फिर १८०५ ई० में हेलीवरी कालेज से संबंधित हुए। १८०८ ई० में विल्किंस ने संस्कृत व्याकरण तैयार किया। विलियम जोंस ने अपने ऊपर इनकी कृतज्ञता का अपार ऋण स्वीकार किया है। चार्ल्स विल्किंस को 'विद्या का शुक्रतारा' कह सकते हैं।

डा० गिलक्रिस्ट (१७५९-१८४१)

डा० जानबोर्थविक गिलक्रिस्ट का जन्म १७५६ ई० में एडिनबरा में हुआ था। शिक्षा समाप्त कर वे कुछ दिन जार्ज हेरियट अस्पताल में रहे, फिर ३ अप्रैल, १७८३ ई० में सहायक सर्जन होकर भारत आए। आपने

इंग्लैंड में ही हिंदुस्तानी सीखना आरंभ कर दिया था। भारत आने पर उन्होंने इस भाषा के ज्ञान को शीघ्र ही बढ़ा लिया। २१ अक्तूबर, १७९४ ई० में वे सर्जन हो गए। जब से वे भारत आए बड़े मनोयोग से हिंदुस्तानी के स्वाध्याय में बराबर लगे रहे।

गिलक्रस्ट ने भारत में आने पर यह अनुभव किया कि कंपनी के अधिकार फारसी को ही राजमाभाषा के रूप में प्रचलित देख कर अधिक महत्त्व देते हैं, यद्यपि फारसी इस देश की जनभाषा नहीं थी। समाज के उच्चवर्गीय और हुकूमत से यहयोग करने वाले हिंदुओं के बीच हिंदुस्तानी ही चलती थी, पर राजभाषा रूप में फारसी को स्थान मिलने के कारण वह उपेक्षित थी। गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी के महत्त्व का अनुभव और वे इसके उचित ज्ञान की आश्यकता पर बल देने लगे। उन्हें हिंदी क्षेत्र में रह कर काम करने का अवसर मिला था, अतः इस विषय में उनके विचार और भी दृढ़ हो गए।

कंपनी के राजत्व काल के आरंभ में गिलक्रिस्ट ही पहले अंग्रेज थे, जिहोंने बहुत श्रम कर इस देश की सबसे व्यापक और महत्त्वपूर्ण भाषा का ठीक से अध्ययन अनुशीलन किया और शीघ्र ही उनके असाधारण ज्ञान की ख्याति फैल गयी। जब मार्क्विस वैलेजली ने ओरियंटल सेमिनरी स्थापित की, उनका ध्यान गिलक्रिस्ट पर गया और उन्होंने उस संस्था का हेड (प्रधान) उन्हें ही बनाया। यही संस्था आगे चलकर फोर्ट विलियम कालेज के रूप में विकसित हुई। वेलेजली गिलक्रिस्ट की हिंदुस्तानी-विषयक योग्यता और दक्षता के बड़े कायल थे और उनके हिंदुस्तानी भाषा के व्याकारण और कोश से इतने अधिक प्रभावित थे कि जब उन्हें प्राच्य भाषाओं के अनुशीलन की योजना को कार्यान्वित करने और व्यावहारिक रूप देने का सुअवसर मिला तब वैलेजली के संरक्षण में गिलक्रिस्ट को भी अपने हिंदुस्तानी ज्ञान का अवसर मिला। वे कालेज के प्रथम हिंदुस्तानी प्रोफेसर नियुक्त हुए। कंपनी के जूनियर सिविल सर्वेंटों को यह आदेश हुआ कि वे हिंदुस्तानी सीखें। कुछ काल बाद यह जांचने को कि इनके हिंदुस्तानी ज्ञान में क्या वृद्धि या प्रगति हुई है एक कमिटि बनी, जिसने अपनी रिपोर्ट में गिलक्रिस्ट की सेवाओं के बारे में यह लिखा : 'ये सज्जन कई वर्षों से हिंदुस्तानी भाषा का, जो सारे भारत में व्यापक बोलचाल की भाषा है—व्याकरण और कोश बनाने में लगे थे। उस भाषा के व्याकरण के अभाव में और उसके गठन की कठिनता के कारण यह भाषा यूरोपयिनों द्वारा सही ढंग से बोली नहीं जाती थी। मि०

गिलक्रिस्ट की साहित्य-साधना, श्रम और प्रतिभा ने उस भाषा के सुगम और शुद्ध ज्ञान के लिए एक साधन प्रस्तुत कर दिया।[1]

निस्संदेह गिलक्रिस्ट का व्याकरण और कोश उनका सुदृढ़ कीर्ति-स्तम्भ है। केवल इन दो ग्रंथों के बल पर प्रथम यूरोपियन हिंदुस्तानी विद्वान् के रूप में वे सदा याद किए जायेंगे। किसी विषय में आदि-ग्रंथ का कितना महत्त्व होता है, यह भाषाविदों को ज्ञात है। जब किसी भाषा में स्थिरता और व्यवस्था नहीं आयी हो, एक अच्छे व्याकरण या कोश का निर्माण कितना कठिन कार्य है, यह प्रत्येक विद्वान् जानता है। उनके पूर्व हिंदुस्तानी का कोई व्याकरण, जिसका रचयिता कोई भारतीय हो, नहीं मिलता। अंग्रेजी राज की स्थापना के पूर्व हिंदुस्तानी में न कोई व्यवस्था थी, न कोई गद्य-पुस्तक, न ठीक व्याकरण था, न अच्छा कोश। अतः एक वृहत् कोश और व्याकरण रचने के बाद गिलक्रिस्ट ने कई छात्रोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं और इस तरह यूरोपियनों के लिए हिंदुस्तानी सीखने का पथ प्रशस्त कर दिया। आपकी ओरियंटल फेबुलस्टि 'हिंदी मेनुअल' और 'हिंदी स्टोरीटेलर' इसी कोटि की रचनाएँ हैं। यह विशेषतः ध्यातव्य है कि इन तीनों में दो के नामों में 'हिंदी' है और तीसरे में ही 'हिंदुस्तानी' नहीं है। गिलक्रिस्ट ने एक स्थल पर माना है कि हिंदुस्तानी नाम नया है, भारतीयों का रखा हुआ नहीं है, और यहाँ वाले प्रायः इसे 'हिंदी' नाम से ही जानते हैं, पर चूँकि इस नाम के अंतर्गत हिंदी,

---

1. "That gentleman has been assiduosly employed for several years in forming a Grammer and Dictionary of the Hindoostanee Language, the universal colloquial language throughout India. From the want of a grammer of the language and the difficulty of its construction, it has hither to been spoken very imperfectly by Europeans. The literary labours and talents of Mr. Gilchrist have furnished the names of acquiring a knowledge of this language with facility and correctness."

—Report of the Committee to ascertain progress made in the Hindoostani and Persian Languages.

हिंदुई (हिंदुवी) और हिंदवी सबको समाहित करने की सुविधा है, इसी से स्वयं इन्हें 'हिंदुस्तानी' नाम पसंद था।

खेद की बात है कि कालेज में गिलक्रिस्ट अधिक दिन नहीं टिके। २६ अक्तूबर, १८०४ ई० को त्यागपत्र देकर वे जन्मभूमि लौट गए। कालेज से क्यों उन्होंने अपना संबंध तोड़ा, इसपर अब तक स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ा है। पर ऐसा लगता है कि बाइबिल के अनुवाद के प्रकाशन के प्रश्न पर सरकारी अधिकारियों से उनका मतभेद था और इस कारण वे खिन्न थे। कालेज में रह कर अपने सेवाकाल में उन्होंने हिंदी और उर्दू गद्य का जैसा संवर्धन और संपोषण किया, वह सुविदित है। कालेज छोड़ने पर बहुत लिखा-पढ़ी के बाद अपनी पिछली सेवा के फलस्वरूप उन्हें १८०९ ई० में ३०० पौ० वार्षिक पेंशन मिला। जन्मभूमि लौटने के बाद भी वे अपने प्रिय कार्य हिंदुस्तानी की सेवा और ज्ञान-दान में ही लगे रहे और विविध रूपों में उसके प्रचार-प्रसार में ही शेष जीवन बिताया। १८०६-०८ ई० के बीच एडिनबरा से गिलक्रिस्ट ने 'ऐंटीजार्गनिस्ट' 'स्ट्रेन्जर्स गाइड' 'ओरियंटल लिंग्विस्ट' और कई हिंदुस्तानी रचनाओं को एक साथ मिलाकर 'दि ब्रिटिश इंडियन मॉनीटर' नाम से दो भागों में प्रकाशित किया। इसके बाद १८१६ ई० में वे लंदन चले आए, जहाँ भारत में सेवार्थ आने वाले इच्छुक अंग्रेजों को वे प्राच्य भाषाओं की शिक्षा प्राइवेट तौर पर देने लगे। इसके बाद लाइसेस्टर में स्थापित ओरियंटल इंस्टीट्यूशन में २०० पौ० वार्षिक पर उनकी नियुक्ति हुई। वहाँ अपनी ओर से गिलक्रिस्ट ने यह नियम बनाया कि प्रवेश होने पर छात्रों को उनके प्रकाशकों से उनकी पुस्तकें खरीदनी होंगी। वेतन के अतिरिक्त प्रत्येक छात्र से वे केवल तीन गिनी ले सकते थे। १८२५ ई० में कंपनी ने उन्हें सहायता देना बंद कर दिया। १८२६ ई० तक इस रूप में हिंदुस्तानी की शिक्षा देते रहे। बाद में शिक्षण का भार आर्नट और डेकन फोर्ब्स को सौंप कर उन्होंने सप्ताह में केवल एक बार व्याख्यान देने का नियम बनाया। १८२८ ई० में ओरियंटल इंस्टीट्यूशन के पास ही में उन्होंने अपना स्वतंत्र क्लास चलाना चाहा। ओरियंटल इंस्टीट्यूशन के प्रथम वार्षिक विवरण में गिलक्रिस्ट की कटु आलोचना की गई। इस अवसर पर डेकन फोर्ब्स और आर्नेट का गिलक्रिस्ट के प्रति मनोमालिन्य प्रकट हुआ। इससे गिलक्रिस्ट बहुत खिन्न हो गए। उनका शेष जीवन अवकाश में बीता। जीवन-पर्यंत हिंदुस्तानी के कट्टर समर्थक और हिंदी-उर्दू गद्य के पोषक डा० गिलक्रिस्ट ने इस देश की भाषा की सेवा की थी। १८४१ ई० में उनका निधन पेरिस में हुआ।

गिलक्रिस्ट की कृतियाँ :

१. डिक्शनरी। इसका पूरा नाम है—'ए डिक्शनरी आॅफ इंगलिश ऐन्ड हिंदुस्तानी।' लिपि फारसी। प्रकाशन-काल १७८७-९० ई०। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। इसका मूल्यांकन हम कोशों पर विचार करते समय करेंगे।

२. ग्रामर। इसका पूरा नाम है—'ए ग्रामर आफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज'। प्रकाशन-काल १७९६-९८ ई०। यह व्याकरण हिंदवी के आधार को स्वीकार करता है, पर छंद उर्दू के ही लिए गए हैं। 'हिंदुस्तानी' के कवियों में कोई हिंदी का कवि नहीं है। वली और सौदा मिस्कीन आदि शायरों की रचनाएँ दी गयी हैं। इससे स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' से गिलक्रिस्ट का आशय उर्दू से ही था।

३. 'दि स्ट्रन्जर्स ईस्ट इंडियन गाइड टु हिंदुस्तानी'। (आगन्तुक-पूर्व भारतीय-पथ-प्रदर्शिका) प्रकाशन-काल १८०२ ई०। यह १५ जुलाई, १८०२ ई० को फोर्ट विलियम की सुप्रीम काउंसिल के मेम्बर जार्ज एच० वार्ली को समर्पित है। आरंभ में हिंदुस्तानी व्याकरण की रूपरेखा, शब्दावली, कुछ फौजी शब्द, संवाद पाठ और अभ्यास पाठ से युक्त। यह कंपनी के सेवार्थ आगंतुक अंग्रेजों के उपयोग के लिए रची गयी थी और बड़ी ही लोकप्रिय हुई।

इस पुस्तक से यह सूचना मिलती है कि गिलक्रिस्ट १७८२ ई० से ही हिंदुस्तानी सीखने और उसमें अपना ज्ञान बढ़ाने में लगे थे। जिन वार्ली साहेब को पुस्तक समर्पित है, उनको अपने समय में हिंदुस्तानी व्याकरण और उच्चारण में प्रवीण और हिंदुस्तानी की उपयोगिता और महत्ता में निष्ठा रखने वाला विद्वान् कहा गया है।

४. 'द ओरियंटल लिग्विस्ट'। प्रकाशन-काल १७९८ ई०। यह कलकत्ते के 'फेरिस ऐंड ग्रीनवे' से छपा था। इसमें हिंदुस्तानी व्याकरण के मूल तत्त्व, सैनिक शब्दावली (मिलिटरी टर्मस्) संवाद (डायलाग्स), किस्से कहानियों, 'टेल्स ऐंड एनिकडोट्स (ओड्स), पद्य, युद्ध-सामग्री (आर्टिकल्स आफ वार) के नाम और रेख्ता गज़ल हिंदुस्तानी संगीत

के नाम पर संकलित हैं। इसमें 'दि रूडीमैन्ट्स आफ दि हिंदुस्तानी टंग' नामक एक पुस्तिका भी है। इसमें एक अँग्रेजी-हिंदुस्तानी शब्दावली (वाकोव्यूलरी इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी) भी संमिलित है।

इसकी भूमिका का विशेष महत्त्व है, जिसमें हिंदुस्तानी के विविध रूपों की भाषा पर लेखक का अभिमत जोरदार शब्दों में व्यक्त हुआ है। खड़ी बोली और हिंदुस्तानी के स्वरूप का विवेचन करते समय हमने इसमें प्रकाशित विचारों से महत्त्वपूर्ण उद्धरण दिये हैं। 'दि ऐंटी जार्गनिस्ट' (१८०० ई०) आंशिक रूप से दि ओरियंटल लिंग्विस्ट का संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है।

५. 'द हिन्दी मैनुअल और कैसकेट आफ इंडिया' (१८०२ ई०)। यह गिलक्रिस्ट की अपनी रचना नहीं है, क्योंकि आदम साहब के 'ग्रामर' के अनुसार यह 'हिंदुस्तान के विद्यार्थियों के लिए जान गिलक्रिस्ट के निर्देशन और अधीक्षण में मीर अब्दुल्ला मिसकीन ने तैयार किया था।'

६. 'द हिंदी स्टोरी टेलर ऑर एंटरटेनिंग एक्सपोजीटर आफ दि रोमन पार्शियन ऐंड नागरी कैरेक्टर्स' (१८०२ ई०)।

७. 'द हिंदी डाइरेक्टरी ऑर स्टूडेन्ट्स इंट्रोडक्शन टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज़, कंपराईजिग दि प्रेक्टिकल आउट लाइंस आफ इट्स इंप्रूव्ड आरथोपी ऐंड आरथोग्रेफी, एलांग विथ दि फर्स्ट ऐंड जेनरल प्रिंसिपल्स आफ इट्स ग्रैमर' (१८०२ ई०)। द ओरियंटल फैबुलिस्ट—१८०३ ई० हरकारा प्रेस। डायलग्स इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी (१८२० ई०) दि जेनरल ईस्ट इंडिया गाइड बींग ऐ डाइजेस्ट आफ दि वर्सस् आफ कैप्टेन विलियम सन् विथ मेनी इम्प्रूवमेंट्स ऐंड एडीशन्स। (१८२५ ई०)।

८. 'द मारल प्रिसेप्टर ऐंड पर्शियन स्कालर्स शार्टेस्ट रोड टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेंज'। रचना १८०२ ई०, प्रकाशन १८०३ ई०।

९. 'दि ओरियंटल फैबुलिस्ट आर पौलीग्लौट ट्रांसलेशन आफ ईसप्स ऐंड अदर ऐंशियेंट फैबुल्स'—(१८०३ ई०)।

१०. 'द हिंदी रोमन आर्थी एपिग्राफिकल अल्टीमैटम' (१८०४ ई०)।

इसमें फारसी, अरबी, हिंदुस्तानी ध्वनियों के रोमन लिप्यंतरण पर विशद विवेचन है। गिलक्रिस्ट इसमें अन्य प्रणालियों के गुण दोषों की समीक्षा करते हुए अपनी रोमन-प्रणाली की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। विशेष 'देवनागरी का रोमन लिप्पन्तरण' शीर्षक के अंतर्गत देखें। इसका द्वितीय संस्करण लंदन से १८२० ई० में निकला।

११. 'ए कलैक्शन आव डायलाग्स इंगलिश एंड हिंदुस्तानी आन दि मोस्ट फैमिलियर एंड यूजफुल सब्जेक्ट्स' (१८०४ ई०)।

१२. गिलबर्ट ने गिलक्रिस्ट के 'ऐंटी जार्गनिस्ट' 'स्ट्रन्जर्स गाईड' 'ओरियंटल लिंग्विस्ट' और कुछ अन्य रचनाओं को 'दि ब्रिटिश इंडियन मानीटर' नाम से १८०६-१८०८ ई० में एडिनबरा से प्रकाशित किया था।

गिलक्रिस्ट की हिंदुस्तानी के नमूने :

दि ओरियंटल लिंग्विस्ट से कुछ हिंदुस्तानी कहानियाँ दी जाती हैं। यह रोमन लिपि में है, इसलिए इसमें ईकार और ऊकार की मात्राएं इकार उकार के स्थान पर मिलती हैं। यदि इसे अक्षरी-दोष मान लें तो भाषा में गलतियाँ कम हैं। नीचे के अवतरण में भाषा उर्दू की ओर अधिक झुकी नहीं है—

'जो जड़ और डाल पात कि सू किस्से के लोगों के दिलों पर बहुत असीर-पजीर है, तो ऊस (उस) को थोड़ा ही सा उज़्र आदमीयों (आदमियों) के सुनाने के लिए चाहिए यिह कहानी मरी हुई है कई एक दिलरेश वारिदात से, कि नतीजा और तासीर में ऊस (उस) की हम सब थोड़ा बहुत शरीक हैं, में कहा, 'ऐ बड़े मिआं तुम्हें किआ दुख है ?' 'हाए। साहिब, मेरी लड़की को तुमने देखा है ? जिस शख्स ने यिह ऐसा जवाद मुझे दिया, सो वुह एक गरीब अच्छा मर्द वैठा था, खोखरे दरख्त की एक जड़वत् पर, जिसके नीचे एक फुट हरी सी नाली बहती थी, उसके सिखी चांदी सब सोमा लूटी हई थी, लुटेरे वक्त के सख्त हाथ से, और झोली मेवदी ऊस (उस) की भी खाली थी लछमी की मिहरबानी से —एक बांस की लाठी जिस-पर उस्के (उसके) निर्बल हाथ टिके हुए थे, ओ देही उसकी मूख की कठिन चोट से मेरी नजर में जो डूबने पर थी गश में, —ओ फूटी आंखे और थरथराती आ-वाज ऊस (उस) की यह दरोबस्त देख त्रुत (तुरंत) एक अदाबाना दिल में मेरे

पैदा हुई फिर ऊस (उस) सुरत जाहिरी की रह जो मूझे (मुझे) इस हैरत में पाबंद कीआ (किआ) में तक रहा, तो जी में बूझा कि कुदरत इलाही ने इस जईफ की पर्वरिश से एक कलम हाथ उठाया, जो निर्मल माला ऊसके (उसके) पैरों के तले खलखलाता था वुह भी आफत की जवान हमावाज हो, चीं अब रूई से खड़खड़ाता रहा गोया कि वाकिफ था ऊस (उस) के पैहम हादिसो से।[१]

गिलक्रिस्ट के कृतित्व का मूल्यांकन :

गिलक्रिस्ट के साथ हिंदुस्तानी के अनुशीलन का एक नया युग आरंभ होता है। एच० एच० विलसन ने उनकी सेवाओं के या उनके कृतित्व के महत्त्व पर जो कुछ कहा है उसके वहुलांश से मैं सहमत हूँ—

"अयोग्य शिक्षकों के हाथों से गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी का त्राण किया और इसे आधुनिक व्यवहार योग्य बनाया, इसे अस्थिर और लचकीली बोली की स्थिति से उठाकर नियमित स्थिरता और एकरूपता दी। उनके पहले हिंदुस्तानी भाषा रूढ़ व्यवहार की संकटाच्छन्न अवस्था में पड़ी थी और यद्यपि कुछ प्रसिद्ध लेखकों के प्रयोगों से ऐसे उदाहरण मिलते थे, जिनसे उसके गठन के नियम बनाए जा सकते थे, पर उन नियमों को उनके लिए भी संकलित नहीं किया गया था, जो उस भाषा को बोलते थे। बड़े श्रम और सूझ से गिलक्रिस्ट ने प्रयोगों से नियम निकाले और एक 'स्टैंडर्ड' स्थापित किया, जिससे अपील का अवसर ही नहीं आया, और जो न केवल उस भाषा को सीखने वरन् उसके रक्षार्थ आवश्यक था। संयोग और काल के प्रभाव से जिस वस्तु की सफलतापूर्वक रक्षा की गयी, उसका महत्त्व असंदिग्ध है।......

हिंदुस्तानी भाषा के गठन को शासित करने वाले वे सुन्दर और जटिल नियम उस भाषा की विशेषता है, उसकी मनोहरता, विविधता और शक्ति डा० गिलक्रिस्ट के दीर्घकालीन परिश्रम से ही प्रकाश मेंआयी,... उस युग पूर्व कंपनी के सेवकों को ऐसी व्यापक व्यवहार की और प्रयोग की भाषा का जैसा कि स्वाभाविक है, वैसा ही ज्ञान था, जो इस साम्राज्य की प्रत्येक शाखा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है, उसपर तब तक ऐसी स्पष्टता व्याप्त थी जब तक कि वह

---

१. साहित्य चिंतन, डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ० ५१ पर उद्धृत।

हिंदुस्तानी व्याकरण और कोश के लेवक के भाषाशास्त्रीय श्रम से और कालेज प्रगतिशील प्रयासों से वह दूर नहीं हुई थी। किसी व्याकरणिक शिक्षा के अभाव में और हिंदुस्तानी की कोई पुस्तक न होने के कारण....बस कुछ पद्यात्मक कृतियाँ उपलब्ध थीं। कंपनी के कर्मचारी इस भाषा की जानकारी केवल देशवासियों से बातचीत के सिलसिले में, अपने निजी जीवन के साधारण कामों में या आम मामलों के दौरान पाते थे।"

---

1. "He not only rescued it from the hands of incompetent teachers, and rendered it accessible to moderate application, but recduced it from the state of an unfixed and fluctuating dialect, to regular consistence. Before his time the Hindustani language existed only in the precarions condition of conventional use and although the practice of a few eminent writers afforded examples of rules forits construction, those rules were not collected evenfortheguidance of the people by whom the language was spoken, with great labourandingenuininty Dr. Gilchrist extructed tne precepts frore the practice aud established a standard, from which there is no occasion to appeal, and has been of no less importance of the preservation than to the acquirement of the language. The value of the article their successfully redeemed from the operation of chance and time is unquestionable.....

   The nice and intricate rules, which govern the construction of the Hindoostani language, the peculiartes, which distinguish that language the elegance, the variety and the power of which it is unsceptible, were brought to light by the long and arduons labours of Dr. Gilchrist.

   The knoweldge which prior to that ero, the servants of the company in general attained, of a language so extensive in its use and appliction, and so intimately connected with every branch of administration of their Empire, nationally correspondant with the obscurity which prevailed, with dispelled by the philological labours of the author of the Hindoostanee Grammer and Dictionary and by the progressive operation of the college. Having no access to gramma-

यह मूल्यांकन अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। यह वस्तु सत्य है कि १७८३ ई० के पहले, जब गिलक्रिस्ट साहब हिंदुस्तानी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे, हिंदुस्तानी की किसी शैली में, कोई भी प्रकाशित गद्य ग्रंथ नहीं था। उर्दू में भी बस कुछ कवितायें ही थीं। खड़ी बोली गद्य की एक ही पुस्तक का अब तक पता चला है– वह है पटियाला के राम प्रसाद निरंजनी का योगवासिष्ठ, जिसका रचना काल १७४१ ई० है। चूँकि यह पुस्तक पंजाब में लिखी गयी थी और वहाँ हस्तलि-खित पड़ी हुई थी, यह सहज संभव है कि इसका पता भी गिलक्रिस्ट को न हो। अभी बंगाल में हिंदी का छापाखाना स्थापित नहीं हुआ था और सुदूर पंजाब में लिखित यह पुस्तक प्रकाश में नहीं आयी थी। अतः १७८३ ई० में गिलक्रिस्ट के आगे कोई हिंदी (भाषा) की या उर्दू या रेख्ता की गद्य पुस्तक नहीं थी, जिससे वे हिंदुस्तानी का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते थे तथा ऐसा कुछ नहीं था जो उल्लेख्य या अनुकरणीय होता।

गिलक्रिस्ट अपने कार्य से संतुष्ट थे। जिस कार्य को महत्त्वपूर्ण समझ कर उन्होंने आजीवन श्रम किया और जिस हिंदुस्तानी की सेवा में अपने को लगा दिया, खपा दिया और गँवा भी दिया, उसके सबंध में उनकी यह उक्ति ठीक ही है।

'मेरा श्रम अपना परिचय स्वयं देगा और न दे तो वह निस्संदेह मेरे साथ ही नष्ट हो जाएगा, पर मुझे इसके नाश की तब तक कोई आशंका नहीं है, जब

---

tical instruction nor even the books composed in the Hindoostani language, for the latter not but a few poetical works were in existence—the servants of the company derived their acquaintance with that language for their intercourse with the Natives in the ordinary concerns of private life and in the transaction of public life''—H. H. Wilson.

१– इसीलिये जब उन्हें (अंग्रेजों को) देश की भाषा सीखने की आवश्यकता हुई और वे गद्य की खोज में पड़े तब दोनों प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता हुई–उर्दू की भी और हिंदी (शुद्ध खड़ी बोली) की भी। पर उस समय गद्य की पुस्तकें वास्तव में न उर्दू में थीं और न हिंदी में। हिंदी साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० ४१३।

तक यूरोप की कोई कौम भारत पर पैर जमाए और अपनी श्रेष्ठता बनाए रख सकेगी।'[१]

गिलक्रिस्ट और हिंदी के विद्वान् :

गिलक्रिस्ट के कृतित्व और व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन हिंदी के विद्वानों ने नहीं किया, यद्यपि उनके संरक्षण में उनके आदेश और प्रेरणा से ही खड़ी बोली 'गद्य' के आदि ग्रंथ प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान और रामचरित आदि रचे गए थे। इसका एक कारण यह था कि वे रोमन लिपि और फारसी लिपि के हिमायती थे तथा हिंदुस्तानी की शिष्ट शैली को, जिसे हम लोग उर्दू कहते हैं, पसन्द करते थे। डा० रामकुमार वर्मा का इस संबंध में कथन विचारणीय है :—

'रोमन लिपि और फारसी लिपि में विश्वास रखने वाले अरबी और फारसी से आक्रांत खड़ी बोली को ही (जिसे वे हिंदुस्तानी कहते हैं) देश की शिष्ट भाषा समझने वाले एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों से मिश्रित खड़ी बोली को जिसे वे हिंदवी कहते हैं, गँवारू समझने वाले जान गिलक्राइस्ट ने वास्तव में हिंदुस्तानी नाम से उर्दू का प्रचार किया।'[२]

इसमें कोई शक नहीं है कि गिलक्रिस्ट उर्दू के बड़े समर्थक और पोषक थे, पर लल्लू जी लाल और सदल मिश्र के माध्यम से उन्होंने खड़ी बोली गद्य का प्रवर्त्तन कराया। स्वयं लल्लूजी और सदल मिश्र ने उनके संबंध में जो विशेषण प्रयुक्त किए हैं, उनसे क्या प्रकट होता है? समकालीन लेखकों ने गिलक्रिस्ट के संबंध में जो गुण-परिचायक विशेषण प्रयुक्त किए हैं, उन्हें कुछ लोग राजाश्रित कवियों की आश्रयदाता की स्तुति में कथित अत्युक्तिपूर्ण विरुद-गान मानेंगे, पर इससे यह तो अवश्य प्रमाणित होता है कि कालेज के माध्यम से गिलक्रिस्ट ब्रजभाषा, खड़ी बोली और रेख्ता उर्दू सभी के बहुत बड़े पोषक

---

1. 'My labours must speak for themselves and if they do not, will doubtless perish along with me, but of this last, I have no apprehenssion, so long as any of the nations of Europe, preserve their present footing and superiority in India.' —Oriental Linguist.

२. राजा भोज और अंग्रेज बहादुर में शिक्षा प्रचार में कौन श्रेष्ठ थे? (सम्मेलन पत्रिका ज्येष्ठ : आषाढ़ सं० २००३)।

प्रचारक और सेवक थे। इस प्रसंग में हम केवल हिंदू लेखकों के गिलक्रिस्ट संबंधी उल्लेखों को उद्धृत करते हैं।

लल्लू जी :

'ओ श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलक्रिस्त महाशय की आज्ञा से सवत् १८६० ई० में श्री लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे ने विसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी वोली में[1] कह नाम प्रेमसागर धरा पर श्रीयुत जान गिलक्रिस्त महाशय के जाने से वना अधवना छपा अधछपा रह गया था, सो अव श्री महाराजेश्वर अतिदयाल कृपाल यसस्वी तेजस्वी गिलबर्ट लार्ड मिंटो प्रतापवान के राज में औ श्री गुनवान सुखदान कृपा निधान भगवान्[2] कपतान जान उलियस टेलर प्रतापी की आज्ञा से और श्रीयुत परम सुजान दयासागर परोपकारी डाक्टर उलियम हंटर नक्षत्री की सहायता से और श्री निपट प्रवीन दयायुत लिपटन अबराहम लाकर खीवत के कहे से उसी कवि ने सवत् १८६६ में पूरा कर छपवाया पाठशाला के विद्यार्थियों के पढ़ने को।' (व्रजरत्नदास द्वारा संपादित, ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित 'प्रेमसागर' से)।

'सो अब श्रीयुत महाराजाधिराज परम सुजान सबगुन खान भगवान् कृपा-निधान मारकुहस वेलिजली गवरनर श्री जनरल महावली के राज में ओ श्री महाराज गुनवान अतिजान जान गिलक्रिस्त प्रतापी की आज्ञा सों संवत् १८५६ में श्री लल्लू जी लाल कवि व्राह्मन गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वारे ने वाको आशय ले व्रजभाषा करि नाम राजनीति राख्यो।'[3]

अनेक पुस्तकों के नाम में गिलक्रिस्ट ने 'हिंदी' शब्द साथ रखा है। वे उर्दू के लिए भी 'हिंदी' शब्द का प्रयोग करते हैं। उन्होंने हिन्दुस्तानी की तीन

१. लल्लू जी के संस्कृत प्रेस से १८१० ई० में प्रकाशित संस्करण के मुख पृष्ठ पर— 'हिंदवी' अंकित था। १८४२ ई० में प्रकाशित संस्करण, जो 'श्री योग ध्यान मिश्रेण परिष्कृत्य यथा मति सपंक्ति लालकृत प्रेमसार' पुस्तक पर मुख पृष्ठ पर 'हिंदी' लिखा है।

२. क्षीरोदसागर प्रेस के प्रेमसागर में 'भाग्यवान' पाठ है, जो उचित जान पड़ता है।

३. 'राजनीति' १८०९ ई० का संस्करण हिंदुस्तानी प्रेस नं० ७१' काशी टोलास्ट्रीट कलकत्ता से मुद्रित, एशियाटिक सोसाइटी में प्राप्त।

शैलियाँ बतायी हैं, जिनमें वे 'कोर्ट स्टाइल' या दरबारी शैली को अच्छा समझते हैं, पर यह भी मानते हैं कि जन-संपर्क के लिए इसकी उपयोगिता नहीं है।

उर्दू वाले गिलक्रिस्ट की देन को महत्त्व देते हैं और उनका ऋण मानते हैं। मौलाना अब्दुल हक़ लिखते हैं—'मैं डा० गिलक्रिस्ट को उर्दू ज़नाब का बहुत बड़ा मोहसिन ख्याल करता हूँ। वह सिर्फ एक तरह से फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के कयाम के बायस हुए, जिसने उर्दू की बहुत बड़ी खिदमत की, बल्कि उन्होंने उर्दू की तौसीम व आशाअत के लिए बहुत करामात और मुफीद किताबें लिखीं।'[१]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गिलक्रिस्ट का मूल्यांकन करते हुए कहा है—

'स्पष्ट है कि फोर्ट विलियम कालेज के भाषा-विषयक सलाहकार और विशेषज्ञ गिलक्रिस्ट नागरी लिपि और शुद्ध हिंदी के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी उन्होंने भाषा मुंशियों की नियुक्ति की, जो यह सिद्ध करता है कि देश में शुद्ध हिंदी का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में था और गिलक्रिस्ट के लिए उसकी उपेक्षा संभव नहीं थी।[2]

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय भी गिलक्रिस्ट को हिंदुस्तानी या उर्दू गद्य के निर्माण का श्रेय देते हैं। उन्होंने गिलक्रिस्ट की संपादित पुस्तकों से अवतरण देकर यह सिद्ध किया है कि गिलक्रिस्ट हिंदी गद्य के जन्मदाता और उन्नायक नहीं है।[३] खड़ी बोली में प्रेमसागर और रामचरित्र एवं नासिकेतोपाख्यान लिखवाने में मूल प्रेरक गिलक्रिस्ट की देन को क्यों भुलाया गया, उपेक्षित किया गया, यह समझ में नहीं आता। 'हिंदुस्तानी' ऐसे व्यापक नाम के अंतर्गत गिलक्रिस्ट ने हिंदुवी, हिंदुई, हिंदी, उर्दू, रेख्ता आदि सबको या सभी तरह की शैलियों को स्थान दिया है। भले ही स्वयं वे उस

---

१. कचहरी की भाषा और लिपि, चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० ३६ पर उद्धृत।

२. हिंदी साहित्य, उद्भव और विकास, १९५२ ई०।

३. 'सच बात तो यह है कि गिलक्राइस्ट ने हिंदुस्तानी या उर्दू गद्य का निर्माण किया न कि हिंदी गद्य का···क्या अब भी गिलक्रिष्ट हिंदी गद्य के जन्मदाता और उन्नायक समझे जायेंगे—

साहित्य चिंतन—पृ० ५५।

हिन्दुस्तानी के पक्ष में रहे हों और उन्होंने इस फारमूला का प्रचार किया हो। (हिंदुवी-अरबी-फारसी = हिंदुस्तानी) गिलक्रिस्ट अंग्रेज हाकिमों के उपयोग के लिए ऐसी हिंदुस्तानी को महत्त्व देते थे, जिसे अब हम उर्दू कहते हैं; क्योंकि फारसी राजभाषा को अपदस्थ करना और हिंदुस्तानी का शासन-कार्य में प्रवेश कराना उनका अभीष्ट था। उन्हें ऐसा लगा कि फारसी से जनभाषा हिंदुस्तानी तक पहुँचने में—ट्रांजिशन स्टेज में (संचरण की अवस्था में) अरबी-फारसी मिश्र हिंदुवी ही ग्राह्य होगी। हिंदुस्तानी की संभावना में उनकी गहरी निष्ठा थी, जो उनके द्वारा प्रयुक्त विशेषण—'दि ग्रांड पापुलर स्पीच ऑफ हिंदुस्तान' से लक्षित होती थी। वे हिंदुस्तानी के प्रवृत्त रूप से परिचित थे और 'प्योर ऑर ओरिजनल हिंदुस्तानी' (शुद्ध या मूल हिंदुस्तानी) की चर्चा उन्होंने की थी। उन्होंने देखा कि इस शुद्ध या मूल हिंदुस्तानी में अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण होने से वह भाषा बनती है, जिसे मुस्लिम शासन-पीठों या दरबारों में उच्चवर्गीय मुसलमानों ने और उनसे संबद्ध पढ़े-लिखे हिंदू सेवकों ने अपना लिया है। गिलक्रिस्ट ने उस दरबारी हिंदुस्तानी को कभी सामान्य प्रजा की भाषा स्वीकार नहीं किया। वे हिंदुई या हिंदी को ही सामान्य प्रजा में समझी जाने वाली भाषा मानते थे।

गिलक्रिस्ट के हिंदुस्तानी-विषयक विचार :

आपका कथन है, 'इस देश का यह नाम (हिंदुस्तान) नया होने से. यहाँ की जनभाषा का हिंदुस्तानी से अधिक उपयुक्त नाम मुझे तभी से दूसरा नहीं जँचता था, जबकि पहली बार मैं इसके अध्ययन-अनुशीलन में प्रवृत्त हुआ था। इसे इंकार नहीं किया जा सकता कि देशवासी इसे भारत के पुराने नाम 'हिंद' के कारण 'हिंदी' कहते हैं, पर चूँकि इससे हिंदुवी, हिंदुई और हिंदवी (हिंदू से व्युत्पन्न) से भ्रम होने की गुंजाइश है। मैं अपने मूल मत पर दृढ़ हूँ कि इस देश की लोकप्रिय भाषा के अन्य नामों को (मूर ऐसा निरर्थक शब्द भी) अवश्य छोड़ कर उसके बदले 'हिंदुस्तानी' नाम चलाना चाहिए, भले ही यहाँ के निवासी इसका बराबर प्रयोग करते हों या न करते हों; क्योंकि ये संकेत करने पर भी इनकी सीमाओं को और इनके अन्तर को मुश्किल से स्पष्ट कर पाते हैं। हिंदुवी को मैं केवल हिंदुओं की चीज समझता हूँ और सदा इसका प्रयोग भारत की उस पुरानी भाषा के लिए करता हूँ, जो मुसलमानी आक्रमण के पहले से चलती थी और जो वास्तव में उनके बीच हिंदुस्तानी की बुनियाद या

नींव का काम करती है, जिस पर हाल में अरबी-फारसी से बनी ऊपरी नयी इमारत खड़ी है और इससे अरबी-फारसी का वही संबंध है, जो अँग्रेजी का लैटिन और ग्रीक से। हम आधुनिक हिंदुस्तानी भाषा को हिंदुवी के साथ रख कर उसी तरह विचार कर सकते हैं, जैसे अंग्रेजी के साथ सैक्सन।

सैक्सन,	लेटिन	फ्रेंच	इंगलिश
हिंदुवी	अरबी	फारसी	हिंदुस्तानी[1]

---

1. Hindoostanee..I have adopted for the following reasons. This name of the country being modern as well as the vernacular tongue, in question, no other appeared so appropriate as it did to me, when I first engaged in the study and cultivation there of. That the natives and others call it also Hindi i.e., Indian from Hindi, the ancient appellation of India, cannot be denied, but as this is apt to be confounded with Hinduwee, Hindooee, Hindvee the derivations from Hindoo, I adhere to my original opinion, that we should invariably discard all other denominations of the popular speech of the country, including the unnecessary word Moors and substitute for them Hindoostanee, when the people here constantly do so or not, as they can hardly discriminate sufficiently to observe the use and propriety of such restrictions, even when pointed out to them. Hinduwee, I have treated as the exclusive property of the Hindoos alone, and have therefore constantly applied it to the old language of India, which prevailed before the Muslim in vasion, and in fact, now constitutes among there, the basis or ground work of Hindoostanee, a comparative recent superstructure, composed of Arabic and Persian, in which the two lash may be considered in the same relation that Latin and French bear to English, while we may justly treat the Hinduwee of the modern speech of Hindoostanee, as the saxon of the former, thus :

Saxon	Latin	French	English
Hinduwee	Arabic	Persian	Hindoostanee.

(Oriental Linguist, Cal. 1798. Introduction. p. 3.)

पुनः गिलक्रिस्ट 'हिंदुस्तानी' की द्विरूपता के संबंध में, हिंदुओं और मुसलमानों की रुचि और प्रवृत्ति में भेद के कारण. दो भेदों की भविष्यवाणी करते हैं।

स्वाभाविक रूप से हिंदू हिंदुवी[2] की ओर अधिक झुकेंगे और मुसलमान भी अवश्य ही अरबी-फारसी का पक्ष अधिक लेंगे, जहाँ से 'कोर्ट शैली' और ग्रामीण या प्रकृतशैली का उदय होगा और जिनके बीच वह मध्यम या परिचित शैली रहेगी, जिसे सर्वोत्तम बता कर मैंने उसकी सिफारिश की है और अन्य शैलियों के साथ जिसका भी मैंने सविस्तर वर्णन किया है।

'कोर्ट शैली' से उर्दू, ग्रामीण या प्रकृतशैली से भाषा और 'मध्यम शैली' से खड़ी बोली अभिप्रेत है। अंग्रेजी में वे इसे मिडिल या करेंट शैली कहते हैं और सर्वोत्तम मानते हैं।[2] ऐसी स्थिति में यह मानना कि वे हिंदी-विरोधी थे, उचित नहीं जान पड़ता। प्रेमसागर, चन्द्रावली (नासिकेतोपाख्यान) और रामचरित्र के प्रेरक वे ही थे—विरोधी होते तो क्यों लिखवाते ? प्रेमसागर को तो कालेज के पाठ्यक्रम में भी स्थान दिया और उसकी भाषा की सराहना की–'द प्रेमसागर, एवेरी इंटरटेनिंग बुक, रेंडर्ड विथ एलिगेंस ऐंड फाइडेल्टी'। गिलक्रिस्ट मध्यम शैली को ही सर्वोत्तम (बेस्ट) मानते हैं, तब हिंदीविरोधी कैसे ठहरते हैं ? वे इसे इंडिया का 'स्टर्लिंग टंग' भी कहते हैं। हाँ, वे हिंदुस्तानी के उस रूप को नापसंद करते थे, जिसे उन्होंने 'कंट्री और प्रिस्टाइन स्टाइल'

---

१. हिंदुई और हिंदुवी दोनों एक ही शब्द है—केवल लिखने के ढंग में भेद है। गिलक्रिस्ट हिंदवी को भी हिंदी से ही निकला मानते हैं—सिंधु हिंदू—फिर उकार का लोप कर हिंद और 'वी' प्रत्यय के योग से हिंदवी। हिंदवी में 'हिंद' प्रकृति और वी प्रत्यय है।

२. "That the Hindoos will naturally become most partial to the Hinduwee, while the Moosalmans will of course be more partial to Arabic and Persian, hence two styles arise, namely the court or high style and the country or pristine style, leaving the middle or familiar current style between them, which I haverecommended as the best and also discribed at full length along with the rest." —Introduction to the Oriental Linguist.

कहा है। यह हिंदुस्तानी का वह रूप है, जो कुछ गँवारू (रस्टिक) कहा जा सकता है।

'स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडियन गाइड'[१] (१८०२ ई०) से साफ जाहिर होता है कि वे ऐसी अरबी-फारसी-लदी हिंदुस्तानी के जोरदार विरोधी थे, जिसमें केवल क्रियाएँ और विभक्तियाँ हिंदुस्तानी की और शब्दावली मुख्यत: अरबी-फारसी की होती है। वे जिस हिंदुस्तानी को फलना-फूलना देखना चाहते थे, वह उस प्रकार की है, जिसका एक नमूना डाडस्ले के संग्रह की एक कहानी के भाषांतर में प्रस्तुत किया गया है। आज के हिंदीप्रेमी भले ही इस हिंदुस्तानी को आसान उर्दू कहें, हिंदी नहीं, पर इसका आधार खड़ी बोली या जन हिंदुस्तानी ही है। इसी शैली को गिलक्रिस्ट ने साफ, साधारण, उपयोगी, मध्यशैली (प्लेन, जेनरल यूज़फुल मिडिल स्टाइल) कहा है। वे यह मानते हैं कि यही शैली आम है और काम की है। इसी का उपयोग वे जीवन के सामान्य व्यवहार, कानून, फ़ौज, रोजगार और माल महकमे के लिए मानते हैं। पर, साथ ही उनका यह भी कहना है—'गंभीर और वैज्ञानिक विषयों का विवेचन करते हुए मुसलमान को अरबी की ओर हिंदू को संस्कृत की ओर झुकना ही होगा।'

उन्हें हिंदुस्तानी की संभावनाओं में अटूट विश्वास था। जब वे फोर्ट विलियम कालेज में प्रोफसर हुए और वहाँ के मुंशियों के निकट संपर्क में आए, तब उन्हें अपने विचारों में कुछ संशोधन करने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। लगता है कि यहाँ आने पर और हिंदू मुंशियों से संपर्क बढ़ने पर उन्हें यह अनुभव हुआ कि खड़ी बोली का आधार लेकर हिंदुओं के काम की हिंदुस्तानी बन सकती है और उसी आधार पर मुसलमानों के काम की एक तरह की ज़बान भी गढ़ी जा सकती है। यह धारणा पुष्ट होने पर ही लल्लू जी और सदल मिश्र को गद्य में कथासाहित्य प्रस्तुत करने की आज्ञा दी गयी होगी।

गिलक्रिस्ट और खड़ी बोली :

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग गिलक्रिस्ट ने दि हिंदी स्टोरी टेलर (भाग २) १८०२ ई० और फैबुलिस्ट (१८०२ ई०) में किया है।

ये उद्धरण नीचे दिए जाते हैं :

---

१. इसका एक महत्त्वपूर्ण मूलांश परिशिष्ट में देखिए।

'इन कहानियों में से कई खड़ी बोली या हिंदुस्तानी के शुद्ध हिंदवी ढंग की हैं।'[१]

'मुझे बड़ा खेद है कि व्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली का परित्याग कर दिया गया था। हिंदुस्तानी का खास मुहावरा या शैली उस भाषा के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती।'.... 'वास्तविक खड़ी बोली में हिंदुस्तानी के व्याकरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है और अरबी-फारसी का लगभग पूर्ण परित्याग रहता है।'[2]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि गिलक्रिस्ट की मान्यता है कि—

१. खड़ी बोली हिंदुस्तानी के 'शुद्ध हिंदवी ढंग की' है।

२. खड़ी बोली के छूट जाने का उन्हें बड़ा खेद था।

३. खड़ी बोली का खास मुहावरा या शैली हिंदुस्तानी के विद्यार्थियों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होती।

४. वास्तविक खड़ी बोली में अरबी-फारसी का लगभग पूर्ण परित्याग रहता है।

अतः गिलक्रिस्ट का खड़ी बोली के रूप के संबंध में सही विचार था और वे इसे उपयोगी मानते हैं।

एक अन्य पुस्तक में[३] गिलक्रिस्ट का कहना है :

'शकुंतला का दूसरा अनुवाद खड़ी बोली या भारत की निर्मल बोली (स्टर्लिग टंग ऑफ इंडिया) में है। हिंदुस्तानी से इसका भेद केवल इसी बात में है कि अरबी और फारसी का प्रत्येक शब्द छाँट दिया जाता है।

३ हनरी थामस कोलब्रुक (१७६५-१८३४)

कोलब्रुक का जन्म १७६५ ई० में हुआ था। १८ साल की उम्र में १७८३ ई० में भारत में आए। अपने समय में उनसे बड़ा भारतीय दर्शन, धर्म गणित, ज्योतिष, व्याकरण आदि अनेक विषयों में उनसे बड़ा कोई विद्वान् नहीं था। १८२३ ई० में उनके प्रयास और सहयोग से रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई।

---

१. हिंदी स्टोरी टेलर, भाग २, पृ० २।

२. द ओरियंट फैबुलिस्ट—पृ० ५ इसकी व्रजभाषा कहानियों का व्रजभाषानुवाद लल्लू जी ने किया था।

३. दि हिंदी रोमन आर्थीएपिग्राफिक अल्टिमेटम, पृ० १९।

कालब्रूक के भाषा-विषयक विचार

पहले आपने हिंदुस्तानी का ज्ञान प्राप्त किया; क्योंकि दैनिक व्यवहार में उसके बिना काम नहीं चल सकता था। पर आपको जब यह विदित हुआ कि हिंदुस्तानी में कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है, तब आप हिंदुओं के प्राचीन साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। कुछ दिनों में ही आपकी यह दृढ़ धारणा हो गयी कि जिन प्राचीन जातियों का हमें अवशेष प्राप्त है, उनमें हिंदू प्राचीनतम जाति है तथा कलात्मक रुचि और सभ्यता में इससे बढ़कर कोई अन्य जाति नहीं है।

कोलब्रुक संस्कृतज्ञ के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। हिंदी या हिंदुस्तानी के अनुशीलन में उनकी विशेष अभिरुचि नहीं थी। केरे के संस्मरणों से हमें केवल इतना ज्ञात है कि वे भी बाइबिल के अनुवाद में लगे थे, पर इस दिशा में कुछ काम करने के बाद इस काम को उन्होंने छोड़ दिया। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत, उसकी अतीत संस्कृति और इतिहासादि में विशेष रुचि होने के कारण उन्होंने भारत की भाषिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। उनका इस विषय पर एक महत्त्वपूर्ण निबंध (एशियाटिक रिसर्चेज वा० ७ पे० १९-९-२३३) प्रकाशित हुआ, जिसका सारांश हम यहाँ देते है, जिससे इस विद्वान् के विचारों से हम अवगत हो सकें।

कान्यकुब्जों के विस्तृत राज्य को राजधानी कान्यकुब्ज नगर या कन्नौज था। वहाँ की भाषा ही उस आधुनिक हिंदुस्तानी का आधार है, जिसे हिंदी या हिंदवी नाम मे अभिहित किया जाता है। उसकी दो बोलियाँ सुगमता से पृथक्-पृथक् पहचानी जा सकती हैं एक अधिक परिमार्जित और दूसरी कम। इस दूसरी को ही 'हिंदी' नाम से सीमित किया जाता है। इन दोनों बोलियों में बहुत कविता रची गई हिंदी में फारसी मिश्रण से पूर्व ही नहीं, हाल में भी मुसलमान और हिंदू कवियों द्वारा। दोहरा-कवित्त हिंदी में मुसलमान कवियों के भी मिलते हैं। इस बोली में अधिकतर कविताएँ हिंदू कवियों की लिखी हैं। इनकी परीक्षा करने पर हिंदी का संस्कृत से घनिष्ठ संबंध स्पष्ट दीखता है तथा जो दोनों का जानकार है वह यह कहने में संकोच नहीं करेगा कि हिंदी पर मुख्यतः संस्कृत का ऋण है। संस्कृत ही वह मूल

है, जिससे हिंदी अंकुरित हुई है। यह बात कुछ उदाहरणों से प्रकट हो जाएगी।

क्रिया का अर्थ है करना और कर्म। दोनों कृ (करणे) धातु से निष्पन्न है। हिंदुस्तानी में उसी क्रिया से निकले कई शब्द हैं, जैसे—करण, कर्त्ता, कारण, क्रिया कार्य, काज। मैं इन्हीं दो शब्दों को लेता हूँ, चूँकि ये दोनों हिंदुस्तानी में दो पृथक् अर्थों में ग्रहण किए है। क्रिया का अर्थ है करना और किरिया का अर्थ है शपथ। फिर क्रिया-कर्म का अर्थ है अंत्येष्टि कर्म। पर काम संस्कृत 'कमं' से निकला है। संस्कृत का काम इच्छार्थक कर्म धातु से निकला है। इस तरह हिंदुस्तानी में दो पृथक् शब्दों का योग हुआ है और इस एक उदाहरण से दो शब्द निकले।

ऐसे अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते है। पर, मुझे भय है कि इस प्रकार ९/१० हिंदी शब्दों का मूल संस्कृत शब्दों में दिखलाने पर भी १/१० शब्दों के संबंध में कठिनाई बनी ही रहती है, तथा वे शब्द ही कदाचित् उस भाषा के आधार हैं। सर विलियम जोंस का ऐसा ही विचार था, अतः उनका निष्कर्ष था कि शुद्ध हिंदी उत्तर भारत में पूर्व से विद्यमान थी, जिसमें विजेताओं द्वारा संस्कृत शब्दों का मिश्रण हुआ। मेरा विचार इस मत के विपरीत नहीं है।

इसी निबंध में माणिक चंद्र नामक तीरभुक्ति नरेश के लिए लिखित साहित्य-शास्त्र के एक लेखक का मत यह बताया है कि सभी बोलियाँ 'प्राकृत' सामान्य नाम के अंतर्गत आती है, पर प्राकृत शब्द उस विशेष भाषा के लिए प्रयुक्त होता है जिसे 'सरस्वती बालवाणी' (अर्थात् सरस्वती तट के बच्चों की बोली) कहते हैं। ऐसा मानने का कारण यह है कि दस परिमार्जित भाषाएँ उन दस जातियों में प्रचलित थीं, जो भारत के उर्वर प्रदेशों में और दक्खिन में बसती थीं। उनके चिह्न अब भी विद्यमान हैं।

सारस्वत जाति सरस्वती-तट पर बसती थी। वे ब्राह्मण, जो अब भी पंजाब या पंचनद में, सरस्वती के पश्चिमी भाग में रहते थे, सारस्वत कहे जाते हैं। उनकी मूलभाषा हिंदुस्तान के दक्षिण और पश्चिमी भाग में बोली जाती थी और वहाँ की बोली को ही संभवतः 'प्राकृत' नाम दिया जाता था। यही बोली सब बोलियाँ से अधिक उन्नत हुई थी और इसी बोली को

नाटकों में अधिकतर प्रमुख स्थान मिला है। इसे ही सिखलाने को व्याकरण और पिंगल ग्रंथ रचे गए। 'प्राकृत मनोरमा' 'प्राकृत पिंगल' 'सरस्वती कंठा-भरण' इसके उदाहरण में रखे जा सकते हैं।

कोलब्रुक के अनुसार प्राचीन भारत के निम्नांकित दस प्रदेशों से वर्त्तमान प्रान्तीय भाषाओं का संबंध इस प्रकार है :

सारस्वत प्रदेश की भाषा	प्राकृत थी (पंजाबी)
कान्यकुब्ज की भाषा	हिंदुस्तानी का मूलाधार थी।
गौड की भाषा	वंगाली (वंगला) है
मिथिला की भाषा	तिरहुतिया है
उत्कल (ओड्र) की भाषा	उड़िया है
महाराष्ट्र की भाषा	मरहट्टा है, (मराठी) (मुहजनों का देश, मुरु या मोड़ लिपि),
द्रविड देश की भाषा	कर्णाट भाषा (कन्नड़)
तैलंग देश की भाषा	तिलंगा, तिलंगाना (तेलुगू)
गुर्जर की भाषा	गुजराती

कोलब्रुक यह भी बताते हैं कि उत्तर में सरस्वती और गंगा के बीच तथा पूर्वी और पश्चिमी सागर के बीच की भूमि में कुछ विद्वानों के अनुसार ५७ और कुछ के अनुसार ८४ भाषाएँ बोली जाती थी। हिंदुस्तानी कान्यकुब्ज प्रदेश की भाषा की उत्तराधिकारिणी है, इसे ही हिंदी कहते हैं। सारस्वत प्रदेश की भाषा का नाम प्राकृत था। इस भाग में जब पंजाबी बोली जाती है, जो ख्याल टप्पा के लिए प्रसिद्ध है।

कोलब्रुक ने देश की वर्त्तमान भाषाओं का संबंध प्राचीन प्रमुख प्रदेशों से जोड़ा है, यह उनकी विशेषता है। इस प्रकार उन्होंने केवल दस भाषाओं का ही उल्लेख किया है। पंजाबी, हिंदुस्तानी, वंगला, तिरहुतिया, उड़िया, मराठी और गुजराती तथा कन्नड और तेलुगू इन दस भाषाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला है। ध्यान देने की बात यह है कि तिरहुतिया (मैथिली) को कोलब्रुक ने हिंन्दुस्तानी और बंगला से भी पृथक् रखा है। द्रविड़ भाषाओं में तमिल और मलयालम का उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि कोलब्रुक के मन में ब्राह्मणों का पंच गौड और पंच द्रविड भेद था। यह विभाजन भाषाओं के विस्तार-

क्षेत्र और मूल पर नए ढंग से सोचने को विवश करता है। ब्राह्मणों में पंच गौड और पंच द्रविड भेद इस प्रकार हैं। पंच गौड के ये भेद हैं :

१. कान्य कुब्ज (कनौजिया)—कन्नौज इनका मूल स्थान है।
२. सारस्वत—सरस्वती नदी तटवर्त्ती ब्राह्मण। ब्राह्मणों में सारस्वत श्रेष्ठ और शुद्ध माने जाते हैं।
३. गौड–ये मुख्यतः बंगाल और दिल्ली के निकटवर्त्ती प्रदेश में बसते हैं।
४. मैथिल—मिथिला के ब्राह्मण।
५. उत्कल—उड़ीसा राज्य के ब्राह्मण।

पंच द्राविड के पाँच भेद इस प्रकार हैं :

१. महाराष्ट्र—यह महाराष्ट्र में बसे हैं। इनमें चित्पावन शाखा के ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। गुर्जर ब्राह्मण भी इसके अंतर्गत मान लिए जाते हैं।
२. तैलंग—तिलंगाना भूभाग के ब्राह्मण।
३. द्राविड—तमिल देश (तमिलनाडु) के ब्राह्मण।
४. कर्णाट—करनाटक के ब्राह्मण।
५. मलाबार—इनमें नाम्बुद्रि ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं।

इन दस भेदों के आधार पर भारतवर्ष में प्रचलित १०प्रधान देशस्थ भाषाएँ प्रसिद्ध हैं। कन्नौज की भाषा ब्रजभाषा के रूप में आगे चलकर विकसित हुई। सारस्वत प्रदेश की भाषा का हरियाणा, कुरुक्षेत्र या प्राचीन ब्रह्मावर्त की भाषा से संबध हैं। गौड से बंगला, मिथिला से मैथिल और उत्कल से उड़िया का विकास हुआ। महाराष्ट्र से महाराष्ट्री, द्रविड से तमिल, तैलंग से तेलंगाना की तेलुगु, कर्णाट की करनाटकी या कन्नड तथा मलाबार की मलयालम भाषा का संबंध है।

४. कैप्टन रोबक

रोबक का जन्म १७८१ ई० में लिनलिथगोशायर में हुआ था। रोबक के दादा ने अपनी बुद्धि और उद्योग से केरन का प्रसिद्ध लोहे का कारखाना स्थापित किया था। रोबक ने अलोवा में आरंभिक ज्ञान प्राप्त किया था, उसके बाद वे एडिनबरा के आड स्कूल में पढ़ने आए, जहाँ डा० आदम के अधीन शिक्षा पूरी की। बाद में भारत में नियुक्ति हो जाने पर उनकी शिक्षा समाप्त हो गयी। १८०१ ई० के आरंभ में रोबक अपना पितृगृह छोड़ कर लंदन चले आए। यहाँ से उन्होंने पूर्व के लिए प्रस्थान किया।

मद्रास पहुँचने पर इस जवान कैडेट को अपने चाचा मि० वेनजामिन रोवक के भवन में स्थान मिला। चाचा ने उन्हें इस देश की भाषाओं को सीखने की सलाह दी। हिंदुस्तान की भाषाओं के अध्ययन से कुछ समय के लिए वाधा पड़ गई, चूँकि मद्रास की सेना को १८०२ ई० और १८०३ ई० में लड़ाई पर जाना पड़ा। पर, रोवक ने इस बीच में 'हिंदुस्तानी' में इतनी योग्यता प्राप्त कर ली थी, कि शीघ्र ही उनकी पदोन्नति 'फोर्ट एडजुटेंट' और वेल्लोर के कार्यकारी टाउन मेजर के रूप में हो गई। यहाँ की जलवायु से उनका उस समय स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे १८०५ ई० में इंगलैंड लौट गए। यहाँ उनका हिंदुस्तानी का अध्ययन चलता रहा, यद्यपि स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इस अवधि में 'ब्रिटिश इंडियन मानीटर' और 'इंगलिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी' तैयार करने में रोवक ने गिलक्रिस्ट की बड़ी मदद की। इसके वाद रोवक का हिंदुस्तान के साहित्य में तीव्र अनुराग वढ़ा और शेष जीवन इसी के अनुशीलन में बीता।

रोवक डा० गिलक्रिस्ट के सवसे वड़े उत्साही समर्थक वन गए और दोनों की एक-सी रुचि और प्रवृत्ति होने के कारण दोनों में सद्भाव और सहयोग विकसित हुआ। गिलक्रिस्ट ने स्पष्ट शव्दों में उदारतापूर्वक यह स्वीकार किया है कि ब्रिटिश इंडियन मानीटर का द्वितीय खंड रोवक ने ही तैयार किया था और उन्हें यदि रोवक ऐसा सहयोगी न मिला होता, तो वे अपनी इंगलिश-हिंदुस्तानी डिक्शनरी में हाथ न लगाते। यह डिक्शनरी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है। अत:, गिलक्रिस्ट की इन कृतियों का वहुत कुछ श्रेय रोवक को ही है।

१८१० ई० में रोवक भारत लौटे। इसी यात्रा के दौरान में उन्होंने अनेक युवक सहयात्रियों को हिंदुस्तानी सिखलाने में मदद दी और अपने 'नाविक कोश' को तैयार करने में हाथ लगाया।[1] इसमें प्रचलित हिंदुस्तानी नाविक शब्दावली या संग्रह किया गया है। उस जमाने में यूरोप और एशिया के बीच चलने वाले पोतों के नाविकों में अधिक संख्या लश्करों (हिंदुस्तानी नाविकों) की थी। बंगाल पहुँच कर रोवक ने अपनी कृति को प्रेस में दे दिया :

---

1. An English and Hindustanee Naval Dictionary of technical terms and Sea Phrases, as also the various words of command given in working a ship etc. with many sentences of great use at Sea to which is prefixed a short grammar of Hindustani language, Cal.

४ जनवरी, १८११ ई० में रोबक ने 'लश्करी बात' या नेवेल डिक्शनरी के छापने के लिए काउंसिल से 'सैंक्शन' (मंजूरी) मांगा। सरकार ने १०० प्रतियाँ खरीदने का निश्चय किया—इसी रूप में प्राय: सरकारी सहायता दी जाती थी। इस पुस्तक में आमुख या प्रस्तावना रूप में हिंदुस्तानी का एक संक्षिप्त व्याकरण भी दे दिया गया है।

रोबक का फोर्ट विलियम कालेज से संबंध

८ मार्च, १८११ ई०से २२ जून, १८१२ ई० तक रोबक कालेज के ऐक्टिंग डिप्टी सेक्रेटरी और एक्जामिनर (परीक्षक) थे। लगभग एक मास तक कालेज से उनका संबंध नहीं था। फिर वे इस संस्था के डिप्टी असिस्टेंट और परीक्षक बनाये गए फिर अफिशियेटिंग सेक्रेटरी और अंत में हिंदुस्तानीके असिस्टेंट (सहायक) प्रोफेसर नियुक्त हुए। प्राच्य पुस्तकों के संपादक के रूप में रोबक ने प्रशंसनीय कार्य किया। मीर अम्मन के बागो बहार और खिर्द अफरोज का संपादन आपने किया। इसके पश्चात् आपने 'ऐनल्स ऑफ द कालेज' (कालेज का इतिहास) तैयार किया, जिसमें १८०३-१८१८ ई० तक का वार्षिक विवरणों के आधार पर इतिहास सुरक्षित है। इस पुस्तक के निकलने के बाद ही, उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। जब वे पहली बार हिंदुस्तान आए थे और जब उनका स्वास्थ्य खराब हो गया तब से वे कभी ठीक से स्वस्थ नहीं रहे। १८१६ ई० के जाड़े के शुरू में वे ज्वरग्रस्त हुए और ८ दिसंबर को केवल ३५ साल की उम्र में उनका देहांत हो गया।

रोबक की कृतियों और देन के संबंध में विलसन की निम्नांकित सम्मति इस प्रकार है।

'उनका काम अथक था, उत्साह कभी अमन्द था। और वे सदा शुद्ध अन्त:करण से सावधान रहते थे तथा उनका निर्णय सही होता था। प्राच्य कृतियों के पाठ संपादक रूप में वे अद्वितीय थे और यदि वे अपनी हिंदुस्तानी डिक्शनरी पूर्ण करने के लिए जीवित रहे होते तो नि:संदेह वह पूर्ण विस्तृत संचयन और शुद्ध व्याख्या से युक्त पूर्ण आदर्श ग्रंथ होता।

---

1. His industry was unwearied, his zeal inexhaustible, his scruplous care painfully conscientions and his judgment sound. As an Editor of the Text of Oriental works, he has never been equalled and had he lived to have completed his

के० टेलर और डा० हंटर के परिश्रम के बाद हिंदुस्तानी भाषा के कोश-निर्माण में पर्याप्त रिक्तता आ गई थी। यह रिक्तता शेक्सपियर की डिक्शनरी से कुछ दूर हुई थी और इस अभाव की पूर्त्ति के लिए रोबक ने एक ऐसे कोश की योजना बनायी थी, जिसमें उस भाषा के सभी वाच्य शब्द सम्मिलित हों, और उसे कार्यान्वित करने में उन्होंने काफी प्रगति की थी। इसमें अनेक प्रकार की बहुमूल्य सामग्री का आकलन किया गया था। पर, के० रोबक के निधन के पश्चात् यह सारी संकलित सामग्री अब सरकार की चीज हो गई है और फोर्ट विलियम कॉलेज की लाइब्रेरी में रक्षित है। यह आशा की जाती है कि इस सामग्री को वहीं पड़े रहने, और अज्ञापित और विस्मृत छोड़ नहीं दिया जाएगा।

रोबक का मेमोरियल (स्मृति-पत्र)

हिन्दुस्तानी के महत्त्व और उसकी शिक्षा की उपयोगिता के संबंध में रोबक के विचार क्या थे, इसे जानने के लिए हम उस मेमोरियल के कुछ अंश उद्धृत करते है, जो उन्होंने १२ अगस्त, १८०७ ई० को ईस्ट इंडिया कंपनी के डाइरेक्टरों की कॉलेज कमिटी को अर्पित किया था।

१. देशी राजदरबारों की भाषा हिंदुस्तानी है, यद्यपि कभी-कभी फारसी का भी व्यवहार होता है।

२. सभी राजनैतिक विषयों पर विचार-विमर्श हिंदुस्तानी में ही होता है, जिन्हें बाद में फारसी में लेखबद्ध कर लिया जाता है।

३. सभी रैवेन्यू (माल-संबंधी) मामले (थोड़े-से अपवादों को छोड़कर) हिंदुस्तानी में ही होते हैं।

४. देशी फौजों की सामान्य भाषा हिंदुस्तानी है, इसलिए कोई अफसर, अन्य प्राच्य भाषाओं से अधिक इसका गंभीर ज्ञान प्राप्त किए बिना, न अपने को संतोष दे सकता है और न कंपनी के लिए अधिक उपयोगी हो सकता है।

५. कंपनी ने हाल में एक ओरियन्टल कॉलेज इंगलैंड में स्थापित किया है (जिसका निस्संदेह उद्देश्य भारतीय भाषाओं को ज्ञान देना है), जिसका

Hindustani Dictionary, there can be no doubt that it would have been a perfect model of copious compilation and accurate interpretation—Wilson.

उक्त कारणों से उनके स्वार्थ और वस्तुतः भारत की सुरक्षा की दृष्टि से प्रथम महत्त्व है। कंपनी को अपने कर्मचारियों को हिंदुस्तान की महान् लोकप्रिय भाषा हिंदुस्तानी की शिक्षा देनी चाहिए चूँकि न केवल यह दूसरी भाषाओं में सबसे अधिक काम की है, बल्कि इस भाषा से ही भारत में आने के बाद, खास कर अरबी तथा फारसी और साथ ही संस्कृत सीखने के योग्य बनाती है, जो वास्तव में उपयोगी भाषाएँ है।

६. कलकत्ते के कॉलेज में यह आवश्यक समझा गया कि एक हिंदुस्तानी प्रोफेसर और दो सहायक रहें, जो उन फारसी और अरबी प्रोफेसर से, जिन्हें एक सहायक मिलता है, पृथक् हों। इस संस्था में १२१ मुंशी रखे गए, जिन पर कंपनी का १०००० पौंड सालाना खर्च पड़ता है, जबकि हर्टफोर्ड कालेज में, जहाँ हिंदुस्तानी पर प्रथम ध्यान नहीं दिया जाता और गौड़ समझा जाता है, फारसी और अरबी प्रोफेसर से ही हिंदुस्वानी सिखलाने की आशा की जाती है।

५. हेनरी माय ईलियट (१८०८-५३ ई०)

ईलियट इंडियन सिविल सर्विस के सदस्य थे, जो बहुत दिनों तक पश्चिमोत्तर प्रांत और भारत सरकार की सेवा में विभिन्न पदों पर रहे। १८४५ ई० में आपने आगरा से ए ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स प्रकाशित कराया। उनकी एक पुस्तक में मायर्स ऑफ दि हिस्ट्री ऑफ फाकलोर एंड् डिस्ट्रिब्यूशन ऑफ दि रेसेज ऑफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज (पश्चिमोत्तर प्रांत का इतिहास, लोककथा और जातियों का प्रसार) है, जिसको जान बीँस ने दो खंडो में संपादित, संशोधित कर १८६९ ई० में लंदन से प्रकाशित कराया था। इस पुस्तक में इलियट का ए ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स भी सम्मिलित है।

६. गार्सां द तासी

गार्सां द तासी का जन्म फ्रांस के मासई नगर में २० जून, १७९४ ई० को हुआ। उनके पिता जाजेफ वेलर का विवाह क्लेवर वैरजिनी तासी से २१ जनवरी, १७९३ ई० को हुआ। वह अपने पिता की प्रथम संतान था। पुत्र ने पिता-माता का संयुक्त नाम धारण किया। उसका पूरा नाम जाजेफ एलीदोर साजेस्म वैत्यूं गार्सां-द तास्सी[1] था। तासी २३ वर्ष की अवस्था में

1. Joseph Eliodore Sagasse.

अपने जन्मस्थान से पेरिस नगर में आए और वहीं रहने लगे। २० वर्ष की अवस्था में ही आपने बोलचाल की अरबी-एक मिस्रदेशीय गैवराइल[1] और रैफेलद मोनाची[2] से सीख ली। बाद में आपने फारसी और तुर्की भी पढ़ी। उस समय फ्रांस में पूर्वीय भाषाओं की चर्चा थी और आदर था। आपकी रुचि मुस्लिम भाषाओं के सीखने में हो गई और मुस्लिम इतिहास के अध्ययन की ओर भी आपका झुकाव हुआ।

आपकी मातामही सिलवेत्र द ऐसी[3] ने एक संस्था इस्लामी विद्याओं के अनुशीलन के लिए खोली थी। तासी उससे संबधित हो गए। १८२२ ई० में आप 'सोसियेत एशियातिक' के संयुक्त मंत्री (सेक्रेटरी) हो गए। १८३० ई० में जब वहाँ एक 'चेयर' स्थापित किया गया तब आप उस पद पर नियुक्ति हुए।

तासीं का महत्त्व इसलिए अधिक है कि फ्रांस में ही रहकर आपने हिंदुस्तानी साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उसके संबंध में सदा ग्रंथ और निबंधादि लिखते रहे। बाद में आप उर्दू के प्रबल समर्थक हो गए। फ्रांस जाने वाले हिंदुस्तानियों से आप बड़े उत्साह से मिलते थे। आप १८७२ ई० में सैयदमहमूद से मिले थे तथा सर विलियम म्यौर के भी संपर्क में आए थे।

तासी कैंथोलिक सप्रदाय के थे। उनका संबंध पेरिस के स्कूल ऑफ माडर्न ओरियंट लैंग्वेजेज से था। आपका निधन २ सितम्बर, १८७८ ई० में हुआ। आपकी लाश मासई में दफनाने को भेजी गई थी।

हमने तासी के जीवन का यह संक्षिप्त वृत्त सयीदा सुरेया हुसेन की पुस्तक गासां-द-तासी से संकलित किया है। डा० वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' में लिखा था कि तासी का जीवन वृत्त ज्ञात नहीं है।

तासी उर्दू के सेवक रूप में प्रसिद्ध हैं। भारत में अलीगढ़ इंस्टीटयूट और अंजुमन लाहौर से आपका संबंध था। आपने हिंदी साहित्य (हिंदुई नाम से) का प्रथम इतिहास लिखा।

1. Gabrlel Taouil.
2. Raphel de Monachis.
3. Silvestre de Sacy.

मासइ की म्यूनिसपेलिटी पुस्तकालय में हिंदी की दो पांडुलिपियाँ हैं।

(१) पदमिनी और अलाउद्दीन की कथा ८६, पृष्ठ, बड़ा साइज।

(२) कालिदास का शकुंतला नाटक, ११२८ हिजरी में लिखित।

(३) सूरदास का नल ओ दमन उर्दू, हस्तलेख-१७५२-१७५३ ई० का।

तासी अपने जीवन-काल में निम्नांकित संस्थाओं के सदस्य थे।

१. फ्रेंच इंस्टीटयूट, पेरिस;

२. एशियाटिक सोसाइटी, पेरिस(१८७६)

३. वाइस प्रेसिडेन्ट सोशियेत ओरियंटल फ्रांस

४. रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास

५. इंपीरीयल एकेडमी आफ साइंसेज, सेंट पीटर्स वर्ग

६. रायल एकेडमी म्यूनिख, लिस्वन, ट्यूरित, नार्वे, कोपेनहैगेन तथा

७. ओरियंटल सोसाइटी।

प्रमुख हिंदी-संबंधी रचनाएँ

(१) इस्त्वार द ल लीतिरेत्यूर ऐंदुई ऐ हिंदुस्तानी।[1] इसका प्रथम संस्करण १८३९ ई० और १८४७ ई० में दो भागों में प्रकाशित हुआ था। इन भागों की पृष्ठ संख्या १६+६३० और ३२+६०८ थी।

द्वितीय परिवर्धित संस्करण तीन भागों में १८७०-८१ ई० में निकला, इसमें क्रमशः ६२४, ६०८, ६०३, पृ० है। इन दोनों संस्करणों के आधार पर हिंदुई के इतिहास से संबंधित इतिहास को डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'हिंदुई साहित्य का इतिहास' नाम से हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद से १९५३ई० में प्रकाशित किया था। तासी के केवल इसी ग्रंथ का हिंदी में अनुवाद प्राप्त है।

(२) लेओत्यूर ऐंदूस्तानी ऐल्यू उवरज[2] (हिंदुस्तानी लेखक) और उनकी रचनाएँ, १८६८ ई०, पेरिस, द्वितीय संस्करण १११ पेज।

रूदीमां द ललांग ऐंदुस्तानी १८२९ ई० (हिंदुस्तानी भाषा के प्रथम सिद्धांत)[3]

---

1. Histotre de la litterature hindowie et hindoustanie.
2. Les anterus hindoustanis et leurs ourages diapres les biographics.
3. Rudiments de la langue hindoustanic, 1829.

रूदीमां-द-ललांग ऐं दुई १८४७ ई० हिंदुस्तानी भाषा के प्रथम सिद्धांत[1] अनुवाद । शकुन्तला महाभारत से हिंदुई पाठ का अनुवाद[2] । पंजाब की कहानी हीररांझा का अनुवाद । विष्णुदास के कलियुग का वृत्तांत । एक ब्रज-भाषा कहानी का अनुवाद[3] यह अकबरी दरबार की कहानी है । इसके अतिरिक्त आपने १८४९ ई० एक हिंदी हिंदुई मुंतखाबात[4] प्रकाशित किया था जिसमें हिंदी हिंदुई के उत्तम पाठकों का संग्रह था । इसमें निम्नांकित पाठ थे ।

गद्य

१. सिंहासन बत्तीसी की १७ वीं कहानी ।
२. राजनीति से २ अवतरण ।
३. हितोपदेश के पाँच कथाएँ ।
(४) प्रेमसागर का ५५ वाँ अध्याय ।
(५) गीतगोविंदकार जयदेव का चरित ।
(३) भक्तमाल से अवतरण ।

पद्य

(१) नारायणदास के भक्तमाल से पीया का चरित ।
(२) कलियुग वर्णन ।
(३) उषाचरित्र से २ अवतरण ।
(४) महाभारत के हिंदुई रूपांतर से शकुंतला का उपाख्यान ।

यूरोपियन विद्वान् हिंदुस्तानी के अंतर्गत हिंदी और उर्दू दोनों रूपों को मानते थे । तासी 'हिंदुस्तानी' का प्रयोग फारसी अक्षरों में लिखित उर्दू और 'हिंदुई' का प्रयोग हिंदी के लिये करते हैं । 'हिंदुई' हिंदू शब्द से बना है और प्रायः वे इसी का प्रयोग 'हिंदी' के लिए करते हैं ।

---

1. Rudiments de la langue hindoue, 1847.
2. Sakuntala, diapres laversson hindouie du Mahabhavata.
3. Anecodole relative an Braj Bhakha tradente de P hindoustani. Journal Asiatique Vol. 11, 1827.
4. Hindi Hindui Muntakhabat : Christomathic hindi et hindoui a l 'usage des elevea de l' Ecole speciale des langues orientales vivantes.

तासी का 'हिंदुई और हिंदुस्तानी का इतिहास' इसलिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है, चूंकि इसके पूर्व यूरोप की किसी भाषा में हिंदुस्तानी (उर्दू) और हिंदुई (हिंदी) साहित्य का ऐसा परिचयात्मक ग्रंथ प्रकाशित ही नहीं हुआ था। उस समय हिंदो या उर्दू में भी कोई ऐसा ग्रंथ नहीं था, जिससे लेखक को अपना इतिहास तैयार करने में सहायता मिलता। १६ वीं सदी के समकालीन प्रकाशनों के संबंध में जितनी सूचना और जानकारी इस इतिहास से मिलती है- उतनी किसी अन्य पुस्तक से नहीं। इसमें प्रस्तुत - सूचनाओं को प्राप्त करने में लेखक ने अनेक समकालीन यूरोपी 'संग्रहों' तथा बड़े पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकों और पुस्तक-विवरणों का उपयोग किया। इस कारण यह इतिहास अपूर्व माना जाता है। इसके कुछ काल बाद ही प्रकाशित 'सरोज' में यदि इसकी सामग्री की तुलना की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि 'सरोज' में ऐसे अनेक कवियों की चर्चा नहीं है, जिनका इसमें उल्लेख हुआ। १६ वीं सदी के गद्यलेखकों की पुस्तकों का विवरण 'सरोज' में नगण्य है। सैकड़ों ऐसी पाठ्य पुस्तकों का इस इतिहास में उल्लेख है जो उस समय यूरोपियन पुस्तकालयों में संचित थी, पर भारत के किसी हिंदी पुस्तकालय में उनका पता भी नहीं है। तासी पेरिस में रहकर हिंदुई और हिंदुस्तानी की अद्यतन प्रगति से परिचित थे, यह उनके लिए गौरव की बात हैं। विदेश में रहकर भारत की विविध, पत्र-पत्रिकाओं और शोधसंस्थानों के मुख-पत्रों का बराबर अवलोकन करना और उसमें से हिंदी उर्दू साहित्य का विवरण संकलित करना तथा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों को ग्रंथगारों से निकाल कर उनका विवरण देना स्वयं में और दुःसाध्य कार्यों में महत्त्वपूर्ण है।

जिन संग्रहों और पुस्तकालयों से तासी ने लाभ उठाया, उनके नाम ये हैं :

संग्रह

(१) जाती संग्रह
(२) पोलिए संग्रह
(३) लीडेन संग्रह
(४) बोजिया संग्रह
(५) उएमा संग्रह
(६) मेकेनजी संग्रह

(७) डेकन फोर्ब्स संग्रह
(८) टीपू का संग्रह

पुस्तकालय :

(१) पेरिस का राजकीय पुस्तकालय
(२) इंडिया आफिस लाइब्रेरी
(३) मुहम्मद बख्श खां का पुस्तकालय
(४) ट्यूबिनगेन का पुस्तकालय
(५) लीड का पुस्तकालय
(६) रायल एशियाटिक सोसायटी का पुस्तकालय
(७) फोर्ट विलियम का पुस्तकालय
(८) किंग्स कालेज (कैंब्रिज) का पुस्तकालय

इसके अतिरिक्त १६ वीं सदी के प्रकाशित पुस्तक-विवरणिकाओं विबलियोग्रैफी और सूची पत्रों (केटलग) से भी लाभ उठाया गया।

यह पुस्तक ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड की कमिटी आफ ओरियंटल ट्रांसलेशंस की सहायता से प्रकाशित हुई थी। १८२८ ई० में लंदन में ओरियंट ट्रांसलेशन फंड की स्थापना हुई थी। इसी फंड से इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ सहायता मिली। इसका मुद्रण पेरिस के सरकारी प्रेस में हुआ था। यद्यपि इस कमिटी के नियम इसके प्रकाशन के अनुकूल नहीं थे, पर सर गोर आउजले ने, इन नियमों के बावजूद, इसका प्रकाशन कराया। यह पुस्तक ग्रेट ब्रिटेन की साम्राज्ञी विक्टोरिया को समर्पित हुई थी। समर्पण की तिथि १५ अप्रैल, १८३९ ई० है। इस समर्पण में यह कहा गया है रानी के सिंहासनारूढ़ होने का समाचार सुनकर देशवासियों को अपनी प्रिय सुलताना रजिया का स्मरण हो

(१) जहाँ तक हो सका है मैंने अधिक से अधिक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त करने की चेष्टा की है, सार्वजनिक और निजी पुस्तकालयों के हिंदुस्तानी भंडारों से परिचित होने के लिये मैं दो बार इंगलैंड गया हूँ और मुझे यह बात खास तौर से कहनी है कि मुझे संग्रह बहुत अच्छे मिले और सहायता अत्यंत उदार मिली। हिंदुस्तानी के हस्तलिखित ग्रंथों का जो सबसे अच्छा संग्रह मुझे मिल सका, वह ईस्ट इंडिया हाउस का पुस्तकालय है और इस पुस्तकालय में विशेषतः लीडन संग्रह इस प्रकार का सर्वोत्तम संग्रह है। (हिंदुई साहित्य का इतिहास, पृ० ६)।

आया। इसमें यह भी उल्लेख कि 'आधुनिक हिंदुस्तानी-लेखक इसका प्रमाण देते हैं' कि 'ब्रिटिश शासन के अंतर्गत न तो लूट का भय है और न देशी सरकारों का अत्याचार है, उसका उनकी रचनाओं में यशगान हुआ है।' (आज हमें यह ज्ञान नहीं है कि किन हिंदुस्तानी लेखकों ने १८३९ ई० के पूर्व ब्रिटिश शासन का इस प्रकार यशोगान किया था, पर जैसा कि हरिश्चंद्र के उदय तक के लेखकों की प्रवृत्ति हम देखते हैं यह निराधार नहीं जान पड़ता कि उस काल के लेखकों ने ब्रिटिश शासन का यशोगान किया हो।) तासी ने इस समर्पण में यह भी लिखा है कि विक्टोरिया रानी में उन्होंने (यहाँ की प्रजा ने) रज़िया का तारुण्य और उसके अलभ्य गुण फिर पाए हैं तथा उनके सिहांसनारूढ़ होने का समाचार सुनकर अपनो प्रिय सुल्ताना रज़िया का स्मरण हुआ।'

तासी के अनुसार 'हिंदुस्तानी' की भाषिक स्थिति :

तासी का कथन है कि १६ वीं सदी के पहले ही आधुनिक भाषाओं ने संस्कृत का स्थान ग्रहण कर लिया था और उसे सामान्यतः भाषा या भाखा और विशेषतः हिंदवी या हिंदुई (हिंदुओं की भाषा) कहते थे। अन्य यूरोपियन लेखकों ने भी हिंदवी या हिंदुई नाम से यहाँ की भाषा को पुकारे जाने की बात कही है, पर हिंदी के प्राचीन लेखकों ने भाषा या भाखा नाम ही दिया है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, हिंदवी या हिंदुई नाम 'भाखा' के लिए किसी हिंदी के हिंदू कवि ने नहीं दिया, हिंदवी या दुई शब्द का कुछ मुसलमान लेखकों ने ही प्रयोग किया है। 'उर्दू' शब्द के इतिहास के बारे में तासी का भी यह मत है कि 'लश्कर का बाजार', जो नगर में स्थापित किया जाता था, उसे उर्दू कहते थे, जिसका ठीक-ठीक अर्थ है सेना और शिविर। हिंदू-मुसलमानों की उस नई (मिश्रित) भाषा को उर्दू नाम मिला, पर कविगण उसे रेखता (मिश्रित) नाम ही देते थे। नर्मदा के दक्षिण जब मुसलमान शासकों के राज्य स्थापित हुए, तब हिंदी-मुसलमानों की मिश्रित भाषा ने एक विशेष नाम 'दक्खिनी, ग्रहण किया। उत्तर में जो रेखता थो, वही दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में दक्खिनी कहलाई। तासी का कथन है कि पुरानी बोली (भाषा) का प्रयोग अब भी गावों में, उत्तरी प्रांतों के हिंदुओं में होता है। वे यह भी लिखते हैं कि 'फ़ारसी और अरबी शब्दों के मिश्रण से रहित हिंदी ठेठ या खड़ी बोली (शुद्ध भाषा) कही जाती है, ब्रजप्रदेश की खास बोली 'ब्रजभाषा' उन आधुनिक बोलियों में से है, जो पुरानी हिंदुई के सबसे अधिक निकट है, अंत में पूर्वी

भाखा उसी बोली का एक दूसरा प्रकार है, जो दिल्ली के पूर्व में बोली जाती है।'[१]

इस विवरण का सार यह है कि तासी के अनुसार हिंदुस्तानी के दो भेद हैं: पुरानी हिन्दुस्तानी या हिंदुई और आधुनिक हिंदुस्तानी। पुनः आधुनिक हिंदुस्तानी के तीन उपभेद हैं:

१. उत्तर की उर्दू या मुसलमानी बोली।

२. ब्रजभाखा या हिंदुओं की बोली (ठीक या लगभग पुरानी हिंदुई)।

३. दक्षिण की बोली—दक्खिनी। (जिसे केवल मुसलमान बोलते हैं)। मुसलमानी।

इस विभाजन के अनुसार आधुनिक 'हिंदुस्तानी' के दो भेद हैं उत्तर में उर्दू और दक्षिण में दक्खिनी। तासी ने सेडन (Seddon) के इस विचार को ठीक माना है कि 'उर्दू और दक्खिनी का हिंदुई के साथ वही संबंध है, जो उदूगूर का तुर्की और सेक्सन का अंग्रेजी के साथ है।' हिंदुओं में प्रचलित हिंदुई के 'ब्रजभाखा' और 'पूरबी' ये दो भेद हैं।

हिंदुस्तानी की लिपियां:

तासी के अनुसार, 'हिंदुस्तानी अरबी या भारतीय अक्षरों में लिखी जाती है।....' 'भारतीय अक्षर या तो देवनागरी या कैथी नागरी है, नागरी के और भी थोड़े बहुत विभिन्न रूप हैं। औरों के अतिरिक्त कबीर की कविताओं के अक्षर कैथी नागरी के हैं।'[२] तासी नागरी और 'कैथी नागरी' के दो भेद करते हैं। इसी कैथी नागरी को केवल कैथी भी कहते हैं। हिंदी की प्राचीन पोथियाँ नागरी और कैथी दोनों लिपियों में मिलती हैं। काशी के आस-पास ब्राह्मण प्रायः नागरी में ही लिखते थे, पर हिन्दी-क्षेत्र के पूर्वी भाग में प्रायः सामान्य जनता में कैथी ही चलती। तासी के अनुसार हिंदू अपने पूर्वजों की भांति प्रायः देवनागरी अक्षरों का प्रयोग करते हैं।'

हिंदुस्तानी का महत्त्व:

तासी का मत है कि (हिंदुस्तानी) वास्तव में भारत की सबसे अधिक अभिव्यञ्जना-शक्ति संपन्न और सबसे अधिक शिष्ट प्रचलित भाषा है तथा

---

१. 'फारसी अरबी शब्दों के मिश्रण के बिना ठेठ या खड़ी बोली (शुद्ध भाषा) ब्रजभाखा'। पूरबी भाखा, जो दिल्ली के पूरब बोली जाती है।

२. कबीर की रचनायें तासी को कैथी में मिली थीं।

'बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदुस्तानी को समस्त एशिया में कोमलता और विशुद्धता की दृष्टि से जो ख्याति प्राप्त है, वह अन्य किसी को नहीं है।' हिंदुई के संबध में वे विलसन से सहमत हैं कि इसमें मध्ययुग से संबंधित महत्वपूर्ण पद्यात्मक विवरण हैं तथा इतिहास की दृष्टि से हिंदुई के विशेष महत्व की चर्चा करते हुए उन्होंने चंद के काव्य और लाल कवि की रचना का उल्लेख किया है। टाड के अनुसार राजस्थान में ऐसी अनेक कृतियाँ हैं, जिनसे मध्ययुग के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। हिंदुई को तासी भारत के धार्मिक सुधारों की भाषा कहते हैं, चूँकि, कवीर, नानक, दादू आदि नये पंथों के प्रवर्तकों ने इसी भाषा में अपने उपदेश दिए और उनके अनुयायी इसी में भजन गाते हैं। भारत को 'कविता का प्रसिद्ध और प्राचीन देश' कहा गया है, जहाँ कथायें, इतिहास नैतिक रचनायें, कोष, यहाँ तक कि 'रुपये की गाथा' भी पद्य में है।

तासी का यह कहना भी अधिकांश में सही है कि 'हिंदुस्तानी साहित्य का बहुत बड़ा भाग फारसी, संस्कृत और अरबी से अनूदित है। हिंदुई (हिंदी)' का प्राचीन लेखक प्रायः संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद, अनुकरण या अनुसरण करता है, इसमें संदेह नहीं।

तासी के इतिहास में दक्खिनी शाखा के लेखकों की रचनाओं को उच्च स्थान प्राप्त हुआ है। यह अंग्रेजों द्वारा नितांत उपेक्षित रही है। यह परंपरा १६ वीं शताब्दी से प्रारंभ होती है और उनके समय तक ये बराबर चलती आई थी। अपने इतिहास के संबध में उनका कथन है कि त्रुटियों के मिलने पर भी साहित्यिक अध्ययनों का आदर करने वाले उनके ग्रंथों को आदर के साथ पढ़ेंगे।' वे अपनी १८३९ ई०की भूमिका को वली के इस शेर से समाप्त करते हैं :

वही है मेरे हर्फ़ का कद्रदां
कि जौहर न बूझे बजुज़ जौहरी।

हिंदुई की पुस्तकों में भक्तमाल, प्रेमसागर और रामायण का विशेषतः उल्लेख है। प्रेमसागर को अत्यत महत्त्वपूर्ण रचना और उसके गद्य को 'अत्यंत सुन्दर और प्रायःलयात्मक' बतलाया गया है। तासी ने रामायण के एक कांड का अनुवाद स्वयं किया था, पर चूँकि इसकी टीका उन्हें

उपलब्ध नहीं हो सकी, अतः इसकी भाषा को 'मुश्किल से समझ में आने वाली हिंदुई बोली कहा है।'

हिंदुई के चार प्रकार :

हिंदी रचनाओं को चार भागों में विभाजित कर विचार किया गया है—

१. आख्यान : लोकप्रिय परंपराओं से संबंधित विषय

२. आदि काव्य या प्राचीन काव्य : रामायण

३. इतिहास : महाभारत तथा पद्यात्मक इतिहास

४. काव्य : किसी प्रकार की काव्यात्मक रचना।

तासी ने संगीत और छंद के विविध रूपों के अनुसार भी हिंदुई रचनाओं पर विचार किया है। इसमें इन रूपों का जो विवरण दिया गया है, वह विचारणीय है। इस विवरण से कुछ अंश नीचे दिया जाता है, जो आज भी ज्ञानवर्धक और रोचक है।

१. आल्हा : कविता, जिसका नाम उसके जन्मदाता से लिया गया है। इसके प्रमाण में शेक्सपियर कृत डिक्शनरी हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश उद्धृत है।

२. कहरवा : मलार के रूप की भाँति कविता। वास्तव में यह एक नृत्य का नाम है, जिसमें पुरुष स्त्रियों के कपड़े पहनते हैं और स्त्रियाँ पुरुषों के और फलतः इस नृत्य के साथ वाले गाने को यह नाम दिया गया है।

३. बधावा : चार चरणार्द्धों की कविता, जिसका पहला चरणार्ध कविता के प्रारंभ और अंत में दुहराया जाता है। यह बधाई का गीत है, जो बच्चों के जन्म, विवाह संस्कार आदि के समय सुना जाता है। (शब्द सागरमें इसका अर्थ बधाई और मंगल अवसरों पर आनेवाला उपहार दिया गया है। बधावी गीत का एक भेद है, यह नहीं बताया गया। इन तीन शब्दों के अर्थ 'शब्दसागर' में दिए गए हैं, उनसे यदि तासी के विवरण से तुलना की जाए, तब ज्ञात होगा कि शब्द-सागर का अर्थ कितना अपूर्ण और एकांगी है।

उन्नीसवीं सदी का लोकमंच और सामाजिक जीवन पर प्रकाश :

तासी के इस ग्रंथ से १९ वीं सदी के सामाजिक जीवन की कुछ झलक भी मिल जाती है। 'कामेडी' के प्रसंग में आपने बतलाया है कि 'आधुनिक

भारतवासी निंदा के इस साधन से विहीन नहीं हैं।....उनके पास एक प्रकार के प्रहसन हैं, जिन्हें बड़े मेलों के बाजीगर (नटों की कौम के अभिनेता) खेलते हैं और जिनमें कभी-कभी राजनीतिक संकेत रहते हैं। उत्तर भारत के बड़े नगरों में इस प्रकार के अभिनेता पाए जाते हैं, जो काफी चतुर होते है।.... उनके प्रदर्शन इटली के पुराने मूक अभिनयों से बहुत मिलते-जुलते हैं, जिनमें कुछ अभिनेता अपना रूप बनाते हैं और हमें समाज की कहावतें देते हैं। विभिन्न व्यक्ति में कथोपकथन, यद्यपि कभी-कभी भद्दा रहता है, आध्यात्मिक और चुभता हुआ रहता है। वह श्लेष शब्दों के साथ खिलवाड़, अनुप्रास और दो अर्थों वाली अभिव्यंजना से पूर्ण रहता है—सौंदर्य-शैली, जिसका हिंदुस्तानी में अद्भुत प्राचुर्य है और जो उसकी अत्यधिक समृद्धि और विभिन्न उद्गमों से लिए गए शब्द-समूह से निर्मित होने के कारण अन्य सभी भाषाओं की अपेक्षा संभवत: अधिक उचित है। जैसा कि मैंने कहा, ये तुरन्त बनाए गये अंश प्राय: राजनीतिक संकेतों से पूर्ण रहते हैं। वास्तव में, अभिनेता अंग्रेजों और उनके रीति-रस्मों का मज़ाक बनाते हैं; विशेषत: नवयुवक सिविलियनों का जो प्राय: दर्शकों में रहते हैं। यह सत्य है कि चित्रण बहुत बोझिल रहता है और रीति-रस्म बहुत बढ़ाकर दिखाए जाते है, जबकि वे अधिकतर खाली यूरोपियन दृश्यों तक रहते हैं, किन्तु अंत में वे विविधता से संपन्न रहते हैं और पात्रों के चरित्र में कौशल रहता है। इस प्रकार के अभिनयों से पहले सामान्यत: नाच और इस संबंध में उत्तर में कलावंत और मध्य भारत में भाट चारण और बरबाई कहे जाने वाले गायकों द्वारा गाए जानेवाले हिंदुस्तानी गाने रहते हैं।

इससे यह प्रमाणित होता है कि यद्यपि देश में साहित्यिक नाटकों का लेखन और अभिनय नहीं होता था और संस्कृत के विशुद्ध साहित्यिक नाटकों की परंपरा लुप्त हो चुकी थी, पर १९ वीं सदी तक लोकमंच जीवित था और उससे जनता का पर्याप्त मनोरंजन हुआ करता था। इन अभिनयों में सामाजिक चेतना के तत्त्व भी वर्तमान थे और विदेशियों के चित्रण द्वारा उनके सामाजिक जीवन पर कटुतिक्त व्यंग भी हुआ करते थे। इसकी पुष्टि के लिए तासी ने एक रोचक उदाहरण भी दिया है, जिससे १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध की अवस्था का अच्छा परिचय मिलता है। हम तासी का विवरण उन्हीं के शब्दों में देते हैं।

इन रचनाओं में एक का विषय इस प्रकार है। दृश्य में एक कचहरी दिखाई गई है, जिसमें यूरोपियन मैजिस्ट्रेट बैठे हुए हैं। अभिनेताओं में से एक, गोलटोप सहित अंग्रेजी वेशभूषा में, सीटी बजाते और अपने बूटों में चाबुक मारते हुए सामने आता है। तब किसी अपराध का दोषी कैदी लाया जाता है, किंतु जज, क्योंकि वह एक नवयुवती भारतीय महिला, जो गवाह प्रतीत होती है, के साथ व्यस्त रहता है, ध्यान नहीं देता। जबकि गवाहियां सुनी जा रही हैं, वह कनखियों से देखे बिना और इशारा किए बिना, बिना किसी अन्य बात की ओर ध्यान दिए हुए, नहीं रहता और बाद के परिणाम के प्रति उदासीन प्रतीत होता है। अंत में जज का खिदमतगार आता है, जो अपने मालिक के पास जाकर और हाथ जोड़कर, आदरपूर्वक और विनम्रता के साथ धीमे स्वर में उससे कहता है, साहिब, टिफन तैयार है। तुरंत जज जाने के लिए उठ खड़ा होता है। अदालत के कर्मचारी उससे पूछते हैं कि कैदी का क्या होगा? नवयुवक सिविलियन कमरे से बाहर जाने समय, एड़ी के बल घूमते हुए चिल्ला कर कहता है—गोडेन, फांसी। (एशियाटिक जर्नल, नई सीरिज नि० २२, पृ० ३७।)

अंग्रेजों के न्याय-विधान पर यह कैसा चुटीला व्यंग्य है। नवयुवक सिविलियनों का भारतीय युवतियों के प्रति आकर्षण और अपना निर्णय सुनाने की रीति, दोनों ही पर यह करारा आक्षेप है। अंग्रेजी न्याय के प्रति शिष्टजनों में भले ही गहरी निष्ठा रही हो, पर इस प्रहसन में जनता की प्रतिक्रिया का चित्रण है। इस तरह के अभिनय मद्रास में और दक्षिण में भी प्रचलित थे। एक अभिनय में एक यूरोपियन का भारत में आना और दुभाषिए की चालाकियों के अनुभव का वर्णन है।[१] इन उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि जनता के बीच प्रचलित अभिनयों में, उस प्रतिक्रिया की व्यंगात्मक अभिव्यक्ति हुई है, जो अंग्रेजों के आने पर सामान्य भारतीय प्रजा के मन में उठती थी। एक और अभिनय (एशियाटिक जर्नल० जि० १९, नई सीरीज, पृ० ४५२) का तासी ने उल्लेख किया है, जिससे कि एक बंगाली रईस बाबू का कलकत्ते के शाम बाजार में निजी थियेटर यह पता चलता है था, जिसमें भद्दी भाषा में लिखी गयी रचनाएँ हिंदू स्त्री या पुरुष अभिनेताओं द्वारा खेली जाती थीं।[१] देशी गवैये, जो लगभग सभी ब्राह्मण होते थे, वाद्य संगीत प्रस्तुत करते थे और अपने राष्ट्रीय गाने सितार, सारंगी, पखा-

१. बेवन-थर्टी इयर्स इन इण्डिया—जि० १, पृ० ४७। विलियम ब्लैक बर्न ने दक्षिण में हिंदुस्तानी के अभिनय का उल्लेख किया है।

वज आदि बाजों पर बजाते थे। अभिनय ईश्वर की प्रार्थना से आरंभ होता था, तब एक प्रस्तावना के गान द्वारा रचना का विषय बताया जाता था। इन प्रहसनों की भाषा बँगला थी। हिंदुस्तानी लोकमंच के इस रूप का परिचय हमें किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं होता।

हिंदी में ऐसी पुस्तकें तासी के पहले नहीं थी, जिनमें कवियों या लेखकों का जीवन-परिचय मिलता हो। महात्मा कवियों का जीवन-संकेत भक्तमाल और इस श्रेणी की रचनाओं में मिल जाता था, पर जो विशुद्ध लौकिक कवि थे, उनका परिचायक कोई ग्रंथ नहीं था। किंतु, द्वितीय संस्करण के समय (१८७० ई०) में लेखक ने कविवचन सुधा 'कविचरित्र' (मराठी) में हिंदी कवियों के उल्लेख कवि प्रकाश और काव्य संग्रह (हरिश्चन्द्र) आदि की सूचनाओं से भी लाभ उठाया है। पर, तासी को १८३९ ई० में हिंदी में भक्तमाल के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रंथ नहीं मिला था। १८७० ई० में लिखते समग्र उन्होंने अद्यतन सामग्री का उपयोग किया।[१] १८६२-१८९३ ई० से १८७०ई० के बीच हिंदी में मौलिक साहित्य प्रणयन बहुत कम हुआ है, अतः लेखक की कठिनाई का हम अनुमान कर सकते हैं। इस अवधि में उर्दू में कुछ अच्छे काव्य-सग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें कवियों के विवरण भी हैं। पर, हिंदी में ऐसी रचनाओं का अभाव था। तासी लिखते है....'हिंदी कवियों के तज़किरों का अभाव है, जबकि उर्दू लेखकों के बारे में यह बात नहीं है, जिनकी मूल जीवनियों में कम से कम नाम देने का ध्यान तो रखा गया है।' इस तीस साल की अवधि में हिंदी में पाठ्य पुस्तकें ही प्रायः रची गईं और वे भी अंग्रेज स्कूल इंस्पेक्टरों की प्रेरणा अथवा अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद रूप में। इस काल का हिंदी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संग्रह है 'राग कल्पद्रुम' जो संगीत-शास्त्र की आवश्यकता की दृष्टि से किया गया था। वास्तव में यह हिंदी के गवैयों के बीच प्रचलित लोकप्रिय गीतों का विशाल संग्रह है और इसका वैकल्पिक नाम 'रागसागर' सार्थक है।

तासी ने दो संग्रहों को महत्त्वपूर्ण बताया है : एक है कर्नल ब्राउटन का सेलेक्शन्स फ्राम दि पाप्यूलर पोएट्री आव दि हिंदूज़ दूसरा तारिणी चरण मित्र के

१. भक्त-चरित्र, वार्त्ता, सभाविलास, सुजान चरित्र।

सहयोग से तैयार किया हुआ संग्रह। इन विविध स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर तासी ने अपना इतिहास प्रस्तुत किया है। इतिहास में कवि विवरण काल-क्रम से होना चाहिए. पर इस 'इतिहास' में अकारादिक्रम को स्वीकार किया गया। तासी ने यह बताया कि 'मैंने यही पद्धति ग्रहण की है, यद्यपि शुरू में मेरा विचार कालक्रम ग्रहण करने का था और मैं यह बात छिपाना नहीं चाहता कि यह क्रम अधिक अच्छा रहता या कम से कम जो शीर्षक मैंने अपने ग्रंथ को दिया है, उसके अधिक उपयुक्त होता, किंतु मेरे पास अपूर्ण सूचनाएँ होने के कारण उसे ग्रहण करना कठिन ही था।.....जहाँ तक हिंदुई लेखकों से संबंध है, उनकी भी अधिकांश रचनाओं की निर्माण-तिथियाँ निश्चित नहीं हैं। यदि मैंने कालक्रम वाली पद्धति ग्रहण की होती, तो अनेक विभाग स्थापित करने पड़ते। पहले मैं उन लेखकों को रखता जिनका काल अच्छी तरह ज्ञात है, दूसरे में उनको जिनका काल संदेहात्मक है, अंत में, तीसरे में उन्हें जिनका काल अज्ञात है।' अतः तासी को अपना कार्य सरल बनाने और पाठक की सहूलियत दोनों ही दृष्टियों से यह 'पद्धति जो अधिक बुद्धिसंगत थी, स्वेच्छा से छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हिंदी में ग्रियर्सन के इतिहास को श्री किशोरीलाल गुप्त ने अनुवाद में हिंदी का प्रथम इतिहास माना है। पर जो भी तासी की कृति से परिचित है, वह यह कहेगा कि ग्रियर्सन से लगभग पचास वर्ष पूर्व इस फ्रांसीसी विद्वान् ने ही हिंदुई और हिंदुस्तानी का इतिहास प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। अकारादिक्रम उसने कार्य को सरल बनाने और पाठकों की सहूलियत से ही अपनाया था, अन्यथा वह इतिहास में कालक्रमानुसार विवरण देने के औचित्य से सुपरिचित थे। ग्रियर्सन ने 'सरोज' से पूरा लाभ उठाया था, पर तासी के सामने सरोज के समान किसी भारतीय द्वारा लिखित हिंदी कवियों का वृत संग्रह नहीं था। उन्हें तो स्वयं फावड़ा लेकर अंधेरे में खान के भीतर उतर कर भूगर्भ से धातु को निकालना पड़ा। यूरोप में प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों और सूचीपत्रों के आधार पर इतिहास का एक ढाँचा खड़ा करना पड़ा। इस कार्य की गुरुता और कठिनाई को देखते हुए तासी हमारी प्रशंसा के पात्र हैं।

हिंदुई और हिंदुस्तानी में वे अवश्य ही हिंदुस्तानी के खुले पक्षपाती थे और बाद में वे उर्दू के कट्टर हिमायती बन गए, अतः हिंदी के परवर्ती

विद्वानों ने उनके अवमूल्यन का प्रयत्न किया है, पर हमें उस समय के विदेशी विद्वानों की मनोवृत्ति को समझने की चेष्टा करनी चाहिए। यूरोपियनों में उर्दू का विशेष प्रचार था। यहाँ तक कि कुछ यूरोपियन या उनसे उत्पन्न मिश्र रक्त के यूरोपियनों ने उर्दू में कविताएँ भी कीं। ऐसे उर्दू के फिरंगी कवियों में सोम्ब और बेगमसमरू के पुत्र साहिब का नाम लिया जाता है। अन्य कवियों में बलथजर 'असीर' और सरधना के दरबार के एक फ्रांसू नाम से प्रसिद्ध और जरिस बैस शोर का नाम लिया जाता है।

जन्म स्थान की दृष्टि से लखकों पर विचार कर आपका निष्कर्ष है कि हिंदी के लेखक प्रायः पंजाब, कश्मीर, राजपूताना, उत्तर-पश्चिम प्रांत के प्राचीन प्रदेशों, दिल्ली, आगरा, ब्रज और बनारस के हैं। दक्खिनी के लिये सूरत, बंबई, मद्रास, हैदराबाद, श्री रंगपट्टम और गोलकुंडा प्रसिद्ध स्थान है। उर्दू के लिए दिल्ली आगरा, लाहौर, मेरठ, लखनऊ बनारस, कानपुर, मिर्जापुर, फैजाबाद, इलाहाबाद माना गया है और कलकत्ता को व ऐसा स्थान कहते हैं, जहाँ हिंदुस्तानी प्रादेशिक रूप म बोली जाती है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि हिंदी और उर्दू दोनों के स्थानों में दिल्ली, आगरा और बनारस है।

संप्रदाय की दृष्टि से विचार करते हुए तासी का निष्कर्ष है हिंदी के लगभग सब लेखक हिंदुओं के नवीन संप्रदायों से संबध रखते है। इन संप्रदायों में उन्होंने जैन, कबीरपंथ, सिक्ख, वैष्णव सप्रदाय, जैसे रामानंद और वल्लभ, दरियादास,, जयदेव, दादू, वीरभान, बाबालाल, रामचरण, शिवनारायण आदि का उल्लेख किया है। वे यह भी बताते हैं कि बहुत थोड़े शैव हैं, जिन्होंने हिंदी में लिखा है। हिंदी में शैव साहित्य की कमी का यही कारण जान पड़ता है। तासी ने अपने उर्दू और मुसलमानों से प्रेम को स्वयं स्वीकार किया है—"उर्दू और मुसलमानों के साथ मेरा जो लगाव है वह कोई छिपी बात नहीं है। मैं समझता हूँ कि मुसलमान लोग कुरान को तो आसमानी किताब मानते ही हैं, इंजील की शिक्षा का भी अस्वीकार नहीं करते, पर हिंदू लोग मूर्तिपूजक होने के कारण इंजील की शिक्षा नहीं मानते।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३९६ पर उद्धृत)।

तासी के इतिहास से कई ऐसी सूचनाएँ मिलती हैं, जो अन्य स्रोतों से नहीं मिलतीं। उन्हें उपयोगी जानकर हमने ऐसी सूचनाओं को यहाँ संकलित किया है।

तासी द्वारा प्रस्तुत सूचनाएँ :

ज्ञानदीपक :

१८४६ ई० में कलकत्ते से हिंदी, बंगला, फारसी और अंग्रेजी में निकलता था। संपादक—मौलवी अली।

तत्वबोधिनी पत्रिका :

बरैली : संपादक—श्री गुलाबशंकर।

बनारस अखबार :

हिंदी और देवनागरी। संपादक–श्री गोविंद रघुनाथ दत्ते। कहा जाता है कि नेपाल के राजा, जिनकी धर्मपत्नी बनारस में रहती थीं, इसकी आर्थिक सहायता करती थीं। इस पत्र के प्रत्येक अंक में संपादक न्यायशास्त्र के संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद देते थे। गोविंद रघुनाथ दत्ते उर्दू में बनारस गजट भी प्रकाशित करते थे। दोनों पत्रों में वे ईसाई धर्मप्रचारकों के विरुद्ध हिंदू धर्म का समर्थन और पादरियों द्वारा बनारस में स्थापित स्कूलों का विरोध करते थे।

प्रजाहित :

हकीम जवाहरलाल द्वारा इटावा से प्रकाशित उर्दू में यह 'मुहब्बत रियाया' और अंग्रेजी में 'पीपुल्स फ्रेंड' शीर्षक के अंतर्गत निकलता है।

समय विनोद :

जैदत्त जोशी, नैनीताल से प्रकाशित पाक्षिक हिंदी पत्र। १८६६ ई० से पहले।

विद्यादर्श :

मेरठ का पाक्षिक पत्र–अमीर अहमद के उर्दू पत्र 'नज़मुल अखबार' का हिंदी रूपांतर। इसके संपादक पालीराम थे।

रतन प्रकाशक :

१८६८ ई० से प्रारंभ हुआ। रतलाम। संपादक—पं० विश्वेश्वर नाथ (वशीशर नाथ—तासी)।

सुधारक अखबार :

इसमें १८५३ ई० में 'मिडसमर नाइट ड्रीम' का अनुवाद निकला था। यह बनारस अखबार की अपेक्षा उच्चकोटि का पत्र था। यह संस्कृत शब्दों से मिश्रित कठिन हिंदी में निकलता था।

जगलाभचिंतक :

संपादक श्री शिवनारायण थे। १८५९ ई०।

प्रेमसागर के अनुवाद :

कैप्टेन होलिंग्स में उसका पूर्ण लगभग शाब्दिक अनुवाद १८४८ ई० में कलकत्ते से एफ० वी० ईस्टविक द्वारा पूरे प्रेमसागर का अनुवाद हुआ था। तुलसीकृत रामायण का अनुवाद इटैलियन और फ्रांसीसी में प्रथम संस्करण के बाद हुआ था।

अमर दास :

सिक्खों के तीसरे गुरु। इनकी कुछ कविताओं को जो आदिग्रंथ में है, जे० डी० कनिंघम ने 'सिक्खों का इतिहास' में अनूदित किया है।

हिंदी एंड हिंदुस्तानी सेलेक्शन्स :

डब्ल्यू० प्राइस : इसमें तारिणी चरणमित्र का सहयोग था। प्रथम संस्करण १८२७ ई० में कलकत्ते में छपा। १८३० ई० में लिथो में निकला। इसके संबंध में तासी ने जूर्ना दे सावा वर्ष १८३२ ई० में लिखा था।

सेलेक्शंस आफ हिंदी पोयट्री : टी० डी० ब्राउटन द्वारा संकलित और अनूदित, लंदन १८१४ ई०। ब्राउटन की मृत्यु १६ नवंबर १८३५ ई० को लंदन में हुई। हिंदुई लोकप्रिय गीतों का संग्रह मन्यूमा सितरे और द लिंद (लेंगल्वो) भारत की महान् साहित्यिक कृतियां।

डेस्क्रिप्टिव कैटलेग : १८६७ ई० रेवरेंड जे० लाग : ए कैटलग आफ द लाइब्रेरीज आफ दि किंग आफ अवध : ए स्पेंजर।

विवलोथेका स्पेंजरियाना

जेंकर : बिवलियोथैक ओरियंटलिस

ए विउ आफ दि हिस्ट्री एटसेटरा आफ दि हिंदूज : वार्ड

सेलेक्शंनस आफ ख्यालस एंड मारवाड़ी प्लेज : जे० राइसन।

तासी के उल्लेख के अनुसार 'मूल पंसी' (कबीरकृत) की एक हस्तलिखित प्रति पी० मारकस अतुंबा द्वारा इटैलियन भाषा में अनुवाद सहित बोडिया

संग्रह में पायी जाती है। यह अनुवाद मेंस द लो रियेंत् (Miens de Lorient) की तीसरी जिल्द में प्रकाशित हुआ है।

एस्पेंजर ने खुसरो की तथाकथित पहेलियों का पाठ और अनुवाद जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी : बंगाल संख्या ६-१८५२ ई० में प्रकाशित किया है। भाई गुरदास वल्लभ की कुछ कविताओं का अनुवाद मालकम के एसे आन दि सिख्स और कनिंघम के हिस्टरी आफ दि सिख्स में मिलता है। १८५० ई० में मतबा बनारस अखबार के छापेखाने से 'विचित्र नाटक' शीर्षक के अंतर्गत सिक्खों का इतिहास निकला, जिसका अनुवाद कैप्टेन जी० एम० सिडंस ने किया है यह जर्नल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १८५० ई० पृ० ५६३ में प्रकाशित हुआ है।

पृथ्वीराज रायसो :

रूसी भाषा के विद्वान् रावर्टलेंज ने पृथ्वीराज रासो के एक अंश का अनुवाद किया था, जिसे वे १८४६ ई० में प्रकाशित करने वाले थे, पर उनके आकस्मिक निधन के कारण यह प्रकाशित नहीं हो सका।

टॉड ने भी इसके एक बड़े अंश का अनुवाद किया था, पर मृत्यु हो जाने के कारण न अपना कार्य पूर्ण कर सके और न प्रकाशित कर सके। उनका किया हुआ एक अंश का अनुवाद 'संगोप्त का प्रण' (दि वाउ आफ संग्रोप्ता) का अनुवाद एशियाटिक जर्नल की न्यू सीरिज की २५ वीं जिल्द में छपा है। 'पृथूराज राजसू' ग्रंथ का फारसी लिपि में नाम है। इस राजसू का अर्थ तासी ने पृथ्वीराज का महान् यज्ञ (राजसूय) किया है। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी वाली हस्तलिखित प्रति पर फारसी शीर्षक इस प्रकार है : तारीख पृथूराज वज्रवान पिंगल, तसनीफ़ क़दां कब चंद बरदाई (फारसी लिपि में)।

एफ० एस० ग्राउज ने जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल नं० सी एल और बाद में प्रकाशित प्रथम समय का अनुवाद दिया है। राजपूतों की यह जातीय कविता ज० रा० स० सौ० १८५१ ई० में प्रकाशित हो चुकी है। वार्ड ने इसे कन्नोज की बोली में लिखा कहा है।

पं० ओंकार भट्ट :

सीहोरवासी, मालवा के प्रसिद्ध ज्योतिषी। इनकी 'भूगोल सर्व' रचना १८४१ ई० में आगरा में छपी। यह मराठी की पुस्तक 'सिद्धांत शिरोमणि प्रकाश' का स्वतंत्र अनुवाद है। इसका अंग्रेजी शीर्षक है।

A comparison of the Puranic and Sidhantic Systems of Astronomy with that of copernicus.

भूगोल दीपिका :

लेखक : पंडित घासीराम। अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित। बनारस, १८६० ४८ चौपेजी पृष्ठ।

सरसरी के मुकदमों की पुस्तक :

पी० कारनेगी और आर० मेंडरसन कृत : 'एलीमेंटरी टिट्राइज आन समरी सूट्स' का उर्दू से अनुवाद मिर्जा जान ने किया।

हितोपदेश :

'उपदेशदर्पण', बनारस। इसके लेखक श्री पंडित बद्रीलाल ने मूल संस्कृत शब्द सुरक्षित रखे हैं। यह डा० जेम्स बी वैलंटाइन के संरक्षण में रचा गया था।

पंडित वापूदेव :

संस्कृत कालेज में गणित के अध्यापक : बीजगणित (१८५९ ई०), व्यक्त गणित अभिधान (१८५६ ई०), त्रिकोणमिति (१८५९ ई०), भूगोल वर्णन।

वालकृष्ण शास्त्री :

भूगोल विद्या : अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद बाल गंगाधर शास्त्री, १८२६ ई० में दिल्ली में प्रोफेसर हुए। हिन्दी संस्कृत फारसी अंग्रेजी में प्रवीण। १८४६ ई० में निधन। रचनाएँ : बाल व्याकरण, नीतिकथा (१८४३ ई०) सूरसंग्रह-भूगोल विद्या।

स्त्री शिक्षा : खड़ी बोली में : कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित, सन् १८२२। हिंदवी में कथाएँ : स्कूल बुक सोसाइटी कलकत्ता, १८३२ ई०।

सुन्दरी तिलक :

१८६६ ई० (वि० १९२५ ई०) में बनारस से छपा। यह बाबू हरिश्चंद्र के आश्रय में तथा उन्हीं व्यय से छपा था। वे इसके संपादक नहीं थे। तासी के अनुसार इसके लेखक पंडित तमन्नालाल हैं।

तारिणीचरण मित्र :

दि ओरियंटल फेबुलिस्ट : गिलक्रिस्ट द्वारा प्रकाशित ईसप की तथा अन्य कहानियों का हिंदुस्तानी, व्रजभाखा आदि में अनुवाद के व्रजभाखा अनुवाद के रचयिता हैं (तासी)। बेताल पचीसी का संशोधन किया। ये १८३४ ई० में जीवित थे और कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के मंत्री थे। तासी के अनुसार हिंदी एंड हिंदुस्तानी से लेकरांस के तैयार करने में इन्होंने सहायता दी थी। यह सेलेक्शन्स भी मूलतः गिलक्रिस्ट द्वारा संपादित हुआ था और उसकी छपाई फोर्ट विलियम कालेज की अध्यक्षता मे १८०१ ई० मे प्रारंभ हो गयी थी। (कलकत्ता रिव्यू १८४५ ई० अंक ७)।

श्री कृष्णानंद देव व्यास देव : रामसागर

१८९९-१९२० संवत् के बीच रागकल्पद्रुम छपा। १८०० पृष्ठ, सात भाग।

लतायफ-इ-हिंदी :

हिंदुस्तानी लतीफों के, उर्दू और हिंदुई या व्रजभाषा में सौ न्यूनाधिक रोचक छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह। यह १८१० ई० में कलकत्ते से दि न्यू एनसाइक्लोपीडिया हिंदुस्तानिका में छपी। फिर यह लंदन से १८११ ई० मे (अठपेजी) कारमाइकेल स्मिथ ने उसका एक बड़ा अंश छापा।

सिंहासन बतीसी : १८६६ ई० से सिविल सर्विस की पाठ्य-पुस्तक।

जटमल के पद्मिनी की कथा पर आधारित एक काव्य का पैंवी ने जूना एशियाटिक, १८५६ ई० में अनुवाद दिया।

जायसी को जायसी दास भी कहा जाता है, यह तासी बताते हैं। लंदन में हिंदुस्तानी के प्रोफेसर सैयद अब्दुल को उनका सीधा वंशज कहा

गया है। १८५६ ई के जूना एसियातीक में पद्मावत पर टी० पैंवी ने उसका अनुवाद दिया है।

तन्धिराम के एक पद गणेश स्तुति, जिसका पाठ डब्लू प्राइस ने हिंदी ऐंड हिंदुस्तानी सेलेक्शन्स में दिया है, उसका अनुवाद तासी ने अपने 'शां पाप्लूलअर द विंद' में दिया है।

दादू : 'दादू पंथी ग्रंथ' के कुछ अध्यायों का अनुवाद लेफटेनेंट जी० आर० सिडंस ने एशियाटिक सो० के जर्नल में १८३५ ई० में प्रकाशित कराया था। सिडेंस हिंदुई भाषा के अच्छे ज्ञाता थे।

नानक : कनिंघम ने हिस्टरी आफ दि सिख्स में नामक की वाणी के कुछ अंशों का अनुवाद मिलता है।

नीलकंठ शास्त्री गोरे (ईसाई) : के 'षटदर्शन दर्पण' (१८६० ई० में कलकत्ता से मुद्रित) का अनुवाद फिटज़ एडवर्ड हाल ने रेशनल रेफ्यूटेशन आफ द हिंदू फिलासफिकल सिस्टम्स नाम से किया है। इसी लेखक की 'वेदांत मत विचार और खिस्ट मत का सार' शीर्षक अन्य रचना है, मिर्जापुर, १८५४ ई०।

प्रेमसागर : उर्दू पद्य में प्रेमसागर का अनुवाद मु० शंकरदयाल फरहत ने किया, नवलकिशोर प्रेस से मुद्रित। १८६६ ई०। फरहत हुसैनाबाद के अमेरिकन मिशनरियों द्वारा संचालित स्कूल में प्रोफेसर थे।

वृन्द सतसई : यह रेवरेंड जे० जे० मूर ने आगरे में मुद्रित कराई थी। पुनः यह १८५५ ई० में बम्बई से प्रकाशित हुई।

भागवत : इसका एक अनुवाद कैम्यूचिन मिशनरी मारकस अतुम्बा द्वारा इटैलियन में हो चुका है।

गोथन शीतला के टीका देने का वर्णन यह पंडित मगनलाल ने इलाहाबाद के चिकित्सक डा० वाकर के साथ लिखी है। १८५३ ई०।

वाहय प्रपंच दर्पण : मैन कृत लेसंस इन जेनरल नालेज का श्री मथुरा प्रसाद मिश्र कृत अनुवाद। रुड़की १८६१ ई०।

बालोपदेश : जे० पी० लेडली के निरीक्षण में प्रकाशित, ले० मनोहरलाल

आउट पोस्टड्रिल का अनुवाद : अंग्रेजी पुस्तक आउट पोस्टड्रिल का

अनुवाद महाराज रघुनाथ सिंह ने किया, १८६७ ई०। फिल्ड इक्सरसाईजेज एंड इवोलूशन आफ इनफैंटी का अनुवाद १८६८ ई०।

रतनलाल :

ब्रीफ सर्वे आफ ऐंसिऐंट हिस्ट्री फ्राम मार्शमन

एडिटेड बाई द रेवरेंड जे० जे० मूर का अनुवाद किया।

पं० रामरतन शर्मा :

पियसेस आउटलाइंस आफ जाग्रफी ऐंड एसटोनामी का अनुवाद किया। यह वही रचना है, जो आउटलाइंस आफ जाग्रफी एन्ड आफ द हिस्ट्री आफ हिंदुस्तान : कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा १८४० ई० में निकली थी।

ख्रीस्ट चरितामृत :

रचयित्ता पंडित रामजस १८३३ ई० में श्री रामपुर से मुद्रित। यह २६८ पृष्ठों का एक छोटा-सा सुन्दर ग्रंथ है जिसके एक नोट से पता चलता है कि सितंबर, १८३६ ई० में दो हजार प्रतियाँ मुद्रित हुई। दोहा-चौपाई में रचित।

राजा लक्ष्मण सिंह :

इंडियन पीनल कोड (१८६० ई० का ऐक्ट) के 'हिंदुस्तान का दण्ड संग्रह' नाम से हिंदी रूपान्तर किया : ऐ० ओ० ह्यूम के साथ।

स्किोपविथ्स मजिस्ट्रेट गाइड का शिक्षा डिप्टी मेजिस्ट्रेट नाम से अनुवाद किया, १८५३ ई० में आगरे से छपाया।

लल्लूजी लाल कवि :

इनके प्रेमसागर का तासी ने दिल्ली आगरे के हिंदुओं की हिंदुस्तानी में (खड़ी बोली में) अनुवाद कराया था।

बैताल पचीसी—होलिंग्स ने १८४८ ई० में कलकते से उसका पूरा अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। बी० सरकार ने उसका अंतपंक्ति अनुवाद और नोट्स सहित एक बड़ा अठपेजी संस्करण १८५५ ई० में लंदन से प्रकाशित किया। डी० फोर्ब्स ने कोश सहित इसका एक संस्करण १८५७ ई० में प्रकाशित किया।

इसकी रचना में विला की सहायता लल्लू जी ने की। अतः, विला ही रूपांतर के प्रधान रचयिता हैं। बाद में जैम्स मोअट ने इस रचना को दुहराने

और उसमें से प्रचलित हिंदुस्तानी में से अप्रयुक्त ब्रजभाखा शब्द निकालने का कार्य तारिणीचरण मित्र को सौंपा। 'वैताल पंच विशेति' शीर्षक से इसका ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिंदी से बंगला में अनुवाद किया।

लालकृत छत्रप्रकाश :

डब्लू आर० पोगसन ने लालकृत छत्रप्रकाश का 'ए हिस्ट्री आफ बरडल्स' नाम से १८२८ ई० में अनुवाद किया। मेजर डब्ल्यू प्राइस ने 'दि छत्र प्रकाश और बायग्राफीकल एकाउन्ट आफ छत्रसाल एटसेट्रा' शीर्षक के अंतर्गत पाठ दिया है।

तासी के अनुसार—पँवी ने ब्रजविलास का १८५२ ई० में पूर्ण अनुवाद किया था। तासी इसे लालच हलवाई की कृति १५२७ वि० की मानते हैं। यह विवादग्रस्त है।

विष्णुदास की स्वर्गरोहिणी पुस्तक :

इसके कलियुग वर्णन का अनुवाद तासी ने जूर्ना एसियातीक में दिया है। इसका पाठ तासी के हिंदुई के संग्रह 'क्रिस्टमेथिक' में है।

शिवबख्श शुल्क : प्रोर्वस आफ सोलूमन और (Sermon of the Mount) और संत मेथ्यू की धर्म पुस्तक के तेरहवें अध्याय का हिंदी छंदों में अनुवाद किया।

राज समाज लं० श्री राम सिंह भारतीय रिवाजों पर स्व० सर हेनरी इलियट को समर्पित।

सीतला प्रसाद तिवारी : ने सिद्धांत संग्रह नाम से 'सिनाप्सेस आफ साइंस' का अनुवाद किया। १८५५ ई०। यह बनारस के प्रो० फिट्ज एडवर्ड हाल के निरीक्षण में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने हरिश्चन्द्र की सहायता कवि वचन सुधा में संस्कृत से हिंदी में नाटकों का अनुवाद करने में की थी।

मुंशी शिव प्रसाद : तासी के अनुसार वे हिंदी के अत्यधिक पक्षपाती थे, डब्लू एडवर्ड्स कृत इंगलिश मैनुस्क्रिप्ट्स का अनुवाद बालबोध नाम से किया।

शिवप्रसाद नवलकिशोर द्वारा संचालित अवध अखबार के संपादक थे। १५ दिसम्बर, १९६८ ई० के अंक में उनका तखल्लुस वाहवी मिलता है। शिव प्रसाद की कुछ कविताएँ भी इसमें प्रकाशित हैं।

पंडित श्री लाल :

धर्मसिंह का वृत्तान्त : यह उत्तर पश्चिम प्रांत के सबसे बड़े निरीक्षक के कहने से पहले उर्दू में लिखी गयी : इस पुस्तक का मूल विचार जान म्योर का दिया हुआ है।

क्षेत्र चंद्रिका :

एच० एस० रीड द्वारा संपादित और श्री लाल द्वारा अनूदित।

रेखागणित सिद्धि फलोदय :

अंग्रेजी शीर्षक जायामेट्रिक एक्सरसाइजेज। यह रचना एच० एस० वीड, श्री लाल मुंशी सोहनलाल द्वारा हिंदी में लिखी गई है।

विद्यांकुर—

इसका चौबर्स कृत रूडिमेंट्स आफ नालेज है।

नहुषनाटक :

इसे तासी गोपीजन वल्लभ कृत मानते हैं और गोपालचन्द्र द्वारा दुहराया गया बताते हैं। क्या नहुष के लेखक गोपालचन्द्र नहीं हैं ?

तासी के परिशिष्ट १ से :

अर्थमेटिक : हिंदुई में रेव एम० टी० ऐडमकृत : कलकता १८०७ ई० यह रचना स्कूल बुक सोसाइटी का प्रकाशन है।

आर्टिकल्स आफ वार का संक्षेप—वर्क पैट्रिक और विरकेंस द्वारा अंग्रेजी, फारसी और हिंदुस्तानी में

Evangelum Lucae in Linguam Indostanicam translatum a Benj Schultzio, edidit Jo. Henr. Callen bergume Halae Saxonum.

बैनजमिल शुल्ज एक उत्साही प्रोटेस्टेंट मिशनरी थे, जो दक्खिन में रहे थे और जिन्होंने भारतवर्ष के इस भाग की बोलचाल की भाषा (Vulgaridiom) से भी अपने को परिचित कर लिया था। एक हिंदुस्तानी व्याकरण और इसी भाषा में पवित्र बाइबिल का अनुवाद उनकी देन है।

उपदेश कथा और इंगलैंड की उपाख्यान चुम्बक :

अर्थात् उपदेशपूर्ण कथाएँ और इंगलैंड के इतिहास से अवतरण Stewards Historical Anecdotes, with a sketch of the History

of England, and her connexion with India. रेवरेंड डब्लू टी० ऐडम द्वारा अनूदित ऐंग्लो हिंदवी कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के प्रेस में छपी, १८२५ ई० ।

जहरों का बयान :

पी० ब्रेटन द्वारा हिंदुस्तानी में प्रकाशित रचना दो संस्करण : एक फारस अक्षरों में और दूसरा देवनागरी अक्षरों में Tretise on Suspended Animation from the effects of submersion, hanging noxious air and lightning and the means employed for resustication. नेटिव मेडिकल इस्टीट्यूशन के विद्यार्थियों के लाभार्थ मुद्रित १८२६ ई०, एक प्लेट सहित संभवतः किसी भारतीय की सहायता से पी० ब्रेटन द्वारा हिंदुस्तानी में श्वासावरोध पर लिखित पुस्तक ।

धर्म पुस्तक का सार : ईसाई भजन, हिंदुई में, दोहा-चौपाई में रचित । न्यू टेस्टामेंट : मार्टिन के उर्दू अनुवाद से कलकत्ता आग्जिलियरी बाइबिल सोसाइटी के संरक्षण में रेवरेंड डब्ल्यू बाउले द्वारा हिंदुई में किया गया १८२६ ई० कलकत्ता । दि न्यू टेस्टामेंट आफ आवर लार्ड ऐंड सेवियर जीज़स क्राइस्ट श्री रामपुर के मिशनरियों द्वारा मूलग्रीक से हिंदुस्तानी में अनूदित - श्रीरामपुर १८११ चौ पेजी । न्यू टेस्टामेंट : हिंदुस्तानी में, हंटर द्वारा संशोधित कलकत्ता १८०५ चौपेजो 'प्रेरितों के कार्य' : Act of Apostles हिंदवी में लशिगटना Psalterium Davids in Liguam-Indostanicum translatum a Benjamin's Schultzio edidit J. H. Callen bergius Halai 1747 in–8.

फर्गुसन कृत ज्योतिष : ब्रूस्टर द्वारा संक्षिप्त और खे० मिल और जे० टिटलर की सहायता से मिस वर्ड द्वारा हिंदी में अनूदित, १८३४ ई०

फारसी और हिंदुस्तानी भाषाओं की लोकोक्तियों और लोकोक्तिपूर्ण वाक्यांशों का संग्रह : प्रधानतः स्व० टामस रोयबक द्वारा संग्रहित और अनूदित कलकत्ता १८२४ ई० । 'हिंदुस्तानी लोकोक्तियों वाला भाग ३९७ पृष्ठों का है। मेरा यह निश्चित विचार है कि भारतवर्ष की भाषाओं से संबंधित संग्रहों में हिंदुस्तानी लोकोक्तियों का यह संग्रह सबसे अधिक उपयोगी रचनाओं में से एक है ।

बाइबिल के अंश : दकन की हिंदुस्तानी में शुल्ज़ द्वारा अनूदित । १७४५-१७४७ ई०, अठपेजी ।

विजयपाल रासा : जे० एस० लशिंगटन 'जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ कलकत्ता' : १८३२ ई० पृ० २७३।

भारतीय मूर्तिपूजा का खण्डन :

इटैलियन में प्रत्येक पंक्ति के अनुवाद सहित, पिछली शताब्दी के लगभग उत्तरार्ध में पी० कोस्टोरी डा० वोर्जो द्वारा प्रकाशित किया गया।

मूलसूत्र (प्रारंभिक नियम) रो कृत हिंदी स्पेलिंग की पुस्तक : १८२०ई०।

मेथड्स ऑफ ट्रीटमेंट फॉर दि रिकवरी ऑफ पर्सेस डेड (मृत पुरुषों को जीवित करने के इलाज के नियम) डा० गिलक्रिस्ट द्वारा हिंदुस्तानी में अनूदित और टी मायर्स द्वारा फारसी तथा नागरी अक्षरों में लिखित।

होगांतक साट :

आंद्रे फोर्बस द्वारा प्रकाशित हिंदुस्तानी मैटीरियामेडिका १८११ ई०।

सेनानी पोथी :

इंगलिश और हिंदी में पैदल सिपाहियों के लिए संग्रहीत। भाग १ में स्क्वैड और कंपनी की कवायद का वर्णन है। भाग २ में मैनुअल ओर प्लेटून की कवायद के बोल जे० एस० हैरियट कृत : इसका पहला भाग १८२६ ई० में कलकत्ते में, दूसरा भाग १८२८ ई० में श्रीरामपुर से छपा। हैरियट की मृत्यु फरवरी, १८३९ को पेरिस में हुई।

हिंदुई कहावतें :

कलकत्ता १८३४ ई० 'हिंदुस्तानी बंगाली, फारसी और अरबी में-फो० वि० का० के विद्यार्थियों की परीक्षाएं और अभ्यास प्रो० गिलक्रिस्ट द्वारा प्रकाशित, १८०१, १८०२ ई० कलकत्ता।

रांगान्वित सार :

फो० वि० का० में हिंदी के प्रोफेसर के० जान टेलर की सहायता से लिखित मैटीरिया मेडिका' १८५१ ई०।

हिंदुई में, कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण के हिस्सों के संक्षिप्त विवरण सहित, ज्ञान के लाभों पर पुस्तक, कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी, १८३६ ई०।

आज़मगढ़ रीडर;

चुनार के रे डबलू बाउले द्वारा मूल अंग्रेजी से शुद्ध हिंदवी में अनूदित। इलाहाबाद।

इस रचना का मूल एच० सी० टुकर द्वारा विभिन्न अंग्रेजी लेखकों के चुने हुए अंशों का संग्रह है।

वुद्धि प्रकाश - और नूर उल अख़बार (उर्दू) के संपादक हैं। इसे अंग्रेजी गवर्नमेंट का प्रोत्साहन प्राप्त होता था। इंस्पेक्टर जनरल एच० एस० रीड की इच्छा के अनुसार ताजे समाचारों के इसमें अतिरिक्त इतिहास, भूगोल शिक्षा आदि पर अंग्रेजी से अनूदित छोटे-छोटे लेख भी प्रकाशित होते थे। इसमें Abrecrombic के Intellectual Powers से उद्धरण निकले थे।

तासी ने निम्नलिखित यूरोपियन विद्वानों के संदर्भ-ग्रंथों का आश्रय ग्रहण किया था :

General Hariott T Memoir on the Kabirpanth.
H. H. Wilson : Menior on the Religious Sectes of the Hindus.

मौटगोमरी मार्टिन : ईस्टर्न इंडिया

दार्ड : । हिस्ट्री (या व्यू) आफ दि लिटरेचर एट्सेटरा
ऑफ द हिंदूज़

विलडे : एट्रिटाइज़ ऑन दि म्यूजिक ऑफ हिंदुस्तान

लाशिंगटन : कलकत्ता इंस्टिट्यूशन।

एच० एस० रीड : रिपोर्ट ऑन दि इनडेजेनस एज्यूकेशन

सेडन : ऐडरेस ऑन दि लैंग्वेज ऐंड लिटरेचर ऑफ एशिया।

प्रौसीडिंग्स आफ दि वर्नाक्यूलर सोसाइटी प्रीमीटी ओरियंटानिस

सासरो : किस्तोमेती (विविध संग्रह)

लासन का प्राथमिक संग्रह।

हिस्ट्री ऑफ दि सेक्ट ऑव दि महाराजाज़

१. जे० लाग Descriptive Catalogues

२. जेकर : बिबलियोथेका ओरियंटालिस

३. टूवनर्स लिटररी रेकार्ड्स
४. सर डब्लू आउज़ले के संग्रह (ओरियंटल कालेज) का सूचीपत्र (स्टीवर्ट द्वारा तैयार किया गया)
५. जेनरल कैटेलाग ऑफ ओरियंटल वर्क्स : आगरा
६. टीपू के पुस्तकालय का सूचीपत्र
७. फो० वि० का०
८. स्पेंगर : ए कैटलग ऑफ दि लाइब्रेरीज़ आफ दि किंग आफ अवध
९. ए डेस्क्रिपिटव केटलाग आफ मेकेंजीज कलेकशन
१०. मार्सडन की पुस्तकों का सूचीपत्र
११. केटेलाग ऑफ नेटिव पब्लिकेशन्स इन द बांबे प्रेसीडेंसी
१२. हेमिल्टन और लेंग्ले (Langles) सड़क रिशल्यु के पुस्तकालय का सूचीपत्र
१३. ई एच पामर द्वारा प्रस्तुत प्राच्य हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र
१४. बिबलियोथेका रिशल्यू
१५. बिबलियोथेका स्प्रेंगरियाना ।

ब्रियान हाटन हागसन

हागसन नेपाल में १८२४-१८४० ई० की अवधि में पहले सहायक रेसीडेंट और फिर रेसीडेंट के पद पर थे । आप भारतीय भाषाओं के प्रेमी ही नहीं, उनके उन्नयन के समर्थक भी थे। नेपाल में अपने सेवाकाल का आपने सदुपयोग किया और वहाँ के अनेक संस्कृत, पाली और हिंदी ग्रंथों का संग्रह किया। इनके द्वारा संकलित हिंदी के पाँच हस्तलिखित ग्रंथ इंडिया आफिस लाइब्रेरी में हैं जिनका संक्षिप्त विवरण डा० शारदा वेदालेकार ने हिंदी अनुशीलन में प्रकाशित किया था । जब इस देश में शिक्षा-क्षेत्र में यह विवाद चल रहा था कि शिक्षा में अंग्रेजी ज्ञान को या प्राच्य भाषाओं के ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया जाय, उस समय १८३५ ई० में श्री रामपुर से प्रकाशित 'फ्रेंड इंडिया' में दो निबंध लिखे थे, जिनसे इनकी विद्वत्ता और आधुनिक भारतीय भाषाओं में गहरी निष्ठा का पता लगता है । आपका स्पष्ट मत था कि'यदि भारतीय जनता को

१. हिंदी अनुशीलन : वर्ष १०, अंक १

२. If the education of the Indian Peoples were to become a reality it must be conducted neither in English nor in the classical languages of India, but in the living vernaculars of each province.

वास्तव में शिक्षा देनी है, तो वह न अंग्रेजी में और न प्राचीन (क्लासिकल) भाषाओं में देनी चाहिए, वह जीवित देश भाषाओं में ही होना उचित है। देश-भाषाओं का इतना जोरदार समर्थन उस समय किसी ने नहीं किया था। यदि उस समय देश भाषाओं को माध्यम बना दिया गया होता, तो उसमें ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों का बहुत-कुछ अभाव दूर हो गया होता। हागसन की अकेले कंठ की पुकार उस समय शिक्षा के उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा सुनी नहीं गई, नहीं तो हिंदी की स्थिति आज बहुत भिन्न होती, तथा अन्य प्रादेशिक भाषायें भी अधिक समृद्ध हो गई होतीं।

हागसन ने १८४७ ई० में हिमालयवर्ती 'बोलियों के तुलनात्मक शब्द-समूह' पर एक भाषाशास्त्रीय निबंध एशियाटिक सोसाइटी-बंगाल के जर्नल-खंड १६ में प्रकाशित किया। इसमें भारत के उत्तरी-पश्चिमी परिवेश की अनेक हिंद-चीनी, मुंडा एवं द्रविड़ बोलियों का उच्च कोटि का विवरण दिया गया है। ग्रियर्सन आपकी विद्या और ज्ञान के बड़े प्रशंसक थे। इनका कथनहै 'जहाँ तक मुझे ज्ञात है, वह प्रथम अंग्रेज था, जिसने मध्य तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं के लिए द्रविड शब्द का प्रयोग किया है, पर आपने मुंडा को द्रविड़ भाषाओं में ही शामिल किया है। आज कल विद्वान् उसे भिन्न प्रकार की भाषा मानते हैं। 'उसके लेखों में भारत के मूल निवासियों की भाषाओं के बारे में काफी प्रमाण दिए गए हैं, जिनका महत्त्व कभी कम नहीं हो सकता। हागसन का अतिम निबंध १८५८ ई० में सोसाइटी के जर्नल में निकला था।

८. डा० मोनियर विलियम

आप बहुत दिनों तक ईस्ट इंडिया कालेज हेलबरी और ऑक्सफोर्ड में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। संस्कृत के विद्वान् और कोशकार मोनियर विलियम्स से सभी संस्कृत प्रेमी सुपरिचित हैं, पर यह कम लोगों को ज्ञात है कि आपने एक पुस्तक 'एन इज़ी इंट्रोडक्शन टू हिंदी' (सरल हिंदी प्रवेशिका) भी लिखी है। इसकी भूमिका में गदर का एक कारण यह बताया गया है कि अंग्रेज अपनी प्रजा को ठीक से नहीं जानते।

यदि हम अपनी भारतीय प्रजा को अब तक जिस रूप में जानते हैं, उससे बेहतर ढग से जानने की चेष्टा नहीं करते, और उनसे नौकर तथा नीच जाति का समझकर व्यवहार करते रहते हैं, तो हम उन्हे इस बात के लिए दोष नहीं दे

सकते कि वे हमसे संपर्क रखने में हिचकते हैं या भविष्य में किसी दिन उठकर कहें कि हम इन लोंगो को अपने ऊपर हुकूमत करने नहीं देंगे। हमारी भौतिक श्रेष्ठता, यदि पारस्परिक सहानुभूति, विश्वास और सद्भाव पर अवलंबित नहीं है, तो वह वालू पर बनी इमारत से बेहतर नहीं होगी, जिसे फिर दूसरा अंधड़ गिरा नहीं देगा। भले ही हम कानून बनाएँ, न्याय करें, रेल रोड बिछा दें, देश की उत्पादन-क्षमता को बढ़ा दें, पर जब तक हम देशी जनों को समझने की चेष्टा नहीं करते, यदि उनमें हम आदर की कोई बात नहीं देखते, यदि हम अपने धार्मिक और सामाजिक चरित्र में अपने को अनुकरणीय नहीं दिखलाते, तो हम इस बात की भी कभी आशा नहीं कर सकते कि वे हमारे प्रति सद्भाव और आदर भाव दिखलाएँगे। अतः आपने प्रजा को जानने के लिए उसकी भाषा के ज्ञान की उपयोगिता को साधन माना। आपका विचार है कि हम दोनों एक-दूसरे को ठीक से जानें औरइसके लिए बोलचाल की भाषा का उचित व्याकरणिक ज्ञान आवश्यक है। मोनियर विलियम का यह सरल सुवोध व्याकरण अंग्रेजों के लिए लिखा गया है, अतः रोमन लिपि का प्रयोग किया गया है। पुस्तक प्रवेशिका मात्र है, कोई विद्वत्ता पूर्ण कृति नहीं। क्रिया-प्रकरण कैप्टन जार्डन के उर्दू व्याकरण, काल-विवेचन डा० डंकन फोरब्स के हिंदुस्तानी ग्रामर और पाठ, शब्दावली, संवाद आदि प्रो० डाटन माथर की पुस्तक के आधार पर है।

लिंग का विवेचन प्रत्ययों के आधार पर करने की चेष्टा कीगई, पर अपवादों की बहुलता के कारण यह विषय कठिन हो गया है। चूँकि हिंदुस्तानी में अरबी-फारसी के हजारों शब्द चलते हैं, अतः संस्कृत मूलज और विदेशी शब्दों के लिए एक से ही नियम वन नहीं पाते। तथा प्रत्येक नियम के बहुतेरे अपवाद निकल जाते हैं। इसमें हिंदुस्तानी शब्दों की व्युत्पत्ति भी वतलाई गई है। यूरोपियन लेखक प्रायः वाक्य-विन्यास का अच्छा विवेचन करते हैं और यह गुण इस व्याकरण में भी है। सब मिलाकर अंग्रेजों के लिए यह एक अच्छी हिंदी-व्याकरण-प्रवेशिका है।

मोनियर विलियम्स की व्याकरण-बिषयक तीन पुस्तकें हैं—

१. रुडिमेंट्स ऑफ हिंदुस्तानी ग्रामर, १८५८ ई० में कैल्टेन हम से प्रकाशित।

२. ऐन ईज़ी इंट्रोडकशन टु दि स्टडी ऑफ हिंदुस्तानी, १८५८ ई०

३. हिंदुस्तानी प्राइमरः—१८६० ई०, लंदन।

४. ऐ प्रैक्टिल हिंदुस्तानी ग्रामर, १८६२ ई०, लंदन।

९. जान साहेब

ये बिहार राज्य के बरियाही कोठी के मैनेजर थे। इनके जन्मकाल का पता नहीं है, पर अनुमानतः इनका काल १८५० ई० के लगभग जान पड़ता है। इनके जीवन में एक ऐसी घटना घटी कि ये परमहंस लक्ष्मीनाथ गोस्वामी के प्रभाव में आकर वैष्णव भक्तों के समान भजन रचने लगे। एक बार जान साहेब आवश्यक कार्य से अपनी पत्नी को यहीं छोड़ कर स्वदेश गए। उन्होंने पत्नी को बचन दिया था कि मैं शीघ्र ही लौटूंगा। पर वे समय पर नहीं लौट सके। उनकी मेम साहेब इस कारण बहुत चिंतित हो गईं। तब उनके हिंदुस्तानी कर्मचारियों ने उनसे कहा कि गोस्वामी जी सिद्ध पुरुष हैं और यदि आप उनसे मिलें, तो वे योगबल से साहेब का हाल बता सकते हैं। जान साहेब की पत्नी आतुर होकर गोस्वामी जी के स्थान पर गईं और पति के कुशल क्षेम के संबंध में जिज्ञासा की। तब लक्ष्मीनाथ जी ने योगबल से उन्हें बताया कि साहेब रास्ते में हैं और परसों बारह बजे दिन में पहुँच जाएँगे। संयोग ऐसा हुआ कि योगी की वाणी सत्य हुई और ठीक समय पर साहेब अपने घर आए और अपनी पत्नी से मिले। जब पत्नी ने सिद्ध पुरुष गोस्वामी जी की भविष्यवाणी की चर्चा की तो वे चकित हो गए। इसके बाद जान साहेब ने गोस्वामी जी के चरणों में अपने को अर्पित कर दिया। इस प्रकार यह अंग्रेज उन योगी का शिष्य हो गया और भारतीय धर्मग्रंथों के अध्ययन में प्रवृत्त हो गया।

अब जान साहेब एक हिंदू भक्त के समान भजन करने लगे। वे गोस्वामी जी के अनन्य श्रद्धालु भक्त थे। उन्होंने बहुतेरे पदों और गीतों की हिंदी में रचना की है। श्रीराम कृपाल चौधरी राकेश ने धर्मयुग में (११ अक्टूबर, १९६४ ई० का अंक) इस अंग्रेज भक्त का एक पद उद्धृत किया है, जिससे कवि की रामभक्ति का परिचय मिलता है। भाषा और शैली का परिमार्जित रूप देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। यह इसका सूचक है कि जान साहेब की प्राणधारा पूर्णतः वैष्णव कवियों के समान है।

झूलत जानकी राम हिलोरा, झूलत जानकी राम।
रेशम डोर पाट चंदन के कंचन खम्भ समान,
एक ओर श्री लच्छ कच्छ धरि कर जोड़े हनुमान।

शत्रुहन कर चमर विराजित भरत लिए करपान,
'जान' अधम अब हुलसि विलसि कह लेत मलारी तान ।।

कहा जाता है कि जान ने सैकड़ों पद रचे थे। पर उनका संकलन क्या हो गया, इसका कुछ पता नहीं है।

अपने गुरु के निधन के समय अपने उपस्थित न हो सकने की व्यथा को कवि ने इस दोहे में व्यक्त किया है :

लक्ष्मीपति सुरपुर गए जान न दीन्हों भेट
दाग हृदय पर पड़ि गयो अब नहिं जाई मेंट ।

जब जान साहेब इस देश को छोड़ कर अपनी जन्मभूमि लौटने लगे तब पंचों को प्रणाम कर सबसे क्षमा याचना की :

जान अधम अब जात है पंचन को परनाम,
कहा सुना सब क्षेमि हो यही बड़ों के काम ।।

अंग्रेजों ने इस जान साहेब का उल्लेख नहीं किया है, कदाचित् इसका कारण यह है कि हिंदू रंग में पूरे रंग चुके थे।

१०३ जान क्रिश्चियन

ईसाई धर्म के फैलने से ईसाई जनों का साहित्य कुछ ईसाई भक्त कवियों द्वारा रचा गया। ऐसे अनेक भजन ईसाई प्रार्थना गीतों के अनुवाद हैं तथा उनका हिंदी पिंगल और काव्य-प्रवृत्ति की दृष्टि से विशेष मूल्य नहीं है। केवल कुछ भजन ही ईसाइयों के बाहर वर्ग में प्रचलित हुए। ऐसे भजन लेखकों में जान साहेब अपने समय में सबसे अधिक लब्ध-प्रतिष्ठ ईसाई कवि हुए। श्री हरिश्चन्द्र में इनकी रचनाओं से कुछ उद्धरण हिंदी भाषा नामक पुस्तक में दिये हैं, जिनसे इनकी भाषा का अच्छा ज्ञान प्रकट होता है। ग्रियर्सन का कथन है कि मेरे परिचितों में यही एक मात्र यूरोपियन है, जो हिंदी लेखक के रूप में सफल हुये हैं और श्रेष्ठ देशी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि उनके भजन भाषा की दृष्टि से निर्दोष रचनाऐं हैं। भारतवासी उनके भजनों की बहुत प्रशंसा करते हैं, पर उनका भी विचित्र भाग्य है कि अपने उचित प्रयोजन के अतिरिक्त वे विद्यापति और सूरदास के वैष्णव पदों के साथ बिहार में सर्वत्र नाचवालियों द्वारा भी गाये जाते हैं। इन पदों की अभिव्यक्त इतनी सरल

और मि० क्रिश्चियन ने पुराने कवियों की शैली को ऐसा पकड़ लिया है कि इन नाचवालियों को यह पता ही नहीं लगता कि वे इसाई भजन गा रही हैं ।[1]

जान का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है 'मुक्ति मुक्तावली' जिसमें ईसा का चरित पद्य में वर्णित है । आपका जन्मकाल ज्ञात नहीं हो सका, पर आपका निधन १८८३ ई० में हुआ था ।

बैपटिस्ट मिशन प्रेस से दैनिक पूजा के प्रार्थना गीतों का एक संग्रह (ए कलेक्शन आफ हिम्स फॉर डेली वर्शिप) प्रकाशित हुआ । यह अत्यंत लोकप्रिय हुआ । इसका चतुर्थ संस्करण १८७९ ई० का मिलता है । इस संग्रह में जान पार्सन और जान क्रिश्चियन के भजन थे । एक 'जान शतक' पुस्तक, आर्फन प्रेस, मिर्जापुर से भी प्रकाशित हुआ था ।

११. जान बीम्स (१८३७-१९०२ ई०)

बीम्स का जन्म २१ जून, १८३७ ई० को ग्रीनविच अस्पताल में हुआ था। वे संत जेम्स पिकेडिली के उपदेशक (प्रवीर) रेवरेण्ड थामस बीम्स के ज्येष्ठ पुत्र थे। मर्चेंट टेलर स्कूल में आरंभिक शिक्षा पूर्ण कर वे हेलीवरी कॉलेज में १८५७ ई० में उच्च शिक्षार्थ आए । यहाँ उन्हें प्राचीन भाषाओं, संस्कृत और फारसी में पदक प्राप्त हुए । १८५८ ई० में सिपाही-विद्रोह के बाद वे भारत में आए और १८५९-६१ ई० में पंजाब में रहे । वहाँ से आप बंगाल स्थानांतरित हुए । वहाँ वे १८६७ ई० में कलक्टर, १८८१ ई० में कमिश्नर और मेम्बर बोर्ड ऑफ रेव्यून्यू का

1. He is the only European I have ever met who has achieved any success as a Hindi writer, and the best native scholars admit that many of his hymns are faultless composition, so far as their language goes. Natives of India much admire his works and they have had a strange fate, far in addition to being put to their legitimate purposes. They are sung by nach girls all over Bihar, together with Vaishnva songs of Vidyapati and Surdas. The expression in the songs are so freely native and Mr. Christian has so cleverly caught the style of those old master that these girls have no idea that they are singing Christian hymns. JRAS, 1887.

कार्यभार दो बार संभाला। १८९३ ई० में इंडियन सिविल सर्विस से बीम्स रिटायर हुए।

जब बीम्स १८६६ ई० में चम्पारन में थे उसी समय आपका एक निबंध जे० आर० एस० बी० में हिंदुस्तानी के सरकारी रूप में अरबी तत्त्व रखने के प्रश्न पर प्रकाशित हुआ था। इस निबंध के प्रकाशन के बाद प्रबल विवाद उठ खड़ा हुआ, जिसमें अनेक विद्वानों ने भाग लिया। इस विवाद में ग्राउज ने हिंदी का पक्ष लिया था। इस विवाद के लिए निम्नलिखित निबंध देखें।

१. आउट लाइंस ऑफ प्ली फॉर दि अरेबिक एलिमेंट इन आफिशियल हिंदुस्तानी—जे० आर० ए० एस० १८६६, पार्ट १।

२. जे० आर० ए० एस० १८६७ ई०, पे० १४७।

३. क्वाटिरली रिव्यू नं० ३३४।

४. जे० एफ० आ० ग्राउज का निबंध-सम आब्जेक्शन्स टु दि न्यू माडर्न स्टाइल ऑफ आफिशियल हिंदुस्तानी—जे० आ० ए० एस० १८६६ ई० पे० १८१।

५. बंगाल मैगजिन—जनवरी १८८४ ई०

इस प्रसंग में हरिश्चन्द्र मैगजिन में काशीनाथ खत्री का लेख 'इज गवर्नमेंट गिविंग अनड्यू इंपॉरटेंस टु हिंदी' तथा पिनकाट द्वारा संपादित लक्ष्मण सिंह कृत शकुन्तला, १८७६ ई० का आमुख भी द्रष्टव्य है। बीम्स के विचार में हिंदुस्तानी अरबी या फारसी के शब्द बहुत दिनों से चले आते हैं और शासन-संबंधी, न्याय-विभाग और माल के बहुतेरे शब्द हिंदुस्तानी में इतने अधिक प्रचलित हैं कि उन्हें ही जनता भी अधिक समझती है, अतः हिंदुस्तानी में उनकी आवश्यकता है। इस मत का खंडन टी० ग्राहम वेली और अन्य विद्वानों ने सबल तर्कों के साथ दिया।

१८६५ ई० में काल्डवेल का 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' प्रकाशित हुआ था और इसे देखते ही बीम्स के मन में विचार उठा कि इसी ढर्रे पर आधुनिक आर्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। अतः बीम्स ने अपना प्रसिद्ध 'व्याकरण कम्पेटेटिव ग्रामर ऑफ दि एर्यन लैंग्वेज ऑफ इंडिया' (भारत की आर्यभाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण) लिखने

का निश्चय किया। इस पुस्तक के तैयार करने में आगामी पाँच वर्षों का सारा अवकाश बीम्स ने लगाया और इस पुस्तक के प्रकाशन बाद बीम्स का यश भारत की आधुनिक आर्य-भाषाओं के विद्वान् के रूप में सर्वत्र फैल गया। १८७७ ई० में बीम्स की एक छोटी पुस्तक ' ाइन ऑफ इंडियन फिलालजी' (भारतीय भाषाशास्त्र की रूपरेखा) निकली। यह पुस्तक भारतीय भाषाओं का प्रथम वैज्ञानिक परिचय है। डा० ग्रियर्सन ने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा है कि 'यद्यपि अब यह पुस्तक अवश्य ही पुरानी पड़ गई है, पर इसके कुछ अंश विशेषत: वह अध्याय एक नवीन भाषा के अध्ययन और आलेखन के संकेत (हिंट्स आन आबजरविंग ऐन्ड रिकार्डिंग न्यू लैंग्वेज) आज भी उतना मूल्यवान् है जितना प्रथम प्रकाशन के समय। १८६८ ई० में ही बीम्स के चम्पारन में बोली जाने वाली भोजपुरी और नेपाल के भाषा-विषयक निबंध निकले थे।

१८५५ ई० तक बीम्स एशियाटिक सोसाइटी से संबंधित थे और उसकी पत्रिका (जर्नल) में उनके चंद बरदाई और अन्य प्राचीन हिंदी कवियों पर निबंध प्रकाशित हुए थे। १८६६ ई० में बीम्स ने सर हेनरी ईलियट के भारतीय शब्दावली का परिशिष्ट कोश (सप्लीमेंटल ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्मस्, का सस्करण निकला। बीम्स का तुलनात्मक व्याकरण तीन खण्डों में १८७२, १८७५ और १८७९ ई० में प्रकाशित हुआ था। १८७२ ई० भाषा शास्त्रीय अनुशीलन की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व का वर्ष सिद्ध हुआ। उसी वर्ष भाषा शास्त्रीय महत्त्व के तीन ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। पहला ग्रंथ था डा० ट्रम्प (Trumpp) का 'सिंधी ग्रामर', डा० हार्नली के 'गौडीय भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' (ए कंपेरेटिव ग्रामर आफ द गोडियन लैंग्वेजेज' और बीम्स के ग्रंथ का प्रथम खंड। इन तीनों विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से अपने कार्य किए थे, पर सबने इस बात पर जोर दिया कि आधुनिक भाषाओं के विकास में प्राकृतों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है और इस विकास की वैज्ञानिक प्रक्रिया पर इन विद्वानों ने प्रकाश डाला। बीम्स ने अपने आत्म-चरित में लिखा है कि मेरे व्याकरण का इंगलैंड में अच्छा स्वागत हुआ और यूरोप में भी इसकी अच्छी समीक्षाएँ निकलीं। इससे मुझे भाषाशास्त्री होने का सुयश मिला। प्रथम खंड के प्रकाशक थे ट्रूब्नर। इसे विद्वानों ने बहुत महत्त्व दिया और वह अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में आ गया। डा० ट्रम्प की पुस्तक

एक भाषा विशेष से संबद्ध थी। डा० हर्नले के निबंध आखिर निबंध ही थे, जो १८८० ई० में प्रकाशित उनके ग्रंथ के प्रवेशक मात्र थे। इस प्रकार से बीम्स का यह ग्रंथ ही तब तक प्रकाशित ग्रंथों में सर्वाधिक मूल्यवान् था और तब से आज तक यह ख्यात है। इसके आमुख में बीम्स का कथन है। 'मेरा यह कार्य अच्छा है या बुरा, इस पुस्तक को मैं तुलनात्मक व्याकरण बनाना चाहता था और इसे मैंने तदनुसार यही नाम दिया है। आत्म-चरित (मेमायर्स ऑफ-ए बंगाल सिविलियन) में बीम्स लिखते हैं अब मैंने अपना भारतीय की आधुनिक भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण भी आरंभ कर दिया था और इसे मैंने १८ मास में नित्य नाश्ते के पहले सुबह दो घंटे, ८ से १० बजे, तक नित्य समय देकर पूरा किया था। अपने अफसरी 'ड्यूटी' में से मैं इतना ही समय बचा सकता था। यह ज्यादा भारी तो नहीं था, पर निरंतर का काम था।

इस कार्य में अपनी योग्यता के संबंध में वे कहते हैं, 'भारत में १२ साल तक निवास, जिसमें अफसर के पद पर पंजाब, बिहार, बंगाल और उड़ीसा में था और 'हिंदुस्तान खास' (पश्चिमोत्तर प्रान्त) में लम्बे अर्से तक रह जाने से मुझे पंजाबी, हिंदी बंगला और उड़िया से परिचित करा दिया, इन सबको समय-समय पर मैं बोलता और पढ़ता-लिखता रहा हूँ। मराठी, सिंधी और गुजराती पश्चिमी भाषाओं को मैं केवल पुस्तकों के जरिये उस जानकारी से, जो मुझे अपने दयालु पत्राचार करने वालों से, जानता हूँ।

बीम्स और ग्रियर्सन

दोनों में परस्पर श्रद्धाभाव था। बीम्स सिविल सर्विस में ग्रियर्सन से वरिष्ट और उच्च पद पर थे। ग्रियर्सन बताते हैं—

'मुझे अब तक उनसे (बीम्स) से प्राप्त प्रथम पत्र का स्मरण है, जो मुझे १८७८ या १८७९ ई० में मेरे एक पत्र के उत्तर में मिला था, जिसमे मैंने मैथिली व्याकरण के एक बिंदु पर पूछा था। उन दिनों भारत में भाषा-विज्ञान लोकप्रिय नहीं था और जो सिविलियन देश की भाषाओं के सबंध में सूचनाओं का संग्रह करते थे, उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था मानो वे उचित कर्त्तव्य से बचना चाहते हों। बीम्स का यह पत्र, ऐसे व्यक्ति का पत्र होने के कारण, जो अपनी सर्विस में मुझसे कहीं ऊँचे पद पर था, मेरे लिए

१. मेमायर्स पेज, २०२।

२. वही पेज, १९३-१९४।

वह प्रथम उत्साहवर्धक शब्द था, जो किसी अफसर से अपने अनुशीलन के संबंध में मुझे मिला था ।[1]

बीम्स भारतीय आर्य भाषाओं की भाषिकी के संस्थापक कहे जाते हैं। उनके पूर्व विलियम केरे और बाद में मेजर रावर्ट लीथ ने १८३८-४३ ई० में भारतीय आधुनिक भाषाओं के कुछ व्याकरण लिखे थे। उसके बाद सर एर्स्किन पेरी (Erskin Perry) और आ० ए० एल० स्टीफेंसन ने भारत की भाषिक स्थिति का परिचय दिया था। उसके बाद बीम्स की ही भारतीय भाषाओं पर पुस्तक प्रकाशित हुई थी। जिस प्रकार फ्रांज बाप (Franz Bopp) ने प्राचीन इंडो-यूरोपियन के तुलनात्मक अध्ययन की नींव १८१६ ई० में डाली, उसी प्रकार बीम्स ने अपनी कृति भारतीय 'आधुनिक आर्यभाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन' के सिद्धांतों को सुनिश्चित रूप दिया। बीम्स के इस आरंम्भिक कार्य को उनके अनुगामियों ने अग्रसर किया। हार्नले, ट्रंप, केलाग, प्लैट और ग्रियर्सन आधुनिक भाषाओं के शास्त्रीय पद्धति पर विवेचन-विश्लेषण करने वाले विद्वानों ने बीम्स द्वारा प्रवर्तित अनुशीलन को विस्तृत किया। जो दीप बीम्स ने जलाया था, वह बुझा नहीं है। उसी दीप से अनेक दीपक जल चुके हैं, जिनसे भारत में भाषा-विज्ञान का क्षेत्रआलोकित हो उठा है।'[2]

बीम्स के उस तुलनात्मक व्याकरण और हार्नले के १८८०ई०में प्रकाशित गौडीय भाषाओं के साथ पूर्वी हिंदी का तुलनात्मक व्याकरण 'ग्रियर्सन के शब्दों से ये दोनों सुन्दर कृतियाँ, जो अपने रूप में अत्यधिक श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण हैं, भारतीय आर्यभाषाओं के विकास तथा पारस्परिक संबंधों के विषय में होने वाले अनुसंधानों की मुख्य आधार शिला बन गयी।'[3]

बीम्स के तुलनात्मक व्याकरण का हिंदी में अनुवाद अपेक्षित है। इस कृति से हिंदी पाठकों को ज्ञात होगा कि लगभग सौ वर्ष पूर्व इस विदेशी विद्वान् ने हिंदी भाषा के विकास की पृष्ठभूमि में हिंदी व्याकरण का कैसा तात्त्विक विवेचन

---

१. आउट लाइंस आफ इंडियन फिलालाजी एंड अदर फिलालाजिकल पेपर्स विथ इंट्राडक्टरी एसे बाई सुनीति कुमार चटर्जी ऐड० जी० ए० ग्रियर्सन, पे० ३-५।

२. जान बीम्स फाउन्डर आफ इंडो-एर्यन लिंगिवस्टिक्स—एस० के० चटर्जी, —उसी पुस्तक में।

३. भारत का भाषा-सर्वेक्षण। पृष्ठ ३२-३३

किया था। तद्भव और तत्सम, देशी-विदेशी तत्त्व पर इसके पूर्व ऐसा विशद विवेचन नहीं हुआ था। अब तक हिंदी के विकास में प्राकृतों और अपभ्रंशों के योगदान पर ठीक प्रकाश नहीं डाला गया था। हिंदी के सामान्य छात्रोपयोगी व्याकरण मात्र विदेशियों ने लिखे थे, ऐतिहासिक भाषिकी की प्रकिया के सिद्धांतों के आधार पर हिंदी व्याकरण का विवेचन नहीं हुआ था, अतः यह कार्य प्राथमिकता तथा बहुमुखी होने के कारण विशेष प्रशंसनीय है। वास्तव में, ग्रियर्सन ने इस कार्य की गुरुता की दृष्टि से बीम्स को हिंदी का बॉप माना है।

१२. जान ब्लाख

ब्लाख 'भारतीय आर्य भाषा' (इंडोएर्यन) के लेखक के रूप में आधुनिक भाषाशास्त्रियों में परम प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में अनेक प्रकार के शब्दों के आधार पर भारतीय आधुनिक भारतीय भाषाओं का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक इस विषय पर प्रामाणिक मानी जाती है।

इस पुस्तक की यह विशेषता है कि लेखक ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि संस्कृत शब्दों के कुछ तत्त्व मुंडा बोलियों के कुछ शब्दों के कारण हैं। साथ ही, कुछ शब्द संस्कृत में द्रविड़ भाषाओं से गए हैं। मुंडा शब्दों का ग्रहण और उनकी शुद्धि सुदूर प्राचीन काल में ही हो गया होगा। इस लेखक का ऐसा मत जान पड़ता है कि जब आर्य भारत में आए तब यहाँ उत्तर भारत में मुंडा जाति पूर्व से विद्यमान थी और इनके प्रभाव से कुछ शब्द संस्कृत में पहुँचे। इसी प्रकार दक्षिण के द्रविड़ों से संपर्क होने पर अनेक द्रविड़ शब्द भी प्रविष्ट हुए। मूल प्रश्न यह है कि जब तक हम मुंडा शब्दों के प्राचीन रूप से अवगत नहीं हैं तथा उनका कोई ऐतिहासिक विकास ज्ञात नहीं है, तब मात्र उनके वर्त्तमान रूपों के आधार पर यह मान बैठना कि वे संस्कृत में लिए गए थे, बहुत वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। द्रविड भाषाओं का प्राचीन रूप ईसा के आरंभ काल का मिल भी जाता है, पर मुंडा भाषा का तो मध्ययुगीन रूप नहीं मिलता, फिर हम उनके उस रूप का अनुमान कैसे करें, जो वैदिक युग में संस्कृत का मिलता है। जहाँ संस्कृत बन रही थी, उस सारस्वत या पंचनद प्रदेश में मुंडा जाति की विद्यमानता के वहाँ क्या अवशेष मिलते हैं? इसी प्रकार संस्कृत में द्रविड़ तत्त्व भी एक उलझा हुआ प्रश्न है, जिस पर संम्यक् विवेचन आवश्यक है। पुष्ट प्रमाणों के आधार पर ही नवीन

सिद्धांत टिक सकते हैं, इनके अभाव में वे नवीनता के कारण कुछ काल हमें झकझोर कर नए ढंग से सोचने को ही प्रेरित करते हैं, पूर्ण समाधान नहीं कर पाते।

१३. ग्राउज

१८६७ ई० में एशियाटिक सोसाइटी को चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो के प्रकाशनार्थ एक नोट लिख कर दिया था। आगरा कालेज लाइब्रेरी में रक्षित हस्तलिखित पृथ्वीराज रास ग्राउज़ के लिए उपलब्ध कर उसके पाठ के अध्ययनार्थ उपलब्ध किया गया। उसी समय बा० शिवप्रसाद द्वारा महाराजा काशी नरेश के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति भी प्राप्त की गई। आगरा की प्रति में १६५८ पत्राकार (फेलियाँ) पृष्ट थे। इसमें ६८ सर्ग थे। यह प्रति कर्नल टाड की प्रति के समान थी। काशी की प्रति का नाम 'पृथ्वीराज रायसा' जिसमें ७८६ आकृदी पेज थे। यह १६०० सं० की प्रति थी। इसमें दो खंड हैं—

१. महोबा का समय और
२. कन्नौज का समय।

१८६६ के ज० रा० ए० सो० के अंकों में इस ग्रंथ के पाठ के विषय में वाद-विवाद चला। ग्राउज़ और बीम्स दोनों विद्वान् अपने-अपने पाठ की प्रामाणिकता सिद्ध करते थे।

१४. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (१८५१-१६४१)

जीवन-वृत्तांत :

ग्रियर्सन का जन्म डबलिन में राथफर्नहम कुल में ७ जनवरी, १८५१ ई० को हुआ था। गृजवटी के सेंट बी० ओ० के० स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा के बाद आपने डबलिन के ट्रिनिटी कालेज से बी० ए० किया और फिर कैम्ब्रिज में उच्च शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। वहीं मीर औलाद अली से हिंदुस्तानी और रावर्ट ऐटकिंसन से संस्कृत सीखी। १८७१ ई० में ग्रियर्सन भारत आए एवं उनकी प्रथम नियुक्ति जैसोर (बंगाल) में हुई। दो साल बाद दुर्भिक्ष में ग्रियर्सन तिरहुत भेजे गए। वहाँ श्री लाल झा के सहयोग से आपने 'कनारपी घाट की लड़ाई' (बैटिल आफ कनारपी घाट) का संपादन किया। नौकरी के आरंभ ही से उन्होंने अपने अध्ययन का मुख्य विषय भारतीय-आर्य भाषाओं को

चुना। १८७७-१८८८ ई० के बीच वे डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट, स्कूल इंस्पेक्टर और अफीम के एजेंट के रूप में अनेक स्थानों पर कार्य करते रहे। उनका कार्य क्षेत्र उस समय के बंगाल (याने, बंगाल, बिहार और उड़ीसा) में रहा : आपने संस्कृत-प्राकृत के साथ ही हिंदी, बंगला लोर बिहारी भाषाओं के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया। १८७७ ई० में वे पुनः तिरहुत में मधुबनी (जिला दरभंगा) में एस० डी० ओ० नियुक्त होकर गए। यहाँ तीन वर्षों की अवधि में स्थानीय मैथिल पंडितों की सहायता से आपने मैथिली व्याकरण तैयार किया। प्राचीन भारतीय रीति के अनुसार वे मैथिल पंडितों को दक्षिणा रूप में दो रुपए और जोड़ा धोती देकर सत्कृत करते थे। १८८० ई० में वे इंगलैंड गए और वहाँ विवाह किया। वहाँ से वापस आने पर वे स्कूल इंस्पेक्टर हुए और इस समय कैथी टाइप ढलवा कर स्कूलों में प्रचलित कराने में योग दिया। कैथी को नागरी की तरह सुडौल रूप देने का कार्य ग्रियर्सन ने ही किया। उसके बाद पटना में ज्वायंट मैजिस्ट्रेट हुए। इसी समय अपनी प्रसिद्ध कृति 'पैजेंट लाइफ़ इन बिहार' (बिहार में कृषक जीवन) की रचना की। यह पुस्तक आज तक बिहार के कृषकों और ग्रामीण शिल्पियों के संबंध में, उनके पेशे की विशिष्ट शब्दावली, विविध उपकरणों और हथियारों आदि के संबंध में अब तक प्रामाणिक सामग्री के चयन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अप्रत्यक्ष रूप से यह बिहार के जातीय मानस का दर्पण है। ग्रामीण शब्दावली का यह कोश है, जो जातिशास्त्रीय और भाषाशास्त्रीय दोन ए महत्त्वपूर्ण है।

जब वे उत्तर बंगाल में बदल कर आए तब रंगपुर की बोली पर, उस जिले के गीतों और पद्यों का संकलन कर एक परिचायक निबंध १८७७ ई० के अ० ए० सो० ब० में प्रकाशित किया। बिहारी भाषाओं में उनकी रुचि अधिक हो गई। इसका फल है 'बिहारी भाषा की सात बोलियों और उपबोलियों का व्याकरण'। यह पुस्तक बिहार की बोलियों का प्रथम व्यवस्थित व्याकरण है, जिसमें अन्य भारतीय आर्य भगिनी भाषाओं के साथ उनके संबंध पर प्रकाश डाला गया है। १८८० ई० में उन्होंने मैथिली व्याकरण प्रकाशित किया था। इसी में विद्यापति के गीतों का पहला संग्रह निकला। यह जे० ए० एस० बी० के विशेषांक रूप में प्रकाशित हुआ था। ग्रियर्सन की अधिकतर रचनाएँ इसी जर्नल में प्रकाशित हुआ करती थीं।

१८८६ ई० में वियना में प्राच्य विद्या का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। ग्रियर्सन ने उस अधिवेशन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस सम्मेलन ने भारत सरकार के एक प्रस्ताव[1] द्वारा यह अनुरोध किया कि इस देश की भाषाओं का सर्वेक्षण करना आवश्यक है। इसी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए भारत सरकार ने यहाँ की भाषाओं के सर्वेक्षण के लिए योजना बनाई। इसके डाइरेक्टर (निर्देशक) ग्रियर्सन नियुक्त हुए। ग्रियर्सन ऐसा सुयोग्य निर्देशक पाकर यह महान् कार्य संपन्न हुआ। भारत ऐसे विशाल देश की सैकड़ों भाषाओं का विधिवत् अनुशीलन करने के लिए यह आवश्यक था कि सबके नमूने संग्रहीत हों और उनका शास्त्रीय रीति से विवेचन किया जाए। १८८८ ई० से १९०३ ई० तक सामग्री-संचयन का कार्य चलता रहा। इस कार्य की विधि पर हम ग्रियर्सन का विवरण आगे देंगे। यही वह काल है जब १९ वीं शती के अंतिम दशक में ग्रियर्सन के बिहारी पूर्वी और पश्चिमी हिंदी भाषाओं और उपभाषाओं-संबंधी महत्त्वपूर्ण निबंध निकले, जिनके द्वारा अर्जित यश से ग्रियर्सन विश्व के महान् भाषातत्वज्ञों की पंक्ति में अधिष्ठित है। १८९५-९६ ई० में आपने अपना 'निबंध' आधुनिक भारतीय आर्य जनभाषाओं का ध्वनितत्व' जर्मन ओरियंटल सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित कराया। १८९२ ई० में ग्रियर्सन की बदली हवड़ा में हुई। यहाँ आने पर आपने बिहारी सतसई, पद्मावत्, भाषाभूषण और रामायण का संपादन किया।

१९०३ ई० में ग्रियर्सन भारत से लौट गए। उसके बाद 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया का प्रकाशन आरंभ हुआ। यह सर्वे भारत की भाषिक स्थिति का प्रामाणिक विश्वकोश (ज्ञानकोश) माना गया है और उनमें एकनिष्ठ भाषाप्रेम, श्रम-साधना का अभूतपूर्व विग्रह है। इस 'सर्वे' में उनके प्रमुख सहायक थे स्टेनकोनो और इस महाग्रंथ के पंचमांश के लेखन का श्रेय उनको ही है।

उनकी सेवाओं को सरकार ने सी० आई० ई० की उपाधि देकर मान्यता दी। १८९४ ई० में हॉल विश्वविद्यालय ने आपको पी०-एच० डी० की उपाधि से विभूषित किया। बाद में १९०२ ई० में डबलिन यूनिवर्सिटी ने डी० लिट० की उपाधि से गौरवान्वित किया। सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद भी उसी कार्य में आपने शेष जीवन बिताया, जिस कार्य में उन्हें आरंभ से रुचि थी। १९१२

१-इसके प्रस्तावक डा० बूलर और समर्थक प्रो० वेबर थे।

ई० में उन्हें 'नाइट' बनाकर ब्रिटिश सरकार ने सम्मानित किया। भारतीय आर्यभाषा से निकली हुई आधुनिक भाषाओं-उपभाषाओं के विशेषज्ञ रूप में ग्रियर्सन प्रख्यात हो गए। ग्रियर्सन की पुस्तकों और निवंधों की सूची परिशिष्ट रूप में पृथक् दी जा रही है, जिससे उनकी बहुमुखी प्रतिभा और दीर्घकालीन भाषा-विषयक सेवा कार्यों का परिचय प्राप्त होगा।

जब सर्वेक्षण का प्रकाशन हुआ तब ब्रिटिश साम्राज्य का सर्वोच्च सम्मान 'आर्डर आफ मेरिट' भी उन्हें प्रदान किया गया। १९३२ ई०में भारतीय भाषाविदों ने भी 'ग्रियर्सन स्मृति-ग्रंथ उन्हें' समर्पित किया। इस स्मृति ग्रंथ का पांडुलेख, प्रशस्तियुक्त, इंगलैंड में श्री ए० सी० वूलनर को भेजा गया और उनके द्वारा ग्रियर्सन को समर्पित किया गया। इस ग्रंथ में दो पद्यात्म-प्रशस्तियां हैं—एक के लेखक हैं श्री रामकुमार वर्मा एम० ए० और दूसरे के पं० रामचन्द्र शास्त्री, लाहौर। समर्पण के वाक्य इस प्रकार हैं—

'भारती और भाषिकी के प्रति आपकी विशिष्ट सेवाओं के महत्त्व का अतिशयोक्ति पूर्ण कथन असंभव है। अपने आगामी पीढ़ियों और शताब्दियों को भाषिक तथ्यों का एक कल्पतरु प्रदान किया है। आपने भारत के भाषा-संबंधी साहित्य को जितना समृद्ध किया है, उतना संसार का कोई देश गर्व नहीं कर सकता।'

अवकाश लेने पर भी वे अपनी व्यस्तता के बावजूद साहित्यिक और भाषा-संबंधी कार्यों के लिए आप सदैव समय निकाल लेते थे। ई० हाल ने तीस वर्षों तक ग्रियर्सन तक दक्षिण बाहु रूप में सहायता की। भारत के महान् भाषाशास्त्री श्री सुनीति कुमार चटर्जी को आपने ही सीधे डी० लिट् की अनुमति दिलाई थी। ८५ वर्ष पूर्ण करने पर 'इंडियन स्टडीज़' शीर्षक से एच० डब्लू वेलो और आ० एल० टर्नर ने जो ग्रंथ ग्रियर्सन को समर्पित किया था, उसमें उनकी सेवाओं का इन शब्दों में उल्लेख है :

आपके प्रकाशनों की लम्बी सूची जिसमें आपकी साठ साल की भक्ति-पूर्ण श्रम-साधना निहित है, आपकी असीम ऊर्जा, उत्साह और आध्यात्मिक दृढ़ता का साक्षी है, जिसने आपको अपने चुने हुए पथ पर अविचलित रखा और परिस्थितियों की कठिनाइयों पर आपको विजय दिलाई। तेईस वर्ष की अवस्था में जब आप संस्कृत के विद्यार्थी थे और इंडियन सिविल सर्विस के एक

सदस्य हुए थे, आपने भारत के लिए आयरलैंड से उस जीवन के लिए प्रस्थान किया, जिसमें कर्म और ज्ञान के जीवन का कठिन और फलयुक्त योग था, जिसे हमलोगों ने अर्धशताब्दी बाद चरम उपलब्धि के रूप में देखा। सत्तहत्तरवें वर्ष में आपने भारत के भाषा-सर्वेक्षण के अंतिम खण्ड को पूर्ण किया और ब्यासीवें वर्ष में आपने कश्मीरी कोश के चतुर्थ और अंतिम खण्ड को पूर्ण किया। तरुण काल में 'बिहार का कृषि जीवन' के लेखक, भाषा-सर्वेक्षण के आरंभकर्त्ता, अनेक ज्ञात-अज्ञात भाषाओं के व्याकरण के रचयिता, अनेक मध्ययुगीन और आधुनिक भारत-आर्य पाठों के संपादक और अनुवादक, भारत की अगणित भाषा-उपभाषाओं के हमारे ज्ञानवर्धक।

एच डब्लू० बेली
आर० एस० टर्नर

यह श्रद्धांजलि ग्रियर्सन की सेवाओं का पूर्ण परिचायक है।

ऐसे भारत-भाषा-सेवक की मृत्यु ८ मार्च, १९४१ ई० में, यश के चरम शिखर पर आसीन होने के बाद हुआ। भाषा-क्षेत्र में कार्य करने वाले लेखकों और साधनों को गियर्सन का जीवन अशेष प्रेरणास्रोत बना रहेगा। ऐसे भारतीय भाषाओं के उपासक और सिद्ध पुरुष की देन को यह भारत भूमि आर विशेष कर हिंदी भाषी कभी विस्मृत नहीं कर सकता। ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के अमर रत्न तुलसी, जायसी, बिहारी और विद्यापति को अंग्रेजी के माध्यम से संसार के सम्मुख उपस्थित किया तथा हिंदी क्षेत्र के ग्रामगीतों, लोककथाओं और लोकजीवन को प्रकाशित किया।

इस प्रसंग से हम ग्रियर्सन स्मृति ग्रंथ के समर्पण के रूप में उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते, जिससे उस महापुरुष के कृतित्व और व्यक्तित्व का सारगर्भित परिचय प्राप्त होता है।[1]

---

1. Sir George Abraham Grierson. O. M. K. C. I. E. Ph. D. D. Litt., LL. D. F. B. A., I. C. S. Retired.

Fellow of the British Academy, Coorrespondent Etranger, De L' Institute De. France (Academic Des Inscriptions Et. Belles Lettes.) Honorary Fellow of the Asiatic Society of Bengal

ग्रियर्सन की कृतियाँ :

ग्रियर्सन के अनेक ग्रंथों में अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तीन हैं : 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' और वर्नाक्यूलर लिटरेचर १८७६ ई० से ही आपका बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी से घनिष्ठ संबंध था और यह आजीवन बना रहा। वृद्धावस्था में भी आप अपने इष्टकार्य में लगे रहे। १९३५ ई० में भी विद्यापति की 'पुरुष परीक्षा' का संपादन कर आपने लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशन कराया।

इन तीन पुस्तकों का संबंध हिंदी से है। अन्य पुस्तकों का सामान्य परिचय नीचे देकर हम उक्त पुस्तकों पर विस्तार से विवेचन करेंगे।

(१) बिहार पेजेंट्स लाइफ—इसमें बिहार के कृषक जीवन के विविध पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। रैयतों के काम में आने वाली हरेक चीज का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसे बिहारी लोक जीवन का विश्वकोश कह सकते हैं। यह बंगाल सेक्रेटेरियेट प्रेस, कलकत्ता से प्रथम बार १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था।

(२) सेवेन ग्रामर्स आफ दि डायेलक्ट्स लैंड सब डायेलक्ट्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज—(बिहारी भाषा की बोलियों और उपबोलियों के सात व्याकरण)।

जब ग्रियर्सन पटना के ज्वायंट मैजिस्ट्रेट थे, तब बंगाल सरकार के आदेश से उन्होंने बिहार पश्चिमोत्तर प्रदेश (आज का उत्तर प्रदेश) और मध्य प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों में बोली जाने वाली बोलियों और उपबोलियों के व्याकरण

---

and of the Royal Danish Academy of Science, Honorary Member of the Nagari Pracharini Sabha, The American Oriental Society, The Society Finno-Ongrienne, the Association Phonetique International, the Modern Language Association and the Linguistic Society of India Foreign Associate Member of the Societe Asiatique De Paris, Corresponding Member of the Koniglishe Gessell Schafe Der Wissens Schaften zu Gothingen, Vice President of the Royal Asiatic Society.

तैयार किए थे, जो १८८०-८७ की अवधि में आठ जिल्दों में बंगाल सेक्रेटेरियट प्रेस, कलकत्ता से मुद्रित हुए। पहली जिल्द में भूमिका, दूसरी में भोजपुरी, तीसरी में मगही, चौथी में मैथिल-भोजपुरी, पाँचवीं में दक्षिणी मैथिली, छठवीं में मागधी और सातवीं में मैथिली का व्याकरण प्रस्तुत किया गया। प्रत्येक उपभाषा के व्याकरण में लघु कथाऐं और वार्तालाप भी दिए गए हैं। इसके पूर्व बिहार की बोलियों पर ऐसा कार्य नहीं हुआ था और न इनके व्याकरण लिखे गए थे। इस प्रकाशन के बाद विद्वानों के बीच बिहार की भाषिक स्थिति का ठीक ज्ञान हुआ और ग्राम्य भाषाओं के अध्ययन के महत्त्व का बोध हुआ। इन पुस्तक की समीक्षा बीम्स ने की। आपने लिखा है कि इन भाषाओं का ग्रियर्सन ने जिस सूक्ष्मता और गहराई से अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसका नामकरण करने का अधिकार उन्हें है। सामान्यतः इस क्षेत्र की भाषाओं को हिंदी नाम दिया जाता है, पर उनमें परस्पर बहुत अंतर है। इन बोलियों का विस्तृत विवेचन कर वर्गीकृत करने का श्रेय ग्रियर्सन को है। हिंदी के पूर्वीय क्षेत्र की इन भाषाओं का ग्रियर्सन ने अनुशीलन किया है, जिसकी स्वतंत्र सत्ता को स्थापित करने में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। ऐसे तो ग्रियर्सन सामान्यतः हिंदी को, अपने सभी स्थानीय या जनपदी रूपों के साथ जानते थे, पर बिहार की बोलियों से उन्हें विशेष ममता थी। चूँकि बिहार में अनेक वर्षों तक शासक रूप में रह कर यहाँ की बोलियों में अभ्यस्त हो चुके थे। 'बिहारी' भाषा उनकी कल्पनामात्र है और केवल भौगोलिक कारण से उन्होंने यह नाम चलाया था। बिहार की दो बोलियाँ तो प्राचीन राज्यों' मिथिला और मगध के क्षेत्र में बोली जाती थी पर तीसरी बोली भोजपुरी की विशेषप्रवृत्ति काशी प्रदेश की भाषा या पूर्वी हिंदी की ओर थी। 'भोजपुर' नाम पर भोजपुरी बोली चली, पर यह 'भोजपुर' मध्यकाल में ही प्रसिद्ध हुआ था। इस बोली के बोलने वाले उत्तर प्रदेश में भी काफी संख्या में हैं, पर ग्रियर्सन ने इसे बिहारी भाषा के अंतर्गत रखकर विचार किया और इसे हिंदी के पूर्वी रूप से सर्वथा भिन्न कर रखा। भोजपुरी के विषय में ग्रियर्सन सही निर्णय नहीं कर सके। भोजपुरी जितने अश में बिहारी हैं उतने ही अंश में वह उत्तर प्रदेश की भाषा भी है। उसकी प्रवृत्ति हिंदी की ओर है और उसे पूर्वी हिंदी से पृथक् कर समझने और मानने की चेष्टा उचित नहीं जान पड़ती। राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से आरा (शाहबाद) और छपरा (सारन) जिले, बनारस, बलिया, गाजीपुर,

देवरिया से पृथक नहीं रहे और केवल भोजपुरी-भाषी बिहार का क्षेत्र कभी अलग नहीं रहा। इसलिए जब ग्रियर्सन ने भोजपुरी को 'हिंदी से भिन्न माना तब भोजपुरी-भाषियों को उनका निर्णय मान्य नहीं जान पड़ा। डा० धीरेन्द्र वर्मा सुनीति कुमार चटर्जी और डा० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी के संबंध में ग्रियर्सन से सहमत नहीं हो सके। भाषा-सर्वेक्षण में ग्रियर्सन भोजपुरी की स्वतंत्र सत्ता का आग्रह करते हुए भी मानो अपने पक्ष की दुर्बलता का अनुभव करते हुए यह लिखने को विवश हो जाते हैं कि 'पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी अथवा पूरब की उत्कृष्ट भाषा के नाम से अभिहित किया गया है। आपने भोजपुरी की तीन मुख्य उपबोलियों का उल्लेख किया है, ये हैं परिनिष्ठित, पश्चिमी तथा नागपुरिया बोलियाँ।[१] यह ठीक है कि 'आजमगढ़ तथा वाराणसी की भोजपुरी शाहबाद एवं सारन जिलों की भोजपुरी से यत्किंचित् भिन्न है।' इसी प्रकार गंगा के उत्तरी तथा दक्षिणी क्षेत्रों की भोजपुरी में भी कुछ अंतर है। पर इसी कारण से भोजपुरी को 'बिहारी' भाषा के अंतर्गत रख कर विचार करना और 'पूर्वी हिंदी, से सर्वथा भिन्न भाषा मानना उचित नहीं। भोजपुरी पूर्वी हिंदी का ही एक भेद है और वह अपने पश्चिम की उपभाषाओं से अधिक घनिष्ट रूप से संबंधित है। अवधी का रामचरित मानस बिहार के भोजपुरी क्षेत्रों में जनता द्वारा जिस आसानी से समझा जाता है, वह इस बात का एक प्रमाण है कि भोजपुरी और पूरबी (पूर्वी) हिंदी में गहरा लगाव है : भोजपुरी, मगही और मैथिली के पारस्परिक संबंध पर विचार कर ग्रियर्सन ने दो भागों में विभक्त किया है। एक भाग में भोजपुरी और दूसरे भाग में मगही और मैथिली को रखा है। यह विभाजन भी इस बात को पुष्ट करता है कि भोजपुरी का अन्य दोनों बोलियों से पर्याप्त भेद है। 'भोजपुरी में अ का उच्चारण मध्य देश में प्रचलित हिंदी उच्चारण के समान ही होता है। ध्वनि का यह तथ्य भी इस बात के पक्ष में है कि भोजपुरी भाषी पूरबी भाषीके निकट हैं। यहां हमने 'पूरबी' पूर्वी हिंदी के अर्थ में प्रयुक्त किया है। ग्रियर्सन ने एक स्थल पर लिखा है कि 'बिहार का मुख सदैव उत्तर पश्चिम की ओर रहा है।' बिहारी, कोई भाषा ही नहीं, क्योंकि बिहार 'नाम की परंपरा बहुत पुरानी नहीं। बिहार में मिथिला एक स्वतंत्र राजनैतिक और सांस्कृतिक इकाई है और तिरहुत के नाम पर यह मध्यकाल में भी अलग माना जाता रहा। मगध का राजनैतिक उदय और अस्त हिंदी के जन्म के सैकड़ों वर्ष पूर्व हो

१. 'सर्वेक्षण'—पृष्ठ २९४।

चुका था। भोजपुर क्षेत्र के सभी मध्यकालीन कवियों ने पश्चिम स्थित क्षेत्र से प्रेरणा और संस्कृति पाई। कबीर और तुलसी भोजपुरी भाग के अपने कवि हो गए।

बिहार की तीनों बोलियों में मैथिली को ग्रियर्सन ने उसमें उपलब्ध प्राचीन साहित्य और दीर्घकालीन नाटकीय परम्परा आदि के कारण विशेष महत्त्व दिया। जब बिहार की किसी भाषा या बोली को यहाँ के न्यायालयों में स्थान देने की बात उठी, तब ग्रियर्सन ने मैथिली का पक्ष लिया और चाहा कि यह सारे बिहार की अदालती भाषा बन जाए। 'कचहरी' की भाषा के प्रसंग में हम इसकी चर्चा करेंगे। बिहारी बोलियों के सात व्याकरण के पहले ही १८७७-८० ई० के बीच ग्रियर्सन ने मैथिली का एक व्याकरण प्रकाशित किया था। मैथिली में चौदहवीं शताब्दी से काव्य, नाटक, और गद्य की जो सुदृढ़ परम्परा मिलती है, इसके कारण ग्रियर्सन मैथिली के बड़े पोषक और समर्थक बन गए। मैथिली के बाद उन्हें भोजपुरी ही महत्त्वपूर्ण लगी और उनका यह विचार ठीक ही था। मगही में न मैथिली के समान समृद्ध प्राचीन साहित्य है और न वह भोजपुरी क्षेत्र के समान विस्तृत क्षेत्र की बोली है।[१] अतः बिहार में मगही गौण हो गई। मागधी प्राकृत की उत्तराधिकारिणी मगही मध्ययुग में राजाश्रय के अभाव में शिथिल पड़ गई और अब यह बोली बिहार के दो ही जिलों में बोली जाती है। १८८७ ई० में ग्रियर्सन ने रुडोल्फ हार्नली के साथ एक कोश बनाया। इससे प्रमुख सहायक थे श्री मुकुन्द राम शास्त्री। इस कोश में ग्रियर्सन ने अद्भुत परिश्रम किया। बिहारी भाषा का तुलनात्मक शब्द कोश तैयार किया था।

कश्मीरी भाषा-विषयक ग्रन्थ :

ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा और साहित्य पर भी जो कार्य किया है, वह भी महत्त्वपूर्ण है। १९११ ई० में आक्सफोर्ड से ए मैनुअल आफ कश्मीरी लैंग्वेज़ प्रकाशित हुआ। यह कश्मीरी के ज्ञान के लिए बड़ा उपयोगी है। आपने एक कश्मीरी डिक्शनरी भी प्रकाशित की है। यह चार खंडों में है। अंतिम खंड १९३२ ई० में निकला। उनका कश्मीरी रामायण (दिवाकर प्रकाश भट्ट प्रणीत) १९३० ई० में एशियाटिक सोसाइटी बंगाल

१. १९२१ की जनगणना के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी भाषियों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है। १०,२६३,३५७, ६५०४८१७ और २०४१२६०८।

से प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन के बाद हिंदी के अतिरिक्त कश्मीरी भाषा के विशेषज्ञ रूप में भी उनकी ख्याति विद्वज्जनों में स्थापित हो गई।

दि मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान (हिंदी भाषा का प्रथम इतिहास) :

१८८६ ई० में वियना के प्राच्य विद्या अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के अधिवेशन में पढ़ने के लिए आपने हिंदी के महाकवि तुलसीदास पर एक निबंध तैयार किया था। इस निबंध में तुलसीदास के काव्य पर प्रथम बार विस्तरशः यूरोप के विद्वानों के बीच उत्कृष्ट विवेचन था, जो भूरि-भूरि प्रशंसित भी हुआ। इसी प्रसंग में लेखक को हिंदी साहित्य पर बहुत सामग्री संचित करने का अवसर मिला था। यह १८८६ ई० के रा० ए० सो० बं० के जर्नल में निकला[1] और बाद में पुस्तकाकार १८८९ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें प्रथम बार एक अग्रेज द्वारा हिंदी साहित्य की गतिविधि पर, उसकी धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उपस्थित करते हुए विचार किया गया था। इसके पूर्व यूरोप में तासी का 'हिस्त्वायर द ला लितरेत्योर हिंदुई ए हिंदुस्तानी' निकल चुका था। ग्रियर्सन ने इससे लाभ उठाया था। ग्रियर्सन का यह ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से श्री किशोरी लाल गुप्त द्वारा अनूदित हुआ।[2] अनुवादक के अनुसार (१) 'इसमें पहली बार कवियों का विवरण काल क्रमानुसार दिया गया है। इसके पूर्वप्रचलित 'सरोज' एवं तासी में कवियों का विवरण वर्णानुक्रम से है। (२) इस ग्रंथ में हिंदी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल-विभाग भी किए गए हैं। 'विनोद' में बहुत कुछ इन्हीं को स्वीकार कर लिया गया है। प्रत्येक काल की तो नहीं, कुछ कालों की सामान्य प्रवृत्तियाँ भी दी गई हैं यद्यपि यह विवरण अत्यंत संक्षिप्त है।[3] 'विनोद' पर इसका प्रभाव स्पष्ट है ही, साथ ही यह श्री रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के लिए भी मार्ग-निर्देशक रहा है। अनुवादक के शब्दों में यह हिंदी साहित्य के इतिहास की नींव का वह पत्थर है, जिस

१. द जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग १, १८८८ ई० का विशेषांक।

२. हिंदी साहित्य का इतिहास-अनुवादक श्री किशोरीलाल गुप्त प्रथम संस्करण १९५७ ई०।

३. वही, पृ० ३६।

पर आचार्य शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास का भव्य भवन निर्मित किया। इस इतिहास का ऐतिहासिक महत्त्व है।[1] इसमें जायसी और तुलसी पर स्वतन्त्र अध्याय हैं। श्री किशोरीलाल का मत है कि संभवत: इन्ही अध्यायों ने आचार्य शुक्ल का विशेष ध्यान इन कवियों की ओर आकृष्ट किया।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रियर्सन का यह इतिहास हिंदी के मिश्रबंधु विनोद और शुक्ल जी के इतिहास के लिए पथ तैयार करता है। पर जब हम ग्रियर्सन की इस पुस्तक की परीक्षा करते हैं, तो निर्विवाद रूप से यह कहने को हम विवश हैं कि उनकी इस रचना का मुख्य आधार है 'शिवसिंह सरोज (१८८३ ई०)। वे सरोज के ऋण को इन शब्दों में स्वीकार करते हैं। 'एक देशी ग्रन्थ जिसपर अधिकांश मैं निर्भर रहा हूँ, और प्राय: सभी छोटे कवियों और अनेक अधिक प्रसिद्ध कवियों के भी संबंध में प्राप्त सूचनाओं के लिए जिसका मैं ऋणी हूँ, शिवसिंह सेंगर द्वारा विरचित और मुंशी नवलकिशोर, लखनऊ द्वारा प्रकाशित (द्वितीय संस्करण, १८८३ ई०) अत्यंत लाभदायक 'शिवसिंह सरोज है।' यदि यह पुस्तक उन्हें नहीं मिलती तो कदाचित् वे अंग्रेजी में अपनी पुस्तक लिखने में समर्थ ही नहीं होते। जहाँ सरोज में गलती रह गई वहाँ ग्रियर्सन ने भी वही गलती दुहरा दी है। इसका एक उदाहरण अनुवादक ने दिया है। 'कवि रत्नाकर' यह अशुद्ध नाम सरोज की भूमिका में प्रमाद से छप गया है। ग्रियर्सन ने भी कवि रत्नाकर ही लिखा है। ग्रंथ का असल नाम कवित्त रत्नाकर है।.... ग्रियर्सन ने 'मक्षिकास्थाने भक्षिका' लिखा है।'.... सरोज ही अत: ग्रियर्सन के ग्रंथ का मूल स्रोत है। पर इसके अतिरिक्त राजस्थानी लेखकों के लिए टाड के एनल्स आफ राजस्थान और मैथिली कवियों के लिए जे० आर० ए० एस० के एक निबंध से लाभ उठाया गया है।

साहित्यिक कृतियाँ :

ग्रियर्सन ने तुलसीदास की रचनाओं के संबंध में उस जमाने में जो शोधपूर्ण निबंध लिखे, उन्हीं के आधार पर हिंदी में परवर्ती काल में तुलसी-विषयक शोध अग्रसर हुआ। जब श्री माताप्रसाद गुप्त ने १९३१ ई० में अपना तुलसी-विषयक प्रथम शोध-निबंध 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित कराया

१. वही, पृ० ५।

था तब उन्होंने उनके कार्य को प्रोत्साहित करते हुए अपने पत्र में अपनी पहली कृतियों का उल्लेख किया और यह प्रसन्नता व्यक्त की थी कि हिंदी के विद्वान् उनके किए हुए कार्यों के महत्त्व को समझने लगे हैं। वास्तव में इस क्षेत्र में भी वे अग्रसर रहे हैं और उनसे अनेक हिंदी के विद्वान् प्रेरित और अनुप्राणित होते रहे हैं।

वि यना में पठित निबंध में, जिसका उल्लेख हो चुका है, तुलसीदास पर विशेषतः प्रकाश डाला गया था। उसके बाद १८९३ ई० में उन्होंने नोट्स ऑन तुलसीदास इंडियन ऐंटीक्वेरी में प्रकाशित कराया। कवि-जीवन ऑन की तिथियों को ज्योतिष के प्रमाण की कसौटी पर जाँचने का काम भी ग्रियर्सन ने किया। इस सरणि का अवलंबन डा० माता प्रसाद गुप्त ने अपने डी० लिट्० के शोध ग्रंथ 'तुलसीदास' में किया। फिर कवि रामायण की रचना तिथि पर १८९८ ई० में जे० आर० ए० एस० में विचार किया। इसमें 'महामारी' को प्लेग सिद्ध किया गया। पुनः इस संबंध में श्री सुधाकर द्विवेदी के अनुमान का भी उल्लेख किया कि वह बहुपीड़ा, जिसका वर्णन हनुमान बाहुक में है, प्लेग की गिल्टी निकलने के कारण हुई थी। पुनः सोसाइटी के १९०३ ई० के जर्नल में महाकवि के सुधारक रूप की चर्चा की गई। १९०७ ई० में उनका निबंध "आधुनिक हिंदू धर्म और नेस्टोरियनों' के प्रति उसका ऋण निकला, जिसमें हिंदू भक्ति मार्ग पर ईसाई भक्तों का प्रभाव दिखलाने की चेष्टा की गई है। इस निबंध में ग्रियर्सन की 'ईसाइयत' ने भारतीय भक्ति मार्ग में ईसाई भक्ति भावना का प्रभाव दिखलाने में तथ्यों को उलट-पुलट कर दिया है। १९१२ ई० में इंपीरियल गैजेटियर के लिए आपने तुलसी पर एक निबंध दिया। पुनः १९२१ ई० में 'इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन ऐंड एथिक्स' में भी आपने तुलसी पर एक निबंध लिखा। १९१३ ई० में आपका एक लेख क्या तुलसीदास कृत रामायण अनुवाद ग्रंथ है? शीर्षक निबंध निकला, जिसमें बलिया से प्रकाशित एक संस्कृत रामायण को अप्रामाणिक सिद्ध किया गया।

तुलसीदास के संबंध में ग्रियर्सन ने इतना अधिक और इतना श्रद्धापूर्ण लिखा कि यदि यह कहें कि पश्चिमी जगत् में तुलसी को प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को है, तो अत्युक्ति न होगी। अतः हम उनके मूल्यांकन से कुछ अंश उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं।

'मेरे मन में उत्तरभारत के धर्म के दो प्रमुख पद हैं—बौद्ध धर्म और उसके दो सहस्र बाद तुलसीदास की शिक्षा। बौद्ध धर्म का व्यावहारिक परिणाम हुआ संपूर्ण भारत द्वारा विश्वबंधुता में निष्ठा की स्वीकृति। तुलसीदास ने इसमें यह भाव जोड़ दिया है कि भगवान ही सबका पिता है।

'टीकाकारा का कथन है कि राम को तीन दृष्टियों से देखा जा सकता है, हम उनके चरित्र में माधुर्य, ऐश्वर्य और मित्रता का दर्शन कर सकते हैं, जिसमे माधुर्य और ऐश्वर्य का मिश्रण रहता है। उनकी स्तुति करने की चार रीतियाँ हैं—मागध, वंदी सूत या पौराणिक रूप में।

रामचरित मानस 'चरित' है और कवि ने सूत की रीति से अपने नायक के चरित्र में मित्रता दिखलाई है। गीतावली भिन्न प्रकार की रचना है। इसमें माधुर्य रस प्रधान है। इसमें न कोई चमत्कारी कृत्य है—यह एक प्रेमपूर्ण कहानी है, जिसमें तीन भारतीयों के शैशव की क्रीड़ा का वर्णन है जो पाठक को प्रति पृष्ठ पर मुग्ध कर देता है। कवितावली वीर रस की रचना है। विनयपत्रिका में कवि प्रार्थी रूप में है।[१]

मानस में शुक्लजी ने राम के चरित्र में माधुर्य, ऐश्वर्य और शील के तत्त्व का उद्‌घाटन करने में जो पटुता दिखलाई है, उसका मूल सूत्र उक्त विवेचन में मिलता है। ग्रियर्सन ने जिस 'मित्रता' का उल्लेख किया है, वही शुक्लजी का शील है। गीतावली, कवितावली और विनयपत्रिका में तुलसी के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। एक में वे मधुर भावों के कवि हैं—माधुर्य और वात्सल्य का संगम है। कवितावली में वीर रस के कवि हैं और विनयपत्रिका में मुख्यतः भक्त कवि। थोड़े में जो कवि का मूल्यांकन हुआ है, उससे मतभेद नहीं हो सकता।

तुलसीदास का प्रभाव और मानस का धर्मग्रंथ होना :

मानस की लोकप्रियता और प्रभाव के संबंध में ग्रियर्सन की संमति उनके अनुभव पर आधारित है। आप का कथन है 'पिछले तीन सौ वर्षों से हिंदू समाज के जीवन, आचरण और कथन में यह घुलमिल गया है और अपने काव्यगत सौंदर्य के कारण यह न केवल उनका प्रिय एवं प्रशंसित ग्रंथ है,

---

१ यह निबंध १० मार्च १९०३ ई० को रायल एशियाटिक सोसाइटी में पढ़ा गया था और १९०३ ई० के जर्नल में प्रकाशित हुआ।

बल्कि उनके द्वारा पूजित भी है और उनका धर्म-ग्रंथ हो गया है। वह १० करोड़ जनता का धर्मग्रंथ है और उनके द्वारा यह उतना ही भगवत्प्रेरित माना जाता है, अंग्रेज पादरियों द्वारा जितनी भगवत्प्रेरित 'बाइबिल' मानी जाती है। पंडित लोग वेद और उपनिषद् की बातें कर सकते हैं और कुछ उनका अध्ययन भी कर सकते हैं, कुछ कह सकते हैं कि उनका विश्वास पुराणों के साथ संलग्न है, किंतु हिंदुस्तान की अधिकांश जनता के लिए चाहे वह विद्वान् हो अथवा अविद्वान्, चरित्र का एकमात्र प्रतिमान तुलसीकृत रामायण है।'

अन्यत्र इसी पुस्तक में वे लिखते हैं 'हम निश्चित ही और उचित रूप में यह इस महापुरुष की प्रशंसा करते है, जिसने बुद्ध के अनंतर पहली बार मनुष्य को अपने पड़ोसियों के प्रति स्वकर्त्तव्य सिखाया और अपने उपदेश को ग्रहण कराने में सफल हुआ। उनका महान् काव्यग्रंथ इस समय १० करोड़ लोगों का एकमात्र धर्मग्रंथ है और यह सौभाग्य की बात है कि इन्होंने यह पथ-प्रदर्शक पाया।' (पृ० ५४)।

'जिस धर्म का उपदेश उन्होंने किया, वह अत्यंत सरल साथ ही विशिष्ट, रामनाम में पूर्ण विश्वास है। अनैतिकता के उस युग में जब हिंदू समाज के बंधन शिथिल हो रहे थे और मुगल साम्राज्य संगठित हो रहा था, इस ग्रंथ की सबसे विशिष्ट बात इसकी कठोर नैतिकता है, जो इस शब्द के किसी अर्थ में मानी जा सकती है। तुलसी प्रतिवेशी के प्रति अपने कर्त्तव्य की शिक्षा देने वाले महान् उपदेशक थे। वाल्मीकि ने भरत की कर्त्तव्य-परायणता, लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति और सीता के पतिव्रता की प्रशंशा की है। लेकिन तुलसी ने तो आदर्श ही प्रस्तुत कर दिया है।

इसी प्रकार उस घोर विलासिता के युग में रामायण से बढ़कर मर्यादापूर्ण और पवित्र कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है।'

एक स्थल पर ग्रियर्सन ने कवि कालिदास और भक्तकवि तुलसीदास की तुलना कर एक बड़ी बात अलंकृत भाषा में कह दी है।

'कालिदास ने राम से खूंटों का काम लिया, जिसपर वे अपनी मधुर रचनाएँ लटका सकें, पर तुलसी ने चिरसौरभ की माला गूँथी और जिस देवता की भक्ति वे करते थे, उसके चरणों पर उसे दीनतापूर्वक बढ़ा दी।'

ग्रियर्सन सूर की अपेक्षा तुलसी को ही श्रेष्ठ मानते हुए लिखते हैं--'अपने देशवासियों द्वारा यह बाद वाले (सूरदास) तुलसी के साथ-साथ काव्य कला की परमपूर्णता के सिंहासन के अधिकारी समझे जाते हैं, लेकिन यूरोपीय आलोचक इस बाद वाले कवि तुलसी को ही सर्वश्रेष्ठता का मुकुट पहनाना चाहेंगे और आगरा के इस अंधे कवि को उससे नीचा, यद्यपि फिर भी बहुत ऊँचा, स्थान देंगे (पृ० ५३)। शुक्ल जी ने सूर से तुलसी को श्रेष्ठ सिद्ध किया--क्या इस मूल्यांकन का सूत्र ग्रियर्सन से ही मिला था, यह विचारणीय है।

ग्रियर्सन की समीक्षा के ये टुकड़े इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उनकी दृष्टि कितनी पैनी और गहरी थी, उनकी पकड़ कैसी पक्की थी और उनकी समीक्षा ने परिवर्ती हिंदी आलोचकों को चिंतन की दिशा सुझाने में कितना काम किया।

ग्रियर्सन ने मानस के शुद्ध पाठ को आवश्यकता पर उसी समय बल दिया, जब शुद्धतावादी मानस-प्रेमी उसके साथ मनमाना हस्तक्षेप कर रहे थे। उन्होंने बनारस और राजापुर की प्रतियों के आधार पर मानस के असली पाठ का कुछ अंश भी प्रकाशित किया। पाठान्तर आदि भी पादटिप्पणी रूप में दिए। इस प्रकार पाठ-संपादन या पाठलोचम के क्षेत्र में भी ग्रियर्सन पथ-प्रदर्शक रहे हैं।

जायसी और ग्रियर्सन :

जाससी के पदमावत काव्य की भाषा और विषय के महत्त्व का बोध भी ग्रियर्सन को सबसे पहले हुआ। ग्रियर्सन के पहले किसी हिंदू विद्वान् ने इस कृति को इतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना। हिंदू कवियों ने कबीर, रहीम, रसखान औरशेख-आलम अदि मुस्लिम कवियों की चर्चा उत्साह के साथ की, पर जायसी की एक तरह से उपेक्षा ही की। ग्रियर्सन लिखते हैं—'मलिक मुहम्मद ने अपने युग की शुद्धतम भाषा में पदमावत नामक दार्शनिक महाकाव्य लिखा' यह ग्रंथ रूपक काव्य है, जिसमें बुद्धिमत्ता के लिए आत्मा की खोज और वे सभी कठिनाइयों एवं प्रलोभन जो उसपर यह यात्रा करते समय आक्रमण करते हैं, वर्णित है। मलिक मुहम्मद का आदर्श अत्युच्च है और इस मुसलमान फकीर के संपूर्ण काव्य में अपने देशवासी हिंदुओं के कुछ महात्माओं की सी विशालतम उदारता और सहानुभुति की शिराऐं सर्वत्र प्रवाहित है, जबकि हिंदू लोग अभी

अंधेरे ही में उस प्रकाश के लिए टटोल रहे थे, जिसकी झलक उनमें से कुछ को मिल भी गयी थी।

केवल भाषा के अध्येयता के लिए, सौभाग्य से पद्मावत इतना अमूल्य है कि इसका महत्त्व आँका नहीं जा सकता। सोलहवीं शती के प्रारंभिक भाग में लिखित यह ग्रंथ हमारे सामने उस युग की भाषा और उसके उच्चारण का प्रतिनिधित्व करता है। परंपरा की शृंखलाओं में जकड़े हिंदू लेखक शब्दो को उस प्रणाली पर लिखने के लिए बाध्य थे, जिस पर ये शब्द प्राचीन संस्कृत में उनके पूर्वजों द्वारा लिखे जाते थे, न कि उस रूप में, जिसमें वे उस समय बोले जाते थे। मलिक मुहम्मद ने इस हिंदू परम्परा की चिंता नहीं की और अपना ग्रंथ फारसी लिपि में लिखा और इस प्रकार जो शब्द उन्होने लिखा उसके उच्चारण का विशेष ध्यान रखा।'[1]

ग्रियर्सन और चंद बरदाई :

पृथ्वीराज रासो को पृथ्वीराज का समकालीन काव्य मानकर यूरोपियन विद्वानों ने बहुत महत्त्व दिया और इसके अनेकांशों के कई अंग्रेजी अनुवाद भारतीय विद्वानों की सहायता से प्रकाशित किए गए। यह एक लाख छंद का महान काव्य है-जिसके लगभग ३० हजार छंदों का अंग्रेजी अनुवाद टाड ने किया। इसके एक अंश का बीम्स ने भी संपादन किया तथा हार्नली ने अन्य अंश का अंग्रेजी में अनुवाद किया। गार्सां द तासी के अनुसार इसका एक अंश राबर्ट जेंज ने रूसी में अनुदित किया था, जिसे वह पीटर्सबर्ग से प्रकाशित करना चाहते थे, पर उनकी अचानक मृत्यु के कारण यह नहीं निकल सका।

इसके संबंध में ग्रियर्सन के ये विचार हैं—

इस कवि के ग्रंथ का जो मेरा अध्ययन है, उसने इसके काव्यगत सौंदर्य के लिए मेरे मन में अत्यंत प्रशंसापूर्ण भावना भर दी है.... जो हो भाषा विज्ञान के विद्यार्थी के लिए इसका सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि यूरोपीय अन्वेषकों के लिए अतिम प्राकृत और प्रारंभिक गौडीय लेखकों के बीच के घोर गह्वर में पद न्यास के लिए यह एकमात्र स्थान है। यद्यपि हमें चंद का वास्तविक पाठ उपलब्ध नहीं है, फिर भी निश्चय ही उसकी रचनाओं में हमें विशुद्ध अपभ्रंश,

---

१ : हिंदी भाषा का प्रथम इतिहास : पृ० ५१-५२।

शोरसैनी प्राकृत रूपों से परिपूर्ण गौडीय साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात नमूने प्राप्त है ।'[१]

ग्रियर्सन और विद्यापति :

विद्यापति के जीवन के संबंध में प्रकाश डालने के बाद उनके काव्य की संक्षिप्त समीक्षा ग्रियर्सन ने की। विद्यापति के संबंध में हिंदी के विद्वानों में किसी ने उनके पूर्व इतनी सामग्री प्रस्तुत नहीं की—अतः वे विद्यापति-विषयक अनुशीलन में भी अग्रणी हैं।

'पूर्वी हिंदुस्तान के साहित्य के इतिहास पर विद्यापति का प्रभाव अत्यधिक है। यह उन धार्मिक प्रेमगीतों की रचना की कला में पूर्ण प्रवीण थे, जो बाद में अत्यन्त विकृत रूप में वैष्णव पोथियों के सार बने। परवर्ती कवियों ने अनुकरण करने के सिवा और कुछ नहीं किया है। किन्तु जबकि इस गीत-परंपरा के प्रवर्तन ने कोई भी विषय ऐसा नहीं लिया, जिसे उसने सच्ची काव्यकला से मंडित न कर दिया हो, उसके अनुकरणकारियों ने उनकी विचित्र मनोरम स्पष्टता को प्रायः अस्पष्टता में बदल दिया है और उनके भावोच्छ्वासपूर्ण प्रेमगीतों को वासना भय साहित्य में।'[२]

ग्रियर्सन ने विद्यापति को धार्मिक प्रेम गीतों की रचना में पूर्ण प्रवीण माना है। उनके गीतों की सच्ची काव्यकला से मंडित माना है। उनके भावोच्छ्वास पूर्ण प्रेमगीतों में वासना का अभाव है, ऐसा उनका मत है। उन्होंने गीत-परंपरा का प्रवर्तन करने वाला विद्यापति को बताया।

वैष्णव भक्तों के बीच उनके गीतों की मान्यता इस बात का प्रमाण है कि उनके राधाकृष्ण-विषयक प्रेमगीत धार्मिक प्रेमगीत ही माने जाते थे।

रीतिकाल का नामकरण :

शुक्ल जी ने जिसे रीतिकाल कहा, उस काल के प्रधान काव्यों को ग्रियर्सन ने ही 'रीतिकाव्य' कहा था। कदाचित् शुक्ल जी को इस काल का नाम करण कर 'रीतिकाव्य' के इस प्रयोग के कारण हुआ हो। ग्रियर्सन ने रीति काव्यों का युग १५८०-१६९२ ई० माना है। आपका कथन है, 'इस युग के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि, जिनका विवरण पहले नहीं आया है, केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी और बिहारीलाल हैं। केशवदास और चिंतामणि काव्यशास्त्र लिखने

१ : वही, पृ० ६४।

२. वही पृ० ७४-७५।

वाले उस कवि संप्रदाय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं, जिसकी स्थापना ने की और जो काव्यकला के शास्त्रीय पक्ष का ही निरंतर विवेचन करता केशव रहा। इस समीक्षा-सूत्र से स्पष्ट है कि केशव को ही इसे नये कवि सम्प्रदाय की स्थापना का श्रेय ग्रियर्सन ने दिया है। शुक्ल जी भी केशव को ही रीति-काल का आदि आचार्य मानते हैं। उसके बाद ग्रियर्सन ने चिंतामणि को प्रमुखता दी है।

वीर लोक-गीत आल्हा :

'आल्हा'—महोबा के परमाल के दरवारी कवि जगनिक का आल्हाखंड प्रसिद्ध है। इसका मूल पाठ अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। पर इसका एक रूप मौखिक परंपरा से गांवों में अब भी गाया जाता है। इस आल्हा का लोककंठ से उद्धार करने का श्रेय भी अंग्रेज अफसरों का ही है।

१८६५ ई० में फर्रखाबाद के कलक्टर सर चार्ल्स इलियट ने कई पाठों से सुनकर आल्हा लिखवाया। ग्रियर्सन ने १८८५ ई० में बिहार में प्रचलित पाठ का प्रकाशन इंडियन ऐंटीक्वेरी[1] में कराया और विंसेंट स्मिथ ने बुंदेलखंड में इसके कई अंशों का संग्रह कराया। इलियट ने अपने द्वारा प्रस्तुत कन्नौजी पाठ का डब्लू वाटरफील्ड से अंग्रेजी अनुवाद कराया। इसका पुनः संपादन ग्रियर्सन ने १९२३ ई में किया। वाटरफील्ड का अनुवाद 'दि नाइन लाख चैन' (नौलखा हार) कलकत्ता रिव्यू में १८७५-८६ ई० में निकाला।'[2]

ग्रियर्सन के अनुसार आल्हा के विभिन्न पाठों की दो वर्ग में रख सकते हैं एक हिंदी पाठ (पश्चिमी) और दूसरा बिहारी पाठ (पूर्वी) इसका एक पाठ ग्रियर्सन के पाठ के कुछ पूर्व मेरठ से चौधरी घासीराम द्वारा संपादित प्रकाशित हुआ था। ग्रियर्सन ने भोजपुरी पाठ दिया है, जिसे उन्होंने एक अल्हैत के मुख से सुनकर लेखबद्ध करवाया था। इसका संशोधन भोजपुरी के विद्वानों की सहायता से कराया गया। इसमें भोजपुरी ह्रस्व संयुक्त स्वरों के उच्चारण की व्यक्त करने के लिए ये चिह्न दिए गए, ए, अ, आ। ग्रियर्सन की इस रीति की कुछ लेखकों ने भोजपुरी लिखने में अपनाया।

---

१. दि सांग आफ अ ल्हाज् -ए भोजपुरी एपिक-ग्रियर्सन द्वारा संपादित और अनूदित-इ० ऐ० १८८५ ई०।

२. कलकत्ता रिव्यू वाल्यूम।

इस पाठ के चार चरण नीचे उद्धत किए जाते हैं।

लागल कचहरी जब आल्हा के बंगाला बड़े-बड़े बबुआन
लागल कचहरी उजैनन के बिसेनन के दरबार
नौ सौ नागा नागपूर के नगफेनी बांध तरवार
बैठव का कन दिल्ली के लोहलमियाँ तीन हजार।

प्रेमरंग तरंग की पुस्तक समीक्षा :

ग्रियर्सन प्राय: सामयिक पुस्तकों की समीक्षा नहीं किया करते थे। उनके पास भारत से बहुतेरो पुस्तकें लेखक भेजा करते थे, पर वे उनकी समीक्षा नहीं करते थे। किंतु आपने अपवाद स्वरूप श्री भगवान प्रसाद जी के पिता मुंशी तपसीराम की पुस्तक 'प्रेमरंग तरंग' की समीक्षा करते हुए भगवान प्रसादजी को लिखा था। 'इस पुस्तक को पढ़कर मुझे बड़ा आनंद मिला, चूंकि इसका गद्य सरल प्रसादगुण युक्त है और इसमें कई उत्तम कविताएँ हैं और यह रामकथा का एक सुन्दर संग्रह बन गया है।'

भक्तमाल :

श्री सीताराम शरण भगवान प्रसाद के भक्तमाल के संस्करण के संबंध में ग्रियर्सन का मत है कि 'यह एक महत्त्वपूर्ण और मूलयवान कृति है और मैं इसे बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ रहा हूँ।' इसपर एक निबंध जे० आर० एस० १९२८ ई० में प्रकाशित है।

हिंदी कोश :

मुंशी राधालाल, डिप्टी इंस्पेक्टर स्कूल, गया के कोश को ग्रियर्सन ने उत्तम हिंदी कोश कहा है।

भाषा बोध :

पटना कॉलेज के विहारी लाल चौबे की पुस्तक की समीक्षा भी आपने की थी।

विनय पत्रिका :

रामेश्वर भट्ट की टीका : १९१३ ई० इलाहाबाद।

'बिहारी रत्नाकर' :

इसपर ग्रियर्सन की समीक्षा जे० आर० ए० एस०, १९२७ ई० में प्रकाशित है।

हरिश्चन्द्र की 'हिंदी भाषा':

ग्रियर्सन इस पुस्तक को बहुमूल्य मानते हैं। 'इस निबंध में बनारस शहर की अनेक बोलियों को, जिनमें चोरों की बोली भी है, वे बहुतेरी स्थानीय बोलियों के नमूने और अनेक रागरागिनियों में गाए जाने वाले गीतों को, उनसे संबंधित कहानियों के साथ देते हैं। वे यह भी दिखलाते हैं कि आधुनिक हिंदी (खड़ी बोली) पद्य के लिए कितनी अनुपयुक्त है और यह सिद्ध कर देते हैं कि कवियों को अपनी ही बोली में लिखना उचित है।

इस पुस्तक में भद्दी हिंदी के कुछ उदाहरण के अतिरिक्त अंग्रेज साहबों की हिंदी के उदाहरण भी दिए गए हैं। निबंध के अंत में अंग्रेज हिंदी विद्वानों की रचनाओं के उद्धरण हैं। सबसे अधिक आदर हाल में स्वर्गीय मि० जान क्रिश्चियन के ईसाई भजनों को दिया गया है। ....इसके बाद जान साहेब के काव्य की प्रशंसा की गयी है).... इसमें इग्लैंड से भेजे हुए श्री निकोल और पिनकाट के कुछ हिंदी पत्र भी हैं, जो भारत में अपने देशी मित्रों को उन लोगों ने लिखा था। मेरा खयाल है कि वे पत्र प्रकाशन के लिए नहीं थे।'

पाठ-संपादन और ग्रियर्सन :

ग्रियर्सन ने पं० सुधाकर द्विवेदी के सहयोग से पदमावत, मानस और बिहारी सतसई (लाख चन्द्रिका) का सुसंपादित पाठ प्रकाशित कर इस दिशा में भी अग्रणी काम किया।

पदमावत के पाठ को निश्चित करने के लिए सात प्रतियों को आधार बनाया गया। पर एक प्रति को आधार मानकर सामान्यतः उसी का पाठ स्वीकार किया गया। बहुमत का सिद्धांत स्वीकृत कर पाठ निर्णय किया गया था। ग्रियर्सन ने जो प्रति चुनी थी वह स्वच्छ थी। वे उसमें नुक़ता, शोशा आदि का प्रयोग देखकर प्रभावित हो गए, चूँकि सात प्रतियाँ अधिक निम्न कोटि की प्रतियाँ थीं, अतः कहीं-कहीं वही पाठ स्वीकार कर लिया गया। अतः पाठानुसंधान की वैज्ञानिक प्रक्रिया का उन्होंने अवलंबन नहीं किया। फिर भी जिस समय उन्होंने यह कार्य किया था, उसको प्रशंसनीय मानना ही पड़ेगा।

सतसई के संपादन में लल्लूजी की टीका के पाठ को उनके अर्थानुसार ठीक किया गया।

मानस के शुद्ध पाठ पर भी ग्रियर्सन ने सबसे पहले ध्यान दिया था इसका हम ग्रियर्सन के तुलसी-विषयक अनुशीलन के प्रसंग में उल्लेख कर चुके हैं।

भाषा-भूषण :

जसवंतसिंह कृत अलंकार-ग्रंथ का ग्रियर्सन ने अनुवाद किया है। इसका प्रकाशन इंडियन ऐन्टीक्वेरी, १८९४ ई० में हुआ है।[१] ग्रियर्सन का इसके संबंध में यह कथन है–'भाषा-भूषण प्रसिद्धि के योग्य है। यह लघु पर सुगठित रचना है। लेखक दोहे के एक चरण में अलंकार लक्षण और दूसरे चरण में उदाहरण देने में सफल हुआ है। इसकी भाषा भी सरल और शैली प्रसादयुक्त है।'

ग्रियर्सन द्वारा अन्य साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन :

मानबोध हरिवंश :

यह मैथिली में है। ग्रियर्सन ने इसे १८८४ ई० में ज० ए० सो० के विशेषांक में प्रकाशित किया है। 'मानबोध' के लेखक की पुत्री के वंश में दरभंगा के महाराज उत्पन्न हुए हैं।

गीत बिजैमल :

यह शाहाबाद की पूर्वी भोजपुरी में है। यह ग्रियर्सन ने बा० शिवनन्दन लाल राय द्वारा एक गायक से सुनकर लिखवाया गया था।

गीत गोपीचंद (भरथरी) :

इस लोकगीत के दो पाठों का ग्रियर्सन ने अनुवाद कर संपादित किया है। उत्तर भारत में यह लोककथा बहुत लोकप्रिय है। भोजपुरी पाठ शाहाबाद का और मगही पाठ गया का है। भरथरी के भतीजे गोपीचंद की यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। यह ज० रा० ए० सो०, १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ है।

लोरिक का जन्म :

इसका मगही पाठ ग्रियर्सन ने संपादित किया था। बाद में उसका अनुवाद भी निकला।

ग्रियर्सन हिंदी के प्रथम लोकगीत-संग्रहकार भी हैं। आपके लोकगीत-विषयक कुछ लेख ज० रा० ए० सो० में लगभग ८० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए थे। उस समय हरिश्चन्द्र ऐसा रससिद्ध कवि भी ग्राम-कविता को तजने की सलाह दे रहे थे। उसी शोधपत्रिका में कुछ बिहारी लोकगीत और कुछ

---

१. इं० ऐ०, सं० २३।

भोजपुरी लोकगीत हैं।[१] हिंदी में प्रसिद्ध लोकगीत के संग्राहक श्री रामनरेश त्रिपाठी इससे प्रभावित थे।

भारतीय साहित्य की विलक्षण कृतियाँ :

ग्रियर्सन ने इंडियन ऐन्टीक्वेरी में भारतीय साहित्य की कुछ विलक्षण और अद्भुत कृतियों का संग्रह कर प्रकाशित किया। ऐसी कुछ कविताएँ पटने के किसी गुमानी नामक कवि की लिखी हुई है। ऐसी रचना को 'दो सखुने' उर्दू में कहते हैं। गुमानी कवि के कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किए जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इन श्लोकों में तीन चरण संस्कृत के हैं और अंत में हिंदी का एक चरण है। यह चरण प्रायः कोई कहावत या लोकोक्ति है। ऐसी रचना को ग्रियसन ने 'मैक्रोनिक वर्स' कहा है, जिससे पाठक का विशेष मनोरंजन होता है।

उदाहरण :

पूर्वमसुप्यत येन खट्वया हाटक मय्या
तेन नलेन प्राप्ता वने क्वा यदि तृणशय्या
वक्ति गुमानिर्देव शक्तिरिह नूमम असह्या
जिस विधि राखे राम उसी विधि रहना भइया।

पहले जो नल सोने की खाट पर सोता था, उसी नल को वन में तृणशय्या भी नहीं मिली। गुमानी कहता है-देवशक्ति सचमुच असह्य है। जिस विधि राखे राम उसी विधि रहना भइया।

प्रज्ञानन्तो वैर्यवन्तो वनेषु
चेरु पार्थाः दुःखिता दीर्घकालं
चक्रे राज्यं धार्तराष्ट्रः कुबुद्धिः
जग में सारी बात है बन पड़े की।

बुद्धिमान और वीर पार्थ दीर्घकाल तक वन में दुःखी घूमते रहे तथा धृतराष्ट्र के दुर्बुद्धि पुत्र राज्य करते रहे। जग में सारी बात है बन पड़े की।

प्रिया लोकनाथस्य लंकेश्वरस्य
प्रसूमैघनादस्य कन्यामयस्य,
रतादेवरं हन्त मंदोदरी सा
भई रांड़ नारी गई लाज सारी।

---

१. देखिए खंड १६ और १८, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी।

लोकनाथ लंकेश्वर रावण की प्रिया, मेघनाद की माता, भय की कन्या मंदोदरी भी देवर में रत हो गई। भई रांड़ नारी गई लाज सारी।

ग्रियर्सन और आधुनिक युग :

१८०० ई० के बाद ग्रियर्सन ने नवयुग का प्रारंभ माना है। इस युग को आपने 'पुनर्जागर्ति का, उत्तरी भारत में मुद्रण-यंत्रों के वास्तविक प्रारंभ का और 'आधुनिक ढंग की पाठशालाओं के श्रीगणेश का युग' कहा है। साथ ही यह यूरोपीय लोगों को हिंदी नाम से ज्ञात और उन्हीं के द्वारा आविष्कृत, अद्‌भुत, संकीर्ण भाषा के प्रादुर्भाव का भी युग है।' आधुनिक हिंदी को 'आविष्कृत' अद्‌भुत सकीर्ण भाषा' मानने पर हिंदी के विद्वानों की क्षोभजनक आपत्ति है। हिंदी के विद्वान् शुक्लजी ने इस मान्यता के अनौचित्य को, १८०० ई० के पूर्व हिंदी गद्य की विद्यमानता के अनेक प्रमाण देकर (निरंजनी के योगवाशिष्ठ आदि का उल्लेख करते हुए) खंडन किया। ग्रियर्सन के 'आविष्कृत और अद्‌भुत एवं संकीर्ण' विशेषण आक्षेप को उत्तेजित करने के कारण बन गए। हम इन विशेषणों के प्रयोग को पसंद नहीं करते, पर ग्रियर्सन के पक्ष में यह तो कहा ही जा सकता है कि तत्कालीन यूरोपियनों को उन आधुनिक हिंदी-ग्रंथों के अस्तित्व का ज्ञान नहीं था। जब तक नागरी प्रचारिणी सभा, ने प्राचीन हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज नहीं कराई थी, जिसके फलस्वरूप १८०० ई० के पूर्व के तथाकथित गद्य ग्रंथ प्रकाश में आए, तब तक गिलक्रिस्ट से ग्रियर्सन तक यूरोपियन लेखकों को ही क्या, हिंदी के प्रसिद्ध लेखकों को भी, १८८८ ई० तक उन पुस्तकों के अस्तित्व का पता ही नहीं था। अतः ग्रियर्सन के 'आविष्कृत' शब्द पर जितनी आपत्ति हुई है उतनी उचित नहीं कही जा सकती। हिंदी को 'नवाविष्कृत भाषा' क्यों ग्रियर्सन ने कहा, यह वे आगे बताते हैं, 'क्योंकि यद्यपि इसका व्याकरण इसकी पूर्ववर्तिनी भाषा का ही था, किंतु सारा शब्दकोश पूर्णतया बदल गया था।' यहाँ ग्रियर्सन-ऐसा भाषा-शास्त्र का पंडित चूक गया। यदि इसका व्याकरण नहीं बदला, और वही पूर्ववर्तिनी भाषा का रह गया तब केवल शब्दकोश के पूर्णतया बदल जाने से (यदि इसे मान भी लिया जाय) क्या हिंदी के इस नए रूप को 'आविष्कृत अथवा नवाविष्कृत' कहना किसी भाषाशास्त्री के लिए उचित है? इस शब्द के प्रयोग में ग्रियर्सन ने भाषिक विवेक का परिचय नहीं दिया। आगे वे कहते हैं कि 'यह नयी भाषा यूरोपीय लोगों के द्वारा हिंदी कही गयी और संपूर्ण भारत

वर्ष में हिंदुओं की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर ली गयी····किंतु यह कहीं की देशभाषा नहीं थी'। यह विवेचन भी दोषपूर्ण है। कोई नई भाषा इतनी शीघ्रता से राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं की जाती। कोई नई भाषा तभी सहसा राष्ट्रभाषा बन सकती है, जब उसे कठोर रूप से डिक्टेटर की भाँति कोई सरकार राजाज्ञा से प्रजा को ग्रहण करने को विवश कर दे। ऐसा तो उस काल में कंपनी सरकार ने किया नहीं और न करने की स्थिति में ही थी। पुनः ग्रियर्सन का यह कथन कि यह कहीं की देशभाषा नहीं थी, यह भी तब की उक्ति है, जब उन्होंने भारत का भाषा सर्वेक्षण करके यह नहीं जाना कि इस हिंदी का मूलाधार वही देशभाषा या बोली है, जो दिल्ली-मेरठ के बीच में चलती है। जब लल्लूजी ने प्रेमसागर में उसके एक रूप को खड़ी बोली नाम दिया था, तब भी वे इसे बोली के रूप में ही जानते थे। उन्होंने उसका क्षेत्र भी अपनी जानकारी के अनुसार दिल्ली-आगरे को बताया था। उसी को खुसरो और दूसरे मुसलमान लेखकों ने 'देहलवी' नाम दिया था। शायद ग्रियर्सन यही कहना चाहते थे कि यामिनी भाषा के शब्दों से युक्त हिंदी कहीं देश भाषा नहीं थी। पर यह तो शैली का प्रश्न है। किसी भाषा मे, जिसमें अनेक भाषाओं से आगत शब्द लिए गए हैं, यदि एक लेखक एक विशेष भाषा के शब्दों को छोड़कर अन्य स्रोत के शब्दों के योग से ही अपनी शैली बनावे तो उसे भिन्न भाषा या नवाविष्कृत भाषा नहीं कहते—उसे उस भाषा की विशिष्ट शैली ही मानते हैं। अतः ग्रियर्सन का हिंदी को (आधुनिक अर्थ में) 'कृत्रिम बोली' बताना, जो किसी भी देशी भारतीय की मातृभाषा नहीं है और जिसे अपने आविष्कारकों की प्रतिष्ठा के कारण, प्रारंभ में जो पुस्तकें इसमें छपीं, उनकी अत्यधिक जनप्रियता के कारण और प्रयुक्त क्षेत्र में अपनी अत्यधिक उपयोगिता के कारण अपने को बलपूर्वक स्वीकार करा दिया था, ठीक नहीं है। ग्रियर्सन ने यूरोपियनों को हिंदी के आविष्कारक होने का जो श्रेय दिया है, वह भ्रांत अत्युक्तिमात्र है। गिलक्रिस्ट और फोर्टविलियम कालेज के अन्य अधिकारी हिंदी बनाने वाले या हिंदी के आविष्कारक कदापि नहीं थे, वे तो केवल लेखकों के प्रेरक, पोषक अथवा दिग्दर्शक मात्र थे। १८०० ई० के पूर्व से ही हिंदी क्षेत्र के शिष्ट-शिक्षित हिंदुओं को इस हिंदी का ज्ञान था—इसका व्याकरण पढ़कर नहीं, परस्पर व्यवहार और व्यापक प्रयोग के माध्यम से—इसी से यह हिंदी रूप इतनी शीघ्रता और सुगमता से हिंदू जनता

द्वारा स्वीकृत हुई। गिलक्रिस्ट ने तो ब्रजभाषा गद्य में और रेखते की भाषा में भी लल्लूजी से पुस्तकें लिखवाईं थीं और उनका पोषण किया था, उन्हें भी छपाया था, पर उनके गद्य का प्रचार क्यों नहीं हुआ ? विशाल हिंदी क्षेत्र में बोलचाल में ब्रजभाषा का व्यापक प्रचार नहीं होने के कारण उसका गद्य सर्वत्र स्वीकार्य नहीं था। परंतु खड़ी बोली गद्य, परस्पर के व्यवहार के कारण सारे हिंदुस्तान (सीमित अर्थ में) में चलता था, इसी से उसे हिंदुओं के बीच सहज स्वीकृति मिल गई। हिंदी की पढ़ाई जब कंपनी के राजकाल में शुरू हुई, तब अवश्य ही पाठ्यपुस्तकों के द्वारा हिंदी का यह रूप (खड़ी बोली) अधिक प्रचलित हो गया।

इस प्रसंग में हम लालचन्द्रिका (नागरी प्रचारिणी सभा, द्वारा प्रकाशित और ग्रियर्सन द्वारा संपादित) से एक लंबा उद्धरण प्रस्तुत करते हैं, जिससे ग्रियर्सन के हिंदी के 'आविष्कार' के संबंध में व्यक्त विचारों को एक स्थान पर पाठक को प्राप्त हो सके। इस अवतरण को काट-छाँट कर प्राय: लेखकों ने ग्रियर्सन के विचारों को अपने ढंग पर मोड़ दिया है।

'हिंदी का आविष्कार तो उन्होंने गिलक्रिस्ट की प्रेरणा से किया। उक्त महाशय एक ऐसी उर्दू पुस्तक लिखवाना चाहते थे, जिसमें से अरबी, फारसी के सारे शब्द निष्कासित हों और उनकी जगह हिंदू शब्द हों। भारत में ऐसी भाषा पहले न थी। उर्दू किसी हद तक मुसलमानों द्वारा साहित्य के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती थी। यह बाजार की सामान्य भाषा थी। हिंदू लोग अपनी स्थानीय बोलियाँ बोलते थे, जैसे—ब्रज, कनौजी, मारवाड़ी, भोजपुरी इत्यादि। उर्दू किसी स्थान या जाति की भाषा न थी। यह केवल एक आधा दर्जन भारतीय बोलियों का टूटा-फूटा सम्मिश्रण थी, जिसे मुगल विजेता देश के लोगों से बात व्यवहार में प्रयुक्त करते थे और इसमें विदेशी, अरबी और फारसी शब्दों का प्रभूत मात्रा में सन्निवेश था। गिलक्रिस्ट ने यह सोचने में मूल गलती की कि यह जातीय भाषा थी और उन्होंने अरबी, फारसी शब्दों के निष्कासन तथा हिंदू शब्दों के प्रतिष्ठापन द्वारा इसे इसके उस मूल हिंदू रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा, जिसकी उनकी अपनी कल्पना थी। परंतु व्याकरण अपरिवर्तित रहा और उसका तालमेल भारत के किसी भाग की भाषा के साथ न बैठ सका। अतएव जब लल्लूजी लाल ने हिंदी में अपना प्रेमसागर लिखा तब वह एक नई भाषा का सर्वथा आविष्कार नहीं कर रहे थे।

हाँ, प्रारंभ से ही इसका प्रवाह समृद्ध रहा। इसमें लिखी गई पहली पुस्तक की विषयवस्तु ने सभी भले हिंदुओं को आकृष्ट किया और इसके लेखक की संगीतमयी तथा तालमयी शैली ने उनके कानों को अरबी साज का-सा सुख दिया। और फिर, इस भाषा से एक अभाव मिटा। इसने हिंदुओं को जातीय भाषा दी। इसने विभिन्न प्रदेशों के लोगों में ऐसी भाषा में परस्पर वार्ता संभव की, जिसमें उनके अनुसार, मुसलमानों के गंदे शब्दों का आश्रय नहीं लेना पड़ता था। यह सरलता से सर्वत्र समझी जाती थी, क्योंकि इसका व्याकरण उस भाषा का था, जिसका व्यवहार प्रत्येक हिंदू को काम-काज के सिलसिले में सरकारी अधिकारियों से करना पड़ता था और उसकी शब्दावली उत्तर भारत की सभी आर्यभाषाओं की समष्टिगत सम्मति थी। और फिर, इसके पहले किसी भी भारतीय भाषा में गद्य नहीं के बराबर लिखा गया था। साहित्य प्राय: पूरी तरह काव्य-रचना तक सीमित था। अतएव प्रेमसागर की भाषा स्वाभाविक रूप से सारे हिंदुस्तान में हिंदू गद्य का मानदण्ड बन गई और अद्यावधि इसका वही स्थान बना है।'

बाद में ग्रियर्सन ने हिंदी-विषयक अपने विचार में संशोधन किया। इसके प्रमाण में हम परवर्ती रचनाओं से कुछ उद्धरण देते हैं। हिंदुस्तानी को 'भारत का भाषा-सर्वेक्षण' में स्थानीय बोली स्वीकार किया गया।

स्थानीय बोली के रूप में इसे गंगा के ऊपरी दोआब, रुहेल खण्ड तथा पंजाब के अम्बाला जिले के पूर्व में बोली जाने वाली पश्चिमी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' में 'हिंदी' के संबंध में यह कहा गया है कि यह कहीं की देशभाषा नहीं है।' इस प्रसंग में हिंदी से अभिप्राय लल्लूजी लाल की हिंदी से है। पर 'हिंदुस्तानी को जब 'स्थानीय बोली' माना गया है, तब ग्रियर्सन ने यह भी स्वीकार किया कि 'इसके (हिंदुस्तानी के) अनेक भेद हैं, जिनमें उर्दू रेखता, दक्खिनी तथा हिंदी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।' जब हिंदुस्तानी का ही एक भेद हिंदी है, तब हिंदी को दिल्ली-मेरठ की देशभाषा मान लेना चाहिये।' ग्रियर्सन 'सर्वेक्षण' में लिखते हैं—'दूसरी ओर यूरोपीय लोग इस (हिंदी) शब्द का दो परस्पर-विरोधी अर्थ में प्रयोग करते हैं। इनमें से एक अर्थ में हिंदी वह हिंदुस्तानी है, जिसका रूप संस्कृत-गर्भित अथवा फारसी-रहित होता है तथा जिसका प्रयोग हिंदू लोग साहित्यिक भाषा के रूप में करते हैं।....

इन पृष्ठों में, मैं हिंदी शब्द का व्यवहार इनमें से केवल प्रथम अर्थ में ही कर रहा हूँ। अतएव यह हिंदी कभी-कभी इसे 'उच्च हिंदी' भी कहा जाता है— उन हिंदुओं की साहित्यिक गद्य भाषा है, जो उर्दू का व्यवहार नहीं करते। यह हाल की ही भाषा है और इसका प्रचलन अंग्रेजों के प्रभाव से विगत शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था।'[१] इस स्थान पर स्पष्ट ही ग्रियर्सन अंग्रेजों को इसके आविष्कार का श्रेय नहीं देते, वे मात्र अंग्रेजों के प्रभाव से इसके प्रारंभ होने की बात करते हैं। 'इतिहास' में उन्होंने प्रेमसागर की हिंदी के लिए 'कृत्रिम अद्भुत' और संकीर्ण विशेषण दिए थे, पर 'सर्वेक्षण' में जो लिखा है, उससे उनकी बात का स्वय खंडन हो जाता है। वे लिखते हैं—'जहाँ तक प्रेमसागर के गद्यभाग का संबंध है, यह ग्रंथ क्रियात्मक रूप में उर्दू में ही लिखा गया है, किन्तु इसके लेखक ने उन स्थानों में जहाँ उर्दू गद्य का लेखक फारसी शब्दों का प्रयोग करता भरतीय आर्यभाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। लल्लूजी का यह कार्य वस्तुतः ऊपरी दोआब की वास्तविक की ओर, अपने आप, प्रत्यावर्तित होने का था।....यह नूतन प्रयोग वास्तव में प्रारभ से ही सफल रहा।....फिर इस भाषा ने एक अभाव की पूर्ति की। इसने हिंदुओं को एक राष्ट्रभाषा प्रदान की। (इसने दूरस्थ प्रदेशों में रहने वाले लोगों को उनके विचार व्यक्त करने के लिए एक ऐसी भाषा दी, जिसमें मुसलमानों के अपावन शब्द न थे।) यह सर्वत्र ही सहज बोधगम्य थी, क्योंकि यह वह भाषा थी जिसे प्रत्येक हिंदू शासन से संबंध रखनेवाले कार्यों में प्रयुक्त करता था, जिसका शब्दसमूह उत्तरी भारत की समस्त भारतीय आर्यभाषाओं की सम्मिलित संपत्ति थी।'

ग्रियर्सन का यह कथन कि 'यह ग्रंथ क्रियात्मक रूप में उर्दू में ही लिखा गया है'[१] सर्वथा तथ्यहीन और आक्षेप्य है। इसमें जहाँ लेखक ने भारतीय

१. सर्वेक्षण पृष्ठ ३२५-३२६।

2. It is of modern origin, having been introduced under English influence at the commencement of the last century Lallulal under the inspiration of Dr. Gilchrist changed all this by writing the well-known Premsagar as work which was so far as the prose portion went, practically written in Urdu, with Indo-Aryan words substituted, wherever a writer in that form of speech would use Persian ones—(L. S. I., Vol. I., Part I., P. 47).

आर्यभाषा के शब्दों का प्रयोग किया, उन स्थानों पर फारसी शब्द रख देने से ही प्रेमसागर की भाषा उर्दू नहीं हो जाएगी। ग्रियर्सन स्वयं हिंदी और उर्दू के भेद में वाक्य-विन्यास और शब्दों के क्रम को महत्त्व देते हैं। तब केवल शब्द-समूह के बदल जाने से न हिंदी उर्दू बन जाती है और न उर्दू हिंदी। दोनों के वाक्यगठन, विशेषण-विशेष्य-संबंध आदि की रीति में अंतर है—भेद केवल शब्दावली का ही नहीं है। ग्रियर्सन और उनसे प्रभावित अनेक यूरोपियन लेखकों की इस धारणा का कतिपय हिंदी विद्वानों पर प्रभाव पड़ा। इस प्रसंग में श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का कथन तुलनीय है। 'खड़ी बोली या पक्की बोली या रेखता या वर्त्तमान हिंदी के वर्त्तमान गद्यपद्य को देखकर यह जान पड़ता है कि उर्दू रचना में फारसी-अरबी तत्सम या तद्भवों को निकाल कर संस्कृत या हिंदी तत्सम और तद्भव रखने से हिंदी बना ली गई। (पुरानी हिंदी, पृ० १०७)।

'वर्तमान उच्च हिंदी का विकास उर्दू से फारसी और अरबी के शब्दों को छाँट कर उनके स्थान पर संस्कृत और हिंदी के शब्दों की भरती के बाद हुआ है।'—ए हिस्ट्री आफ हिंदी लिटरेचर—पे० ४ एफ० ई० की।

ग्रियर्सन का यह कथन भी आक्षेप्य है कि लल्लूजी के समय से अब तक हिंदी ने अपनी शैली से संबंध रखने वाले कतिपय ऐसे नियमों का विकास किया है, जो उसे उर्दू से पृथक् कर देते हैं। यथार्थ यह है कि ये नियम लल्लू जी से पूर्व से ही मान्य हैं और ब्रजभाषा गद्य में तथा खड़ीबोली के आरंभिक गद्य में भी, जो अल्पमात्रा में ही प्राप्य है, पहले से ही चलते थे।

ग्रियर्सन-तत्समता के विरोधी :

हिंदी को संस्कृति-बहुल बनाने की प्रवृत्ति का ग्रियर्सन ने विरोध किया। उनका मत है कि 'हिंदी का अपना शब्द-समूह विशाल है। इसकी जड़ें उन ग्रामीण कृषकों की भाषा में है, जिसपर यह आधारित है, अतएव आधुनिक हिंदी पुस्तकों में जो संस्कृत के शब्द मिलते हैं, उनमें से अधिकांश व्यर्थ एवं दुर्बोध्य ग्रंथियों के समान हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि संस्कृत शब्दों के व्यवहार से शैली उत्कृष्ट हो जाती है। यह उसी प्रकार की बात है जैसे कोई अठारह वर्ष की सुंदरी अपनी मातामही का बेल बूटेदार अधोवस्त्र पहन कर अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करे।'[१] हिंदी की तद्भव-निष्ठ शैली के समर्थक ग्रियर्सन

१. सर्वेक्षण प० ३२७।

ने हिंदी में अनावश्यक संस्कृत (तत्सम) शब्दों के प्रयोग को व्यर्थ और दुर्बोध्य ग्रंथि कहा। वे कहते हैं कि 'हिंदी भी संस्कृत पंडितों के हाथ में तथा संस्कृत के माध्यम से हिंदी पढ़ने वाले कतिपय यूरोपीय लेखकों के प्रोत्साहन के प्रमुख में पड़कर संस्कृत की जटिल शब्दावली में फँस गई है।' इसमें आंशिक सत्य अवश्य है चूंकि हिंदी के प्रारंभिक गद्यलेखक अधिकतर ब्राह्मण थे, पर सब संस्कृत के पूरे पंडित थे, यह बात नहीं है। 'लल्लूजी का संस्कृत ज्ञान सामान्य ही था। सदल मिश्र के ग्रंथों का तो लेखन के बाद प्रकाशन ही नहीं हुआ, अतः उनका प्रभाव नहीं पड़ा। उसके बाद के लेखकों में मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह और हरिश्चन्द्र प्रमुख हैं, जिनमें कोई संस्कृत का पंडित नहीं कहा जा सकता, संस्कृत का जानकार भले ही हो। असल बात यह है कि शिक्षाक्रम में जब हिंदी को स्थान मिला, तब हिंदी के पाठ्य-पुस्तक-लेखकों को अनेक शास्त्रीय विषयों पर यथागणित, भूगोल, इतिहास, व्याकरण, ज्योतिष, चिकित्सा आदि पर पुस्तकें लिखना आवश्यक हो गया। इन विषयों में जो भी भारतीय ज्ञान था, वह संस्कृत में था, अतः संस्कृत की शब्दावली का सहारा पकड़ने में लेखकों का सहज आकर्षण था। पुनः यूरोपीय पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद करने में संस्कृत कोश की शरण में जाना आवश्यक हो गया, क्योंकि यहाँ बोलचाल के प्रचलित शब्दों या केवल तद्भवों के बल पर निश्चित पारिभाषिक शब्द गढ़े नहीं जा सकते। संस्कृत का क्षीर पीकर ही सभी आधुनिक आर्य-भाषाएँ अपने को पुष्ट कर रही थीं, अतः बंगला, मराठी आदि उन्नत भाषाओं की रीति और प्रवृत्ति का ही हिंदी ने भी अनुसरण किया। व्याकरण, भूगोल, इतिहास और ज्योतिष आदि की पाठ्यपुस्तकों की भाषा में इसी कारण से संस्कृत शब्दों का अधिक ग्रहण हुआ है। संस्कृत शब्दावली का काव्य में प्रयोग भक्तिकाल में ही बढ़ने लगा था, अतः जब गद्य में साहित्य रचा जाने लगा तब सूर, विद्यापति, तुलसी, केशव आदि की काव्यभाषा में जिस अनुपात में संस्कृत शब्दावली का ग्रहण हुआ था, उस अनुपात तक तो संस्कृत शब्दों के प्रयोग की दीर्घकालीन परंपरा का समर्थन भी था। अतः ग्रियर्सन की यह शिकायत कि साहित्यिक बंगला की भाँति ही हिंदी पतनोन्मुख हो रही है, उचित नहीं है। सिद्धांततः यह ठीक है कि हिंदी जनभाषा के निकट रहे और जनभाषामें तत्सम शब्द कम मात्रा में चलते हैं, पर हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें रचने में संस्कृत का आश्रय लेने में सुविधा के साथ विवशता भी

थी। ग्रियर्सन के तद्भव-बहुल हिंदी के समर्थन का प्रभाव कुछ लेखकों पर पड़ा। ठेठ हिंदी का ठाठ (१८९८ ई०) इस विचारधारा से प्रभावित रचना है। हरिऔधजी ने अपने हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में यह उल्लेख किया है कि बाबूरामदीनसिंह ने उनसे आग्रह किया था कि ग्रियर्सन स हब की इच्छा है कि कोई ऐसी किताब लिखी जाय, जिसमें न तो संस्कृत के शब्द हों न किसी दूसरी भाषा के। अतः इसके प्रकाशन पर ग्रियर्सन ने सन्तोष और हर्ष व्यक्त किया था। आपने इस संबंध में बधाई का पत्र भेजा था, जिसमें आपने यह लिखा—

'ठेठ हिंदी का ठाठ' के सफलता और उत्तमता से प्रकाश होने के लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। यह एक प्रशंसनीय पुस्तक है.......मुझे आशा है कि इसकी बहुत बिक्री होगी, जिसके कि यह योग्य है। आप कृपा करके पं० अयोध्यासिंह से कहिए कि मुझे इस बात का हर्ष है कि उन्होंने सफलता के साथ यह सिद्ध कर दिया कि बिना अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग किए ललित और ओजस्विनी हिंदी लिखना सुगम है।'

कथा-साहित्य में हरिऔध और देवकीनंदन खत्री आदि ने संस्कृत के प्रभाव से बचने की चेष्टा की, पर वे बहुसंख्यक संस्कृत शब्दों के प्रेमी लेखकों की बाढ़ को रोक नहीं सके।

हिंदी और बोलियों की अपनी शब्दावली की क्षमता में ग्रियर्सन को पूर्ण विश्वास था। संस्कृत शब्दों का प्रयोग किए बिना भी प्रवाहपूर्ण और ओजस्विनी हिंदी लिखी जा सकती है। संस्कृत शब्दावली पर अधिक अवलंबित होना हिंदी के हित में नहीं है, ऐसा उनका दृढ़ मत है। सरल तद्भवनिष्ठ हिंदी की संभावना में निष्ठा रखते हुए ग्रियर्सन ने अपना मत व्यक्त किया था। 'संस्कृतमुखापेक्षी हिंदी के लेखकों की नीति उन्हें पसंद नहीं थी और वे ऐसी शैली को अनावश्यक वागाडंबर और पांडित्य-प्रदर्शन मात्र मानते थे।'[१]

---

1. Hindi and the dialects from which it has sprung are and for five hundred years have been capable of expressing with crystal clearess any idea, which the mind can concerve. Its old literature contains some of the heights of poetry. Trcatises on philosophy and rhetoric are found in it, in which the subject has been handled with all the subtelty of Sanskrit, with hardly any use of

ग्रियर्सन और उर्दू :

उर्दू गद्य में से फारसी-अरबी शब्द निकाल कर उनके स्थान पर संस्कृत शब्द धर देने से प्रेमसागरी भाषा नहीं बनी थी। यह हम दिखला चुके हैं। यदि पहले से उर्दू गद्य विकसित रूप में मिलता, तो कदाचित् ऐसा संभव भी होता, पर जब उर्दू गद्य भी १८०० ई० के लगभग से ही व्यवस्थित रूप में प्राप्य है, तब यह कैसे संभव था। रेखता या उर्दू गद्य हिंदी (खड़ी बोली) पद्य से पुराना है, पर दोनों का गद्य प्रायः समकालिक है। अतः उर्दू से हिंदी का बनना तथ्य-हीन है। ग्रियर्सन ने स्वयं लिखा है—'साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदुस्तानी के प्राचीनतम नमूने उर्दू या रेखता में उपलब्ध हैं। ये नमूने काव्य-ग्रंथों में ही मिलते हैं।.... साहित्यिक माध्यम के रूप में, उर्दू गद्य की उत्पत्ति विगत शताब्दी के प्रारंभ में कलकत्ते में हुई। हिंदी गद्य की भाँति ही, उसके लिए भी प्रारंभिक प्रयत्न अंग्रेजों के प्रभाव एवं हिंदुस्तानी के दोनों रूपों (हिंदी और उर्दू) में पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिए फोर्ट विलियम कालेज में किए गए।[१] प्रारंभिक प्रयत्न में अंग्रेजों के प्रभाव और कालेज में पाठ्य-पुस्तकें लिखाने का हाथ है, इतना स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, पर जब वे 'आविष्कार' 'कृत्रिम भाषा' और उर्दू से हिंदी बना लेने की बात करने लगते हैं, तब लगता है कि वे अंग्रेजों को अनुचित महत्त्व देते हैं, जिसके वे पात्र नहीं हैं। कालेज के रूप में, गिलक्रिस्ट के अधीन हिंदी और उर्दू के गद्य लेखकों को जितना भी संरक्षण अथवा पोषण प्राप्त हुआ हो, कोई संरक्षक या पोषक आविष्कर्त्ता नहीं हो जाता। ग्रियर्सन कहते हैं कि उर्दू की प्रारंभिक पुस्तकों में बागोबहार और विरद् अफरोज का वही स्थान है, जो हिंदी में लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' का। अतः कोई विवेकशील पाठक यह कैसे मान सकता है कि उर्दू से फारसी-अरबी शब्दों की छँटनी कर और उनकी जगह संस्कृत मूल के शब्द की भरती करके हिंदी बना ली गई थी। यदि दोनों ही नवजात भाषाएँ थीं, तो एक से दूसरे की उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

Sanskrit words. Yet in spite of Hindi possessing such a vocabulary and a power of expression scarcely inferior to that of English, it is a fashion, now to use Sanskrit words not to be read by millions but to display authors learning to a few. L. S. of India. Vol. IX, P 55.

१. सर्वेक्षण, पृ० ३४८।

ग्रियर्सन ने उर्दू को देशभाषा नहीं माना है। उनके अनुसार, 'प्रधान रूप से यह पश्चिमी हिंदुस्तान के शहरों में मुसलमानों तथा फारसी संस्कृति से प्रभावित हिंदुओं द्वारा बोली जाती है।' इसका अर्थ यह है कि यह समूचे 'हिंदुस्तान' (सीमित अर्थ) में नहीं, केवल पश्चिमी हिंदुस्तान में, वह भी शहरों में ही और वहाँ भी मुसलमानों और फारसी संस्कृति से प्रभावित हिंदुओं की बोली ही है। ऐसे हिंदुओं में मुख्यतः कायस्थ, खत्री आदि कचहरी और हुकूमत से संबंधित लोग हैं। अतः जो लोग आज यह नारा लगाते हैं कि उर्दू को 'रेजिनल लैंग्वेज' (प्रादेशिक भाषा) घोषित किया जाए। उनसे यदि ग्रियर्सन आज जीवित होते, तो सहमत नहीं होते। यदि सच्ची बात यह है, तो यह कितना कठोर भाषिक अन्याय था कि अदालतों और स्कूलों में उर्दू बहुत जमाने तक यू०पी० में अनिवार्य भाषा बनी रही और सरकारी शह पाकर हिंदी को दबाए रही। वह अब भी 'प्रादेशिक भाषा' का दावा करती है। ग्रियर्सन ने उर्दू की सत्ता स्वतंत्र भाषा रूप में कभी स्वीकार ही नहीं की। हिंदुस्तानी की दो शाखाओं के रूप में ही वे बराबर हिंदी (उच्च हिंदी) और उर्दू पर विचार करते थे। 'उर्दू हिंदुस्तानी का वह रूप है जो फारसी लिपि में लिखा जाता है तथा जिसमें फारसी-अरबी शब्द स्वतंत्रतापूर्वक व्यवहृत होते हैं।' 'भारत का भाषा, सर्वेक्षण' पृ० ३२२।

भारत का भाषा-सर्वेक्षण :

ग्रियर्सन को १८९८ ई० में भारत का भाषा सर्वेक्षण कराने का कार्य मिला। इस कार्य की गुरुता और महत्त्व को समझते हुए उन्होंने एक महती योजना बनाई। ऐसा कार्य इतने बड़े देश के लिए कभी हुआ ही नहीं था। सामान्यतः यह धारणा थी कि इस विशाल देश में कई दर्जन बोलियाँ बोली जाती हैं। ग्रियर्सन स्वयं आर्यभाषा वर्ग की भाषाओं या उपभाषाओं को ही सुचारु रूप से जानते थे। इसके पूर्व उन्होंने मुख्यतः 'हिंदुस्तान' और बंगाल की भाषाओं पर कुछ काम किया था। इस क्षेत्र के बाहर की कुछ भाषाओं का उन्हें कामचलाऊ ज्ञान था, पर वे भाषाएँ भी उसी कुल की थीं, जिन्हें भारतीय आर्यभाषा वर्ग में स्थान दिया जाता था। वे इस वर्ग के प्राचीन और मध्यकालीन रूपों से अर्थात् संस्कृत-प्राकृत्त-अपभ्रंशादि से सुपरिचित थे, पर भारत के दक्षिण में द्रविड़ वर्ग और मध्यभाग-स्थित जंगलों में मुंडा वर्ग की अनेक भाषाएँ बोली जाती थीं, जिनके संबंध में किसी

भाषाविद् को भी पर्याप्त परिचय नहीं था तथा भारत की उत्तरी सीमा पर तिब्बती-चीनी परिवार की कुछ बोलियाँ भी प्रचलित थीं, जिनका कभी किसी भाषाविद् ने ठीक से परिचय नहीं दिया था। भारत में भाषाशास्त्र और व्याकरणविद्या की, प्राचीनकाल से बड़ी चर्चा थी, पर प्राचीन आर्य विद्वानों ने मुख्यतः आर्यभाषा भेदोपभेदों पर ही चिंतन किया था। दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं के कुछ प्राचीन ग्रंथ और व्याकरण रचे गए थे, पर आर्य-द्रविड़ मूल की भाषाओं के अतिरिक्त अन्य भाषाओं पर किसी भारतीय ने यूरोपियनों के आगमन पूर्व ध्यान नहीं दिया था।

भारत की भाषिक स्थिति पर मुसलमानों ने जो संक्षिप्त विवरण दिए थे, उनमें आर्य-द्रविड़ भाषाओं के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा का उल्लेख नहीं मिलता। अमीर खुसरो ने केवल निम्नांकित स्वतंत्र भाषाओं का उल्लेख किया था। 'हिंदी (सिंधी), लाहौरी (पंजाबी), कश्मीरी (जम्मू के डोगरों) की भाषा, घुर समुंदर (मैसूर की कन्नड भाषा), तिलंग (तेलुगु), गुजरात, मलाबार (कारोमंडल समुद्रतट की तमिल), गौड (उत्तरी बंगला) बंगाल, अवध (पूर्वी हिंदी), दिल्ली तथा उसके आसपास की भाषा (पश्चिम हिंदी)।[1] अमीर खुसरो के बाद अबुल फ़जल का विवरण मिलता है। उन्होंने इन पृथक् भाषाओं का नामोल्लेख किया है।' दिल्ली की बोली (पश्चिमी हिंदी), बंगाल (बंगला), मुल्तान (लहंदा), मारवाड़ (पश्चिमी राजस्थानी), गुजरात (गुजराती), तेलंगाना (तेलुगु), मरहट्टा (मराठी), कर्नाटिक (कन्नड), सिंध (सिंधी), शाल का अफगान (पश्तो), बलूचिस्तान (बलूची) तथा कश्मीर (कश्मीरी)[2]।

यूरोपियनों में बेलिगत्ती ने रोम से १७७१ ई० में 'अलफाबेटम ब्राह्मणिकम सेव् यूनिवर्सिटाइटिस काशी' पुस्तक निकाली, जिसके भूमिका-लेखक जोहन्स क्रिस्टोफोरस अमांडुटियस ने 'समसक्रीत' (संस्कृत) और बनारस की 'बखा बोली' (भाषा बोली) का उल्लेख किया है। जान पड़ता है कि बनारस में बोली जाने वाली भाषा को ही वह 'बखा बोली' (भाखा बोली) कहता है। इसके अतिरिक्त उसने (१) बंगलेनिसस (बंगला), (२) तोरुति-याना (तिरहुतिया), (३) नेपालेनसिस (नेपाली), (४) मराठिका (मराठी),

१. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, पृ० २ पर उद्धृत।
२. वही, पृ० ३।

(५) पेगुआना (वर्मी), (६) सिंगलिया (सिंहली), (७) तेलुगिका (तेलुगु) और (८) तमुलिका (तमिल) का उल्लेख हुआ है। इसमें नागरी और कैथी के चल टाइप भी दिए गए हैं।[१] अत: इसमें भाषा के अतिरिक्त आर्यमूल की बंगला, तिरहुतिया, नेपाली, मराठी का ही उल्लेख है। द्रविड़ भाषाओं में तेलुगु और तमिल का नाम आया है। नेपाली, पेगू और सिंहली भाषाएँ अब भारत के बाहर नेपाल, बर्मा और सिंहल में बोली जाती है।

पर अभी तक हिंदी के जनपदी रूपों की चर्चा किसी ने नहीं की थी। इसकी जानकारी प्रथम बार १८१६ ई०के उस रिपोर्ट से होती है, जिसमें संस्कृत के अतिरिक्त ३३ भाषाओं का उल्लेख हुआ है। ये हैं—वँगला, हिन्दी, कश्मीरी डोगरा (डोगरी), बुच, (लहँदा); सिंधी (दक्षिणी सिंध), कच्छ, गुजराती, कोंकणी, पंजाबी अथवा सिम्स, बीकानेरी, मारवाड़ी, जयपुरी, उदयपूरी, हाडोती, मालवी, व्रज, बुंदेलखंडी, महाराष्ट्री, मागधी (दक्षिण बिहार की भाषा), उत्तर कोशल (अवधी), मैथिली, नेपाली, आसामी, उड़ीसा अथवा उत्कल, तेलुगु, कन्नड, पश्तो अथवा अफगान, बलूची, खासी, बर्मी।

१८३७ ई० में नाथन ब्राउन ने हिंदी-चीनी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपाया। १८४७ ई० में ब्रियांन हाटन हागसन ने हिमालयवर्ती बोलियों का अध्ययन किया। हागसन ने द्रविड़ और कुछ मुंडा भाषाओं का विवेचन एक साथ किया। इसके वाद १८५४ ई० में मैक्समूलर ने मुंडा परिवार को द्रविड़ परिवार से भिन्न माना। हिंद-चीन भाषाओं का अध्ययन लोगन ने आरंभ किया। इसके पश्चात् वृहत्तर भारतीय भाषाओं का अध्ययन आरंभ हुआ। डब्लू शिमिट ने मान-खमेर भाषाओं को और खासी आदि को आस्ट्रो-एशियाटिक वर्ग में रखा। इस संक्षिप्त विवरण की पृष्ठभूमि में ही ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण कार्य के महत्त्व को ठीक से समझा जा सकता है। उन्होंने विविध भारतीय भाषाओं के पूर्ववर्ती अध्ययन और ज्ञान की चर्चा करते हुए ठीक ही लिखा है, 'सच बात तो यह है कि सन् १८७८ तक कोई विद्वान् भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की सूची तक भी तैयार न कर सका और उस समय लोगों का अनुमान था कि यह संख्या ५०-६० से लेकर २५० तक होगी।' पर जब यह कार्य पूर्ण

१. भारत का भाषा सर्वेक्षण पृ० १९।

हुआ, तब इसके निष्कर्षों ने सबको चकित कर दिया। 'सर्वेक्षण' के क्षेत्र में मद्रास, बर्मा, हैदराबाद और मैसूर के राज्य शामिल नहीं थे।' फिर भी इस सर्वेक्षण से यह मालूम हुआ कि भारत में १७९ भाषाएँ और ५४४ बोलियाँ बोली जाती हैं। पर इस बडी संख्या से घबराने की कोई बात नहीं है; क्योंकि भारतीय आर्यभाषाओं की संख्या केवल १७ और उनकी ३४५ बोलियाँ हैं जो अधिक नहीं कही जा सकतीं। ग्रियर्सन द्वारा यदि सर्वेक्षण न कराया गया होता, तो हम अपने देश की सैकडों भाषा-बोलियों का नाम भी नहीं जान पाते, उनके स्वरूप, भाषिकों की संख्या और उनके व्याकरणिक गठन की तो बात और ही दूर है।

हिंदी-क्षेत्र की भाषाओं और बोलियों का वर्गीकरण :

ग्रियर्सन ने भारतीय आर्यभाषाओं को कई शाखाओं और समुदायों में वर्गीकृत किया। इसके मूल में उनका यह सिद्धांत है कि भारत में आर्य कई शाखाओं में और कई बार आये। यह सिद्धांत पूर्णतः स्थापित नहीं हुआ है, पर भाषाओं के विवेचन के प्रसंग में ग्रियर्सन और हार्नले ने आर्यों के दो धाराओं में इस देश में आगमन का सिद्धांत अनुमित किया है।[१] इस सिद्धांत की सम्यक्

---

१ : लहरों के रूप में पानुक्रमिक आक्रमणों को एक-दूसरे से पृथक् करना असम्भव है, किंतु प्रथम और अंतिम में भेद करना अत्यंत सरल भी है। सन १८८० ई० में हार्नले ने (गौडियन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण में) यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि भारतवर्ष की वर्त्तमान और उनकी पूर्वज भाषाओं के साक्ष्य से इस मत का समर्थन हो जाता है कि भारत पर एक-एक करके आर्यों के लगातार दो आक्रमण हुए। दो विभिन्न समूहों के आक्रमणकारी ये आर्यगण दो विभिन्न भाषायें भी बोलते थे, जिनका आपस में एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध था।'.....ग्रियर्सन ने इस मत पर यह लिखा है: 'मै महान् विद्वान् हार्नले के ऊपर के सिद्धांत को पूर्णतया स्वीकार करने में असमर्थ हूँ क्योंकि भाषागत पार्थक्य की व्याख्या के लिए दो विभिन्न आक्रमणों की कल्पना मुझे अनावश्यक प्रतीत होती है।'....आगे वे लिखते हैं—'चाहे हम दो पृथक् आक्रमणों की भाषाओं में भेद करें, चाहे प्रथम तथा अंतिम देशांतरेखामियों की भाषा में, परिणाम एक ही है। पूर्वागत देशांतरवासी 'एक भाषा बोलते थे और पश्चादागत दूसरी, जो भी हो हार्नेल अपने सिद्धांत को लेकर आगे बढ़े। उन्होंने पश्चादागत आक्रमणकारियों के पंजाब में प्रवेश को एक पच्चड़ के रूप में लिया। ये नवागंतुक सीधे पंजाब के मध्य में जा घुसे। इसे पूर्वागत आक्रमणकारी पहले से ही अधिकृत किए बैठे थे। इनके आगमन का परिणाम यह हुआ कि प्रथम आक्रमणकारी तीन दिशाओं—पूर्व, दक्षिण तथा पीछे पश्चिम—में फैलने के

परीक्षा तो इतिहास, नृविज्ञान आदि के प्रकाश में ही हो सकती है। पर भाषाविद् अपने भाषातत्त्व के प्रयोग के बल पर ही इस सिद्धांत की सत्यता प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। अनेक इतिहास के विद्वान् ग्रियर्सन और हार्नेली के मत से सहमत नहीं हैं। हम उक्त सिद्धांत के पक्ष-विपक्ष के तर्कों की परीक्षा इस प्रसंग में नहीं करना चाहते, क्यों कि यह हमारा विषय नहीं है, पर ग्रियर्सन का वर्गीकरण क्या है, यह बतलाना आवश्यक है।

भारतीय आर्यभाषा की तीन उपशाखाएँ बताई गई हैं—(अ) बाहरी उपशाला, (आ) अन्य उपशाखा, (इ) भीतरी उपशाखा। पुनः 'बाहरी उपशाखा' के तीन समुदाय बनाए गए (क) उत्तर-पश्चिमी समुदाय, (ख) दक्षिणी समुदाय, (ग) पूर्वी समुदाय। मध्य उपशाखा में एक ही बीच का समुदाय रखा गया है। भीतरी उपशाखा में दो समुदाय हैं—केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय और पहाड़ी समुदाय। इस प्रकार के उपशाखा और तदन्तर्गत समुदाय के वर्गीकरण का परिणाम यह हुआ कि हिंदी की अब तक बहुमानित बोलियों को एक ही समुदाय में स्थान नहीं मिला और वे कई समुदायों में रख दी गई। भाषा और बोली के पृथक्करण का जो सिद्धांत माना गया उसके अनुसार भी जो एक ही भाषा की विविध बोलियाँ थीं, उनमें से किसी एक बोली को एक उपशाखामें और किसी को दूसरी उपशाखा में स्थान दिया। 'उपशाखा' के एक 'समुदाब' की बोली को दूसरी उपशाखा के किसी समुदाय के अतर्गत स्थान मिल गया। इस प्रकार का 'उपशाखा' समुदाय विवेचन हिंदी-भाषी विद्वानों को अपने अनुभव और ज्ञान से प्रतिकूल जान पड़ा। इस प्रसंग में हम ग्रियर्सन के 'भाषा और बोली' के विवेचन की ओर संकेत करना आवश्यक समझते हैं. क्योंकि ग्रियर्सन ने हिंदी की बोलियों को एक ही उपशाखा और समुदाय में स्थान नहीं दिया। उदाहरण के लिए 'बिहारो' को बाहरी उपशाखा के पूर्वी समुदाय में, पश्चिमी हिंदी को 'भीतरी उपशाखा के भीतरी समुदाय में और पूर्वी हिंदी को 'मध्य उपशाखा' के 'बीच का समुदाय' में

लिए बाध्य हुए। यद्यपि मै इसे पूर्णतया अस्वीकार नहीं करता, किंतु मै यहाँ पुनः उनके 'पचड़ सिद्धांत' को वर्तमान ज्ञान के आधार पर आवश्यक रूप से ठीक मान लेने को तैयार नहीं हूँ।' (सर्वेक्षण पृ० २२५-२२७। ग्रियर्सन और हार्नली बाहरी उपशाला, मध्य उपशाखा और भीतरी उपशाखा के भेदों का कारण यही 'पूर्वी पर देशांतर गमन का सिद्धांत' बताते हैं।

स्थान मिला। पश्चिमी हिंदी को जिस उपशाखा के भीतरी 'समुदाय' में स्थान मिला, उसी में पंजाबी और राजस्थानी भी रखे गए।

'भाषा और बोली' पर विचार के प्रसंग में ग्रियर्सन ने दोनों में भेद बतलाते हुए 'सेंचुरी डिक्शनरी' की परिभाषा के अनुसार कहा है, 'साधारण रूप से हम यह कह सकते हैं कि एक भाषा की विभिन्न बोलियों में समानता होती है और उस भाषा के बोलने वाले उसे समझ जाते हैं, किन्तु अपनी मातृ-भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा को ग्रहण करने के लिए विशेष परिश्रम और अध्ययन की आवश्यकता होती है।' पर इसे तात्त्विक अंतर नहीं माना गया है। ग्रियर्सन कहते हैं कि उत्तर भारत की आर्यभाषाओं के संबंध में विचार करते समय तो यह परिभाषा पूर्णतया लागू नहीं हो पाती। यहाँ की परिस्थिति में पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धांत को भी स्वीकार करना वे ठीक नहीं मानते, क्योंकि बंगाल और पंजाब के बीच थोड़ा-बहुत शिक्षित प्रत्येक व्यक्ति दो भाषाएँ समझ लेता है। इस क्षेत्र का प्रत्येक व्यक्ति अपने घर एवं पड़ोस में स्थानीय बोली का व्यवहार करता है, किन्तु अपरिचित व्यक्तियों से वार्तालाप करते समय वह हिंदी अथवा हिंदुस्तानी के किसी-न-किसी रूप का व्यवहार करता है।' यह सत्य है कि शासन की भाषा और शिक्षा का माध्यम होने से वह हिंदी अथवा हिंदुस्तानी से परिचित है और घर पर प्रायः अपनी स्थानीय बोली बोलता है। पर ग्रियर्सन को परस्पर बोधगम्यता के सिद्धांत को वहाँ भी देखना चाहिए जब भोजपुरी भाषी बिना किसी परिश्रम और अध्ययन के मानस की बैसवारी अवधी को या आल्हा ऊदल की बोली को भी समझ लेता है। यह वस्तुसत्य है कि मानस इसी प्रकार पश्चिमी हिंदी के क्षेत्र में भी समझा जाता है। पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी की बोलियों में पारस्परिक बोध-गम्यता पाई जाती है। सर्वेक्षण में ग्रियर्सन ने बिहारी (बाहरी उपशाखा का पूर्वी समुदाय) पूर्वी हिंदी (मध्य उपशाखा का बीच का समुदाय) और पश्चिमी हिंदी (भीतरी उपशाखा का केंद्रीय समुदाय) को तीन स्वतंत्र भाषाएँ माना है। इस प्रकार जिसे हिंदी-भाषी एक ही भाषा मानते हैं उसे तीन भाषाएँ मानना उनके भाषाशास्त्रीय अनुशीलन का परिणाम हो गया। 'पारस्परिक बोधगम्यता' बोली और भाषा के भेद में बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है यह सर्वस्वीकृत मत है। इसके साथ अन्य बातें भी विचारणीय होती हैं। वे किसी भाषा के संश्लिष्ट होने या न होने को, क्रिया के रूपों की रचना या

व्याकरणिक गठन की बात उठाते हैं, पर गोरखपुर की बोली और झांसी की बोली (बुंदेली) में इतना भेद नहीं है, जितना बढ़ा कर बताया जाता है। यदि भेद अधिक होता तो पारस्परिक बोधगम्यता संभव नहीं है। ग्रियर्सन यह स्वीकार करते हैं इस वर्गीकरण की—अर्थात् बिहारी, पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी को स्वतंत्र भाषाएँ मानने की—आलोचना हुई है। हिंदी भाषियों का अनुभव और उनकी आलोचना को छोड़िए, १९२१ ई० की जनगणना की रिपोर्ट के लेखक भी पारस्परिक बोधगम्यता का प्रश्न उठाते हैं। 'यदि बिहारी भाषा-भाषी गोरखपुर के एक किसान से वार्त्तालाप किया जाय और पुनः पश्चिमी हिंदी भाषा-भाषी झांसी के जगल में रहने वाले किसी व्यक्ति से बातचीत की जाय तो दोनों की भाषा में ठीक उतना अंतर होगा जितना डिवोन तथा एवडीन (ब्रिटेन) के कृषकों की भाषा में। यदि आपके लिए एक की भाषा बोधगम्य है तो दूसरे की भाषा भी बोधगम्य होगी।'[1]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह बोधगम्यता गोरखपुर के किसान और झांसी के जंगल के किसी व्यक्ति के बीच है, दोनों स्थानों के शिक्षितों के बीच नहीं। 'बिहारी' की दो बोलियाँ भोजपुरी और मगही का पूर्वी हिंदी की ओर प्रवृत्ति है। मैथिली अवश्य ही बंगला की ओर झुकती है और है भी वह द्वारवंग की भाषा। मिथिला का सांस्कृतिक संबंध भी वंगभूमि से मध्यकाल में रहा। अतः ग्रियर्सन के वर्गीकरण से असंतोष होना स्वाभाविक था और उसका प्रतिवाद होना स्वाभाविक था। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने इस वर्गीकरण से तीव्र असहमति व्यक्त की। उन्होंने ध्वनि विचार और पद विचार दोनों के आधार पर इसका खंडन किया। चटर्जी ने भौगोलिक आधार पर उदीच्य, प्रतीच्य, मध्यदेशीय, प्राच्य और दक्षिणात्य समुदाय बनाए। हिंदी को मध्यदेशीय और प्राच्य वर्ग (पूर्वी) में रखा। मध्यदेशीय और पूर्वी नाम प्राचीन नामों की स्मृति जगाते हैं, अतः मुझे पसंद है।

इस प्रसंग में 'मध्य देश' और 'पूरब' शब्दों पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। 'मध्य देश' 'मधेसिया' और पूरब में 'पुरबिया' ये दो शब्द मध्ययुग में (लगभग १५ वीं सदी से प्रचलित) व्यवहार में आते थे। ऐसा जान पड़ता है कि हिंदी क्षेत्र का दो खंडों में विचार होता था। 'पछांह' और 'पूरब'—(पच्छिमी और पूरबी या पश्चिमी या पूर्वी ये तो संस्कृत रूप

---

१. रिपोर्ट, अध्याय ९३।

हैं। संपूर्ण आर्यावर्त को दृष्टि में रखकर हिंदी क्षेत्र का पश्चिमी भाग 'मध्यदेश' था। इसके पूर्व भाग को मोटे रूप में 'पूरब' कहते थे। इन दोनों भागों की दो बोलियाँ मध्यकाल में ही साहित्यभाषा हो गईं। पछांह की 'ब्रजभाषा' (जन उच्चारण 'ब्रजभाखा') और पूरब की 'अवधी'। अवधी का साहित्य ब्रजभाषा से कुछ पुराना है, पर १७ वीं शताब्दी से ब्र धी की तुलना समृद्धतर और अधिक व्यापक हो गई। साहित्य का साक्ष्य भी यही दिखलाता है कि हिंदी क्षेत्र के दो ही भाग परंपरा से समर्थित हैं। दोनों भागों में कई स्थानीय बोलियाँ थीं, पर साहित्य में प्रत्येक भाग का प्रतिनिधित्व एक-एक बोली ही करती थी।[1]

मध्यदेश और उसकी सीमाएँ :

हिंदी मध्यदेश की भाषा है। पर आर्यावर्त में मध्यदेश की सीमाएँ युग-युग में बदलती रही हैं। मनु से लेकर नवयुग तक इसकी सीमाओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। यह सीमा बढ़ती गयी है। मनु ने बताया था :

'हिमवान् और विन्ध्य पर्वतों के मध्य, विनशन से प्रयाग तक की भूमि मध्यदेश प्रसिद्ध है।'[2]

काव्य मीमांसाकार का कथन है कि मध्यदेश का कवि सर्वभाषा निषण्ण होता है।[3] मध्यदेश (मज्झ देश) का उल्लेख सं० ८३५ में रचित कुवलय माला कथा में मिलता है, जहाँ के वणिक् 'मेरे तेरे आओ' कहकर ग्राहकों को बुलाते थे।

'संक्षिप्तशब्दसागर' के अनुसार 'मध्यदेश' भारतवर्ष का वह प्रदेश है, जो हिमालय के दक्षिण, विन्ध्य पर्वत के उत्तर, कुरुक्षेत्र के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में है।' पर ग्रियर्सन ने मध्यदेश की सीमा कम कर दी। संकुचित अर्थ में वे गंगा के दोआब और उसके सटे उत्तरी और दक्षिणी मैदान की भूमि को ही मध्यदेश मानते हैं, जिसका केंद्र आगरा शहर है। पश्चिम में यह दिल्ली

---

१. ग्रियर्सन ने पश्चिमी और पूर्वी प्राकृत का भेद किया है। उनके अनुसार पश्चिम प्राकृत का प्रधान रूप 'शौरसेनी' और पूर्वी प्राकृत का 'मागधी' था। दोनों के बीच की भाषा अर्धमागधी कहलाती थी।

२. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्य देश प्रकीर्तित :॥ मनु

३. यो मध्ये मध्य देशे निवसति स कवि : सर्वभाषानिषण्ण : काव्य मीमांसा

से कुछ आगे तक पूर्व में कानपुर बताते हैं।[1] यह सीमा मनु से मध्यकाल तक प्रचलित परंपरा से कम है। प्रायः सबने प्रयाग तक मध्यदेश माना था। बराहमिहिर की वृहत् संहिता के अनुसार मध्यदेश में कुरु पंचाल मत्स्य, शूरसेन और वत्स राज्य थे।

प्रयाग के पूर्वस्थित भाग को 'पूरब' कहा गया है। दोनों भाग की साहित्य में ग्रहीत बोलियों को हिंदी कवियों ने 'भाषा' कहा।[2] भाषा शब्द ही इसका सूचक है कि जनता परस्पर भाषण (बातचीत) में उसे व्यवहार करती थी। साहित्य का माध्यम होने पर कोई बोली (स्पीच) भाषा कहलाने लगती है। पूरब को भाषा पूरबी और उसके बोलने वाले उसी प्रकार पुरबिया कहलाते थे, जैसे मधेस (मध्य देश का संकुचित रूप) का जन मधेसिया। पूरबी के अंतर्गत भोजपुरी और मगही बोलने वाले भी माने जाते थे।

ग्रियर्सन ने 'भदेश' का एक अर्थ मगध किया है और दूसरा असभ्य, जंगली। भदेश मगधवाचक है, इसका उन्होंने कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया। व्यवहार में भदेश का अर्थ है 'भद्दा देश'। वह देशविशेष का वाचक नहीं है। 'पूरब' के अंदर भोजपुरी और मगही के क्षेत्र भी बराबर समझे जाते हैं। मध्यकाल में 'मध्यदेश' और 'पूरब' दोनों को ही हिंदी क्षेत्र समझा जाता था।

---

1. 'In this work the term Hindi is restricted to the modern vernacular of the ancient Madhyadesa in its narrowest sense, i e. of the greater part of the Gangetic Doab, and of the planes, country immediately to its north and south. Its centre may be taken as the City of Agra, From this it extends, on the north, to the Himalayas, and on south to the valley of Narbada, on the west it goes beyond Delhi and on the east to about Kanpur.

2. ग्रियर्सन पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी या पूरबी कहते हैं। वे लिखते हैं—'पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी अथवा पूरब की उत्कृष्ट भाषा के नाम से अभिहित किया जाता है। वास्तव में पश्चिमी भारत के लोगों ने स्वाभाविक रूप से यह नामकरण किया है, किंतु इस नाम में एक दोष यह है कि अत्यधिक अनिश्चित है वास्तव में पूर्व शब्द का प्रयोग बहुत शिथिल रूप में किया जाता है। और कभी-कभी इसके अन्तर्गत उन भाषाओं को भी समाविष्ट कर लिया जाता है, जिनसे भोजपुरी का कुछ भी संबंध नहीं है।' सर्वेक्षण पृ० २६४।

अतः हिंदी के ही मुख्य दो भेद करना उचित है। आज जिसे 'पश्चिमी' हिंदी और 'पूर्वी हिंदी' का क्षेत्र कहते हैं, उसे ही बोलचाल में 'पछांह' और पूरब' (पश्चिम और पूर्व के तद्भव रूप) कहते हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि आरंभिक हिंदी कवियों ने अपनी भाषा को 'हिंदी' नहीं मात्र 'भाषा' कहा। पछांह की कई बोलियों में प्रमुख हुई ब्रज की बोली (ब्रजभाखा)[1] और पूरब की अनेक बोलियों में अवध की बोली। इस पूरब की 'भाखा' का कोई विशिष्ट नाम नहीं है। वह भाखा या 'पूरबी' कहलाती थी। पछांह की मुख्य भाषा का 'अंतर्वेदी'[2] (दोआब की) नाम भी मिलता है। अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, बघेली, भौगोलिक या स्थानीय आदि नामों को प्रचलित करने का श्रेय अंग्रेजों को है। दर्जनों बोलियों के स्थानीय नाम ग्रियर्सन के 'दिए हुए हैं।' कैरे ने भाषाओं के अपने विवरण में भी कुछ स्थानवाचक भाषा नाम दिए थे, पर ग्रियर्सन ने सैकड़ों बोलियों-उपबोलियों के अपने गढ़े नामों को बहुत प्रचलित कर दिया।

'पूरब' और 'पूरबी शब्दों का विचार करना चाहिए। हमारे विचार में 'पूरब' शब्द १९ वीं सदी के मध्य तक खूब चलता था और उसकी सीमा के संबंध में जनता की एक मोटी 'धारणा' बनी हुई थी। जब ग्रियर्सन पश्चिमी भोजपुरी को ही 'पूरबी' कहते हैं, तो वे 'पूरबी' शब्द को बहुत संकुचित कर देते हैं, पर वे मानते हैं कि यह अत्यधिक अनिश्चित है और कभी-कभी इसके

१. जब ब्रज की बोली में अनेक उत्तम काव्य रचे गये और वह काव्य भाषा हो गई तब उसे 'ब्रजभाषा' कहने लगे। ब्रजभाषा रुचिर कहे सुमत सब कोई। मिले संस्कृत पारस्यो पे अति प्रकट जु होई—काव्य निर्णय जान पड़ता है कि सूरदास के पूर्व ब्रज बोली शब्द भी चलता था। बंगाल में भी एक समय 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रचार था।

२. अंतर्वेदी नागरो अमरनाग भाषानि। अवधी के कवियों ने मात्र 'भाषा' कहा है।

जायसी : आदि अंत जसिकथ्था अहै। लिखि भाषा चौपाई कहै।

तुलसी : (१) भाषा बद्ध करब में सोई

(२) का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहियत सांच।

३° 'एक सामान्य ग्रामीण यह नहीं जानता कि जिसबोली में वह बोल रहा है उसका नाम भी है' : पृ० ३८, सर्वेक्षण। सामान्य भारतीय ग्रामीण की बात छोड़िए जायसी कबीर भी उसे भाषा ही कहते हैं कोई नाम नहीं देते।

अंतर्गत उन भाषाओं को भी समाविष्ट कर लिया जाता है, जिनसे भोजपुरी का कोई संबंध नहीं है। 'पूरब' से प्रयाग के पूर्वस्थित संपूर्ण हिंदी क्षेत्र बराबर समझा जाता रहा है, यह हमारा विचार है। अवधी, भोजपुरी और मगही के क्षेत्र पूरब में ही १८ वीं सदी तक माने जाते थे। 'पूरब की सीमाएँ निश्चित नहीं, पर कंपनी की बंगाल "आर्मी' में जो सिपाही अवध और बिहार के भोजपुर और 'मगह' (मगध) से जाकर भर्ती हुए थे, वे पुरबिया कहलाते थे। संगीत में पूरबी का अर्थ है दादरा (बिहार)।

अतः पूरब के अंदर बिहार को भी माना जाता है।

बिहार के भोजपुरी और मगही इलाकों का मुँह बराबर पश्चिम की ओर रहा है। यहाँ की मध्यकाल में शिक्षित जातियाँ यथा ब्राह्मण, कायस्थ, क्षत्रिय, उच्च श्रेणी के वैश्य सभी पश्चिम की ओर से आए, प्रायः उनके विवाह-संबंध पश्चिम में ही होते हैं। अतः लोग इन बोलियों को हिंदी का एक रूप ही मानते हैं। पर वे साथ ही यह कहते हैं कि यह तथ्य से सर्वथा विपरित है। ग्रियर्सन ने जब से 'बिहारी' को एक भाषा सिद्ध करने की चेष्टा की, उसके पूर्व यहाँ की जनता, अपनी तीन पृथक् बोलियों को जानती थी-'तिरहुत' की तिरहुतिया या तिरहुता, मगह की भाषा का मगही का नाम पर जिसे हम भोजपुरी बोली कहते हैं, उसका नाम 'भोजपुरी' प्रचलित नहीं था। भोजपुरी नाम १८००ई० के पहले नहीं मिलता यह इस बात का समर्थन करता है कि भाषिक दृष्टि से यह बनारस के पास-पड़ोस की बोली का ही एक रूप है और उसे पूरबी का ही एक भेद मानना उचित है। केरे ने भी अपनी भाषा गणना में बिहार की मागधी (मगही जनप्रचलित नाम) और मैथिली (तिरहुतिया) का ही उल्लेख किया है—भोजपुरी का नाम भी नहीं लिया। १८६७ ई० में लिखित 'भारतीय भाषाओं की रूपरेखा' में भी यह नाम नहीं है। केलाग ने पूर्वी हिंदी में ही अवधी, रीवाई, रामायण की पुरानी बैसावरी, भोजपुरी, मागधी और मैथिली को स्थान दिया (पृ० ६९-ग्रामर)। भोजपुरी को बिहारी कहना भी ठीक नहीं क्योंकि उसका अधिक क्षेत्र उत्तरप्रदेश में ही पड़ता है। भोजपुर राजा भोज के एक वंशज का बसाया हुआ छोटा राज्य था, अब इस नाम पर एक परगना है। १९७३ में जिलों के पुनर्गठन के बाद भोजपुर नाम का जिला बन गया है। डुमरांव के पास एक मील पर भोजपुर

१ : बोली हमारी पूरबी ताही न चींहैं कोई।
हमरी बोली सो लेख जो पूरब का होइ।।- कबीर

गाँव है जहाँ राजधानी थी। बिहार में भोजपुरी शाहाबाद, सारन, चंपारण के कुछ भाग की बोली है। उत्तर प्रदेश में बनारस, गाजीपुर-बलिया, गोरखपुर, आजमगढ़ देवरिया जिले तथा मिर्जापुर, जौनपुर और बस्ती के कुछ भाग। जिस प्रकार मद्रासी कोई भाषा नहीं है, उसी प्रकार 'बिहारी भाषा' एक गढ़ा हुआ भ्रामक नाम मात्र है। बिहार के रहने वाले अब भी अपनी भाषा प्रायः भोजपुरी, मगही या मैथिली बताते हैं: 'बिहारी' नहीं। ग्रियर्सन भी मानते हैं कि 'बिहार का मुख सदैव उत्तर पश्चिम की ओर रहा....इन्हीं कारणों से लोग बिहारी भाषा भी यू० पी० में प्रचलित हिंदी का ही एक रूप मानते हैं' पर आगे लिखते हैं बिहारी भाषा बंगला की बहिन है और पश्चिम की बोली से उसका बहुत दूर का संबंध है। 'बिहारी आज उसी क्षेत्र को अधिकृत किए हुए हैं, जहाँ किसी युग में मागधी अपभ्रंश प्रचलित थी'। ग्रियर्सन यह नहीं बताते कि मागधी अपभ्रंश की सीमा क्या है? वे यह भी मानते है कि 'ऊष्म वर्णों के उच्चारण में मागधी अप्रभ्रंश से अंतर है।' इसका कारण भी वस्तुतः पश्चिमोत्तर प्रदेश का 'राजनीतिक प्रभाव' मानते हैं।

ग्रियर्सन की अपेक्षा चटर्जी का हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण, हिंदी भाषियों की परंपरागत धारणा के अधिक मेल में है, अतः सुबोध और ग्राह्य है। उन्होंने हिंदी की सभी बोलियों को मध्यदेशीय और प्राच्य वर्ग में ही समेट लिया है। मध्यदेशीय में पश्चिमी हिंदी और 'पूर्वी' (प्राच्य) में 'पूर्वी हिंदी' और बिहारी (भोजपुरी, मगही और मैथिली) को स्थान दिया है। इस वर्गीकरण में एक ही समुदाय में पूर्वी हिंदी और भोजपुरी मगही और मैथिली को साथ माना है। हमें यह उचित लगता है कि भोजपुरी मगही को पूर्वी के अंतर्गत माना जाय और मैथिली का विचार बंगाल के साथ हो। ग्रियर्सन के वर्गीकरण को डा० बाहरी युक्तियुक्त नहीं मानते। वे चटर्जी के वर्गीकरण को 'अधिक सरल, स्वाभाविक और वैज्ञानिक' बताते हुए आगे कहते हैं कि इस वर्गीकरण में राजस्थानी, पूर्वी हिंदी और बिहारी को पश्चिमी हिंदी से अलग वर्ग में रखने में हमें आपत्ति है....राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी और (पहाड़ी में से) मध्यपहाड़ी अलग-अलग भाषाएँ नहीं है, वे एक ही भाषा की पाँच उपभाषाएँ हैं। ये सब हिंदी के अंतर्गत हैं जो समूचे मध्यदेश की भाषा है। मध्य देश की पूर्वी सीमा प्रयाग तक ही मानी जाती है, अतः

१ : वही पृ० ४९३।

यहाँ समूचे मध्यदेश से भागलपुर तक पूर्व में ग्रहण करना डा० बाहरी का इष्ट जान पड़ता है। पश्चिम में राजस्थान मध्यदेश में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने राजस्थान से लेकर भागलपुर तक की भूमि के सभी जनपदी रूपों को हिंदी मान लिया है। और सब में लिखित साहित्य को हिंदीसाहित्य मानते हैं, पर भाषाशास्त्री 'पश्चिमी और पूर्वी हिंदी' ही को हिंदी मानते हैं। इसी कठिनाई से बचने के लिए कदाचित् डा० बाहरी राजस्थान से भागलपुर तक (प्राचीनकालीन अंग) 'हिंदी क्षेत्र' मानते हैं। यही उनका समूचा 'मध्यदेश' है। वे आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के दो वर्ग- (१) हिंदी वर्ग और हिंदीतर (अहिंदी) वर्ग करते हैं। हिंदी 'समूचे मध्यदेश (राजस्थान से भागलपुर तक) की भाषा है—(१) मध्य-पहाड़ी,(२) राजस्थानी, (३) पश्चिमी हिंदी, (४) पूर्वी हिंदी (५) और बिहारी उसकी पाँच उपभाषाएं हैं। 'सर्वेक्षण' में ग्रियर्सन ने भाषाशास्त्रीय आधार पर भाषाओं और बोलियों का जो वर्गीकरण किया, उसने भारतीय विद्वानों में मतभेद, असंतोष, विरोध और क्षोभ जगाया। इसका कारण यह भी था कि कहीं-कहीं 'ग्रियर्सन उसके एक-एक रूप को स्वतंत्र मानकर नया स्थानीय नाम देकर उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से 'अंचल प्रेम' या आंचलिकता (रेजिनलिज्म) को उभाड़ा है। इसका एक अशुभ परिणाम हुआ—आँचलिक क्षेत्रों में गद्य का सूत्रपात, उसे ही शिक्षा का माध्यम बनाने की मांग और कहीं उसी आधार पर 'प्रांत' बनाने का आंदोलन। यह सब ऐसे समय हुआ, जब हिंदी अपने न्यायोचित अधिकार की लड़ाई लड़ रही थी और अभी राष्ट्रमंदिर में उसकी प्राणप्रतिष्ठा भी नहीं हो पाई थी। बिहार में मैथिली के पक्ष में सबसे प्रबल आंदोलन उठा, भोजपुरी-भाषा प्रांत की आवाज उठी, राजस्थानी के लिए भी हल्ला हुआ। राजस्थान में कई बोलियाँ बोली जाती हैं, अतः राजस्थानी कुछ बोलियों का समूह मात्र है। इसी प्रकार बिहार में 'बिहारी' का आंदोलन उठ नहीं सका, पर उसकी आंचलिक बोलियों के पक्ष में तीव्र भावना जाग्रत हुई। ऐसे आंदोलनों को सर्वेक्षण का वर्गीकरण बढ़ावा देरहा था। भाषाधार प्रांतों को तो कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया, पर बोलियों के आधार पर प्रांत बनाने की मांगस्वीकार करने का परिणाम यह होता कि हिंदी क्षेत्र की एकात्मता नष्ट हो जाती। ग्रियर्सन ने मैथिली को बिहार की बोलियों में सबसे अधिक महत्त्वदिया था, क्योंकि इसकी पुरानी समृद्ध परम्परा है। मैथिली में

वर्तमान काल में भी इतना अधिक गद्य-पद्य रचा गया कि साहित्य अकादमी ने इसे १९६५ ई० में स्वतंत्र भाषा स्वीकार कर लिया। उसको संविधान में भी पृथक् भाषा के रूप में स्थान मिलने की संभावना है।

ग्रियर्सन के सर्वेक्षण के पश्चात् बोलियों का महत्त्व बढ़ा और उनके व्याकरणिक और भाषाशास्त्रीय अनुशीलन की ओर हिंदी विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ। पहले अवधी फिर ब्रजभाषा का भाषातत्व के आधार पर विवेचन हुआ, फिर मैथिली, भोजपुरी पर काम हुआ। इन भारतीयों को बीम्स, ग्रियर्सन हार्नले, टेसीटरी और केलाग आदि पथिकृत् यूरोपियन विद्वानो से प्रेरणा मिली, इसमें संदेह नहीं। इसके बाद तो हिंदी की बोलियों का ही नहीं उपबोलियों का भी अनुशीलन आरंभ हुआ। भाषा-क्षेत्र में जुताई-बोवाई ग्रियर्सन कर चुके थे, बाद में आने वाले विद्वानों ने उसी खेत में मेहनत कर, खाद डालकर, रोपनी-सोहनी कर फसल उपजाने की कोशिश की। हिंदी भाषा के अनुशीलन की दिशा में जो प्रगति बाद में आई उसके प्रवर्तकों में ग्रियर्सन का ही नाम सबसे बड़ा नाम है।

सर्वेक्षण का स्वरूप और कार्य विधि :

सर्वेक्षण का कार्यारंभ करते समय यह निर्णय हुआ कि प्रत्येक क्षेत्र की स्थानीय भाषा या बोली से तीन प्रकार के नमूने संकलित किए जाँय—(१) आदर्श अनुवाद, (२) कोई लोकगीत या विवरणात्मक गद्य और (३) निश्चित शब्दावली और वाक्यावली। बाइबिल के प्रोडीगल सन (अपव्ययी पुत्र) की कहानी अनुवादार्थ चुनी गई। इस योजना में पूर्ण सहयोग देने को स्थानीय अधिकारियों को आदेश दिया गया और प्रत्येक जिला अधिकारियों और राज-नीतिक एजेंट को फार्म भेजे गए। नमूनों की पूर्ण शुद्धता के लिए यथासंभव प्रयत्न किया गया, क्योंकि इसी कच्चे माल की शुद्धता पर आगे का सारा काम निर्भर था। इस प्रकार देश की सभी भाषाओं की सूचियाँ एकत्र हो गईं। अब भाषाओं की सूची तैयार करने का कठिन काम सामने आया। स्थानीय सूत्रों से उपलब्ध सामग्री की परीक्षा कर उसका वर्गीकरण करना ऐसा काम नहीं है, जिसे कोई साधारण क्लर्क कर सके। इस कार्य में स्वयं ग्रियर्सन को कठोर श्रम करना पड़ा, चूँकि यह कार्य भाषाविवेक की अपेक्षा करता है।

१. डा० बाबूराम सक्सेना, २. डा० धीरेंद्र वर्मा, ३. डा० सुभद्र झा, भोजपुरी—डा० विश्वनाथ प्रसाद, डा० उदयनारायण तिवारी।

वर्गीकरण के बाद प्रत्येक भाषा के उचित नामकरण का प्रश्न उठा। साधारणतः लोग अपनी स्थानीय भाषा का नाम नहीं जानते, उसे मात्र भाषा ही कहते हैं। वे पड़ोसी की भाषा का कोई नाम कभी-कभी बता पाते हैं, पर कैसी विचित्र बात है कि अपनी 'भाषा' का कोई नाम नहीं धरते। ऐसी स्थिति में ग्रियर्सन ने सैकड़ों उपबोलियों का नामकरण किया और तब से उनके दिए नाम ही प्रचलित हो गए।

'अपव्ययी पुत्र की कथा' के अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषा में कराए गए, इसके ६५ पाठांतर तैयार किए गए और उनका एक संग्रह १८९७ में 'विभिन्न भारतीय भाषाओं के नमूने के अनुवाद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। लोकगीत या विवरणात्मक गद्य को, स्थानीय लिपि में यदि कोई हो और रोमनलिपि में लिखने का आदेश था। साथ ही इसका अंग्रेजी अनुवाद भी मांगा गया था। आदर्श शब्दावली और वाक्यावली को छपे हुए फार्म के रूप में पुस्तकाकार तैयार कर हर क्षेत्र में भेजा गया था। इस प्रकार जो सब तरह के नमूने आए, उनकी जाँच और संपादन का काम १८९८ में आरंभ हुआ। ग्रियर्सन के १८९९ में इंगलैंड लौट जाने पर डा० कोनोने उनकी सहायता की। सर्वेक्षण की बीस जिल्दों में ६ जिल्दों के लेखन का दायित्व कोनो पर ही है। जिल्द १ का भाग ३ प्रो० टर्नर का तैयार किया हुआ है। शेष सारा कार्य ग्रियर्सन का किया हुआ है।

सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य तथ्यों का संग्रह करना था। बाद में उनके वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव हुआ। भाषाओं के पारस्परिक संबंध का किसी सिद्धांत पर ही विचार हो सकता था। ग्रियर्सन यह अनुभव करते थे कि 'सिद्धांतों के निर्माण का युग तो इसके बाद आएगा, जबकि इन पंक्तियों के लेखक से बढ़कर योग्य विद्वान् सभी तथ्यों को स्वायत्त करके उस संबंध में कार्य करेंगे।' ग्रियर्सन का यह निष्कर्ष सही था। इस सर्वेक्षण द्वारा जो भाषा-विषयक तथ्य प्रकाश में आए, उनके आधार पर ही जूल ब्लाख, टर्नर, सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के जीवन काल में ही मराठी-गुजराती और बंगला भाषा का शास्त्रीय अनुशीलन किया। ग्रियर्सन के बाद भी जो भाषा-शोध हो रहा है, वह कदाचित् इस सर्वेक्षण के अभाव में इस रूप में नहीं चल सकता, क्योंकि उसके बाद पुनः भाषा-सर्वेक्षण इस देश मे हुआ ही नहीं। स्वराज्योत्तर काल में भारत सरकार का ध्यान इस विषय के गुरुत्व की ओर जाना चाहिए।

पर खेद है कि सरकार अभी इस दिशा में कदम नहीं उठा रही है। ग्रियर्सन का सर्वेक्षण वास्तव में भारतीय भाषाओं का एक विशाल मानचित्र है। सर्वेक्षण की त्रुटियों और दोषों की ओर अनेक विद्वानों ने इंगित किया है। वास्तव में हमें उसकी आलोचना इस पृष्ठभूमि में होनी चाहिए कि वह उस समय का कार्य है, जब भाषाशोध का आरंभ था और वे वैज्ञानिक यांत्रिक साधन सुलभ नहीं थे, जो हमें आज सुगम हैं।

हम डा० ए० चंद्रशेखर के मत से[1] मुख्यांश में सहमत हैं। 'इस शताब्दी के आरंभ में प्रकाशित ग्रियर्सन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' का सबसे बड़ा दोष यह है कि उस ग्रंथ के लिए सामग्री ऐसे लोगों ने एकत्र की थी, जिनकी न तो भाषा-विज्ञान-संबंधी अनुसंधान में कोई दिलचस्पी थी और न जिन्हें उसका कोई प्रशिक्षण ही प्राप्त हुआ था। इसलिए इस ग्रंथ की ध्वनि-विज्ञान-विषयक सामग्री विशेष रूप से अविश्वसनीय है। सामग्री का अधिकांश भाग अनुवाद के द्वारा संग्रहीत किया गया है, जो कि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से नितांत अनुपयुक्त है। लिंग्विस्टिक सर्वे का एक और प्रमुख दोष विभिन्न बोलियों के समुचित अध्ययन का अभाव है। अतएव भारत में एक नया भाषा-सर्वेक्षण अविलंब अपेक्षित है। साथ ही यह सर्वेक्षण विवरणात्मक भाषाविज्ञान की नवीनतम पद्धतियों में प्रशिक्षित भाषाविज्ञानों द्वारा किया जाना चाहिए।' ध्वनि-विज्ञान-विषयक सामग्री को अविश्वसनीय बताने वाले डा० चंद्रशेखर के संभावित आक्षेप की कल्पना करके ही मानो ग्रियर्सन ने स्वयं इसका उल्लेख किया कि 'जब सर्वेक्षण का आरंभ हुआ था तब यह विज्ञान अपनी शैशवास्था में था। भारत में तो इसे लोग जानते ही न थे और यूरोप में भी किसी ऐसी सार्वभौम वर्णात्मक प्रणाली का आविष्कार नहीं हो पाया था, जिसके द्वारा सभी प्रकार की संभव ध्वनियां लिखी जा सकें। ····इस सर्वेक्षण की अधिकांश सामग्री या तो उन राजकीय पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त की गई है, जो बोलियों के वास्तविक प्रयोग से चाहे कितने ही परिचित क्यों न हों, कुशल ध्वनिशास्त्री होने का दावा नहीं कर सकते अथवा इसकी सामग्री उन लेखकों की कृतियों से संकलित की गई है, जिन्होंने संगृहीत उदाहरणों की ध्वनियों के संबंध में कुछ नहीं लिखा है। इन परिस्थितियों में जहाँ तक

१. भारत में भाषा वैज्ञानिक अध्ययन—अनुसंधान की प्रक्रिया पृ० १५०।

विभिन्न ध्वनियों का संबंध है, उनके लगभग ही शुद्ध होने की आशा करनी चाहिए, क्योंकि वे शुद्ध भी हो सकती हैं और अशुद्ध भी'........

ग्रियर्सन ने उच्चारण की रक्षा के लिए ग्रामोफोन के रेकार्ड भी तैयार कराए। १९२४ तक ९७ भाषाओं और बोलियों के २१८ रेकार्ड तैयार किए जा चुके थे तथा उन्हें यूरोप की कई संस्थाओं में और पुस्तकालयों में अध्ययनार्थ रख दिया गया था। अतः ग्रियर्सन ध्वनि की शुद्धता के पक्षपाती थे। आज़ विज्ञान के सहारे बड़े अच्छे टेपरेकार्ड तैयार कर किसी भाषा का उच्चारण सिखलाया जा सकता है। ग्रियर्सन ने जो भाषा सर्वेक्षण के सिलसिले में रेकार्ड बनवाए थे, उनकी उपयोगिता को स्वीकार किया गया और उन्हें इंडियन सिविल सर्विस के पाठ्यक्रम में भी स्थान मिला।

ग्रियर्सन को अपने इस भारतीय भाषाओं के अनुशीलन कार्य में कितनी गहरी निष्ठा थी और इसके लिए उन्होंने कैसी कठोर साधना की, सर्वविदित है। सर्वेक्षण के खंडों को उन्होंने भारत को समर्पित कर अपनी भारत भक्ति का भी परिचय दिया है। वे कहते हैं कि 'मेरे लिए वह दिन चिरस्मरणीय रहेगा, जब सन् १८६८ में मेरे आदरणीय गुरु प्रोफेसर राबर्ट एटकिंसन ने संस्कृत वर्णमाला से मुझे परिचित कराया'। उनकी निम्नांकित वाक्यावली को, जिसमें उनकी गुरुभक्ति और भारत भक्ति दोनों व्यक्त होती है, उद्धृत करने का मैं लोभ संवरण नहीं कर सकता।

'पांच वर्ष बाद, भारत के लिए रवाना होने के पूर्व जब उत्साह से पूर्ण मैं उनसे विदा लेने गया, तो इस कार्य का भार मुझे सौंपा....गुरु का आदेश सदैव मेरे मस्तिष्क में वर्तमान रहा और प्रशासकीय कार्यों से बचा हुआ समय यह कार्य संपन्न करने में लगाने के लिए प्रेरणा देता रहा। बीस वर्ष के बाद यह अवसर आया और इस सर्वेक्षण का गौरव मुझे प्राप्त हुआ।....इस बीच मुझे तीन सहस्र वर्षों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी के महान् विचारकों से गुम्फित भव्य साहित्य के दर्शन का सुअवसर मिला। मैं काव्य की उस मनोहर वाटिका में विहार करने में समर्थ हो सका जिसका आरंभ वेद की प्रसन्नमना चिन्तामुक्त ऋचाओं से होता है तथा जिसकी धारा महाकाव्यों, कालिदास के शीर्ष स्थानीय मोहक नाटकों, सुधार काल के संतों की वाणियों, तुलसी के आत्मनिवेदक पदों एवं बिहारीलाल की अलंकृत रचना से प्रवाहित होती है। सत्यरूपी फलकों

को मैंने अनेक ज्ञान-वृक्षों से प्राप्त किया है। इसके दाताओं में यदि एक ओर वे ज्ञानी, अद्वैतवादी एवं सूक्ष्मदर्शी पंडित थे, जो अपने विचारों को स्फटिक की भाँति स्वच्छ रूप में स्पष्ट करने वाले थे, तो दूसरी ओर वे भोले किंतु रूढ़ि-ग्रस्त कृषक थे जो अपनी ग्रामीण भाषा में किसी वृक्ष के नीचे गुनगुनाने में व्यस्त थे। किंतु उनका सृष्टिकर्त्ता भगवान् के प्रति इतना दृढ़ विश्वास था कि उनके समक्ष एक धार्मिक ईसाई को भी लज्जित होना पड़ेगा। धार्मिक भाव-नावों में मैंने छिपे हुए धर्म को देखा है। पौराणिक गाथाओं में मैंने इतिहास का दर्शन किया है और निरक्षर ग्रामीणों की कहावतों में मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है। यहीं और यहीं भारत ने मेरी सहायता की है। लेकिन मैं भारतवर्ष की सहायता कैसे करूँ?....इस प्रश्न का उत्तर देने में मेरा भाग बहुत ही थोड़ा रहा है, किंतु यदि इस सर्वेक्षण ने भारत को पश्चिम के निकट लाने में कुछ भी सहायता की तो मैं यह समझूँगा कि मेरा प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ नहीं गया।"[1]

ग्रियर्सन ने भाषाशास्त्रीय अनेक महत्त्वपूर्ण निबंध शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित किए। इनमें प्रमुख निबंध ये हैं।

१. मगहिया डोमों की भाषा :

इस निबंध में आपने यह दिखलाया है कि व्याकरणिक गठन की दृष्टि से यह भोजपुरी की तरह है, पर इसकी तुलना लंदन के 'चोरों के लैटिन' से की जा सकती है। मगहिया डोम एक अपराधकर्मी (क्रिमिनल) जाति है, जो चंपारन जिले में बसी है। ये लोग कभी-कभी शहरों में घुस आते हैं और रात में चोरी करते हैं। ये पेशेवर चोर हैं। इनके संबंध में ग्रियर्सन 'सर्वेक्षण' में यह विवरण देते हैं—'बिहार के कुख्यात मगहिया डोम गुप्त भाषा का प्रयोग करते हुए पाए गए हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वे कुख्यात चोर तथा दुश्चरित्र होते हैं, जो न खेती करते हैं और न परिश्रम करके रोटी कमाते हैं। स्त्रियों की स्थिति पुरुषों से तनिक भी अच्छी नहीं है। ऊपर से दिखावे के लिए तो वे कभी-कभी टोकरियां आदि बनाती हैं, किंतु उनका वास्तविक कार्य है गुप्तचर का तथा चोरी किए गए सामान को ठिकाने

१. भाषा का सर्वेक्षण पृ०, ३८८-८९।

२. इ० ऐ०, १६, पृ० २८४। एसज् आन बिहारी डिक्लंसन ऐंड कंजुगेशन जे० ए० एस० बी० पार्ट १, खण्ड ५२।

लगाने का।....इन लोगों की गुप्त भाषा विहार की विभाषा (साधारणतः भोजपुरी), राजस्थानी तथा हिंदुस्तानी के मिश्रण पर आधारित है।'

२. विहारी के शब्दरूपों और धातुरूपों पर निबंध :

बिहारी भाषाओं को हार्नली ने पूर्वी हिंदी के अंतर्गत रखा है तथा बनारस की बोली को 'भोजपुरी' मानकर विचार किया है। ग्रियर्सन बनारसी भोजपुरी को बैसवारी की छाया से युक्त नहीं मानते। वे विहारी की तीन बोलियों में भोजपुरी को ही ध्वन्यात्मक दृष्टि से सबसे विकसित मानते हैं। इसमें भोजपुरी की शब्द-संपदा की भी प्रशंसा की गई है। इसमें विहार की बोलियों पर इस रूप में विचार किया गया है :

(क) भोजपुरी : पश्चिम विहार की बोली,
(ख) मागधी : दक्षिण विहार की बोली,
(ग) मैथिली : उत्तर-पूर्व की बोली।

मैथिली के दो भेद हैं (१) उत्तरी मैथिली—उत्तर में तिरहुत और भागलपुर,
(२) दक्षिणी मैथिली—दक्षिणी-पूर्व तिरहुत और उत्तर-मुंगेर।

हिंदी की बोलियों पर ग्रियर्सन ने शोध पत्रिकाओं में बहुतेरे लेख छपाए हैं। इन सब का उल्लेख आवश्यक नहीं है, चूँकि बाद में प्रकाशित सर्वेक्षण के खण्डों में उनपर विस्तार से जमकर लेखक ने विवेचन किया है, अतः उसके आगे अध्ययन के आरंभ का विवेचन अधिक महत्त्व नहीं रखता।

हिंदुस्तानी और हिंदुस्तान :

इन दोनों में कौन-सा रूप शुद्ध और ग्राहय है, इस पर भी ग्रियर्सन ने विचार किया था। वे हिंदोस्तान को सही ओर ग्राह्य मानते हैं। अधिकांश हिंदी लेखक 'हिंदुस्तान' और उससे बने 'हिंदुस्तानी' को ही ठीक मानते हैं। फारसी और उसके प्रभाव से उर्दू में हिंदोस्तान रूप अधिक प्रचलित है—सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा (इकबाल)। पर हिंदी में हिंदुस्तान और हिंदुस्तानी शब्द चलते हैं।

१५. रेवरेंड टी० ग्राहम वेली

हिंदी के सेवकों में श्री ग्राहम वेली का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। आप हिंदी के लंदन में प्रोफेसर थे दीके हिं । प्रथम डी० लिट्० डा० वड़थ्वाल के

आप परीक्षक थे। बेली की एक पुस्तक 'लैंग्वेजेज ऑफ हिमालय एरिया' (हिमालय क्षेत्र की भाषाएँ) रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन से १६०८ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसकी भूमिका १६०६ ई० को है। हिमालय-क्षेत्र की पहाड़ी भाषाएँ हिंदी से संबद्ध हैं। इस पुस्तक में ५ खंडों में शिमला पहाड़ी, भंडी स्टेट, चंब और जम्मू उत्तरी हिमालय की बोलियों और कांगड़ा जिले की बोलियों का विवेचन किया गया है।

बेली साहेब ने समय-समय पर हिंदी भाषा-विषयक अनेक लेख प्रकाशित किए थे।

हिंदी-व्याकरण के एक अंग क्रिया-विचार पर बेली का एक निबंध १६३४ ई० में निकला था, जिसमें इस विषय का यौक्तिक विवेचन हुआ है। इसमें उर्दू क्रियाओं का जो विचार हुआ है, वह हिंदी पर भी लागू होता है क्योंकि उर्दू-हिंदी दोनों में क्रियाएँ प्रायः एक ही हैं। क्रियाएँ प्रायः तद्भव है और ये तद्भव क्रियाएँ उर्दू-हिंदी में समान रूप से चलती है।

बेली के विवेचन का सारांश प्रस्तुत किया जाता है। 'अंग्रेजी ट्रांजिटिव' का अनुवाद सकर्मक किया जाता है, पर दोनो शब्दों के मूल अर्थ में किंचित् अंतर है। 'ट्रांजिटव' क्रिया ट्रांजिटिव ही होती है—चाहे कर्म कथित है या अकथित। 'मैं खाता हूँ' मैं आम खाता हूँ' दोनों वाक्यों में 'खाना' क्रिया 'ट्रांजिटिव' है, भले ही प्रथम वाक्य में कर्म कथित या अकथित हो। बेली का कथन है कि कुछ क्रियाएँ वास्तव में 'ट्रांजिटिव' और इंट्रांजिटिव' होती है। बेली ने 'पलटना' और 'बदलना' को न शुद्ध ट्रांजिटिव माना है न ''इन्ट्रांजिटिव'। अतः बेली ने 'शुद्ध' सकर्मक (ट्रूली ट्रांजिटिव) और शुद्ध अकर्मक (ट्रूली इनट्रांजिटिव) दो भेद किया है। पुनः प्रेरणार्थक रूपों पर विचार कर बेली का कथन है कि प्रेरणार्थक के दो रूपों में पहला रूप (खाना से खिलाना) वास्तव में अर्थ की दृष्टि से प्रेरणार्थक नहीं है, केवल दूसरा रूप (खाना से खिलवाना) ही वास्तव में प्रेरणार्थक है। अतः पहले रूप को वे 'तथाकथित प्रेरणार्थक' (सो काल्ड कॉजल) कहते हैं। इसके उदाहरण में वे कुछ क्रियाओं को सारणी रूप में देते हैं।

१. यह निबंध बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज वाल्यू० ७, १६३४ प्रकाशित है।

इसी सारणी में चार कॉलम (स्तम्भ) हैं। कॉलम १ में शुद्ध अकर्मक क्रियाएँ कॉलम २ में ऐसी सकर्मक क्रियाएँ दी गई है, जिसमें कर्म का होना आवश्यक है—भले ही कथित हो या अकथित ही रहे। जो क्रियाएँ कॉलम १ और २ दोनों में है, उनमें प्राय: कॉलम २ वाला रूप कॉलम १ वाले रूप का सकर्मक है। पर अर्थ में कुछ भेद हो जाता है, जिसमें दूसरे रूप को पहले रूप का सच्चा सकर्मक (ट्र ट्रांजिटिव) नहीं कह सकते। कॉलम २ के रूप को 'ऐक्टिव' (कर्त्तृ रूप) भी कह सकते हैं।

तीसरे कॉलम वाले रूपों से चौथे कॉलम के रूप केवल इस बात में भिन्न हैं कि उनमें किसी अन्य द्वारा काम कराये जाने पर ज्यादा जोर मालूम होता है। 'काम कराना' और 'काम करवाना' का अर्थ एक ही है, अंतर केवल यह है कि 'करवाना' (व-युक्त प्रेरणार्थक रूप) से अन्य व्यक्ति द्वारा काम का किया जाना अधिक स्पष्ट है। चौथे कालम का रूप पहले कालम के रूप में वा जोड़ने से बनता है—जैसेदिख—दिखवाना, कत—कतवाना।

पहले कॉलम की अकर्मक क्रिया का कर्त्ता दूसरे, तीसरे और चौथे कालम में कर्म हो जाता है। इनसे जाहिर होता है कि सकर्मक क्रियाओं के तथाकथित प्रेरणार्थक रूप, उन क्रियाओं के 'पैसिव' रूप के प्रेरणार्थक रूप हैं।

उक्त विवेचन से यह प्रकट होगा कि अकर्मक-सकर्मक, प्रेरणार्थक के युगल रूपों के गठन और अर्थ पर वेली ने उचित विचार किया है। वेली ने इस विवेचन के लिए क्रिया को चार वर्गों में वर्गीकृत किया है।

१६. डा० हार्नले (१८४१-१९१८)

श्री ए० एफ० रुडोल्फ हार्नले को संस्कृत के अतिरिक्त हिंदी का गंभीर ज्ञान था। काशी के जयनारायण मिशन स्कूल में अध्यापक के रूप में शिक्षा-क्षेत्र में आपका आगमन हुआ। आप मिशन कॉलेज, कलकत्ता में प्रोफेसर हुए। उसके बाद आपकी इंडियन एजुकेशनल सर्विस में नियुक्ति हुई। कुछ काल तक आप प्रेसीडेंसी कॉलेज, मद्रास में प्रोफेसर रहे और फिर वहीं प्रिंसिपल हो गए।

हार्नले के पिता भी भारत में सरकारी अफसर थे। अतः बचपन से ही आपको भारत के अनेक भागों में रहने और यहाँ की भाषाओं को सीखने का

अवसर मिला था। भाषाओं के अनुशीलन की रुचि के साथ आप प्राचीन अभिलेखों के गूढाक्षरों को पढ़ने और उनके अर्थ को स्पष्ट करने में अत्यंत रुचि रखते थे। भारतीय आधुनिक भाषाओं के ज्ञानार्जन में आप डा० ग्रियर्सन के समानधर्मा थे।

आपकी एक महत्त्वपूर्ण कृति है 'ग्रामर आफ दि ईस्टर्न हिंदी' जिसमें पूरबी और भोजपुरी के गठन और व्याकरण का विस्तृत विवेचन है। आपने इसमें हिंदी की सीमा और स्वरूप पर भी विचार किया है। आपके अनुसार हिंदी का क्षेत्र २४८००० वर्गमील है, जो उत्तर भारत के मध्यभाग में पड़ता है। हिमालय पर्वत की निचली श्रेणी तक उत्तर में और पश्चिम में कच्छ की खाड़ी से शिमला तक (सतलज के ऊपरी भाग तक सीधी रेखा खींची जाए तो उस स्थान तक), दक्खिन में नर्मदा तक और पूर्व में गंगा और सलिलाई नदी के संगम तक और दक्षिण-पश्चिम में नर्मदा तक बनाया गया है। हिंदी क्षेत्र के उत्तर में गढ़वाली, कुमाऊँनी और नेपाली, पश्चिम में पंजाबी, सिंधी और गुजराती दक्षिण में मराठी और पूरब में उड़िया और बंगाली भाषाएँ बोली जाती हैं।

उर्दू और उच्च हिंदी के बनने के संबंध में आपकी विचार-धारा नवीन लगती है। आपका कथन है 'ब्रजभाशा का संशोधित रूप ही हिंदी या उच्च हिंदी, जिसकी अनेक विभक्तियों में से कुछ को, जो पंजाबी और मारवाडी में चलती थी, लेकर उर्दू बना ली गई और बाद में उसे उच्च हिंदी में बदल दिया गया।' उर्दू या हिंदुस्तानी से उच्च हिंदी भिन्न और बहुत नयी भाषा है, पर उर्दू भी नई है। उर्दू का जन्म १२ वीं सदी में दिल्ली के चतुर्दिक हुआ, जहाँ मुस्लिम शक्ति केंद्रित थी। अकबर के समय में, १६ वीं सदी में उर्दू का शिष्टभाषा रूप में प्रचलन हुआ। धीरे-धीरे यह समूचे हिंदी क्षेत्र में फैल गई, पर यह उन्हीं लोगों की भाषा बनी रही, जो सेना या दरबार में रहने के कारण मुस्लिम शक्ति से संबद्ध थे और वह कभी लोकभाषा नहीं बन सकी। उच्च हिन्दी का आरंभ इस (१९ वीं) सदी से ही होता है। यह अंग्रेजी मिशनों और शिक्षा-प्रचार का परिणाम है। उर्दू हाकिमों की जबान थी और प्रबल थी। उर्दू से फारसी-अरबी तत्त्व निकाल कर उच्च हिंदी गढ़ी गई थी, इसलिए उर्दू और उच्च हिंदी वस्तुतः एक ही भाषा हैं और

उनका एक ही व्याकरण है, प्रथम में बहुत विदेशी शब्द आते हैं और द्वितीय में जितना कम हो सकता है, उतने ही आते हैं।

हमने ऊपर हार्नले के विचार को यह दिखाने को उद्धृत किया कि कतिपय यूरोपियन लेखकों की भाँति हार्नले भी इस भ्रम के शिकार थे कि उर्दू से उच्च हिन्दी कृत्रिम रूप में गढ़ ली गई। उर्दू से साहित्यिक हिंदी के उद्भव की बात वही कह सकता है, जो लल्लूजी के पूर्व के खड़ी बोली गद्य से अपरिचित हो। इस मत का जोरदार खंडन और विरोध अनेक प्रमाणों के साथ शुक्लजी ने किया था। उच्च हिंदी के जन्म-सृजन या उत्पत्ति की बात करने वाले गिलक्रिस्ट, ग्रियर्सन आदि यह भूल जाते हैं कि कृत्रिम प्रजनन-प्रणाली से प्रेमसागर की उच्च हिंदी का जन्म नहीं हुआ था। वह तो निरंजनी और दौलतराम आदि की परंपरागत भाषा का ही अधिक व्यवस्थित रूप है। हिंदी उर्दू के संबंध में अनेक प्रचलित प्रवादों से हार्नल मुक्त नहीं हो सके। उनका अधिक महत्त्व का कार्य है भाषिक तत्त्व का विश्लेषण और विवेचन।

हिंदी-धातु संग्रह

हार्नले का हिंदी-व्याकरण से संबंधित सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है 'हिंदी धातु संग्रह' तथा उसका वैज्ञानिक विवेचन। उनका धातु संग्रह एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के जर्नल खंड ४६, भाग १ में प्रकाशित हुआ था। हिंदी क्रियाओं से हिंदी धातुओं का संग्रह कर उनका संस्कृत धातुओं से संबंध, प्राकृत-अपभ्रंश द्वारा उनके विकास आदि पर इस निबंध में विचार किया गया है।

१९५६ ई० में आगरा विश्वविद्यालय के हिंदी विद्यापीठ ने अपने अनुसंधान सहायकों द्वारा रूपान्तर प्रकाशित किया है।[१] इस प्रकार यह बहुमूल्य निबंध जो पुराने जर्नल में ही उपलब्ध होने के कारण दुर्लभ था, सुलभ हो गया।

पहले हार्नले ने हिंदी धातु पर विचार कर यह बताया है कि 'हिंदी-धातु से तात्पर्य है उस स्थायी तत्व से जो अर्थ के आधार पर संबद्ध शब्दों में किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है।' आपका मत है कि हिंदी धातुओं में से अधिकांश की उत्पत्ति सीधे शुद्ध संस्कृत धातुओं से नहीं हुई है। बहुधा उनका

१. इस कार्य में विशेष हाथ श्री चंद्रभान रावत का रहा है और श्री कैलाश चंद्र भाटिया ने इसमें सहयोग दिया।

जन्म संस्कृत धातुओं के परिवर्तित रूपों से हुआ है। ये परिवर्तित रूप अधिकांश वर्त्तमान काल के हैं।'

'रूपांतरकार के अनुसार इस संग्रह में हिंदी की ३६६ मूल धातुएँ, १८६ यौगिक धातुएँ तथा २४ परिशिट में दी गयीं मूल धातुएँ सम्मिलित हैं जिनमें स्थान-स्थान पर संस्कृत की ४६६ धातुओं का उल्लेख हुआ है।'

हार्नले के पहले किसी आधुनिक भारतीय आर्यभाषा में धातु-संग्रह का विवेचन नहीं हुआ था। जान पड़ता है कि संस्कृत धातुओं पर विटनी के कार्य को देख कर हिंदी धातुओं को संग्रह की प्रेरणा उन्हें मिली थी। हिंदी धातुओं पर विस्तारपूर्वक और आलोचनात्मक पद्धति पर लिखित इस लेखक की कृति 'हिंदी धातु कोश' १९६६ ई० में शब्द लोक, वाराणसी से प्रकाशित हुआ। इसमें हिंदी धातुओं का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रथम बार हुआ।

धातुओं को दो वर्ग में, सेकेंडरी (यौगिक) और प्राइमरी (अयौगिक) वर्ग में रख कर विचार किया। चल् 'प्राइमरी' धातु हैं, क्योंकि सस्कृत चल् से निकला है। पर 'पैठ्' का विकास 'प्रविष्ट' से है। प्रविष्ट कृदन्त है, धातु नहीं। कुछ हिंदी धातुएँ संस्कृत धातुओं से निकली हैं तथा कुछ संस्कृत धातु से निष्पन्न रूपों से।

धातुओं की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए उनका इतिहास भी हार्नले ने दिया है। इससे यह संग्रह बहुत उपयोगी है। प्राकृत से हिंदी धातुओं का संबंध दिखलाया गया है। हेमचन्द्र की पुस्तक में दी हुई प्राकृतिक क्रियाओं हिंदी क्रियारूपों की मूल धातुओं से समता दिखलाई गई है।

आव् (आना)—आव् के रूप तथा पाव (सं० प्राप्) के रूप में अत्यन्त समानता बताई गई है। आव् का व् पाव के प्रभाव से माना गया है।

मेरी समझ में आ व् में आ ही धातु है। इसका संबंध आयाति (आता है) के 'आ' + 'या' धातु से जोड़ना सरल है।

उघाड़—उग्घाडइ—(हेमचन्द्र) प्रा० उग्घाडेइ—सं० उद् घट्

उत्तर—सं० उत्—तृ—प्रा० उत्तरइ

उबल—प्रा० उग्धलइ। पर संस्कृत उद्ज्वल दिया गया है

उपज्—सं० उत् पद्—प्रा० उपज्जइ

इस प्रकार सर्वत्र प्राकृत रूपों की ओर संकेत उपयोगी है।

यौगिक धातुएँ

चूक—सं० च्युत्+कृत० प्रा० चुक्कइ

छिटक—सं० क्षिप्र+कृत—प्रा० छिट्टकेइ।

१७- श्री फ्रेडरिक पिन्काट

आपका जन्म १८२६ ई० में इंगलैंड में हुआ था। अर्थाभाव के कारण आपकी शिक्षा अधिक नहीं हो सकी। पढ़ाई में जब प्रगति नहीं हो सकी, तब आप एक प्रेस में कम्पोजीटर हो गए। पर इस बीच में स्वतन्त्र रूप से आप विद्यार्जन में लगे रहे। आपने संस्कृत, बंगला, तमिल, मलयालम आदि भाषाएँ सीख लीं। इसके बाद हिंदी का ज्ञान भी प्राप्त किया। १८७२ ई० से हिंदी के संबंध में आपने पत्रिकाओं में लिखना आरंभ कर दिया।

आपने हिंदी और हिंदुस्तानी शीर्षक से अपने भाषा-संबंधी विचारों को अपनी अनेक समीक्षाओं, भूमिकाओं और पुस्तकों में व्यक्त किया। श्री अयोध्या प्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' की पुस्तक-समीक्षा 'दि इंडियन मैगज़ीन एंड रिव्यू' में प्रकाशित की। आपके प्रोत्साहन से खत्री जी को बड़ा बल मिला। इस समीक्षा को पढ़कर एक सज्जन ने पिंकाट के विचारों का जोरदार खंडन किया और इन दोनों के बीच खूब विवाद चला।

इंगलैंडवालों को हिंदी सिखाने के उद्देश्य से आपने 'हिंदी मेनुअल' नामक एक व्याकरण की पुस्तक लिखी। इसके अनेक संस्करण निकले। इनके समकालीन अंग्रेज विद्वानों में किसी की पुस्तक इतनी सर्वांगपूर्ण नहीं थी अतः यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई।

हिंदी में आपकी दो पुस्तकें हैं—(१) बालदीपक, चार भाग और (२) विक्टोरिया चरित। बालदीपक बिहार के कोर्स में लगी थी। इसकी भाषा बहुत सरल है, तद्भव शैली में इसकी रचना हुई है। इसकी भाषा का यह उदाहरण देखें :

'हे लड़कों! तुमको चाहिए कि अपनी पोथी को बहुत सँभाल कर रक्खो। मैली न होनें पावे, बिगड़े नहीं और जब उसे खोलो चौकसाई से खोलो कि उसका पन्ना अंगुली के तले दबकर फट न जाये।'

विक्टोरिया चरित की भाषा भी मुहावरेदार है। यह १३६ पृष्ठों की पुस्तक है।

आपका भारतेन्दु तथा अपने समकालीन हिंदी लेखकों से जैसे लक्ष्मण सिंह, प्रतापनारायण मिश्र और कार्तिक प्रसाद खत्री से भाषा और साहित्य-विषयक पत्राचार बराबर होता रहता था। आप भारतेन्दु के परम प्रशंसक थे, जिन्हें आपने व्रजभाषा पद्य में एक पत्र लिखा था।

वंस-बंस-अवतंस श्री बाबू हरिचंद जू।
छीर नीर कल हंस टुक उतर लिखि देव मोंहि ।।
पर उपकार में उदार अवनी में एक
भाषत अनेक यह राजा हरिश्चन्द्र है।
विभव बड़ाई वपु वसन विलास लखि
कहत यहाँ के लोग बाबू हरिचंद है।
चंद वैसो अभिय अनंद कर भारत को
कहत कविंद यह भारत को चंद है।
कैसे अब देख, को बतावे, कहा पावैं ?
हाय, कैसे वहाँ आवे हम कोई भाँति मंद है।

हिंदी साहित्य का इतिहास—शुक्ल पृष्ठ ४८२

आप खड़ी बोली पद्य के समर्थक थे और जब श्रीधर पाठकजी का 'एकांतवासी योगी' निकला तब आपने 'इंडियन मैगजीन' में उसके महत्त्व की चर्चा करते हुए अपनी पुस्तक-समीक्षा प्रकाशित की थी। आप उस मैगजीन के हिंदी पुस्तकों के समीक्षक थे। इस रूप में आपने समकालीन साहित्य से बराबर परिचित रहने की चेष्टा की।

जब मुजफ्फरपुर के श्री अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली पद्य का आंदोलन उठाया, तब आप उनके प्रबल समर्थक और पोषक बने और आप ही अंग्रेजों में प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने खड़ी बोली में पद्य रचना की उपयोगिता और महत्त्व को ठीक से समझा। ग्रियर्सन ऐसे हिंदी-प्रेमी और बहुभाषाविद् अंग्रेज ने भी जब खड़ी बोली में पद्य रचने को व्यर्थ का श्रम बताया, तब आप ही ने इसके भविष्य के विषय में आश्वस्त होकर खत्री जी का साथ दिया। उन्होंने खड़ी बोली का पद्य शीर्षक उनकी लघु पुस्तक को स्वयं-संपादित कर डब्लू० एच० ऐलेन ऐंड को० से प्रकाशित कराया। इसकी भूमिका में संपादक

ने संकलनकर्त्ता खत्री के महत् उद्देश्य की मुक्त कंठ से सराहना की कि कविता का माध्यम खड़ी बोली ही हो। पिन्काट ने ठेठ हिंदी का अनुवाद 'प्योर हिंदी' और खड़ी बोली का 'करेक्ट स्पीच' किया है। इससे यह प्रकट होता है उनके मत में खड़ी बोली वास्तव में खरी बोली है। खड़ी बोली की उन्नति उर्दू के बराबर क्यों नहीं हुई, इसका कारण वे उसे सरकार द्वारा पोषण और संरक्षण न होना तथा स्वयं देशवासियों द्वारा उसके प्रति उपेक्षा-भाव बताते हैं। पर वे कहते हैं कि विगत् २० वर्षों में इसने बरबस सबका ध्यान अपनी ओर खींचा है, चूंकि इसमें लोच, शक्ति और ओज है। पिन्काट का मत है कि खड़ी बोली की स्थिति हिंदी की अन्य बोलियों के बीच वैसी है जैसी अंग्रेजी की अन्य बोलियों के बीच लंदन की बोली की। भारत में इस समय वैसी ही समानांतर अवस्था है जैसी तब होगी, जब अंग्रेजी गद्य तो उसी बोली में लिखा जाए, जिसमें वह लिखा जाता है और पद्य डारसट की बोली में रचा जाए। ....अत: बा० अयोध्या प्रसाद का प्रयास स्वदेशवासियों के लिए एक वर-दान है, क्योंकि एक सामान्य भाषा में लोग अपने सभी विचारों या भावों को व्यक्त करें।.....इस पुस्तक की यह भी एक विशेषता है कि यह इंगलैंड में प्रकाशित प्रथम पुस्तक है, जिसका प्रयोजन साहित्यिक है। भाषा सिखाने वाली पुस्तकें, व्याकरण या पाठमालाएँ ही अब तक संसार के इस भाग से प्रकाशित हुई हैं, यह पहली बार है जब कि हिंदी भाषा में एक शुद्ध साहित्यिक कृति निकल रही है।'

पिन्काट के शब्दों में उनका (संकलनकर्त्ता का उद्देश्य है स्वदेशवासियों से कविताएँ पुरानी ब्रजभाषा का व्यवहार छुड़ाना और उर्दू के हिमायतियों से अरबी लिपि छोड़कर नागरी का ग्रहण कराना। वास्तव में वे एक समझौता चाहते थे कि एक पक्ष अपनी प्रिय बोली को त्याग दे और दूसरा पक्ष अपनी अभ्यस्त लेखन रीति का त्याग करे। संकलनकर्त्ता के सुझाव को मान लेने से दोनों पक्ष एक सामान्य (कॉमन) आधार खड़ी बोली पर मिल जाएंगे, जिसे सभी समझते हैं और जो वर्त्तमान सभ्यता की दैनिक आवश्यकताओं के साथ घोषित, वर्द्धित और परिवर्त्तित होती जा रही है। निश्चय ही यह विचार उदात्त है, जिसे सिद्ध करना उचित है, चूंकि इसके द्वारा एक विशाल प्रांत के

मानसिक प्रयत्नों में एकता आएगी और उत्तर भारत के बौद्धिक विकास की सबसे बड़ी बाधा दूर हो जाएगी।'[१]

पिन्काट ने ईंस्टविक का अनुवाद संशोधित कर अपने आमुख के साथ १८९७ में प्रकाशित किया था। इसमें वे कहते हैं—'यह हिंदी के विद्यार्थियों के हाथ में दी जाने वाली प्रथम पाठ्य-पुस्तक है। मिशनरियों का इस पुस्तक से पूर्ण परिचय आवश्यक है, चूंकि इसमें उस अवतार का चरित है, जिसके प्रति भारतीयों की सर्वाधिक श्रद्धा है। 'प्रेमसागर की भाषा को हिंदी का श्रेण्य रूप (क्लासिकल फार्म) बताया गया है।[२] इस प्रसंग में आपने लिखा है—यह भारत का दुर्भाग्य है कि अपने महत्त्व के अनुरूप हिंदी को प्रोत्साहन नहीं दिया

---

1. His object is to induce his country men to abandon the use of the archaic Braj dialect in their poetic effusions, and to persuade those who favour Urdu to use Nagri instead of Arabic letters for their verses. In fact he proposes a compromise, one party he asked to abandon a cherished dialect of their language and the other party to give up a customary method of writing. By conforming to the compiler's suggestion, all parts meet on the common ground of the Khari Boli, or 'Correct speach' understood by all and loving, growing and changing, with the daily requirements of advancing civilization. It is certainly a grand conception, worthy of the fullest realization for it would unite the mental efforts of a great province, and remove the greatest obstacle to the intellectual development of Norther India" Preface by the Editor of Khari Boli Ka Padya.
2. The Premsagar, composed in what is now termed as the classical form of Hindi, This latter book Prem Sagar, has always been treated with first reading book placed in the hands of the Hindi students. It is a book perfect for its familiarity with the contents of which is absolutely essential to the missionaries, for it contains the life-work of that revelation of Deity which commands the most absorbing among the people of India.

जाता, केवल व्यापारी, अध्यापक और मिशनरी आवश्यकता के दबाव में इसके अध्ययन पर ध्यान देते हैं।

जब आप गिलबर्ट एडरिविंगटन कंपनी के ओरियंटल एडवाइसर और एक्स्पर्ट (प्राच्य परामर्शदाता और विशेषज्ञ) थे, तब आपने कंपनी के पत्र 'आईनः सौदागरी' में कुछ पृष्ठ हिंदी के लिए सुरक्षित कर दिए थे। इसमें वे प्रायः हिंदी के लेख लिखते थे। पिन्काट जहाँ भी और जिस अवस्था मे रहे हिंदी हित के कार्य करते थे।

पिन्काट इंगलैंड में ही रहते हुए आमरण हिंदी की सेवा में ही लगे रहे। यद्यपि पिन्काट उर्दू भी जानते थे, पर वे हिंदी के ही पुजारी बने रहे। उर्दू के मोह से वे अन्य अंग्रेजों की भाँति पीड़ित नहीं थे।

ऐसे हिंदी-सेवक अँग्रेज की संक्षिप्त जीवनी बा० श्यामसुन्दर दास ने प्रकाशित कराई थी और शुक्लजी ने भी अपने इतिहास में आपका सादर उल्लेख किया है।

१८. डा० एल० पी तेस्सितोरी

आपका जन्म १८८८ ई० में इटली के उदीने नगर में हुआ। आपने फ्लोरेंस विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम० ए० और मानस पर पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त की। १९११ में कुछ दिन आप फौज में नौकर रहे। बाद में आपने डा० जाको बी० से संपर्क स्थापित किया और 'पुरानी राजस्थानी, निबंध के लिए श्री विजयधर्म सूरि से कुछ पांडुलिपियाँ मंगवायीं। तेस्सितोरी राजपूताना के भाट और ऐतिहासिक साहित्य (बार्डिक एण्ड हिस्टारिकल लिटरेचर आफ राजपूताना ७ के संपादक रूप में ११ अप्रैल, १९१४ ई० को भारत आए। १९१३ ई० में श्री हरप्रसाद शास्त्री ने भाटों द्वारा रचित ऐतिहासिक गाथाओं की खोज पर एक प्रारंभिक रिपोर्ट दी थी। तेस्सितोरी ने अपना कार्य १ जून, १९१५ ई० को आरंभ किया और इसके लिए पं० राम कर्ण और चारण किशोरदास को सहायक बनाया। इस कार्य में उन्हें राजस्थान के गाँव-गाँव में दौरा करना पड़ा। उनकी इस खोज की योजना और उसकी रिपोर्ट १९१४-१९२० ई० के बीच एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में निकले थे।

राजस्थान की जलवायु, आपके अनूकूल न पड़ने के कारण, आप अस्वस्थ हो गए। आपका निधन १९१८ ई० में अपने कार्य के बीच में ही हो गया।

आपकी पुस्तक का अनुवाद पुरानी राजस्थानी के नाम से श्री नामवर सिंह ने किया है। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने अपनी पुस्तक में कहा है, 'पुरानी राजस्थानी उच्चारण रीति, रूपतत्त्व और वाक्य-रीति के पूरे विचार के साथ तेस्सितोरी की आलोचना ऐसी महत्त्वपूर्ण है कि इसे राजस्थानी (मारवाड़ी) तथा गुजराती भाषा तत्त्व की यदि बुनियाद कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उनका यह कार्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पुरानी पश्चिमी राजस्थानी के द्वारा तेस्सितोरी ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की उस खोई हुई कड़ी के पुर्ननिर्माण का प्रयत्न किया।......आप का यह विवेचन २२ जैन हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर हुआ।........उनसे अपभ्रंश-युग के बाद की भाषा के ध्वनि परिवर्त्तन की प्रवृत्तियों पर पूरा प्रकाश पड़ता है।'

तेस्तितोरी ने बताया है कि आपको फ्लोरेन्स के 'रीजिये विविलोथेका नेजनाले' चेत्राले में उन्हें प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के हस्तलिखित ग्रंथ मिले थे और उन्हें आधार बनाकर आपके मन में प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी का ऐतिहासिक व्याकरण लिखने का निश्चय हुआ। भारतीयों की सहायता के बिना यह कार्य भारत से बाहर करके तेस्सितोरी ने अपने श्रम और ज्ञान का अपूर्व परिचय दिया था।

तेस्सितोरी 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' को शौरसेनी अपभ्रंश की पहली संतान और साथ ही गुजराती और मारवाड़ी की माँ माना है। उस भाषा में गुजराती और मारवाड़ी दोनों के उद्भव के तत्त्व मिलते हैं। इस निवंध को प्रस्तुत करने में लेखक ने बड़ा काम किया था और प्राकृत पैंगलम् की भाषा की पूरी परीक्षा की। आपका यह निष्कर्ष है कि 'पूर्वी राजपूताना की प्राचीन भाषा प्राचीन पूर्वी राजस्थानी हो चाहे प्राचीन पश्चिमी हिंदी—मूल रूप में गुजरात और पश्चिमी राजपुतान की भाषा की अपेक्षा गंगा की भाषा के अधिक निकट थी।'

१९११ ई० में तेस्सितोरी का निवंध रामचरित मानस और रामायण इंडियन ऐंटीक्वेरी, १९१२ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह निवंध प्रथम बार इटेलियन में जियार्नल दलासोसियेता एशियाटिका इटेलियाना (जिल्द २४, १९११ ई० पे० ९९-१६४) में प्रकाशित हुआ था, जिसका अंग्रेजी अनुवाद ग्रियर्सन और सर आर० सी० टेम्पुर्ल के सुझाव पर प्रकाशित कराया गया। इसमें वाल्मीकीय रामायण से चौरासी स्थलों की मानस के साथ तुलना कर उसे ही मानस का उद्गम बताया गया था। इस निवंध पर ग्रियर्सन का कथन यह है—

'जो हम लोग चाहते थे, वह सिन्यार तेस्सीतोरी ने कर दिया है। हम प्राप्त-कर्त्ताओं के लिए न इसके लिए अवकाश था न अवसर। तुलसीदास के सभी विद्यार्थियों से मेरा अनुरोध है कि वे इसे पढ़ें। महत्त्वपूर्ण तुलनाओं से और सुझाव भरी वातों से यह निबंध पूर्ण है तथा इसे भविष्य मे सदैव ध्यान में रखा जाएगा, जब भी रघुवंश के गौरव का गान करने वाले महाकवियों के संबंध की खोज होगी।'[१] तुलसी-विषयक अध्ययन को कार्पेंटर और जे० एम० मेक्फी की पुस्तक दि रामायण आफ तुलसीदास ने आगे वढ़ाया।

तेस्सितोरी की रचनाएँ

1. Origin of the Dative and Genetive—and Dative Post-position in Gujrati and Marwari—J. R. A. S. London, 1913,
2. Some Grammatical forms in the Old Banswari of Tulsidas (Ibid 1914).
3. Grammar of Old Wester Rajasthan.
4. Reports of the Bardic and Historical Survey of Rajputana, 1914-17, J R A S B
5. The Sound of E and O in Marwari and Gujrati.

संपादित ग्रन्थ

१. बचनिका राठोड़ रतन सिंह जी री (रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, १९१७ ई०)।

२. बेलि क्रिसन रुक्मणी री (वही, १९१९ ई०)

३. छंद राउ जइत—सी २३, (वही, १९२० ई०)।

१९. ए० पी० वरान्निकोव

आधुनिक रूस में हिंदी के सेवकों और उन्नायकों में श्री वरान्निकोव अग्रणी हैं। आपका जन्म १८९० ई० में एक निर्धन बढ़ई परिवार में हुआ था। कठिन आर्थिक संघर्ष और बाधक परिस्थितियों के बीच आपने अध्ययन किया और अपनी ज्ञान-पिपासा के तात्पर्य अनेक कष्ट सहे थे। कीव विश्व-विद्यालय से १९१४ ई० में आप ग्रेजुऐट होकर निकले। पहले आप संस्कृत के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। बाद में धीरे-धीरे आपकी रुचि इस दिशा में बढ़ती ही गई। १९१६ ई० में अकदमीशियन फ० ई० रचेवात्स्की और स० फ०—

---

१. ज० रा० ए० सो० १९१२ ई० पे० ७९८।

ओल्डन वर्ग से संस्कृत-प्राकृत पढ़ी। उस समय तक रूस के प्राच्य विद्याविदों में संस्कृत और प्राचीन भारतीय धर्म-दर्शन आदि ही के अनुशीलन में रुचि थी। आपने भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण की आवश्यकता बताई, क्योंकि आपका विश्वास था कि आधुनिक भारत को जानने के लिए यह आवश्यक है कि समकालीन भारत की प्रमुख भाषाओं का अध्ययन हो। एक लेखक के अनुसार—आपही ने 'सोवियत संघ में भारत की आधुनिक भाषाओं के अध्ययन और विश्लेषण का सूत्रपात किया। हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगला और पंजाबी का लेनिनग्राड ओरियन्टल इंस्टीट्यूट और लेनिनग्राद विश्व-विद्यालय में आपने इन भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की और पुराण पंथी स्कूल के प्रतिनिधियों द्वारा डाली गई बाधाओं को पार किया जो भारत के विद्या विज्ञान का क्षेत्र मुख्य रूप से संस्कृत और भारत के प्राचीन इतिहास के अध्ययन तक सीमित रखना चाहते थे·······कारण कि वैज्ञानिक ठोस आधार पर ही आधुनिक भारत का, उसकी संस्कृति का जिसके प्रति अक्टूबर क्रान्ति के बाद भारी दिलचस्पी का उदय हो गया था, उसके आधुनिक और सामाजिक इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।'[१]

इस प्रकार बरान्निकोव ही को हिंदी साहित्य के अध्ययन को रूस में प्रवर्तित और प्रतिष्ठित करने का श्रेय है। सोवियत संघ की अकादमी का सदस्य निर्वाचित होना, रूस के विद्वानों के लिए परम गौरव का विषय माना जाता है। १९३९ ई० में आप अकादमी के सदस्य चुने गए। कई वर्षों तक आप वहाँ की संस्था विज्ञान अकादमी के प्राच्य इन्स्टीट्यूट में महत्त्व के पद पर रहे और लेनिन विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाओं के विज्ञान के भी अध्यक्ष थे। आपकी भारतीय विद्या की सेवाओं का पुरस्कार सरकार ने 'आर्डर आफ लेनिन' से विभूषित किया। इस प्रकार लगभग १९१८ ई० से निरन्तर एकनिष्ठ भाव से आपने हिंदी साहित्य-के अनुशीलन में ही अपने को लगाया। ४ सितम्बर, १९४५ ई० को इस रूसी विद्वान् का निधन हुआ।

हिंदी के अध्ययन को सुचारु रूप से संगठित करने के लिए और उसे आगे बढ़ाने के लिए बरान्निकोव ने अनेक पुस्तकें रची, जिनमें निम्नलिखित पुस्तकें और निबंध महत्त्वपूर्ण हैं।

१. केशरीनारायण शुक्ल—अनुवादक की भूमिका से उद्धृत मानस की भूमिका, विद्यामन्दिर, लखनऊ।

१. हिंदुस्तानी (उर्दू और हिंदी),
२. हिंदुस्तानी की पेचीदा क्रिया पद्धति,
३. उर्दू में फारसी के तत्त्व,
४. हिंदी की समस्याएँ,
५. भारतीय भाषाओं की परंपरा में ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति के तत्त्व ।

इसके अतिरिक्त खड़ी वोली का आदि ग्रंथ प्रेमसागर का अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया । रूसी पाठकों को प्रेमचंद से सुपरिचित कराने का श्रेय भी आपको ही है । पर जिस कृति ने आपको सर्वाधिक प्रसिद्धी दी वह है रामचरित मानस का रूसी पद्यानुवाद ।

मानस का अनुवाद आपने रूस पर जर्मनी के आक्रमण की अवधि में आरंभ किया था । यह कार्य उस समय पूरा हुआ जब आप कजकिस्तान में शरणार्थी थे । अपनी मातृभूमि पर सकट की वेला में बरान्निकोव तुलसीदास के मानस के पद्यात्मक अनुवाद में लगे हुए थे ।

इस अनुवाद के साथ ही आपने एक विद्वतापूर्ण भूमिका भी लिखी, जो स्वयं एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तुल्य है । तुलसीदास के मानस पर एफ० एस० ग्राउज और हिल ने उनके पूर्व भूमिकाएँ लिखी थीं, पर बरान्निकोव का यह कार्य उन विद्वानों की कृतियों से अधिक विद्वतापूर्ण है । इस अनुवाद के माध्यम से रूसी पाठक हिंदी-साहित्य के इस महाकवि के अनुपम काव्य से परिचित हुए । इसमें अनेक अध्यायों में लेखक ने तुलसीदास के युग, उनकी कारयंत्री प्रतिमा, मानस की प्रवंधात्मकता, उनकी कविता के विशिष्ट स्वरूप और गुणों, उनके दार्शनिक धार्मिक विचारों पर विचार किया है । यह भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका अनुवाद डा० केशरीनारायण शुक्ल ने प्रकाशित कर हिंदी-जगत् को इस रूसी विद्वान् के ज्ञान से परिचित कराया । भूमिका का प्रथम वाक्य है—'भारत में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त करते हुए तुलसीदास ने रामायण मनोरंजन या पाठ मात्र के लिए नहीं लिखा, उनके देशवासी विजेताओं द्वारा धूलि धूसरित थे और उन्होंने अपने इस काव्य द्वारा अपने देश की रक्षा के लिए अपूर्व मौलिक मार्ग-प्रदर्शन की चेष्टा की ।' तुलसी की लोकप्रियता पर सभी यूरोपीय विद्वान् चकित हैं । ग्रियर्सन के पूर्व तासी ने भी इसका उल्लेख किया था तथा ग्राउज़, कार्पेंटर, हिल, आदि सभी

विद्वान् इसकी चर्चा करते हैं। बरान्निकोव एक कम्युनिस्ट देश के विद्वान् होते हुए भी तुलसी के आध्यात्मिक और धर्मप्राण काव्य में प्रवेश कर उसके गूढ़ तत्त्वों को उद्घाटित करने में सफल हुए और सहानुभूतिशील आलोचक के रूप में तुलसी का गौरव गान करते हैं। जब भारत के नवोदित साहित्यिक तुलसी आदि के काव्य को समाज की प्राचीन रूढ़ियों का पोषक अनुभव करते हैं तब स्वयं बरान्निकोव मानस की महिमा को स्वीकार करते हैं। उनका यह मानस-प्रेम हमें चकित कर देता है। बरान्निकोव मानस में प्रगतिशील तत्त्व का उल्लेख करते हैं। उनके अनुवाद को रूसी विद्वानों ने उत्तम स्वीकार किया है। मानस का पद्यानुवाद करना दुःसाध्य है, पर इस हिंदी-प्रेमी रूसी ने बड़ी लगन और निष्ठा से इस कार्य को पूर्ण किया। तुलसीदास को रूस में पहुँचाने का श्रेय आपको ही प्राप्त है।

आधुनिक लेखकों में प्रेमचंद पर रूस के विद्वान् का ध्यान जाना स्वभाविक था कि चूंकि गोर्की और प्रेमचंद में बहुत सादृश्य है। दोनों पीड़ित और शोषित वर्ग के प्रति अति सहानुभूति शील उपन्यासकार थे। प्रेमचंद के अनेक उपन्यास रूसी पाठकों को अपनी भाषा में मिल चुके हैं। प्रेमचंद को भी रूसी भाषा में लाने का श्रेय भी आपको ही है। बरान्निकोव के सुपुत्र भी अपने पिता के चरण-चिह्नों पर चलते हुए हिंदी को रूस में लोकप्रिय बनाने में लगे हैं।

२० सेवास्तिवा रोदल्फ दालगादी[1]

पोर्तुगीज भाषा के इस भारतीय ईसाई विद्वान् का जन्म असागांव[2] बारदेज, गोआ में हुआ था। वे मूलतः ब्राह्मण वंश के थे, जिनकी पारिवारिक उपाधि देसाई की थी, जिसे पोर्चुगीजों ने दोलगादो रूप दे दिया। रोदल्फ ने अपने गाँव में और जिले के शहर में मयुका में शिक्षा पाने के बाद पादरी बनने के लिए रांचोल में ईसाई धर्म की शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद १८८१ ई० में आप पादरी रूप में दीक्षित हुए। आपने अंग्रेजी, फ्रेंच, इटेलियन आदि का विधिवत् अध्ययन किया, तथा संत एपोलिनेरियस[3]

1. Sebastio Rudolfo Dalgado.
2. Assagao Bardez 3 St. Apolinarius.

विश्वविद्यालय से ईसाई सिद्धांत (कैनन) और रोमन ला में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। आपने ग्रीक और हेब्रू भाषाएँ भी सीखी। उसकी विद्वता और योग्यता पर प्रसंन होकर पोप लियो त्रयोदश ने आपको ११ अक्टूबर १८८४ ई० को अपना आनरेरी चैपलेन नियुक्त किया। इसके बाद पोप ने आपको भारत और लंका में धर्माधिकारी रूप में भेज दिया। इस क्षेत्र में आपने अनेक पदों को सुशोभित किया। १८८७ से १८९० ई० के अप्रैल तक आप बंगाल के 'वाइकर जनरल' रहे। इस अवसर से लाभ उठा कर आपने बँगला और हिंदुस्तानी सीखी। फिर गोआ की सीमा पर स्थित सावंत वाडी में मराठी और संस्कृत भी पढ़ी। उस समय उन्हें अपनी मातृभाषा कोकनी और संस्कृत के घनिष्ट संबंध का अनुभव हुआ आपने इस ज्ञान का प्रयोग कोकनी का कोश और व्याकरण रचने में लगाया। १९०७ ई० में आपकी नियुक्ति लिसबन विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर के पद पर हुई।

सेवास्तिवा ने यों तो बहुतेरी पुस्तकें रची है, जिनका संबंध पोर्चुगीज संस्कृत और संकर पोर्चुगीज आदि से है, पर जिस पुस्तक पर आपकी ख्याति विशेषत: अवलंबित है, वह है, 'इनफ्लोंसिया द वोकेबुलेरियो पोर्चुगीज एन लिंग्वा एशियाटिकस। यह ग्रंथ आपके दीर्घकालीन अध्ययन और विधिध भाषा-विषयक ज्ञान का प्रकाश मान दीप स्तम्भ है। आपके अध्ययन का विषय है पोर्चुगीज शब्दों का एशियाई भाषा पर प्रभाव। आपका यूरोप और एशिया की विविध भाषाओं का जितना व्यापक ज्ञान था, वैसा किसी अन्य प्राच्य विद्या के सेवक में नहीं दीख पड़ा। इस पुस्तक के प्रकाशनांतर यूरोप के भाषावैज्ञानिकों में आपने सुयश प्राप्त किया। इस पुस्तक को अति महत्त्वपूर्ण समझ कर, इसका अनुवाद बड़ोदा कालेज के अंग्रेजी के प्रोफेसर एंथनी जेवियर सोरेज़ ने किया है।

अनुवादक ने लेखक का परिचय देते हुए यह बताया है कि आप लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के कुछ ही भारतीय सदस्यों में एक थे। जब आप अपने अनुशीलन में लगे थे, उस समय अपने स्वास्थ्य को विशेष क्षति से बचाने के लिए एक के बाद एक कर दोनों पैरों को कटवा कर अलग कर देना पड़ा। इस अंग-भंग के बाद भी आप बीमार की कुर्सी पर बैठे हुए अपने छात्रों को पूर्व की भाषायें पढ़ाते रहे।

चूँकि आपकी पुस्तकें पोर्चुगीज में लिखी गई हैं और उस भाषा के जानकार अब इस देश में बहुत कम है, अतः आपकी भाषा-विषयक सेवा से बहुत कम लोग परिचित हैं, अतः आपकी पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद 'पोर्चुगीज़ वाकेब्रुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज' का बड़ा महत्त्व है। इस पुस्तक से अनेक ऐसे हिंदी शब्दों के संबंध में यह ज्ञान हुआ कि वे मूलतः पोर्चुगीज हैं। पर यह पुस्तक पुर्तगाल के एशिया पर प्रभाव को दिखलाने के लिए रची गई थी।

आपने एक और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ग्लोसेरिओ ल्यूसो-एशियाटिको रचा है, जो हाबसन- जाबसन से तुलनीय है। इसमें उन एशियाई शब्दों का संग्रह है, जो पोर्चुगीज और उसकी माध्यम से अन्य यूरोपीय भाषाओं में प्रविष्ट हुए।

जीवन के अंतिम काल में इस गोआ के विद्वान् ने लीसियम[2] में संस्कृत के लिए एक पारितोषिक प्रदान करने की और गोआ के आर्क बिशप को कोकनी का एक 'चेयर' स्थापित करने को धन की राशि दी। आप भारत भक्त थे। पुर्तगाल अपने विदेशी अधिकृत क्षेत्रों को उपनिवेश नहीं अपना राज्य मानता है। अतः गोआ को पुर्तगाल का अंग मानने के कारण सेबास्तिवा पुर्तगाल के गौरव के वाहक थे। पुर्तगाल का शासन अनेक इतिहासकारों के अनुसार क्रूर और नृशंस था पर लेखक महोदय पुर्तगाल के इस लांछन को दूर करना चाहते थे। अतः उन्होंने इसी उद्देश्य से पोर्चुगीज भाषा का प्रभाव एशियाई भाषाओं पर दिखलाने में अपने जीवन का बहुमूल्य समय लगा दिया। हम अन्त में अनुवादक के मूल्यांकन से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए उसे उद्धृत करते हैं।

डा० डालगादो का वोकावुलेरी और ग्लासरी दो सभ्यताओं के मेल का स्थायी स्मारक होगा और वे स्वयं चाहे मानव, पादरी अथवा विद्वान् के

1. प्रकाशन ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ोदा, १९३६ ई० यह गायकवाड़ ओरियंटल सीरिज़ में प्रकाशित हुआ है।
2. Lyceum.

रूप में देखा जाए, पूर्व और पश्चिमी के घनिष्ठ संबंध के सुखद फल के उत्तम उदाहरण हैं।'[1]

चूँकि डालगादो अपने को पुर्त्तगाल की प्रजा मानते थे, अतः हमने यूरोपियनों के प्रसंग में उन्हें स्थान दिया है।

२१- एफ० ए० की

अंग्रेजी में लिखे हिंदी साहित्य के संक्षिप्त इतिहासों में की का 'ए हिस्ट्री आफ हिंदी लिटरेचर' प्रकाशन के बाद बड़ा प्रसिद्ध हुआ। इस पुस्तक में राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी और बिहारी साहित्य का इतिहास का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं भाषाओं को लेने का कारण बताते हुए आप लिखते हैं इन भाषाओं का साहित्य परस्पर घनिष्ठ रूप में संबद्ध है तथा एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ा है। इनमें से किसी एक भाषा का जानकार दूसरी भाषा को प्रायः समझ लेता है। यह वास्तविकता है कि हिंदी पाठक के लिए अवधी और ब्रजभाषा एवं भोजपुरी तथा मैथिली सभी बोलियों के काव्य सुगम और सुबोध होते हैं।

आरंभ में की ने हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों की प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। वे पृथ्वीराज के समय से आर्य देशभाषा के साहित्य का आरंभ मानते हैं। इसी काल में राजपूताना के चारण-भाटों ने समकालीन राजनैतिक संघर्ष को प्रमुख वर्ण्य विषय मान कर आश्रयदाता राजाओं और हिंदू स्वातंत्र्य के रक्षार्थ हिंदू वीरों के युद्ध शौर्य और बलिदान की गाथाओं पर काव्य रचे। हिंदू राज्य अपनी रक्षा के लिए मुस्लिम आक्रामकों से वीरतापूर्वक लड़ रहे थे। अतः वीर गाथा के रचयिता हिंदू कवियों ने तेजस्वी, पराक्रमी हिंदू वीरों की गौरव गाथाओं को काव्य का रूप दिया। इन कवियों में सबसे बड़ा नाम चंद बरदाई का है। इसके बाद जगनायक (जगनिक) और रणथंयौर राज हम्मीर के शौर्य के गायक सारंगधर हैं।

---

1. Dr. Dalgado vocabulario and Glossario will remain abiding monuments of such an alliance between the two civilizations; and he himself, whether regarded as man, priest, or scholar is a splendid example of the happy result to be derived from an intimate association of the East and the west.—P. XXII Portuguese Vocables in Asiatic Languages.

इसके पश्चात् रामोपासना का आरंभ होता है। उस समय मुख्यतः रामानन्द के प्रभाव से रामभक्ति की धारा उमड़ पड़ी। वैष्णवों की एक शाखा कृष्णभक्ति को लेकर चल रही थी। रामभक्ति की एक शाखा निर्गुण धारा अमूर्तिपूजक कबीर से आरंभ होती है। इन धार्मिक भक्ति मलक आन्दोलनों के उदय से हिंदी क्षेत्र में धार्मिक पुनरुत्थान का आरंभ होता है। यह काल १४०० ई० से आरंभ होता है। राजपूताना के पूर्ववर्ती भाटो ने संक्रान्ति काल में ऐसी भाषा का प्रयोग किया था, जो प्राकृत रूपों से प्रभावित थी। वह हिंदी साहित्य का शैशव काल था। अब इस नए काल के कवियों ने जनभाषा को अर्थात् समकालीन देशभाषाओं में काव्य रचा, अतः वह लोकप्रिय हुआ। यह हिंदी का यौवन-काल था। १५५० ई० से की ने हिंदी का स्वर्ण काल माना है। उस समय तक मुगलों का राज्य दृढ़ हो चुका था और अकबर, जहांगीर तथा शाहजहाँ का वैभवपूर्ण राज्य-काल चल रहा था। हिंदी क्षेत्र में प्रायः शांति स्थापित हो चुकी थी। यह इंगलैंड में एलिजावेथ-युग था। इसी काल में पश्चिमी समुद्र तट पर इंगलैंड और भारत का मिलन हुआ था। भक्ति काल के उत्कर्ष के बाद इसी युग में केशवदास का उदय हुआ, जिन्होंने काव्यशास्त्र के प्रभाव से हिंदी काव्य को अलंकृत करने की चेष्टा की और काव्य के कलापक्ष पर विशेष बल दिया। इसी युग में तुलसीदास, सूरदास के बाद बिहारीलाल, त्रिपाठी बंधु, देव और सेनापति का उदय होता है। यह काल मुगल साम्राज्य के पतन के साथ समाप्त होता है।

१९ वीं शती के आरंभ में यूरोपीय संस्कृत के संपर्क से नवीन प्रभाव का आरंभ होता है। इसी समय वह महान् साहित्यिक पुनरुत्थान आरंभ होता है, जो अब तक चल रहा है। इस युग के आरंभ में लल्लूजी लाल ने आधुनिक हिंद गद्य की नींव डाली और उस साहित्यिक बोली का सृजन किया, जिसे बाद में प्रमुख माध्यम बनना था। छापाखाने साहित्य को चतुर्दिक फैलाने लगे। हरिश्चंद ने हिंदी काव्य को पुनरुज्जीवित किया और इसी युग में हिंदी नाटक का उदय होता है।

इस प्रकार की ने हिंदी का इतिहास तीन कालों में विभाजित किया है। आपने पहले चारणों के ऐतिहासिक काव्यों का परिचय दिया। फिर आप १४०० ई० के बाद के काल में वैष्णव धार्मिक आन्दोलनों से प्रभावित काव्य की चर्चा करते हैं। पुनः १५५० ई० के बाद से काव्य कला से प्रभावित काव्य को महत्त्व देते हैं। उसे बाद १८०० ई० से आधुनिक युग का

आरंभ मानते हैं, जबकि पश्चिम से हमारा संपर्क हुआ। यह काल-विभाजन उचित कहा जा सकता है।

१४०० ई० से पूर्व—हिंदी का शैशव काल। इसे ही डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी आदिकाल और शुक्ल जी वीरगाथा काल कहते हैं।

१४००-१५५०ई०—हिंदी का यौवन-काल या वैष्णव काल। इसे ही शुक्ल जी भक्तिकाल नाम देते हैं।

१५५०-१८०० ई०—हिंदी का कला-काल इसे शुक्ल जी रीतिकाल कहते हैं। की इस 'आर्टिस्टिक इन्फल्युनेस' कलात्मक प्रभाव का काल कहते हैं। हमने उसके लिए कला-काल दिया है जो उनके ही आशय को व्यक्त करता है।

१८०० ई०—आधुनिक काल।

चंद बरदाई के पूर्व के प्राप्त ग्रंथों की भाषा पर प्राकृत अपभ्रंश प्रभाव अधिक होने से की ने उन पर विचार नहीं किया। चूंकि उनकी भाषा का प्रामाणिक स्वरूप और उनका रचना-काल अनिश्चित और संदिग्ध है, अतः की ने चंदबरदाई से ही अपना इतिहास आरंभ किया। पृथ्वीराज रासो की भाषा के विषय में भी वे ग्रियर्सन का मत उद्धृत करते हैं कि इसमें अपभ्रंश और शौरसेनी प्राकृत रूप भरे पड़े हैं। १४०० ई० से पूर्व के काव्य को वे बार्ड क्रानिकल्स कहते हैं। क्या यह शब्द शुक्ल जी द्वारा गढ़े और बहु प्रचारित 'वीर गाथा' की ओर संकेत नहीं करते? बार्ड शब्द भाट शब्द का विकार माना जा सकता है, महाप्राण भ का रूपांतर अल्पप्राण ब में, ड का ट में परिवर्त्तन।

इस पुस्तक के अंत में की ने हिंदी साहित्य के इतिहास के विवेचन के बाद उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों पर भी सार रूप से प्रकाश डाला है। उनके अनुसार ये प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं :

आरंभिक काल में धर्म ही हिंदी साहित्य को मुख्यतः अनुप्राणित करता था। अधांश से बहुत अधिक मात्रा में यह साहित्य भक्ति आंदोलन से प्रभावित है। शेष का संबंध काव्य-कला से है, पर इन कृतियों में भी उदाहरण रूप मे

प्रस्तुत पद्य धार्मिक आंदोलनों से प्रभावित है। भाटों का साहित्य यद्यपि मूलतः ऐहिक है पर उसमे भी धर्म का कुछ प्रभाव लक्षित होता है। १९ वीं शताब्दी तक प्रायः संपूर्ण साहित्य पद्य में है। लल्लू जी के पूर्व गद्य का साहित्य विट्टलनाथ का 'शृंगाररस मंडन' और गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवन की वार्ता दामोदर दास का मारकंडेय पुराण का अनुवाद ही गद्य की कृतियाँ थीं पद्य का ऐसा व्यापक प्रभाव था कि चिकित्सा, पशु-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, ज्योतिष और कोष भी पद्य में ही मिलता है। कदाचित् इन लेखकों को पद्य रचने में ही सुगमता दीख पड़ती थी।

१६ वीं शताब्दी के बाद केशवदास से वह परंपरा चलती है, जिसमें मुख्यतः काव्यकला (रीति-अलंकार आदि) और पिंगल ग्रंथ रचे जाने लगे। काव्य रूप और कलापक्ष पर विशेष बल दिया जाने लगा। अनुप्रास, श्लेष और अन्य अलंकारों का प्रयोग काव्य-निपुणता का प्रधान तत्त्व हो गया। इसका फल यह हुआ कि हिंदी काव्य ने माधुर्य और लय से युक्त होकर प्रिय रूप धारण किया।

रूपकों के प्रयोग में काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग हिंदी काव्य की एक विशेषता है। चकवा, चातक, और चकोर, हंस आदि की रूढ़ियां सर्वस्वीकृत है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि सभी कवि इन्हीं रूढ़ियों तक सीमित हैं। तुलसीदास और अन्य कवियों के काव्य में प्रकृति से सुन्दर और नवीन उपमायें भी ग्रहण की गई हैं। हिंदी काव्य का विषय-क्षेत्र सीमित है। यहाँ तक प्रेम-व्यंजना भी प्रायः राधाकृष्ण सीताराम के प्रेम व्यापारों के माध्यम से हुई है। रामकृष्ण का चरित अथवा लीलागान ही कवियों का सर्वाधिक ध्यानआकृष्ट करता है। भक्ति-साहित्य में गुरुमहिमा, भक्तिमहिमा, आवागमन का दोष, भाषा को छापना, संसार की क्षणभंगुरता आदि विषयों का वर्णन है, पर वह शुद्ध युवक-युवती का लौकिक प्रणय-प्रसंग प्रायः उपेक्षित है। प्रेम का जहाँ वर्णन भी है जहां वह दरबारी विलास के रूप में है। यदि किसी कवि को किसी क्षेत्र विशेष में विशेष सफलता मिल जाती थी, तो उसके अनुकर्ता कवि अनेक पैदा हो जाते थे। हिंदी साहित्य इस प्रकार एक सीमाबद्ध क्षेत्र से संबंधित है पर उस घेरे में स्थिति होने पर भी उसमें अनेक उच्च कोटि की रचनाएं हैं। इन सीमाओं के बावजूद हिंदी साहित्य महान् है। सत्य ही यह 'आनंद का उपवन' (गार्डन आफ डिलाइट्स) है। इसमें विविध प्रकार के पद्य हैं और भाव और शब्दावली का चमत्कार है, गम्भीर भावों और उदात्त भावों की व्यंजना है।

यह वास्तव में बहुत लोकप्रिय हुआ, चूंकि इसकी रचना जनता की बोलियों में हुई और इसने जनमानस को प्रभावित किए। इसके पाठकों या श्रोताओं की संख्या अधिक थी। इसमें व्यक्त अनेक विचार और भाव जनजीवन के अंग बन चुके हैं और भारतीय प्रजा को जानने के लिए देशभाषाओं का घनिष्ट परिचय आवश्यक है।[१]

२२. डा० एल० डी० बार्नेट

बार्नेट का जन्म लिवरपूल के एक गरीब यहूदी परिवार में ३१ अक्टूबर १८७२ ई० को हुआ। वहाँ शिक्षा पाने के बाद आप ट्रिनिटी कालेज, कैम्ब्रिज में १८९२ ई० में शिक्षार्थ प्रविष्ट हुए। वहां आप को १८९६ ई० में क्लासिकल ट्राइपोस मिला। शिक्षा-समाप्ति के बाद १८९९ ई० में आप ब्रिटिश म्यूजियम की प्राच्य भाषाओं की मुद्रित पुस्तकों और पाण्डुलिपियों के सहसंरक्षक नियुक्त हुए। १९०६-१७ ई० तक लंदन विश्वविद्यालय में आप संस्कृत के प्रोफेसर रहे। १९१७-४८ ई० तक आपका संबंध स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज़ से लेक्चरर रूप में रहा। साथ ही आप प्राचीन लिपि की शिक्षा भी देते थे। वहाँ से अवकाश-ग्रहण करने के बाद १९४७ ई० के बाद पुनः आप ब्रिटिश म्यूजियम में अपने पुराने विभाग में काम करने को आ गए।

आपने ही ब्रिटिश म्यूजियम की प्राच्य भाषाओं की पुस्तकों और पाण्डु-लिपियों की सूची प्रस्तुत की। आपको भारतीय विद्याओं से बड़ा प्रेम था। संस्कृत के अध्ययन-क्रम में आपने भाषा-शास्त्री के नाते हिंदी का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। भारत के अनेक भाषातत्वज्ञ, यथा डा० सुनीति कुमार चटर्जी, सुशील कुमार दे, श्री वेनी माधव वडुआ आदि आपके शिष्य रह चुके हैं।

बार्नेट ने हिंदी के संबंध में भी कुछ कार्य किया था, जिसके संबंध में उनकी इस विषय की प्रकाशित रचनाओं से होता है।

एडिट ह्वाइट की सूची बी० एस० ओ० ए० एस० की सहायता से डा० महादेव साहा ने बार्नेट की रचनाओं की एक सूची प्रस्तुत की है। इसके आधार पर हिंदी संबंधित रचनाओं की सूची नीचे दी जा रही है।

ए सप्लीमेन्टरी कैटलग आफ हिंदी बुक्स इन द लाइब्रेरी आफ द ब्रिटिश म्यूजियम एक्वायर्ड डुयरिंग द ईयर्स १८८९-१९०८ ई० जे० एफ० ब्लूमहार्ट (एल० डी० बार्नेट का प्रीफेस (आमुख)-लंदन, १९१३ई०

---

१. ए हिस्ट्री आफ हिंदी लिटरेचर-की, पे० १०३

एक सेकेंड सप्लीमेंटरी कैटलग आफ प्रिंटेड बुक्स इन द लाइब्रेरी आफ द ब्रिटिश म्यूजियम एक्वायर्ड ड्यूरिंग द ईयर्स—१८८३-१९१२ ई०, जे० एफ० ब्लूमहार्ट (एल० डी वार्नेट का आमुख)।

ए सेकेंड सप्लीमेंटरी कैटलग आफ प्रिंटेड बुक्स इन हिंदी बिहारी (इन्क्ल्यूडिंग भोजपुरिया, कोरमली एंड मैथिली) एंड पहाड़ी इन द लाइब्रेरी आफ द ब्रिटिश म्यूजियम। (एल० डी० वार्नेट' जे० आफ० ब्लूमहार्ट एंड जे० बी० एस० विलकिंसन द्वारा संकलित) लंदन, १८५७ ई०

वार्नेट ने अनेक हिंदी-विषयक पुस्तकों की समीक्षाएँ भी प्रकाशित की।

१. अहमद शाह एंड प्रोमेरोड (ई० डब्लू)—हिंदी रेलिज्स पोयट्री, कानपुर १९५५—ज० रा० ए० सो० १९२६ ई०—पृष्ठ ७७९-८८०
२. द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी—ए डिक्शनरी आफ इंडियन क्लासिकल करेक्टर्स। लखनऊ १९१९ ई०
३. हीरालाल-ए ग्रामर आफ द छतीसगढ़ी डायलेक्ट आफ ईस्टर्न हिंदी, जार्ज ए० ग्रियर्सन द्वारा अनूदित। हीरालाल के निर्देशन में लोचन प्रसाद काव्य विनोद द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित, कलकत्ता १९३१ ई० (ज० रा० ए० सो० १९२३ ई० पृष्ठ ४४४)।

जान (ई), द सेल्फ हिंदी टीचर, इलाहाबाद १९३६ ई० (जे० रा० ए० सो० १९४० ई० पृष्ठ ३७४)

राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, राजस्थान भारती ले० १ सं० १ बीकानेर, १९४६ ई०। बी० एस० ओ० एस, बारह २४९, २५२-५३

२३. ए० बी शेरिफ

आपने हिंदी फोक सांग्स नाम का एक लघु संग्रह १९३६ ई० में हिंदी मंदिर प्रयाग से प्रकाशित कराया था। इसके गीत मुख्यतः श्री राम नरेश त्रिपाठी के ग्राम गीत, संग्रह से लिए गए हैं। इसमें पूर्वी जिलों के १८ लोकगीत हैं, जिनमें १५ का अंग्रेजी रूपांतर शेरिफ ने दिया।

२४. डा० कामिल बुल्के

आपका जन्म वेलजियम में वेस्ट फ्लांडर्स प्रांत में १ सितम्बर १९०९ ई० में हुआ था। हाई स्कूल तक की शिक्षा समाप्त कर आप लुवेन (Louvan) विश्वविद्यालय से इंजीनियर हुए। पर आप जेसुइट पादरी हो गए। आपका

भारत में १९३५ में आगमन हुआ और दार्जिलिंग और गुमला में अध्यापन किया। उसी समय आप हिंदी संस्कृत पढ़ने में प्रवृत्त हुए १९४० ई० में आपने विशारद किया। कलकत्ता से संस्कृत में आपने बी० ए० करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम० ए० किया। 'राम कथा का विकास'—पर १९४९ ई० में डी० फिल० की उपाधि लिया।

आप ने ईसाई धर्मावलंबी होते हुए भी 'मानस' का जिस मनोयोग और निष्ठा के साथ अध्ययन किया है, वह प्रशंसनीय। नैतिक और आध्यामिक मूल्य और आदर्श की दृष्टि से आप इसे अभूतपूर्व काव्य मानते हैं और इसे विश्वकाव्य के रूप में अभिनंदित करते हैं। अपने शोधग्रंथ में बुल्के ने राम कथा की व्यापकता को सिद्ध करने के लिए वृहत्तर भारत के अनेक देशों में इसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। जैन, बौद्ध, संस्कृत, प्राकृत आदि सभी स्रोतों से रामकथा को प्राप्त कर आपने अपने अनुशीलन को नई दिशा दी है। हिंदेशिया, लंका, वर्मा, नेपाल, तिब्बत तथा अन्यदेशीय रामकथा के स्वरूप पर इस ग्रंथ में विचार किया गया है। भारत की विविध भाषाओं में उपलब्ध रामायणों का आपने परिचय दिया है। इस प्रकार यह शोध-प्रवंध रामकथा-विषयक बहुमूल्य सामग्री से युक्त है।

डा० बुल्के संस्कृतनिष्ठ हिंदी के प्रबल समर्थक हैं। क्योकि आपके मत में 'उर्दू' को छोड़ कर प्रायः सभी भारतीय भाषाएँ सस्कृत से निकली हैं और उनमें संस्कृत शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हिंदी में संस्कृत के अधिकाधिक शब्दों का प्रयोग किया जाय और ऐसा करने से ही हिंदी अहिंदीभाषियों द्वारा समझी जा सकती है। ३ अप्रैल १९६६ई० को रांची में साहित्य संगम के वार्षिकोत्सव के अवसर पर बुल्के ने जोरदार शब्दों में अपना यह मत व्यक्त किया कि 'अंग्रेजी भारत में नौकरानी की तरह रह सकती है, बहू रानी की तरह नहीं। बहूरानी तो हिंदी हो सकती है। खेद है कि स्वराज्य के बाद भी हम इसे नौकरानी की तरह रखने को तैयार नहीं हैं।

आपके अन्य विवेचनपूर्ण निवंधों की एक अधिकृत सूची नीचे दी जाती है :

१. वाल्मीकीय रामायण के तीन पाठ,
नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५८(पृष्ठ-१-३५)।

२. रामचरित मानस का रचना-क्रम,
हिंदी अनुशीलन, वर्ष ६ और ३ (पृष्ठ-१-१४)।

३. आदिकवि बाल्मीकि का जीवन वृत्त,
राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त-अभिनंदन ग्रंथ, (पृष्ठ ६६९-६७४)।

४. हनुमान के चरित्र चित्रण का विकास,
हिंदी अनुशीलन, वर्ष १३, अंक (१-२ पृष्ठ-३४२-४५)।

५. पुरुवादसौदास, 'भारतीय साहित्य' आगरा
(वर्ष ५, अंक २, (पृष्ठ ७-२७)।

हिंदी में बुल्के की चार पुस्तकें हैं। उनमें दो का संबंध ईसाई मत से है।

१. 'मुक्तिदाता' (कैथलिक प्रेस राँची)
२. संत लूकस के अनुसार पेशु ख्रीस्त का पविश्र सुसमाचार (राँची, १९६३ई०)
३. 'रामकथा'—शोध प्रवंध,
४. नील पंछी : मैटरलिंग के दि ब्लू वर्ड का अनुवाद

इसके अतिरिक्त आपने एक ५०० पृष्ठों की अंग्रेजी-हिंदी तकनीकी शब्द सूची (टेकनिकल इंगलिश-हिंदी ' ग्लासरी, भी १९५५ ई० में राँचा से प्रकाशित की है।

प्रमुख व्याकरण-लेखक

१. केटेलर (१६५९-१७१६ ई०)

जीवन-वृत

जोहन जोशुआ केटेलर ही पहला यूरोपियन है, जिसे हिंदुस्तानी का व्याकरण लिखने का श्रेय दिया जाता है। जे० फोगल ने इस यूरोपियन लेखक के जीवन-वृत्त पर बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज, वाल० ८ में जो विवरण दिया है, वह मूल्यवान् है। केटेलर का जन्म २५ दिसम्बर, १६५९ ई० को बाल्टिक पर एलविंग में हुआ था। वे अपने जिल्दसाज पिता जोशुआ केटलेर के इकलौते बेटे थे। जब वे एक जिल्दसाज के यहाँ काम सीखते थे वहाँ उन्होंने अपने मालिक को लूटने और बाद में विष देने की चेष्टा की। इस दुराचरण के बाद वे काम से हटा दिए गए। वे फिर डैन्जिंग गए, पर यहाँ भी चोरी से बाज नहीं आए। १६८० ई० में वे भाग कर स्टाकहोम पहुँचे। इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि केटेलर का किशोरकाल और यौवनारंभ दुराचार में बीता। दो वर्षों बाद वे एम्स्टरडम में थे और यहीं डच इस्टइंडिय कंपनी में 'केटेलर' नाम से नौकरी में प्रविष्ट हुए। कंपनी में नाम-परिवर्तन कर नियुक्त होने के बाद उनके आचरण और व्यवहार में परिवर्तन आया। अब केटेलर का जीवन नया मोड़ लेता है और वे बदले हुए दीखते हैं।

१६८३ ई० में वे जहाज से बटेविया गया और वहाँ से क्लर्क बनाकर सूरत भेज दिए गए। उस समय वह यूरोपियन व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र था। और वहाँ एक डच फैक्ट्री स्थापित हो चुकी थी। १६८७ ई० में २० फ्लोरेंस मासिक वेतन पर वे ऐंथनी फोगल (Anthony Vogel) द्वारा असिस्टेंट (सहायक) नियुक्त कर लिए गए। ये सज्जन उस समय डच फैक्टरी के डिप्टी डाइरेक्टर और सीनियर मर्चेंट थे। सूरत में हिंदुस्तानी सौदागर विदेशियों से व्यापार के सिलसिले में बराबर मिलते-जुलते थे और हिंदुस्तानी

भाषा का प्रयोग करते थे। अतः जान पड़ता कि केटेलर ने सूरत आने पर हिंदुस्तानी सीखने के महत्त्व को समझ कर इसका अभ्यास आरंभ किया। हिंदुस्तानी उस समय भी अंतरप्रांतीय व्यवहार में विशेष कर व्यापार में चलती थी, अतः विदेश से आगत यूरोपियन इसे सीख कर हिंदुस्तानी सौदागरों और महाजनों से व्यापार-संबंध स्थापित कर लेते थे।

केटेलर ने अपनी योग्यता और कार्यदक्षता से अधिकारियों को प्रभावित किया और १७०० ई० में वे आगरा में स्थापित फैक्टरी के प्रधान (चीफ) और १७०१ ई० में 'जूनियर मर्चेंट' बना दिए गए। क्रमशः पदोन्नत होते हुए वे सूरत के डाइरेक्टर हो गए। १ अगस्त, १७११ ई० को वे वहाँ के दूतावास (एम्बेसी) के 'हेड' बनाए गए। वे राजदूत या एलची की हैसियत से शाहआलम बहादुर शाह से मिलने लाहौर गए, पर बादशाह की मृत्यु २८ फरवरी, १७१२ ई० को हो जाने के कारण उनसे मिलने के सौभाग्य से वंचित हो गए। पिता के स्थान पर जहाँदार शाह के गद्दीनशीन होने पर केटेलर का मिशन बादशाह से एक फरमान लेने में सफल हुआ। पर दुर्भाग्यवश वापसी यात्रा में गुजरात पहुँचने पर उन्हें जहाँदार शाह की हार की खबर मिली। १७१६ ई० में केटेलर एक मिशन लेकर फारस के राजदरबार में हाजिर हुआ। वहाँ से लौटने पर १२ मई, १७१६ ई० को बंदर अब्बास में केटेलर का निधन हो गया। वहाँ उसकी कब्र शहर के बाहर डच कब्रिस्तान में बनाई गई। हिंदुस्तानी ग्रामर के प्रथम यूरोपियन लेखक का यह घटनापूर्ण रोमांचक जीवन बड़ा रोचक है। शुरू की आवारागर्दी के बाद एक मामूली क्लर्क होकर जो विदेश में आया था, वह अपनी कर्म-कुशलता और व्यापार-दक्षता से बढ़ते-बढ़ते राजदूत तक बन गया। यहाँ उसने प्रचुर धन कमाया होगा, क्योंकि उसने अपने शहर एलबिंग के प्रोटेस्टेंट चर्च को एक बड़ी राशि दान में दी। एक चर्च में उसका तैल चित्र है। भरा चेहरा, खड़ी नाक और दृढ़ ठुड्ढी और उस जमाने के फेशन के अनुसार बड़ा विग उस चित्र में दिखाई देता है। 'एलबिंगा लिटेरा' नामक लैटिन पुस्तक में यह लिखता है कि केटेलर का भतीजा एक बृहत्काय ग्रंथ का मालिक हो गया था, जिसमें डच भाषा में केटेलर ने अपना चरित लिखा था। दुर्भाग्य से उन ग्रंथों का कहीं पता नहीं है।[१]

---

१. यह बिवरण फोगल के लेख के आधार पर प्रस्तुत है। देखिए—बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज, वाल्यूम ८।

केटेलर का व्याकरण

डा० जे० फ० फोगल, कर्न इंस्टीट्यूट, लीडन के अनुसार केटेलर का व्याकरण डच भाषा में ही लिखा गया था और उसकी मूलप्रति हेग के स्टेट रेकर्ड आफिस में सुरक्षित है। यह प्रति लखनऊ में १६९८ ई० में केटेलर के 'असिस्टेंट' (सहायक) ने तैयार की थी, जिसका नाम इसाक फानदूर हूफे था। मूल डच भाषा में लिखित यह व्याकरण, फोगल के लेखानुसार कभी प्रकाशित नहीं हुआ था। इस पुस्तक का नाम इस प्रकार है :

Instructive off onderwijsinge dor Hindoustanse en Persiannse talen, nevens here decimistro on conjugatic, alsmede verge loij kinge, dor hindons tense med do hollandse meet en geowing iten mets gaders, beduy dingh cehiger moorse namen etc. Door Joan Joshuna Keteiser, Elbigensem. En geoopieerst don Isaaq Van der Hoeve, Van Uytroght Tot Lecknuuw. A. D. 1698

फोगल ने इस प्रकार पुस्तक के नाम का अनुवाद किया है।

Instruction or Tuition in the Hindustani and Persian Language besides their declension and conjugation, together with a comparison of the Hindustani, with the Dutch weights and measures, likewise the significance of Sundry Moorish names etc. by John Joshua Ketelaar, Elbingsem. And Copied by Isac Vander. Hoeve of Utrecht At Lackeneuw.

A. D. 1698

इसका एक लैटिन अनुवाद १७४३ ई० में लीडेन से डेविड मिलियस या मिल ने प्रकाशित किया। वे उत्रेख्त विश्वविद्यालय में प्राचीन भाषाओं के प्रोफेसर थे। फोगल का अनुमान है कि वे ही इसके अनुवादक थे। इस प्रकार पुस्तक के विषय में सिजोर एमिल्पो तेत्सा ने जनवरी १८७५ ई० में एक निवंध रीयले स्काडीआ द लिंसी (Reale Accadima dei Lincci) के समक्ष पढ़ा था। इस प्रबंध पत्र (पेपर) का शीर्षक था 'Dei prime studi dette Lingue indostuche alle note de G. A. Grierierson. तेजा ने स्वयं लैटिन अनुवाद को देखा नहीं था और उनकी जानकारी का आधार बस वह संदर्भ था, जो १७४४ ई० में हाल से प्रकाशित शुल्जे के

हिंदुस्तानी ग्रामर के आमुख में है। ई० १८९३ के जे० एस० बी० में ग्रियर्सन का एक निबंध है : 'यूरोप में भारतीय देशभाषाओं का आरंभिक अध्ययन' इसमें इस व्याकरण का उल्लेख है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी को इस लैटिन अनुवाद की एक प्रति इंगलैंड में मिली थी। उनका अनुमान है कि न तो तेज़ा ने और न ग्रियर्सन ने ही इस पुस्तक को देखा था। उनके अनुसार उक्त पुस्तक में इस्लाम और यहूदी धर्मों के विवरण के अतिरिक्त हिंदुस्तानी और फारसी का व्याकरण भी दिया गया है। इसमें लैटिन हिंदुस्तानी-फारसी धातु या क्रियाओं और लैटिन-हिंदुस्तानी फारसी-अरबी शब्दावली और कुछ हिंदुस्तानी समनाम शब्दों की एक सूची भी है। ४५५ से ४८८ पेजों तक, लगभग ३२ पेजों में, वे लैटिन में हिंदुस्तानी व्याकरण लिखते हैं।

इस व्याकरण से अनेक उद्धरण देकर डा० चटर्जी ने द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ में एक लेख प्रकाशित कराया था।[2] इसकी भाषा की परीक्षा कर आपका यह मत है कि केटेलर का व्याकरण एक ऐसा दुष्प्राप्य अभिलेख है, जिसमें आरंभकाल के एक परिदर्शक ने भाषा का वह चालू रूप दिया है, जो उस समय तरल अवस्था में थी।....'यद्यपि इसमें कुछ स्पष्ट गलतियां और खामियां हैं, केटेलर का यह हिंदुस्तानी ग्रामर १८ वीं सदी के आरंभिक भाग में प्रचलित हिंदुस्तानी पर अच्छा पार्श्व प्रकाश डालता है, जबकि यह बोली, जिसमें स्वाभाविक रूप से कुछ प्राचीन लक्षण मिलते हैं, उस बाज़ार हिंदुस्तानी से अद्‌भुत साम्य है, जो उत्तर भारत के सभी नगरों और दक्षिण के अधिक नगरों में प्रचलित है।' यह विचार चटर्जी महोदय ने १९३१ में व्यक्त किया था। पर बाद में डा० फोगल से उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वस्तुतः यह पुस्तक १६९८ ई० में ही डच में लिखी गई थी। अतः यह हिंदुस्तानी वास्तव में १७ वीं सदी की, सूरत, आगरा, लखनऊ आदि शहरों की बोलचाल की हिंदुस्तानी है। डा० फोगल का कथन है कि ऐसी स्थिति का व्यक्ति केवल बाज़ार से या निम्न श्रेणी के जनों से ही हिंदुस्तानी नहीं जानता था, उन्हें कंपनी के दलालों और वकीलों से भी काम पड़ता था, जो कंपनी के व्यापार के प्रमुख अंग थे। राजदूतावास (एम्बेसी) के कागजों में यह उल्लेख है

---

१. अर्ली स्टडीज आफ इंडियन वर्नाक्यूलर्स इन यूरोप—जे० ए० एस० बी०, १८९३ ई०, पार्ट १।

२. द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ— पृष्ठ १९४-२०३।

कि केटेलर ने अमीर-उल-उमरा जुलफिकर खाँ से हिंदुस्तानी में ही बातें की थीं और उसके सहायक (डेपुटी) रोजियर बुरनर्द से फारसी में बातचीत की। अमानत खाँ से भी उसका मित्र भाव था। यह अमानत खाँ पहले गुजरात का और बाद में मालवे का सूबेदार था। फोगल के विचार में इस पुस्तक की भाषा बाजार की हिंदुस्तानी नहीं है।[1]

केटेलर के व्याकरण में हिंदुस्तानी का जो रूप मिलता है, वह सूरत के आसपास की हिंदुस्तानी या दक्खिनी जान पड़ती है। वह रूप केवल बाजार में या सौदागरों के बीच में ही प्रचलित नहीं था, बल्कि हिंदुस्तानी का वही रूप उस समय के दक्खिनी के साहित्य में भी मिलता है।

१७ वीं सदी के पास की एक रचना कुलजमस्वरूप की भाषा देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदुस्तानी में सर्वनामों और क्रियारूपों में अनेकरूपता थी और इसलिए सभी रूप जनता में प्रचलित थे। हिंदुस्तानी का रूप तो १८५० ई० तक काफी अव्यवस्थित था। उसे व्याकरणिक नियमों में तब बांधा गया जब शिष्ट समाज में, स्कूलों के शिक्षाक्रम में उसे स्थान मिला। अतः १६९८ ई० के पूर्व हिंदुस्तानी का जो रूप इस व्याकरण में मिलता है, वह जन-हिंदुस्तानी का रूप है, तथा काव्य में स्वीकृत रूप है। उसकी तुलना आज कि हिंदुस्तानी (खड़ी बोली) से करने पर अवश्य ही वह भोंढे ढंग की लगती है।

इस पुस्तक का काफी विस्तृत परिचय डा० चटर्जी ने द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ (पृष्ठ १९४-२०३) में दिया गया है। इसके आधार पर नीचे हम इसका विवरण प्रस्तुत करते हैं।

---

१. बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरियंटल स्टडीज, जिल्द ८ में जे० पी-एच फोगल का लेख।

यह पुस्तक रोमन लिपि में है और नागरी अक्षरों प्रत्यक्षर डच उच्चारण के अनुसार है।

	अं ang	अः=gha			
	क=ka	ष (=ख) kha	ग=ka	घ = dgja	ङ=nia
च	tgja	छ tscha	ज dhea	झ dgja	nia
ट	tha	ठ tscha	ड dha	ढ dhgja	ण nha
त	ta	थ tha	द dha	ध dh	न na
प	pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य	ja	र ra	ल la	व wa	
श	sjang	ष kcho	स ssa	ह ha	
ल	lang	क्ष kcha			

इससे यह स्पष्ट है कि उस समय के यूरोपियन को नागरी ध्वनियों की श्रुति को अपनी लिपि में व्यक्त करने में कठिनाई हुई थी। पुस्तक के अंदर प्राय: सरल रोमन स्पेलिंग का व्यवहार हुआ है। डचों के लिए हिंदी के महाप्राण अक्षरों की ध्वनि को व्यक्त करना विशेष रूप में कठिन था। ऊपर की वर्णमाला से यह ज्ञात होता है कि क औ ष के उच्चारण-भेद को समझना कठिन था। ख के स्थान पर ष का दिया जाना यह सिद्ध करता है कि ष का जन-उच्चारण ख अधिक प्रचलित था। ङ और न में भेद नहीं किया गया, दोनों का समान प्रत्यक्षर nia देखिए। घ, च, छ, ज, झ को चार रोमन अक्षरों से दिखाया गया है। ठ, ढ, श, स, ल (परवर्ती) और क्ष का रोमन-प्रत्यक्षर भी जटिल है।

नीचे 'वेटा' और बुढ़िया के शब्द रूप दिए गए हैं। हमने नागरी लिपि में ही ये रूप दिए हैं।

कर्त्ता — वेटा	वेटे
संवध—वेटा का	वेटों का
सम्प्रदान—वेटा कों	वेटों को
कर्म— ,,	,,
संवोधन—ऐ वेटा	ऐ वेटे
अपादान—वेटा से	वेटे से

इस शब्द रूप में विशेषता यह है :

(१) कारकों का क्रम प्रचलित क्रम से भिन्न है। कर्त्ता के बाद संबंध, संप्रदान के बाद कर्म और संबोधन के बाद अपादान कारक के रूप दिए गए हैं। करण और अपादान दोनों की विभक्ति से है—क्या इसीलिए करण पर विचार नहीं किया गया है ? संप्रदान और कर्म को साथ रखने का कारण कदाचित् यह है कि दोनों की विभक्ति Kon (कों) बताया गया है। श्री चटर्जी इस Kon को 'कों' पढते हैं, हम इसे 'कूं' पढ़ने के पक्ष में हैं। कूं रूप दक्खिन में खूब चलता है और उस समय उत्तर की हिंदुस्तानी में भी यही मिलता है।

केटेलर ने हिंदुस्तानी के दो रूप बताए हैं—एक (पटनिया या पटनाई) और दूसरा (दक्खिनी) उत्तर भारत में हिंदुस्तानी के पटनिया रूप को महत्त्व देने का क्या कारण है, यह समझ में नहीं आता। इतिहास से यह ज्ञात है कि पटना में उस समय एक डच फैक्टरी थी। केटेलर ने वहाँ कुछ दिन रह कर हिंदुस्तानी का वह रूप सीखा था यह वहाँ बसे किसी दूसरे डच में उसे यह रूप सिखाया था ?

इसी प्रकार बुढ़िया के रूप नीचे दिए जाते हैं :

कर्त्ता	बुढ़िया	बुढ़ियों
संबंध	बुढ़िया का	बुढ़ियों का
सं०	बुढ़ियाँ कूं	बुढियां कूं
कर्म	,, ,,	
संबो०	ए बुढ़िया	ए बुढ़िऐ
अपा०	बुढ़िया से	बुढ़ियों
	आदमी	
क०	आदमी	आदमिओं[१]
संबंध	आदमी का के	आदमिओं का
संप्र-कर्म	आदमी कूं	आदमियों कूं

१. चटर्जी ने admion की आदमओं पढ़ा है, पर मेरे मत में यह आदमियों पढ़ा जाना चाहिए।

संबोधन	आदमी	ए आदमियो
अपादान	आदमी से	आदमिओं से

संबंध में प्राय: 'का' रूप ही दिया गया है। की और के का उल्लेख नहीं है। केवल आदमी के संबंध के एक वचन में 'आदमी का, के' दोनों दिया गया है।

सर्वनाम

IV	me	में	hem	हम
G	mere	मेरे	apre	अपने
D	Mukon	मुकों, मोको	hamkon	हमको
AC	Mere	मेरा	hammare	हमारे
V	ame	ए में	cham	ए हम
Ab	mese	में से	hamse	हम से
N	whe	वह	inne	इन
G	isseka	इसका	inneke	इनके
D	issekon	इसकूं	innekon	इनकूं
Ac	whe	वह	inneka	इनका
V	a who	ए वह	einne	ए इन
Ab	isse	इससे	vinesse	इनसे
N	too	तू	tom	तुम
G	teero	तेरो	tammare	तुम्हारे
D	terre kon	तेरे कूं		तुमकूं
Ac	terra	तेरा		तुम्हारे
Ve	too	ए तू	e tom	ए तुम
Ab	toose	तू से	tomse	तुमसे

प्रश्नसूचक सर्वनाम : क्या, क्यों, कौन

इनके प्रयोग इस प्रकार बताए गए हैं :

कौन है, कौन है उधर, कौन दौड़ता, कौन बोलता।

खवर क्या चाहता

क्यों नहीं क्यों

किस वास्ते

किता

तुम और तू का प्रयोग :
तुम साहब है
तुम मेरा साहब है ।
तू चाकर है
तू मेरा गुलाम है ।

कहीं है hai लिखा है और कहीं he

विशेषण में तारतम्य का भाव दिखलाने के लिए ये प्रयोग दिखलाए गए हैं ।

काला : इस सू काला । Issoe को चटर्जी इस सू पढ़ते हैं । यह इससे या
इस सूं हो सकता है । दक्खिनी में ऐसा प्रयोग मिलता है ।

कड़आ : इससे या इससूं कड़वा
सबसे कड़वा ।

कर्तृवाचक प्रत्यय :

दारची, वाला, दाज़ वताए गए हैं ।

दार : कर्ज—कर्जदार, चौकी—चौकीदार, खिदमत--खिदमदार ची–तोप-तोपची, वंदूक-वंदूकची

वाला-पत्थर-पत्थरवाला

दाज् तीर—तीरंदाज

स्त्री प्रत्यय : इन प्रत्यय

धोवी-धोविन; माली—मालिन, मोची—मोचिन

आदरार्थ में 'जीव' शब्द का प्रयोग । इस जीव से 'जी' निकला है । बाप जीव, साहब जीव, वहन जीव, दोस्त जीव ।

'हो' के रूप :

इसके रूप शुद्ध नहीं जान पड़ते । रोमन रूपों को शुद्ध रूप में पढ़ना कठिन है ।

Me he में है :	Ham hoe हो (चटर्जी hoe को हू पढ़ते हैं । मैं इसे हो पढ़ने के पक्ष में हूँ ।
तू है	तुम हो
वह है	इन हो

भूत।

मैं हुआ	हम हुए
तू हुआ	तुम हुए
वह हुआ	इन हुए

अनद्यतन भूत

मैं तू वह हुआ था

हम तुम इन हुए थे।

पूर्ण भूत

मैं, तू, वह, हो गया

हम, तुम इन, हो गए

भविष्यत	ए० व०	ब० व०
तीनों पुरुषों		
पहला रूप	हूंगा	हूँगे
दूसरा रूर	होऊँगा	होंवेगे

अनुज्ञा :

तू रह, तुम रहो।

असमापिका क्रिया

हुआ—हुए

करना धातु के रूप :

वर्तमान	करता :	ब० व० करते
अपूर्ण भूत	करता था,	करते थे
पूर्ण भूत	कर चुका,	कर चुके
,,	द्वितीय रूप किया	किए
	किया था	किए थे
भविष्य	करूँगा	करूँगे
,, द्वितीय	करेंगे	करेंगे

इस पुस्तक के रोमन लिप्यंतरण को पढ़ना कितना कठिन है, यह नीचे दिए उदाहरण से स्पष्ट होगा। डच भाषा में नागरी अक्षरों के लिखने में कितनी कठिनाई है, यह इस अवतरण से स्पष्ट हो जाएगी।

Dejoe make din tom jeet oor saaf racke tsjae din tom kam oor tommare gesmet karro, wasteke saatme din he godda

salub tammare allaka tod tom mat kam karro, tom our tommare beetha, oor tommare boothi, oor tommare londi, oor tommare dsan anwer, oor tommare mosaffer, we tommare derweesjae me he, waste tsjee dim me godda usman, our sjimien beaase, derri oor safek ender he, our sustaie Sattme din, is waste Sahab Saffa rackte, oor inne Seat Karte.

'जुम्मा का दिन तुम याद और साफ राखे (रखो) छे दिन तुम काम और तुम्हारे खेजमत (खिजमत) करो, वास्ते कि (के) सातमी (सातमें) दिन है खुदा तुम्हारे अल्लाह (अल्ला) का, तद तुम मत काम करो, तुम और तुम्हारे बेटा और, तुम्हारी बेटी, और तुम्हारी लौंडी, और तुम्हारे जनावर और तुम्हारे मुसाफिर (मोसाफिर) वह (वे) तुम्हारे दरवाजा में है, वास्ते छे दिन में खुदा आसमान और जमीं (जिमीं) बनाया (बनाये) दर्वा (दरियाव) और सबके अन्दर है, और सुस्ताई (सुस्ताये) सातमी (सातमें) दिन, इस वास्ते साहब साफा (सफा) रखते और इन्हें साथ करते।'

ऊपर हमने चटर्जी का पाठ दिया है। कोष्ठ के अन्दर जो पाठ है, वह मेरा सुझाव है। स्वर और मात्रा का एक निश्चित चिह्न इस डच रोमन में नहीं होने से कठिनाई है। आरंभ में जो नागरी अक्षरों के प्रत्यक्षर दिए गए हैं उन्हें भी सर्वत्र माना नहीं माना गया है। व्याकरण में अपने ढंग से सरल रोमन स्पेलिंग दिया गया है। नहीं तो चटर्जी ने ठीक ही लिखा है— 'व्याकरण में सरल रोमन स्पेलिंग ही काम में लाया गया है, नहीं तो व्याकरण के हिंदी शब्दों को पढ़ना लोहे के चने चबाना हो जाता।'

इस डच रोमन अवतरण के अनुसार नागरी लिखने की रीति पर प्रकाश पड़ता है।

ज	dsj, sj	ट	th
द	d	स	s
क	k	फ	f, ft
म	m	र	r, rr
स	s	ल	l
ख	ck		
छ	tsj		

व	w				
ख	g				
ज	aji				
त	t				
ड	d				
अ	e	अन्दर	ender	दरवाजा	derwaisjae
आ	a	काम	kam aa	साफ	saaf, saatme
उ	eo				
इ	i				
ओ	o	करो	karro		
औ	oo	और	oor		
ए	e	रखे	rachke ee	बेटी	beathi
ऐ	e	है	he		
ओ	oe	मोसाफिर	moessaffer		
ई	ie	जिमीन	sjimien i	बेटी	beathi

डा० चटर्जी ने इसकी भाषा की परीक्षा कर अपना यह मत दिया है कि 'वह शुद्ध खड़ी बोली नहीं, बाजारू बोली है—और विशेषतया बम्बई, सूरत आदि दक्षिणी भू-भाग के ढंग की बाजारू हिंदुस्तानी है।'

इस व्याकरण में एक शब्द-सूची दी गई है, जिसमें लैटिन हिंदुस्तानी और फारसी के पर्याय दिए गए हैं। फारसी मुगल दरबार की भाषा थी, अतः उस समय आए हुए यूरोपियन इस भाषा में योग्यता पाना चाहते थे। इस फारसी भाषा के ज्ञान से यूरोपियन यात्री और व्यापारी फारस और हिंदुस्तान तथा कुछ अन्य मुस्लिम देशों से भी संबंध रख सकते थे। लैटिन यूरोप की शिष्ट भाषा थी और वह वहाँ के सब देशों में समझी जाती थी। अतः लैटिन की शब्दावली का हिंदुस्तानी पर्याय देने से उस पुस्तक से सभी लाभ उठा सकते हैं। लैटिन के विद्वत् समाज में आदर होने के कारण ही इस पुस्तक का लैटिन में अनुवाद किया गया था। इसके द्वारा हिंदुस्तान आने के पहले ही यूरोप वासी इस भाषा का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यही इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपयोगिता थी।

इस प्रत्यक्षरी का भी पालन सर्वत्र नहीं किया गया। अतः बहुत-से शब्दों में मनमाने ढंग से स्पेलिंग दिया गया है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

haser	हाजिर	hazar	हजार
noon	नून	oen	ऊन
sjoor	जोर	soor	शोर
kaam	काम	kam	कम

यहाँ कहीं s से ज़ और कहीं z से ज, कहीं जोर का ज sj से और श s से दिखलाया है, कहीं आकार aa से और कहीं केवल a से लिखा गया है। यह अनेकरूपता इस व्याकरण का एक बड़ा दोष है। जहाँ नागरी के रोमन प्रत्यक्षर दिए गए हैं, वहाँ ज को dhea माना गया है पर जोर में sj ज के लिए आया है। श का वहाँ sjang बताया गया है पर शोर में श केवल s से लिखा गया है। इजलिए डा० चटर्जी ने यह लिखा है कि व्याकरण में सरल रोमन स्पेलिंग ही काम में लाया गया है।

२. बेनजामिन शुल्जे (१६८९ ई०-१७६०)

शुल्जे का जन्म सोनेनवर्ग में १६८९ ई० में हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा हाल में हुई थी। २० मार्च, १७१९ ई० को उन्होंने जहाज़ से देश छोड़ा और २५ जुलाई, १७१९ ई० को मद्रास पहुँचे। १७२० ई० में पादरी की दीक्षा ली और १७२८ ई० में उन्होंने मद्रास मिशन स्थापित किया। कई वर्षों तक वे दक्षिण में ईसाई धर्म का प्रचार करते रहे। यहाँ उन्होंने हिंदुस्तानी ग्रामर लिखा। १७४३ ई० में वे अपने देश को लौट गए। वहाँ हाले में २५ नवम्बर, १७६० ई० में उनकी मृत्यु हुई। इनकी पुस्तक से ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने दक्खिन में रहते हुए वहाँ बोलचाल में प्रचलित हिंदुस्तानी सीखी और उसी के आधार पर अपना व्याकरण लिखा।

ज़ीगन बाल्ग 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' का अपूर्ण अनुवाद छोड़कर गए थे, शुल्जे इसे पूरा करने में लग गए। जीगन बाल्ग और प्लटशान दोनों ही हाल

विश्वविद्यालय के छात्र थे और यहाँ मिशनरी के रूप में ईसाई धर्म प्रचारार्थ आए थे।

आपका लिखा 'ग्रामेटिका' हिंदुस्तानिका' हिंदुस्तानी का पहला लैटिन व्याकरण है। इसका परिचय हम आगे दे रहे हैं।

ग्रैमेटिका हिंदोस्तानिका

इस ग्रामर की एक विशेषता यह है कि इसमें देवनागरी वर्णमाला मुद्रित है। इसके वर्णों का रूप कैथी के कुछ निकट है। इससे यह ज्ञात होता है कि १७४१ ई० तक कई वर्णों के रूप भिन्न थे।

अँग्रेजों के आने के पूर्व नागरी के लोक प्रचलित रूप का इससे ज्ञान होता है।

इस पुस्तक में हिंदी की ध्वनियों का प्रतिनिधित्व जिन रोमन अक्षरों से हुआ है, वे बहुत भिन्न हैं। इसका प्रमुख कारण डच उच्चारण जान पड़ता है अल्पप्राण-महाप्राण का भेद रोमन में नहीं किया गया है। ङ, च, छ, ज, झ, श, ष, स के रोमन रूप को देखें।

इसलिए रोमन में लिखे शब्दों को पढ़ना कठिन हो जाता है। चूँकि इन शब्दों को उर्दू लिपि में भी दिया गया है, अतः उनके सहारे ही उनको पढ़ने में सुविधा होती है।

कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सूरज Suritch चाँद Schand गर्मी Germi
नदी Naddi थंडा tanda

इस व्याकरण से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है।

शब्द रूप पुं० आदमी और घर

	एकवचन		बहुवचन	
कर्त्ता	आदमी	आदमी	घर	घर
संबंध	,,	आदमियों	,,	घरों
संप्रदान	,,	,,	,,	,,
कर्म	,,	आदमी	,,	घर

वह पुस्तक १७४५ ई० में प्रकाशित है। आमुख १७४१ ई० का है, जिस पर बेनजामिन शुल्जे का हस्ताक्षर है।

सम्बोधन	ए आदमी	ए आदमियों	ए घर	ए घर
अपादान	आदमी	,,	घर	घरों

स्त्रीलिंग	आंख	
कर्त्ता	आंख	आखें
संवंध	,,	आंखों
सम्प्रदान	,,	,,
कर्म	,,	आखों
सम्बोधन	ए आंख	ए आंखों
अपादान	आंख	आंखों

शब्द रूप देने में लेखक ने कारक-क्रम भिन्न प्रकार से रखा है। कर्त्ता, संवंध, संप्रदान कर्म, संबोधन, अपादान—इस क्रम से लेखक ने जो कारक-क्रम रखा है, वह लेखक ने कहाँ से सीखा ? इससे क्या सुविधा होती है ? करण और अधिकरण को क्यों स्थान नहीं दिया गया ? इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है। इस प्रसंग में सर्वनाम के रूपों को दिया जाता है, जिनसे कारक-विभक्तियों का भी ज्ञान होता है।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	ये, इनने	ये, इन्होंने
संवंध	इसका की के	इन्हों का की के
संप्रदान	इस, को कू	इन्हों को, कू
कर्म	इस, को, कू	इन्होंने, को कू
अपादान	इस से सूँ	इन्होंने से सूँ

विशेष—

यहाँ संबोधन कारक नहीं दिया गया। सर्वनाम में संबोधन नहीं चलता। अत: उस समय मुख्य कारक कर्त्ता, संबंध, संप्रदान, कर्म और अपादान को ही माना गया। करण को कदाचित् न देने का कारण यह है कि अपादान और करण दोनों की विभक्ति समान है। यह और इसका बहुवचन आज कल ये और इन बताया जाता है। पर 'ये, इतने' यहाँ दिया गया है। इन, ये शिष्ट प्रयोग बोलचाल में अब भी मिलते हैं। 'यह' के स्थान पर भी यहाँ 'ये' ही दिया गया है। 'इन्होंने' को बहुवचन बताया गया है तथा 'इनने' को

एकवचन। पर आजकल इनने बोलचाल में ही चलता है, लिखित भाषा में इन्होंने एकवचन में शिष्टजन के लिए आता है।

इन्हों का, इन्हों को, इन्हों से रूपों के स्थान पर अब इनका, इनको, इनसे आदि चलते हैं। बहुवाचकता स्पष्ट सूचित करने के लिए आज काल 'लोग' का प्रचलन बढ़ गया है। इन लोगों ने, इन लोगों को, इन लोगों से, इन लोगों का के स्थान पर पहले इन्होंने, इन्होंने को, इन्हों से, इन्हों का चलता था— इस व्याकरण से ज्ञात होता है।

विभक्तियों के संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि 'से' के साथ 'सूं' और 'को' के साथ 'कूं' का वैकल्पिक प्रचलन था। 'सूं' 'कूं' रूप दक्खिनी में बहुत दिनों बाद तक की रचनाओं में है। हैदराबाद की बोली में 'सूं' 'कूं' ही अधिक चलते हैं।

नीचे दिए वाक्यों में इन विभक्तियों के प्रयोग को देखें :—रेखांकित शब्दों पर ध्यान दें।

'इ' नादान मुझकूं खरावी ऊ वा करता पन खूदी करता नहीं ऐ चोर पंडित दगा देता है पन और कुछ काम करता नहीं गुनहगारा अपनी गुनाह नहीं छोड़ देता नेकबख्ती उन्हीं को आने का नहीं। तुम्हे हमन के तालीम कुं परे है सो वास्ते तुमकूं अकल ज्यादा है।'

यह का रूप हमने दिया है। वह का भी उसी के अनुरूप है।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	वह, उन्ह	वे, उन्होंने
सम्ब०	उस	उन्हों
संप्र०	उस	उन्हों
कर्म	उस	उन्हों
अपा०	उस	उन्हों

	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	इन	इन्हों	उन	उन्हों	किन	किहों
संबंध	इनका	इन्हों का	उनका	उन्हों का	किनका	किन्हों का
संप्र०	इनकूं	इन्हों कूं	उन कूं	उन्हों कूं	किन कूं	किन्हों कूं
कर्म	इनकूं	इन्हों कूं	उनकूं	उन्हों कूं	किनकं	किनों कूं

अपा०	इनमें	इन्ह में	उनमें	उन्हों में	किनमें	किहीं में

कर्त्ता	कि	कोई
संबंध	किसका (क)	कोई का (की)
संम्प्र०	किसकूं किसे	कोई कूं
कर्म	किसकूं किसे	कोई कूं
	किसमें	कोई में

विशेष :

किसकूं दक्खिनी में चलता रहा, उत्तर में दिल्ली में किसे रूप शिष्ट माना गया।

निम्नांकित प्रयोगों को देखें :

करके का, करने कूं, करने में, करने के, करने वास्ते

क्रिया :

आता के स्थान पर आवता है।

प्र० आवता हूँ : आवती है ए० व०, आवतियाँ है ब० व०

स्त्री० आवती हूँ : आवते हैं व० व०

विशेष :

आता रूप शिष्ट माना गया है। आवता बोलचाल में पंडितों के बीच अब भी कभी-कभी सुना जाता है, पर उस समय काफी चलता होगा।

आवती है : आवतियाँ है।

इस आवतियों को इंशा अल्ला खाँ की भाषा में हम आतियाँ जातियाँ आतियाँ के रूप में देखते हैं।

इसमें होना क्रिया के अनेक रूप कारक-भेद और काल भेद से मिलते हैं।

होना–होनी, होने का–होने की, होता, होती, होने का होवा–होती, हुआ-हुई, हुवा-हुई।

इस पुस्तक में हिंदुस्तानी शब्दों की कई वर्गीकृत सूचियाँ भी दी गई है। ये प्राय: ऐसे बोलचाल के शब्द है, जो उर्दू में चलते हैं।

वर्तमान काल :

१. मैं हूँ	हम है	२. मैं होता हूँ	३. मैं होतो, होता
तू है	तुम हो	होती हूँ	तू होता, तू होती
वह है	वे हैं।	तू होता है	तू होती
		तू होती है	
		तू होता	
		तू होती	

भूतकाल :

एकवचन	बहुवचन
मैं था—थी	हम थे (थी)
तू था—थी	तुम थे (थी)
वह था—थी	वे थे (थी)

एकवचन		बहुवचन	
मैं हुआ था	(हुई थी)	हम हुए थे	(हुई थी)
तू हुआ था	(हुइ थी)	तुम हुए थे	(हुई थी)
वह हुआ था	(हुई थी)	वे हुई थी	(हुई थी)

संदिग्ध भूत :

मैं होता	(होती)	हम होते (होती)
तू होता	(होती)	तुम होते
वह होता	(होती)	वे होते

भविष्य :

मैं रहूँगा	(होंगी)	हम होवेंगे
तू होवेगा	(होवेंगी)	तुम होगे
वह होवेगा	(होवेगी)	वे होवेंगे

एकवचन	मैं हुवा, तू हुए, वह हुए
बहुवचन	हम हुवे, तुम हुए, वे हुए

विशेष

कहीं लेखक ने वहुवचन रूपों में अनुस्वार दिया है और कहीं नहीं। ज्ञान पड़ता है कि यह लेखन-प्रमाद है अथवा हिंदुस्तानी उच्चारण को ठीक पकड़

न पाने के कारण है। रोमन लिपि में हिंदुस्तानी लिखने में भी एकरूपता या कोई निश्चित रीति न होने के कारण कहीं-कहीं भ्रांति होती है।

हिंदी के १७ वीं सदी के रूपों को हम बोलचाल में प्रचलित रूप मानते हैं। हैलहेड ने अपने समय में इसी व्याकरण को अच्छा बताया था। वे बंगला ग्रामर में हिंदुस्तानी के प्रसंग में इसकी चर्चा करते हुए लिखते हैं—

इस भाषा पर एक पादरी ने लैटिन में एक पुस्तक परिश्रम से लिखी है। 'वह आदि लेखक हैं और इस विषय पर एक मात्र लेखक हैं, चूँकि दूसरी परवर्ती रचनाएँ नामोल्लेख्य नहीं है।'

पुनः हैलहड लिखते है–'हिंदुस्तान में आने पर यूरोपियन को जब मुसलमान नौकरों और सिपाहियों से बात करने की लाचारी होती है, तब वे अकसर इसी भाषा को सीख लेते हैं, जिसका फल यह होता है कि वे इस भाषा को अपरिमार्जित और संकीर्ण रूप में ही सीख लेते हैं।'

जान पडता है कि प्राय: यही स्थिति उस समय भी थी, जब शुल्जे ने अपना व्याकरण लिखा था। विदेशी प्रायः साधारण श्रेणी के मुसलमानों के संपर्क में आते थे और वे दक्खिन में हिंदुस्तानी का यही रूप पाते थे।

दक्खिनी भाषा

हिंदी बोलचाल के रूप में दिल्ली के पास-पड़ोस की भाषा थी। इस भाषा का क्षेत्र विद्वानों के अनुसार दिल्ली-मेरठ-बिजनौर का इलाका है। ऐसा जान पड़ता है कि इस क्षेत्र के मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में विंधाटवी को को पार कर तुंगभद्रा और कृष्णा के बीच में बस गए। इतिहास से मुहम्मद तुगलक के दिल्ली से दौलताबाद में राजधानी को हटाने का पता चलता है। हो सकता कि उसी समय के आस-पास मुसलमान उत्तर भारत से अपनी हिंदी या हिंदवी लेकर उस भाग में पहुँचे हुए हों, जहाँ बहमनी, बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर और औरंगाबाद मुसलमानी राज्य कायम हुए। जो मुसलमान वहाँ जाकर बस गए वे 'मुल्की' कहलाते थे और जो बाद में उत्तर से जाते थे, उन्हें वहाँ वाले 'गैरमुल्की' कहते थे। जान पड़ता था कि विंध्याचल पहाड़ सरहद का काम कर रहा था, मानो उसने हिंद को दो हिस्सों में-उत्तर और दक्खिन में-बाँट दिया था। प्राचीन काल में संस्कृत में दक्षिणापथ और उत्तरापथ ये दो भाग स्वीकृत थे। मुसलमानों द्वारा ही देहलवी जबान दक्खिन में पहुँची थी। हैदरबाद राज्य दखिन (डेकैन) नाम

से अंग्रेजों के राज्य में भी प्रसिद्ध था। अंग्रेजों ने और दूसरे यूरोपियनों ने हिंदुस्तानी के दक्खिनी रूप को ही सुनने का अवसर सूरत, बंबई, गुजरात और हैदराबाद में हुआ होगा। अतः उन्होंने वहाँ प्रचलित हिंदुस्तानी रूप का व्याकरण लिखा।

ऐसी अवस्था में हमें शुल्जे या कैटेलर के हिंदुस्तानी ग्रामरों को इसी पृष्ठभूमि में देखना चाहिए। जिस हिंदुस्तानी के उदाहरण उनमें मिलते हैं, वे दिल्ली के पास-पड़ोस के शिष्ट जनों की हिंदी या हिंदवी नहीं थी, वह दक्खिन में ऐसे सामान्य मुसलमानों की, जो फारसी नहीं जानते थे, बोलचाल की जबान थी। इसमें सरल तद्भव शब्द भी ग्रहीत थे। इस भाषा को कभी-कभी 'गूजरी' भी कहते थे। इसका सही नाम 'दक्खिनी' ही होना चाहिए।[1]

हिंदी के इस रूप से अवश्य ही देहलवी ज़बान मिलती-जुलती है। जब उत्तर भारत में हिंदी परिष्कृत और परिमार्जित की गई, तब दक्खिनी की विभक्तियों और प्रत्ययों में कुछ को उर्दू में छोड़ दिया गया और कुछ को ही साहित्यक उर्दू में ग्रहण किया गया, पर पहले छोड़े हुए रूप उत्तर भारत में भी चलते थे, इसका प्रमाण आरंभिक हिंदी या उर्दू गद्य-पद्य से और आज भी अशिक्षित मुसलमानों की बोलचाल की जबान से दिए जा सकते हैं।

दक्खिनी में सर्वनामों और विभक्तियों के रूप देकर हम यह दिखलाते हैं कि उक्त ग्रामर के रूप उस समय चलते थे।

---

१. दक्खिन की इस बोली को कभी हिंदी, कभी हिंदवी, कभी दक्खिनी और कभी गूजरी भी दक्खिन के मुसलमान कवियों ने कहा है। (मैं इसको दर हिंदी जबान इस वास्ते कहने लगा-इरशाद नामा १५८४ ई० ।)

जो फारसी समझे नहीं समझे इसे दिल खोल कर।
'हिंदी बोलों किया बखान। जेकर परसाद या मूँझ व्यान'
शाह बुरहानुद्दीन जानम
नज्म लिखी मौजू जान। या मैं सब हिंदवी कर आसान।
दखिन में जो दखिनी मीठी बात का
अदा मैं किया इस घात का।—वजही १६३८ ई०
यह सब गूजरी किय जबान। शाह बुरहानुद्दीन।
(हिंदी साहित्य द्वितीय खंड पर उद्धृत पृष्ठ ५४७)

जिनने—('जिसने' के स्थान पर 'जिनने' आदरार्थक था)

'मैं आशिक उस पीव का जिनने मुझं जीव दिया है।'

कूँ—'ओजीव मेरे जीव का जो कुकां लिया है'

ऐसी मीठी माशूक कूँ कोई क्यों न देखने पाए।

जिनने देखे उसे उसी कूँ और न कोई भावे'

वंदानेवाज १३४६-१४२३ ई०

को—सबही को केरी खान, ना मोतियों केरी आन।

जो होवेगा मुद्दारा, कुछ जानेगा विचारा।

तूँ (तू के स्थान पर)

ऐ सुमान तू मुझे ग्यान में देखौ तुझकूं पहचान

सूँ—'मजहब' हमारा सूफिया हौर (और) मशरफ हमारा दोय है तो दिल में आया कि बयान करूँ हर दो कौम के सूफियाँ का दखिनी जबान सूँ।

सो—(स के स्थान पर)

कहा इश्क ने तब इसे झाड़ कर।

के हे गुल चली तू किधर का किधर

तुझ असल में आप खाने सों काम।

न पेड़ों के गिनने सों रखना है काम।

तुझ, मुझ, का प्रयोग भी दक्खिनी में तुझे मुझ के स्थान पर आम बात है।

दक्खिनी में सर्वनाम कई रूपों में मिलते हैं। महाप्राण का अल्पप्राण में विकल्प से परिवर्तन भी होता है।

हमन, तुमन, तुज, मुज, जिता जिती—ये रूप खड़ी बोली क्षेत्र में बोल-चाल में अब भी चलते हैं।

क्रिया में आवना-जावना (आन-जाना के स्थान पर) चलते हैं।

विभक्तियों में करण के अनेक रूप थे—सों ते, से, से ती, सें ती आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं शुल्जे की इस पुस्तक में हिंदुस्तानी का 'जन हिंदी' रूप ही स्वीकृत है, जिसमें दक्खिनी के प्रयोग भी ग्रहीत हुए है।

३. हेरासिम लेबेडेफ का व्याकरण

यूरोप में भारतीय विद्याओं के अध्ययन-अनुशीलन के आरंभिक इतिहास में लेबेडेफ का नाम आता है, जिसका 'शुद्ध और मिश्र पूर्व भारतीय भाषाओं का व्याकरण' (ग्रामर आफ द प्योर ऐंड मिक्स्ड ईस्ट इंडियन डायलेक्ट्स—लंदन), १८०१ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने इसे ईस्ट इंडियन कंपनी को समर्पित किया था।[१]

इस व्यक्ति की जीवन-कथा भी बहुत रोचक है। लेबेडेफ को बहुत साधारण शिक्षा मिली थी। १५ वर्षों तक वह केवल अपनी मातृभाषा लिखना-पढ़ना जानता था। इसके अतिरिक्त यदि वह कुछ जानता था तो वह था संगीत। पर उसमें दुनिया को देखने और जानने की बड़ी इच्छा थी, जिससे प्रेरित होकर वह देशाटन के लिए निकल पड़ा। बड़े लोगों से सिफारिशी चिट्ठियाँ लेकर वह १७८५ ई० में मद्रास आया। वहाँ दो साल ठहरा। मद्रास में यूरोपियनों की मदद से रोटी-रोजी की कठिनाई नहीं हुई। पर वह मद्रास से कलकत्ता जाने को बेचैन था। अंत में १७८७ ई० में वह कलकत्ता पहुँचा और शीघ्र ही यूरोपियनों के बीच आने में निपुणता के बल पर संगीत-प्रेमियों का कृपापात्र बन गया। अपने संगीत-प्रदर्शनों के कारण कलकत्ते के यूरोपियन समाज में उसकी ख्याति बढ़ती गयी। यहाँ उसे ब्राह्मणों की भाषा और लिपि सीखने का चाव हुआ और उसने कुछ पंडितों को गुरु बनाकर उसने ब्राह्मणों की वर्णमाला, कोश, व्याकरण, गणित, पंचांग आदि का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया। संगीत द्वारा जीविका-निर्वाह करते हुए बँगला, हिंदुस्तान की सामान्य मिश्र भाषा (हिंदुस्तानी) और थोड़ी संस्कृत भी सीखी। बंगला नाटकों के इतिहास में उसका योग महत्त्वपूर्ण है। उसने बँगला में अंग्रेजी की कई 'कामेडियों' का अनुवाद कर अभिनय किया। आरंभ में वह बहुत सफल हुआ, पर उसकी बढ़ती हुई कीर्ति और आय देखकर ईर्ष्या करने वाले कुचक्र रचने लगे और अंत में अपने एक कपटी मित्र के विश्वासघात के कारण उसका अभिनय-व्यवसाय चौपट हो गया और वह तबाह हो गया। नियति का क्रूर

---

१. इसके समर्पण में लेखक का नाम लेबेडेफ लिखा है। कुछ लोग लेबेडेफ और कुछ लोग लेबदेव उच्चारण करते हैं।

व्यंग ऐसा घातक हुआ कि उसे सब गँवा कर ३ नवम्बर, १७९७ ई० को भारत-भूमि को त्यागना पड़ा। इस प्रकार सहकारियों के कुचक्र का शिकार होकर इस व्यक्ति को लौट जाना पड़ा। पर इस दुर्दशाग्रस्त विदेशी ने लंदन पहुँच कर १८०१ ई० में अपना वह 'ग्रामर' प्रकाशित कराया, जो कालक्रम की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि इसका प्रकाशन १८०१ ई० में हुआ था, पर यह पुस्तक कुछ पहले लिखी गयी थी, ऐसा अनुमान होता है।

१७९१ ई० में लेवेडेफ का परिचय एक बंगाली स्कूल मास्टर गोलोक नाथ दास से हुआ, जो बंगला भाषा, मिश्र भाषा, (खिचड़ी बोली) और काफी संस्कृत जानते थे। 'मिश्र भाषा' से उसका अभिप्राय बोलचाल में चलती हिंदुस्तानी या डा० सुनीति कुमार के शब्दों में, 'बाज़ारू हिंदुस्तानी' से था, यह इस पुस्तक को देखने से ज्ञात होता है। जब लेवेडेफ ने अपने शिक्षक से यह दरियाफ्त किया कि पूर्वीय देशों (भारत के पूर्वीय भागों) में आम तौर से कौन भाषा बोली जाती है, तब उन्होंने कहा कि मिश्र (खिचड़ी) भाषा चलती है। लेखक का कथन है, 'मेरे भाषा पंडित ने मुझे लगन के साथ संस्कृत वर्णमाला सीखने की सलाह दी, चूँकि पूर्व के ज्ञान-विज्ञान के खजाने की 'मास्टर' कुंजी वही भाषा है।' जान पड़ता है कलकत्ते के बाजार में ऐसी मिली-जुली हिंदुस्तानी उन दिनों खूब चलती थी। इस बोली का शुद्ध रूप भी था, पर लगता है कि उस स्टैंडर्ड या शुद्ध हिंदुस्तानी से लेवेडेफ का परिचय नहीं था। लेवेडेफ की कठिनाई यह थी कि उसने ऐसे बंगाली स्कूल मास्टर से यह बोली या भाषा सीखी, जो शुद्ध और परिनिष्ठित हिंदुस्तानी का अच्छा जानकार नहीं था। एकवचन और बहुवचन का जो रोमन में रूप मिला है, उससे इसमें संदेह नहीं रह जाता कि संस्कृत के व्याकरणिक शब्दों का बंगला उच्चारण उसने सीखा था। हिंदुस्तानी के सही उच्चारण से वह अपरिचित था और उसका बंगाली शिक्षक हिंदुस्तानी सिखलाने योग्य नहीं था। लवेडेफ ने जार्ज हेडले और जान फर्गुसन की आलोचना की है, जो डा० चटर्जी के शब्दों में उसके पहले 'बाजारू हिंदुस्तानी' पर लिख चुके थे, पर सही बात तो यह है कि स्वयं उसका 'हिंदुस्तानी का ज्ञान न तो शुद्ध था और न पर्याप्त। हिंदुस्तानी शब्दों का जो लिप्यंतरण उसने अपनी पुस्तक में दिया है, वह तो हिंदुस्तानी भ्रष्ट उच्चारण है और वह भी बंगला प्रभाव से दूषित है। डा० चटर्जी का

अनुमान सही है कि इसका मुख्य कारण है लेवेडेफ के शिक्षक गोलोक नाथ दास की हिंदुस्तानी की अल्पज्ञता। किसी हिंदुस्तानी गद्यपुस्तक के अभाव में विदेशियों की कठिनाई को हम समझ सकते हैं, क्योंकि बोलचाल में कलकत्ते के बाजार में जिस रूप में हिंदुस्तानी बोली जाती थी, उस रूप के सिवा अच्छे रूप को जानने का कोई उपाय भी सुलभ न था। १७९१ ई० में लेवेडेफ को संस्कृत वर्णमाला या देवनागरी के माध्यम से उस बोली या भाषा को जानने या सीखने के लिए कोई पुस्तक बताई भी नहीं जा सकती थी। कलाकत्ते के बाहर हिंदुस्तानी का उत्तर भारत के बड़े शहरों में शिक्षित समाज में उसका क्या रूप था इसे सुनने और जानने का अवसर न लेवेडेफ को कभी प्राप्त हुआ और न उसके शिक्षक गोलोक नाथ दास को, जो शायद कलकत्ते से दूर कहीं गए नहीं थे। अतः हेडले या फर्गुसन की आलोचना करने का अधिकारी लेवेडेफ नहीं था। चटर्जी के अनुसार, 'हिंदुस्तानी के ग्रामर के रूप में तो इसका कम महत्त्व है, पर बाजार हिंदुस्तानी पर, जैसी कलकत्ते में बंगालियों और दूसरों के बीच बोली जाती थी, अच्छा पार्श्वप्रकाश डालता है।'

इस पुस्तक के समीक्षक ने १८०२ ई० में लिखा था—'यद्यपि हिन्दुस्तानी ग्रामर (मि० गिलक्रिस्ट का प्रकाशित हमने नहीं देखा है) निःसदेह दोषपूर्ण प्रकाशन हैं, फिर भी हमारा ख्याल है कि इस समीक्षाधीन पुस्तक से अधिक उपयोगी जानकारी हेडले या फर्गुसन की पुस्तकों से मिलेगी। पाठक हमसे यह आशा न करें कि मि० लेबेडेफ के प्रहार से सर विलियम जोंस को हम बचाना चाहेंगे, क्योंकि लेखक की भूल यह है कि उसने बंगला उच्चारण की परिनिष्ठित लेखनरीति का आधार बनाने योग्य मान लिया जबकि सर विलियम ने बनारस और मथुरा के श्रेष्ठ उच्चारण को ग्रहण किया है।'[१]

---

1. "Although the Hindustani Grammar (we hav e not seen Mr. Gilchrist's hitherto be published) are unquestionably very defective publications, we think that a beginner will derive more useful information from either Hadley's or Furgusisson's, than from the work under review. Our reader will scarcely expect us to defend Sir William Jones from the attacks af Mr. Lebdeff, whose aobservation originate

वास्तव में जोन्स ने काशी के शुद्ध उच्चारण के आधार पर रोमन लिप्यन्तरण प्रणाली चलाई। उनके पूर्व रोमन में हिंदुस्तानी लिखने में अव्यवस्था अथवा अराजकता थी। हिंदुस्तानी का वंगला ढंग का उच्चारण लेबेडेफ के बंगाली गुरु ने उसे सिखला दिया था। खेद की बात है लेबेडेफ ने अपने समकालीन अन्य विद्वानों के ज्ञान का उपहास किया है, जबकि स्वयं उसका हिंदुस्तानी का ज्ञान कच्ची और कमजोर नींव पर खड़ा था। बंगला का अच्छा जानकार कलकत्ते में रहकर वह हो सकता था, पर हिंदुस्तानी का सही रूप कलकत्ते के बाजार में सुनने को नहीं मिल सकता था। इस बोली को 'मिश्रित' वह इसीलिए कदाचित् कहता है कि इसका प्रयोग कलकत्ते के सभी वर्ग के लोग दैनंदिन व्यवहार में करते थे।

ग्रियर्सन ने भी इस पुस्तक के संबंध में लिखते हुए इसकी रोमन लिप्यंतरण प्रणाली की भ्रष्टता की निंदा की है और इस भाषा के इस पुस्तक में दिए गए व्याकरणिक विवरण को सही नहीं माना है[१], पर इससे यह लाभ तो होता है कि १८ वीं सदी के अंतिम दशक में कलकत्ते की बाज़ार की बोली का हमें परिचय मिलता है। दूषित रोमन लिपि में लिखित बाजारू हिंदुस्तानी का जो रूप इस पुस्तक में मिलता है, उससे उस समय की भाषिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। हो सकता है कि 'मिक्स्ड डायलेक्ट' अनुवाद इसलिए किया गया, चूंकि इसे 'जबान रेखता' भी कहते थे। इस बोली में फारसी, अरबी, तुर्की, हिंदी, संस्कृत सभी तरह के शब्दों का खुल कर मिश्रण हुआ था, अतः यह मिश्रित बोली भी थी। लेबेडेफ को यहाँ के यूरोपियनों के छल-कपट-पूर्ण

in mistaking Bengali pronounciation for a fit standard orthography whilst Sir William has adopted the more classic elocution of Benares and Mathura. Adelung quotes the opinions of the learned author of Ubersicht derorientalis chan. Literature in Britishen Indian that this volume contains has scarcely anything which its long title promises'—Asian Annual Register (Vol. 4.1803 P. 41).

१. इंडियन ऐंटीक्वेरी, १९५३ ई०।

व्यवहार का कटु अनुभव हुआ था, अतः यूरोपियनों की नैतिकता के संबंध में उसकी धारणा बुरी थी।

इस ग्रामर के अतिरिक्त लेवेडेफ ने एक दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक रूसी में लिखी है, जिसका नाम है—'पूर्व भारत के ब्राह्मणों का निष्पक्ष विवरण'। इसमें हिंदू प्रथाओं और रीतियों का वर्णन सहानुभूतिपूर्वक किया गया है। ब्राह्मण यूरोपियनों को क्रूर अत्याचारी समझते हैं और म्लेच्छ परिया (एक अधम अस्पृश्य जाति) के समान उनसे घृणा करते हैं। लेवेडेफ को इस देश में बिना पैसे लिए शिक्षा देनेवाले गुरु मिले। उसे यहाँ की भाषा या विद्या सीखने के लिए कुछ देना नहीं पड़ा, क्योंकि यहाँ ब्राह्मण विद्या बेचते नहीं। अन्य यूरोपियनों की तरह उसे कहीं बाधा-विरोध नहीं सहना पड़ा, चूँकि वह अन्य यूरोपियन विद्वानों की तरह पंडितों को 'गुरु' मानता था—क्लर्क नहीं। एक स्थान पर यह भी उल्लेख है कि वह बदले में संगीत की शिक्षा देता था। यह पुस्तक १८ वीं शताब्दी के अंतिम चरण के पूर्व भारत के हिंदुओं के सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है।

लेवेडेफ का ग्रामर डा० महादेव साहा द्वारा संपादित होकर हाल में ही प्रकाशित हुआ है। लेवेडेफ-विषयक सामग्री को संकलित कर प्रकाशित करने का श्रेय डा० साहा को है, अन्यथा इस व्यक्ति के विषय में हमारी जानकारी बहुत कम थी। अब हम इस रूसी लेखक की व्याकरण-विषयक पुस्तक के आधार पर कलकत्ते की बाजार हिंदुस्तानी या उस समय की 'कलकतिया हिंदी' का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

एकवचन—बहुवचन :

एक आदमी—सब आदमी या सब लोग।
एक लड़का—सब लड़का या लड़का लोग।
एक कुत्ता—सब कुत्ता या कुत्ता लोग।
सिपाही लोग—सब सिपाही लोग।

'सब और लोग' का बहुवचन में प्रयोग स्पष्ट ही अशिक्षित जन और बंगाली प्रभाव का सूचक है। रोमन में जो हिंदुस्तानी शब्दों को रूप दिया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि रोमन अक्षरों द्वारा बँगला उच्चारण को, वह भी भ्रष्ट रीति से, व्यक्त किया गया है। एक रूसी का एक बँगला भाषी से कलकत्ते

में हिंदुस्तानी के प्रचलित जनरूप को सीख कर रोमन लिपि में हिंदुस्तानी ध्वनियों को व्यक्त करने में जैसी भूल या भ्रांति सहज संभव है, उसका यह ग्रामर अच्छा उदाहरण है।

शब्द : रूप—

'आदमी' शब्द का कारक-भेद से रूप-भेद इस प्रकार दिखलाया गया है—

एकवचन—

कर्त्ता—आदमी
सम्बन्ध—आदमी का (या के)
सम्प्रदान—आदमी को
कर्म—आदमी को
सम्बोधन—ऐ आदमी
अपादान—आदमी का मारफत या आदमी के, आदमी का पास से या आदमी से, आदमी का वास्ते या आदमी के वास्ते आदमी में या आदमी मा

टिप्पणी : कारकों का क्रम भिन्न है। कर्त्ता, सम्बन्ध, सम्प्रदान, कर्म, सम्बोधन और अपादान—इस क्रम से कारक-भेद दिया गया है। 'आदमी का वास्ते' 'आदमी का पास' में का के स्थान पर शिष्ट भाषा में के आता है। यह 'का' भी बँगला का प्रभाव है

व्याकरणिक शब्दों का बँगला उच्चारण ही रोमन में रूपांतरित हुआ है। कारक, लिंग,, पुंलिंग, स्त्रीलिंग क्वीवलिंग या नपुंसक।

सर्वनाम

एकवचन उत्तम पुरुष — म, मैं मै, हम
म० पु० — तू तुम
अ० पु० — वो, ऊ, वह आदि

इन रूपों में कुछ स्पष्ट नहीं है—दूषित रोमनलिपि के कारण।

बहुवचन उ० पु० ब० व०—सब, मैं सब, हमलोग।
म० पु० ,, —तें सब, तुम लोग।
अ० पु० ,, —ऊ सब, वह संब, वह लोग, उन लोग, ये।

एक स्थान पर बोली के तीन रूप दिए गए हैं—

विकृत मिश्रित, नियमित मिश्रित और शिष्ट मिश्रित रूप। 'शिष्ट मिश्रित' से कदाचित् अच्छी या स्टैंडर्ड हिंदी से अभिप्राय है। इन तीनों रूपों को नीचे की सारणी में देखें :

कारक—	विकृत मिश्रित बोली (जार्गन मिक्स्ड डायलेक्ट)	नियमित मिश्रित बोली (रेगुलर मिक्स्ड डायलेक्ट)	शिष्ट मिश्रित बोली (सिविल मिक्स्ड डायलेक्ट)
कर्त्ता—	तू तु	तू	तुम
सम्बन्ध	तोर, तेरे, तार, तेरी (स्त्रीलिंग)	तार तारा	तुम्हारा या तुम्हारे (तुम्हारा, तुम्हारे)
सम्प्र०	तुझको या तुजको	ताको	तुमको
कर्म	तुझको	ताको	तुम, तुमको
सम्बोधन	हे तू या हय तू	हते	हे तुम
अपादान	तोर, तेरे मारफत	तारा मारफत या तोरे मारफत	तुम्हारे मारफत तुम्हारा मारफत
	तेरे पास	तारापास	तुम्हारा पास
	तुझ से या तुज से	ते से या तेरा पास से	तुम्हारा पास से
	तेरे वास्ते	तारा वास्ते (तार)	तुम्हारे वास्ते
	तोर वास्ते	तेरे वास्ते (तार)	तुम्हारे वास्ते
	तुझ में	ते में	तुम में
	तुझ मा	ते में	तुम में

टिप्पणी : तुमारा (तुम्हार), तुमारे (तुम्हारे) में ह की मंद ध्वनि बँगला प्रभाव से व्यक्त नहीं हुई है। में का अनुनासिक चिह्न छोड़ दिया गया। तुम, तुम्हारा आदि रूप शिष्ट भाषा में ही दिए गए हैं।

इसके बाद लेखक ने बोलचाल की भाषा के कुछ वाक्य उदाहरण रूप में दिए हैं, उस समय यूरोपियन कैसी हिंदुस्तानी समझते थे और कैसी ज़बान बोलते थे, इसका कुछ पता चलता है।

'खुदा पैदा करने वाला है दुनिया का, बिहिश्त का, ज़मीन का और सबके पास, सब कुछ जो खुदा किया है या रहेगा हमेशा, उसको कोई कमबेश करने

सकेगा नहीं और कोई कुछ सकते उठने का किसको तुम कहते हो साहेब, हम कहते हैं तुम तुमको, जो तुम्हारा खुशी है यह सुनने, तो तुम्हारा खुशी होये करने का यह मेहरवानी, हम आपको वड़े वास होयेंगे हम जानत हैं जो खुदा के अकल के मारफत, विहिश्त के सव और वीर उजेला सव वनाता है सूरज दिन का सरवा के (?) वास्ते, चाँद और सितार सव रव के दूर करने का वास्ते, हरेएक चीज़ इयाम (?) में सायत होता है और एक वख्त है हरिएक का सेकिर विहिश्त के नीचे।'

इस उद्धरण में अनेक शब्द अस्पष्ट हैं।

उसके बाद खरीद-बिक्री से संबंधित वातचीत दी गयी है। इससे यह पता लगता है कि यूरोपियन सौदागर कुछ इसी ढंग पर हिंदुस्तान के दुकानदारों से १८ वीं सदी के अंतिम चरण में बातें करते होंगे।

खरीद करना और बेचना :

क्या चीज़ है तुम्हारा दुकान में
मेहरवान, क्या आप माँगते हो ?
तुम्हारा पास कुछ अच्छा महीन वनात, सूत्र फीते, टोपी और मोजे हैं
हाँ साहेब हैं
सहर का ऊपरी इस सहर में और अच्छा तुम सकते नहीं मिलेगा या सच है
हाँ साहव सच है
दिखलाओ हमको एक थान अच्छा वनात काला रंग
यह एक थान है महीन वनात साहेब
और इसका रंग हम बूझते हैं आपका पसंद में हो
क्या मोल तुम वेचते हो
क्या दूँ इसका गज़
इसका ठीक दर है आठ रुपया
क्या, आठ रुपया
यह होगा नहीं साहेब
तुम बूझे हो
हमको ऐसा ऊन है
नहीं साहेब, माफ करो—

इस बातचीत के नमूने से यह ज़ाहिर होता है कि इस बोलचाल की ज़बान में संस्कृत-मूल के शब्द कम प्रयुक्त होते थे, सरल फारसी-अरबी शब्दों का ही बाजार में अधिक प्रयोग होता था।

विशेष—हमने यहाँ लेवेडेफ की विचित्र रोमन लिपि को पढ़कर हिंदुस्तानी में दिया है।

४. जॉन शेक्सपियर

आरंभिक व्याकरण लेखकों में जॉन शेक्सपियर का नाम भी प्रसिद्ध है। आपका 'ए ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज' १८१३ ई० में प्रकाशित होकर प्रसिद्ध हुआ। इसके अनेक संस्करण हुए, जिनमें संशोधन-परिवर्द्धन होता रहा। इनका एक कोश 'ए डिक्शनरी, हिंदुस्तानी ऐंड इगलिश' (लंदन, १८१७ ई०) भी प्रकाशित हुआ था। शेक्सपियर का 'ग्रामर' भी अंग्रेजी पद्धति पर रचित है। आपने हिंदुस्तानी की लिपि के संबंध में लिखा है—'The most common dialect of India, whether that of Hindustan proper or that of the Dakhan, is often found written in the Persian or Arabic characters, especially by the Musalman population of the country; by Hindus, however, the Devanagari (a word often contracted to Nagri) or a character allied to the Devanagri are usually adopted.' इस पुस्तक में, अतः, फारसी और देवनागरी दोनों लिपियों का प्रयोग किया है।

५. विलियम प्राइस

प्राइस ने भी एक साधारण ग्रामर लिखा था, जो १८२७ ई० में लंदन से निकला। इसका पूरा नाम इस प्रकार है :

A New Grammar of the Hindoostani Language, with selection from the best authors, to which are added familiar phrases and Dialogues in the proper character, London, 927-28.

६. विलियम येट्स

आपकी एक पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टू द हिंदुस्तानी लैंग्वेज' १८२७ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम खंड में हिंदुस्तानी का व्याकरण

दिया गया। इसके भी उस समय कई संस्करण निकले, जिससे यह लोकप्रिय जान पड़ता है। नेशनल लाइब्रेरी में १८४३ ई० का प्रकाशन उपलब्ध है।

७. पादरी आदम :

पादरी आदम के 'हिंदी भाषा का व्याकरण' का प्रकाशन १८२७ ई० में कलकत्ता से हुआ।[1] यह एक विदेशी का हिंदी में लिखा पहला व्याकरण है। इन्होंने हिंदी नाम का प्रयोग किया, जब कि उनके समय में कोई-कोई 'हिंदुई' नाम और कोई हिंदुस्तानी नाम चलाता था। इन्होंने एक हिंदी कोश भी प्रकाशित कराया (१८२९ ई०)। इस पुस्तक के संबंध में श्री कामता प्रसाद का कथन है—"लल्लू लाल के व्याकरण के लगभग २५ वर्ष पश्चात् कलकत्ता के पादरी आदम साहब ने हिंदी व्याकरण की एक छोटी-सी पुस्तक लिखी, जो कई वर्षों तक स्कूलों में प्रचलित रही। इस पुस्तक में अँगरेजी व्याकरण के ढंग पर हिंदी व्याकरण के कुछ साधारण नियम लिखे गए हैं। इसमें पारिभाषिक शब्द बँगला व्याकरण के लिए जान पड़ते हैं और हिंदी में समझाते समय विषय की कई भूलें भी हो गयी हैं।"

इस पुस्तक का इतना महत्त्व है कि इसका विस्तृत परिचय नीचे दिया जाता है :

प्रथम खंड :

वर्ण के विषय में—पाठ : १

प्रश्न : हिंदी भाषा की वर्णमाला के प्रकार से विभाग किई गई है?

उत्तर में स्वर १६ अक्षर बतलाए गए हैं।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

(अं अः को भी स्वर माना गया है।)

चौतीस अक्षरों को व्यंजन कहते हैं। इसमें क्ष को व्यंजन माना गया है पर त्र ज्ञ नहीं

ह्रस्व स्वर अ उ ऋ ऌ

दीर्घ आ ई ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ को दीर्घ वर्ण कहा गया

उसके बाद मात्राओं का रूप दिखलाया गया है। का की के आदि

1. A Hindi Grammar, for the Instruction of the young in the form of easy questions and answers, Calcutta. 1927.

इसके बाद लिखा है 'सब व्यंजनों का स्वरों के साथ' इसी प्रकार से संयोग होता है और इसी को वर्तनी या बनान भी कहते हैं।

पाठ : ३ इसमें अक्षरों का उच्चारण स्थान बतलाया गया है। चंद्र बिंदु और अनुस्वार० ये दोनों को सानुनासिक कहते हैं। जैसे हांजी, हंस।

प्र० : वर्ण माला के मध्य में किन-किन अक्षरों को कला कहते हैं ?

उ० : य र ल व न म ऋ लृ ट, इन् का दूसरा स्वरूप ऐसा
ट ्र ल व ् ॅ ृ लृ इन सब अक्षरों को कला कहते हैं।

प्र० : कला का और और अक्षरों को साथ मेल होने से कैसा आकार होता है ?

उ० : क्वार ? ग्रहण, क्लीव, ध्वजा स्नान र, वम, वृष्टि, ल्क्, कर्म इस प्रकार से अनेकन् शब्दों में ऐसा संयोग होता है।

प्र० : व्यंजनों में संयुक्त अक्षर सब सुद्धां कित्ने हैं ?

उ० : एक ख द्ग द्घ ङ ख
श्च श्छ श्क, ज्ञ। ष्ट, ष्ठ, ष्ड, ष्ढ, ष्ण
स्त स्थ ब्द व्य ह्य। स्य स्फ द्, द्भ्, ह्म
ह्य ह ह्ल ह्व—ट्श ट्ष ट्स ट्ह ट्क्ष
ये चौंतीस अक्षर संयुक्त हैं।

दूसरा खंड :

पाठ : १ संज्ञा : संज्ञा के विषय में
वस्तु के नाम मात्र को संज्ञा कहते हैं।

प्र० : संज्ञा कि त् ने प्रकारों से भेद किई जाती है ?

उ० : प्रकृत् नाम वाचक, जाति वाचक, भाव वाचक और क्रिया वाचक इन चार प्रकारों से संज्ञा भेद किई जाती है।
प्रत्येक मनुष्य के नाम व नगर व देश व नदी का पर्वत इत्यादि के नाम का प्रकृत नाम वाचक कहते हैं, जैसे राम, मोहन, पटना।

गुणवाचक शब्द के परे त्व और ता ये दो प्रत्यय होने से उसको भाव-वाचक कहते हैं—जैसे गुणवाचक उत्तम शब्द के परे त्व और ता ये प्रत्यय होने से उत्तमत्व वा उत्तमता।

धात्वर्थ मात्र को क्रिया वाचक कहते हैं, जैसे करना, सोना जाना खाना.... इत्यादि फिर संज्ञा के दो भेद प्राणिवाचक और अप्राणिवाचक बताए गए हैं।

पाठ २ : लिंग के विषय में :

प्र० : संज्ञा का विभाग कितने लिंगों में किया गया है ?

उ० : पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग, इनु तीन लिंगों में किया जाता है, जैसा, नर, नारी ज्ञान ।

प्र० : आई नी ति ये प्रत्यय जिन् शब्दों के अंत में होय वे स्त्रीलिंग हैं क्या नहीं

उ० : हाँ हैं, जैसा, माता चातुरी सुजनी, सम्मति

प्र० : कोई अकारांत वा हलंत स्त्रीलिंग शब्द हैं क्या नहीं ?

जैसा बात, घास, धाम, जगत् संपत् विपत् कचियाहट् इत्यादि ।

प्र० : दीर्घ ईकारांत शब्द से नी प्रत्यय होने से पूर्व को ह्रस्व क के स्त्रीलिंग हो या क्या नहीं ?

उ० : हाँ होय, जैसा हाथी-हथिनी, हस्ती-हस्तिनी, ज्ञानी-ज्ञानिनी, मानी-माननी

प्र० : नपुंसक लिंग किसको कहते हैं ?

उ० : संस्कृत की रीति से स्त्रीलिंग पुल्लिग भिन्न जो शब्द उसको नपुंसक लिंग कहते हैं—जैसा जल, फल, धन, वन इत्यादि । परंतु हिंदी भाषा में नपुंसक लिंग को बोधक कोई प्रत्यय नहीं है ।

पाठ : ३ कारक के विषय में :

प० : कितने कारकों में संज्ञा की घटना होती है ?

० : कर्त्ता, कर्मकरण, संप्रदान, अपादान 'संबंध' अधिकरण और संबोधन इन आठ कारकों में संज्ञा की घटना होती है ।

पाद टिप्पणी में ऐसा लिखा है :

संबोधन पद को कारक नहीं कहते, क्योंकि भाषा में संबोधन को कारकत्व नहीं पाया जाता, परंतु संस्कृत के अनुसार कोई-कोई मानते हैं सही, इसलिए हम इसको इहाँ भी लिखेंगे ।

बालक का रूप इस प्रकार दिखलाया गया है ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	बालक	बालके
कर्म	बालक को	बालकन वा कों, को

करण	बालक कक	बालकन् वा कों कर्के
संप्रदान	बालक के लिए	बालकन् का
	वा बालकन को	कों के लिए
अपादान	बालक से	वा बालकन् वा कों कों को
		बालकन् वा कों से
संबंध	बालक का	बालकन् वा
	—के—को	को, का, के की
अधिकरण	बालक में वा	बालकन् वा
	बालक के विषय	कों में बालकन् वा
		को के विषय
संबोधन	हे बालक	हे बालकों

लड़की :

कर्त्ता	लड़की	लड़कियाँ
कर्म	लड़की को	लड़कियो वा लड़कीन को
करण	लड़की कर्के	लड़कियों वा
		लड़कीन कर्के
संप्रदान	लड़की के लिए	लड़कियों के वा
	वा लड़की को	कीन कर्के के लिए
		वा लड़कियों वा
		की न को
अपादान	लड़की से	लड़कियों वा
		की न से
संबंध	लड़की का के की	लड़कियों वा
		कीन का
		के, की
अधिकरण	लड़कियों में वा	लड़कियों वा
	लड़की के विषय	कीन में वा
		लड़कीयाँ वा
		कीन के विषय
संबोधन	हे लड़की	हे लड़कियाँ

प्र० : उपमार्थ में संबंध कारक के प्रत्यय की बदली, जो रूप शब्द उसका प्रयोग होता है अथवा नहीं ?

उ० : हाँ , होता है, जैसा कि समुद्र रूप विद्या, विषरूप जल ।

तृतीय खंड :

सर्वनाम के विषय में :

प्र० : यह सर्वनाम किस प्रकार से समझा जाता है ?

उ० : सो केवल संज्ञा को बदली हो हो के देखने में आवता है, जैसा ईश्वर पुण्यवान को भला जानता है, परंतु वह पापियों पर घिना कर्त्ता है ।

प्र० : सर्वनाम कै भाँति का है

नाम वाचक, संबंध वाचक, निश्चय वाचक, अनिश्य वाचक, अधिकार और गौरव सहित और प्रश्न वाचक, इन भेदों से सर्वनाम छः प्रकार का है ।

प्र० : नाम वाचक सर्वनाम के कारक किस प्रकार से रचे जाते हैं ?

उ० : वे संज्ञा की नाई इस् प्रकार रचे जाते हैं ।

	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	मैं	हम
कर्म	मुझको वा मुझे	हमको व हमों का वो हमें
करण	मुझ कर्के	हम कर्के वा हमों कर्के
संप्र०	मेरे लिए वा मुझका	हमारे लिए वा हमको वा हमें
अपादान	मुझसे	हम
संबंध	मेरी–रे–री	हमारा–रे,–री
अधिकरण	मुझमें वा मेरे विषय	हमें वा हमारे विषय

संबंध-वाचक सर्वनाम :

जो और सो ये शब्द संबंध वाचक सर्वनाम कहावते हैं, क्योंकि ये किसी संज्ञा अथवा सर्वनाम के पहले कहे जाते हैं । जैसा जो वचन ईश्वर ने कहा है, सो सत्य ।

यह शब्द निश्चय वाचक और कोई, कुछ ये शब्द अनिश्चय वाचक सर्वनाम कहावते हैं ।

१. यह—ये	
२. इसको वा इसे	इन् वा इन्हों को वा इन्हें
इस्क के	इन वा इन्हों क के
इसके लिए वा इसका	इनको वा इन्हों के लिए वा इन वा इन्हों को
इससे	इन वा इन्हों से
इसको,–के–की	इन्–वा इन्हों को,–के–की
इसमें या इस्के विषय	इन्–वा इन्हों–में, वा इन या इन्हों के लिए

प्र० : अधिकार और गौरव सहित सर्वनाम किस्को कहते हैं ?

उ० : आप और अपना इन दोनों को अधिकार और गौरव सहित सर्व-नाम कहते हैं।

एकवचन

१. आप
२. आपको, अपनी
३. आपक के, आपने कर्के
४. आपके लिए वा आपको
   अपने लिए वा अपने को
५. आपसे वा अपने से
   आपका,–के, की वा
६. अपना, ने नी
७. आप में वा आपके विषय अपने से वा अपने के विषय

बहुवचन

१. आप लोग	
२. आप लोगों–वा–लोगन को	अपने लोगों–वा लोगन का
३. आप लोगों वा–लोगन–कर्के	अपने लोगों वा लोगन कर्के
४. आप लोगों–वा लोगन्–के लिए	अपने लोगों–वा–लोगन् को
५. आप लोगों–वा लोगन से	अपने लोगों वा–लोगन् से
६. आप लोगों-वा लोगन का–की–की	अपने लोगों–वा लोगन–का–के–की

७. आप लोगों वा लोगन में	आप लोगों—वा लोगन् के विषय,
अपने लोगों—वा लोगन् में वा	अपने लोगों वा लोगन् के विषय

क्रिया :

प्र० : क्रिया किस प्रकार से जानी जाती है ?

उ० : जो बात संज्ञा अथवा सर्वनाम के उत्तरवर्ती हो के यथार्थ ज्ञान को जन्नावे, वही क्रिया कहावती है, जैसे बालक सीख (सीखे) गुरु सिखावे क्रिया चार प्रकार की होती—अकर्मक, कर्तृवाच्य, प्रेरणार्थ और कर्माणि वाच्य।

'जिन् सब क्रियान् में कर्त्ता का भाव व रीति वा गुण प्रकाशित होवे वही अकर्मक क्रिया कही जाती है, जैसे रोना, जाना, बैठना।

जो क्रिया अपने पहिले कर्म कारक को रखे वही कर्तृवाच्य क्रिया कही जाती है, जैसा ईश्वर साधु लोगों को प्यार कर्ता है, परंतु वह पापियों को दण्ड देता है।

कर्त्ता हुए को जो क्रिया प्रेरणा करता (करती है) वही प्रेरणार्थ कही जाती है। जैसा, तुम सब काम कराओ।

जो क्रिया कर्म पावने को बतलाती है वही कर्मणि वाच्य कही जाती है, जैसा, काम किया जाता है।

अ० क्रिया के नियम पाँच हैं, स्वार्थ नियम, अनुमत्यर्थ नियम, शक्त्यर्थ नियम, आशंसार्थ नियम और भाव मात्र वाचक नियम। फिर अकर्मक क्रिया होना स्वार्थ नियम के अनुसार दिखलाया गया है।

इसमें वर्तमान काल, अपूर्ण भूतकाल, अद्यतन भूत काल, अनद्यतन भूत काल, भविष्यत् भूतकाल दो प्रकार के दिए गए हैं।

वर्तमान काल				अपूर्ण भूत काल	
मैं	हूँ	हम	है	था	थे
तू	है त	तुम्	हो	था	थे
वह	है	वे	है	था	थे

अद्यतन भूत काल			अनद्यतन भूतकाल
मैं	हुवा हूँ	हुवे है	हुवे थे

तू	हुवा है	हुवे है	,,
वह	हुवा है	हुवे है	,,

भविष्यत् काल

मैं हूँगा वा होऊँगा	होंगे वा होंवेगे
तू होगा वा होवेगा	होगे वा होवोंगे
वह ,,	,,

भविष्यत् भूतकाल

मैं हो चुकूँगा	हम हो चुकेंगे
तू हो चुकेगा	तुम् हो चुकोगे
वह ,,	वे हो चुकेंगे

अनुमत्यर्थ नियम—

उससे केवल आज्ञा और विनती समझी जाती है, जैसा कि ईश्वर की आज्ञान् का पालन करो, हे प्रिय बन्धु लोगो, तुम मेरे बुरे व्यवहारों को त्याग करो।

एकवचन	बहुवचन
मैं होऊ	हम होवे
तु हो वा आप हु लियो	तुम् होवो वा आप लोग हूजिये
वह होवे	वे होवें

शक्त्यर्थ नियम

उसके साध्यता वा शक्ति समझी जाती है—जैसा हम सब वहाँ आज पहुँचने सकें, ऐसा नहीं होने से आज हम् नहीं पहुँचने सक्ते।

इसके रूपों में स क के रूप चलते हैं।

आशंसार्थ नियम

उससे अनुमान मिलायपन इत्यादि अन्तर्गत समझा जाता है, जैसा जो ऐसा होय कि तुम् सत् उपदेश को ग्रहण करो, तो सब मनुष्य तुमको भला जायेंगे।

वर्त्तमान काल

जो मैं होऊँ	जो हम होवे या होय
जो तू होय	जो तुम होवो

जा वह होय	जो वे होवें वा होय
अपूर्ण भूतकाल	
जो मैं होता	जो हम् होते
जो तू होता	जो तुम होते
जो वह होता	जो वे होते

भाव मात्र वाचक नियम

(भाव मात्र वाचक) उस से एकवचन या बहुवचन और कर्त्ता का गुण इनको छोड़ के, केवल धातु का अर्थ समझा जाता है।

असमापिका क्रिया—जो क्रिया असमापिका क्रिया की चाहना करे उसी को असमापिका क्रिया कहते हैं और वह इसी प्रकार से करी जाती है। क्रिया विशेषण, हो के, होकर, हो कर्के, हो कर्का, वर्तमान होता वा हुआ एक वचन और होते वा होते हुवे, बहुवचन

भूत—हुआ, एकवचन, और हुवे बहुवचन

सांज्ञिक क्रिया, कर्त्ता होना। कर्म होने को इत्यादि सब कारक जानने।

पाँचवा खंड

क्रिया विशेषण

प्रश्न—क्रिया विशेष किसको कहते हैं ?

उत्तर—सो एक वाक्य है, क्रिया और गुण वाचक अथवा और क्रिया विशेषण बात के प्रति है, उस के द्वारा ईंहीं वाक्यों के विषय के एक गुण या समय, वा स्थान का रीति समझी जाय, जैसा कि बालक ने ज्ञानपूर्वक रचना किई है, यह बहुत भला पुत्र होके सुन्दर लिखता है।

प्रश्न—क्रिया विशेषण किस प्रकार से जाना जाता है ?

उत्तर—कैसा ! कितना ! कब ! कहाँ ! इस भांति से सब प्रश्न का उत्तर साधारण रीति से क्रिया विशेषण होता है जैसा कि कैसा है ? भला। कितना मोल बहुत। कब जायगा ? तीसरे पह कहाँ जाता चाहते हो ?

पाठ २ पार्श्ववर्त्ति के विषय में

प्रश्न—पार्श्व वर्त्ती बात के प्रकार की है?

उत्तर—उपसर्ग और परवर्ती के भेद से वह दो प्रकार की है

प्रश्न—उपसर्ग गिन्ती में कितने होंगे ?

उत्तर—सब सुर्द्धा उपसर्ग गिनती में बीस है, जैसा उपसर्ग २० बताए गए हैं

प्रश्न—किन् शब्दों को परिवर्त्ती कहते हैं

उत्तर—तले साध कारण, लग हेतु आदि

पाठ ४

आक्षेप की उक्ति

अहो, ओहो, अरे क्या हो, ओ भो है। ये शब्द आक्षेपोक्ति दूरवर्ती व्यक्ति के पूर्व में होते हैं जैसे अहो देवदत्त। क्या हो रायदत्त। अरे बावर्ची। हे हो हो रे, ये सब आक्षेपोक्ति वर्तमान व्यक्ति के आगे में होते हैं। जैसा कि भाई हे, ठाकुरदत्त हो।

पार्श्ववर्ती के दो भेद किए गए हैं—उपसर्ग और परवर्ती

परवर्त्ती—यथा पहले पश्चात् पूर्वक होके बीच मध्य आदि

परवर्त्ती— के अर्थ में आया है।

'आदि विषय मिलाने के विषय में, शीर्षक के अंतर्गत दिए गए हैं!

क्रिया के विषय में

प्रश्न—कर्त्त वाच् क्रिया किस कारक् पद को व्यापे ?

उत्तर—कर्म कारकों, जैसा कि पंडित जन मूर्ख को तुच्च कर्त्ते हैं।

प्रश्न—अकर्मिका क्रिया कर्म पद को व्यापे वा नहीं ?

उत्तर—हाँ व्यापे, परंतु, प्रेरणार्थक पद में है, जैसा मैं इसको पढ़ाऊं, उसने उसको जलाया।

प्रश्न—कौन कौन क्रिया दो कर्म को व्यापें ?

उत्तर—देना सिखाना, इस भाँति की जितनी क्रिया हैं वे सब दो क ' को व्यापें।

सांज्ञिक क्रिया के विषय में

प्रश्न—सांज्ञिक क्रिया किस प्रकार से व्याप्ती है ?

उत्तर—सांज्ञिक क्रिया संज्ञा की न्याईं, और ए प्रत्ययांत होने से मात्र का योग होय, जैसा, साधु लोग मन (मनें) मात्र से स्वर्ग में जाते हैं।

प्रश्न—ने के प्रत्ययांत सांज्ञिक क्रिया किसके पास में व्याप्ती है ?

उत्तर—लिए कारण, निमित्त इत्यादि के पास में व्यापती है, जैसा, मैं बातचीत कर्नें के लिया आया हूँ।

परवर्त्ती के विषय में

प्रश्न--अपादान कारक जिससे समझा जाए, ऐसा कोई-कोई शब्द परिवर्त्तियों में है, क्या नहीं ?

उत्तर—हाँ है, पास साथ के दोनो परिवर्त्ती शब्द के परे, प्राप्त्यर्थ क्रिया, रहने से, अपादान समझा जाय, जैसा उसके पास मैंने पाया अर्थात् उससे पाया।

समास

कर्मधारय—अर्थात् गुणवाचक शब्द में संज्ञा का योग जैसा कि महाराज महाबल

तत्पुरुष—अर्थात् कारक गम्यमान पद के साथ पद का मिलाप, जैसा धनपत वृक्षपतित

अव्ययी समास—अर्थात् क्रिया विशेषण के साथ शब्द का मेल।

भाषा 'हो' के स्थान पर 'होय'

जैसे--चवर्ग का अक्षर तवर्ग के दूसरे अथवा तीसरे अक्षर में मिलने से संधि होय करके—कर्के।

'जाय' सर्वत्र, जाय नहीं।

'के'—पार्श्वर्त्ती बात कै प्रकार की है ?

कहलाते हैं—कहलावते हैं ?—कौन कौन शब्द यौगिक कहलावते हैं ?

इत्यादि सब शब्द यौगिक कहावते हैं।

८, जेम्स आर० बैलन्टाइन—

बैलंटाइन ने हिंदी व्याकरण-संबंधी तीन पुस्तकें लिखीं :

(१) ग्रामर आफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेजविथ ग्रैमेटिकल एकसर साइसेज़ (१७३८ ई०)

(२) एलिमेन्ट्स ऑफ हिंदी ऐण्ड ब्रजभाषा ग्रामर (१८३९ ई०)

(३) ए ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेलेज विथ नोटिसेज़ ऑफ द ब्रज ऐण्ड दक्खिनी डायलेक्टस (१८४२ ई०) बैलन्टाइन ने इसमें हिंदुस्तानी, ब्रज और दक्खिनी तीनों रूपों के व्याकरण का विवेचन किया।

बैलन्टाइन कृत हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण

बैलंटाइन का यह व्याकरण मुख्यतः हिंदी का व्याकरण है। हिंदी (अर्थात् अरबी-फारसी से अमिश्रित हिंदुस्तानी)।

इस व्याकरण में उर्दू का भी विचार किया गया है। इसमें एक अध्याय व्रजभाषा के व्याकरण पर और एक अध्याय दक्खिनी पर है।

व्रजभाषा के सर्वनाम के बारे में वैलंटाइन लिखते हैं :

हों–(हूँ)
मेरो (मेरा) मोकों या मोंहि (मुझको, तुझे)
हमारो, हमनकों (हमारा, हमको)
तें (तू)
तेरो—(तेरा) तोकों तोहि (तुझको)
तिहारो (तुम्हारा), तुमनिकों, तुम्हें (तुमको)
यह, याहि (इसको)
आपन सो (अपने से) आप्नो (अपना)
को (कौन) काहि (किसे)
कहा (क्या ? जाहि (जिसे)
जे (वे, जो)
कोऊ—(कोई) काहू सों (किसी से)
कछू (कुछ) काहू सों (किसी से)

क्रिया रूप

हो, भयो—(मैं था) ब व०—हे, भये (थे, हुए)
हों—(मैं हूँ) हो (तुम होओ होंउ (मैं हो सकता हूँ) होंय
(हम हो सकते हैं) होउ (तुम हो सकते हो) होउंगो (मैं होऊँगा)
ह्‌वे हों (मैं होऊँगा) ह्‌वे है (वे होवेंगें)।

चल क्रिया के रूपान्तर।

चलनो, चलबों, (चलना, चल्यो, ब० व० चले) चला, चलतु (चलत का ब० व०), चलतो (चलते का ब० व०) चल्के (चल कर) चलों (मैं चल सकता हूँ (म० पु०, अ० गु०—चले, व० व०—पु० चले, म० पु०—चलो अ० पु० चलें)।

भविष्यत् में–गो जोड़ने से या वर्तमान सहायक क्रिया 'चलि' में जोड़कर
चलिहों—तुम चलोगे।

वैलंटाइन—पे० ७२-७३।

९. सैंडफोर्ड आर्नट

आपने हिंदीभाषा-विषयक कई पुस्तकें लिखी हैं। आपकी पहली पुस्तक है—'आन द ओरिजिन एन्ड स्ट्रक्चर ऑफ द हिंदुस्तान टंग और जेनरल लैंग्वेज ऑफ ब्रिटिश इंडिया।' (लंदन १८२८ ई०), इसके बाद आपका ग्रामर है। (ए न्यूसेल्फ-इंस्ट्रक्टिंग ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी टंग १८३१ ई० में प्रकाशित हुआ) लेखक की मृत्यु के बाद १८४४ ई० में इस पुस्तक का सर्वथा संशोधित-परिवर्धित संस्करण डंकन फोर्ब्स के योगदान से प्रकाशित हुआ।

१०. डंकन फोर्ब्स

आपने १८४५ ई० में अपना 'हिंदी मैनुअल' एलेन ऐण्ड को० से प्रकाशित कराया। इनका एक कोश भी १८४८ ई० में निकला। अन्य अंग्रेज लेखकों की तरह इनका भी प्रयोजन नये अंग्रेज अफसरों को हिंदुस्तानी का ज्ञान कराना था। उस समय इन अफसरों की शिक्षा के लिए ऐसी पुस्तकें बड़ी उपयोगी थीं और इनकी अच्छी खपत थी।

११. रेवरेन्ड विलियम एथारिंगटन

एथिरिंगटन का स्टूडेन्ट् ग्रामर

रेवरेन्ड डब्लू० स्थरिंगटन ने हिंदी भाषा का एक 'द स्टूडेन्ट्स ग्रामर ऑफ द हिंदी लैंग्वेज, १८७० ई० में अंग्रेजी में लिखा, जिसे बनारस के ई० जे० लजारस एण्ड कं० ने प्रकाशित किया था। यह छात्रोपयोगी पुस्तक है और पांडित्यपूर्ण कृति अवश्य नहीं है। पर यह पुस्तक अपने समय में काफी लोकप्रिय हुई। इसके 'आमुख' में लेखक का कथन है कि 'हिंदी का जो रूप बनारस में चलता है, उसे सिक्खों, गुजराती, मराठे और नेपाली और दूसरी जाति के लोग भी आसानी से समझ लेते हैं, जिनकी अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न बोलियाँ हैं, चाहे हम देश के विस्तार, इसके बोलने वालों की संख्या या जातियों के महत्त्व की दृष्टि से विचार करें, हिंदी उत्तर भारत की भाषा मानी जा सकती है।

प्राय: ऐसा दावा उर्दू के लिए भी किया जाता है, जो मुसलमानों की जनभाषा है, जो अपेक्षाकृत छोटी जाति है। परन्तु, यद्यपि यह शहरों और उत्तर भाषा के बड़े कस्बों में शिक्षित हिन्दू भी द्वितीय भाषा के रूप में इसे बोलते हैं, उर्दू को भारत के किसी प्रांत में प्रमुखता प्राप्त नहीं है। यह कभी

भी, मुसलमानों के अतिरिक्त जैसी वस्तु स्थिति है न तो किसी अन्य वर्ग की कभी भाषा रही और न कभी हो सकती है' इसमें बनारस की भाषा को हिंदी का मानक रूप माना गया है।

इसके आगे अपनी पुस्तक के संबंध में लेखक लिखते हैं—एक हिंदी ग्रामर का अभाव बहुत दिन से अनुभव होता रहा है और जहाँ तक मेरी जानकारी है, स्व० डा० बैलन्टाइन के 'हिंदी और ब्रजभाषा व्याकरण के तत्त्व' जिसमें केवल ३७ छपे पेजों में इस विषय की मात्र रूपरेखा दी गई है, के अतिरिक्त इसकी पूर्ति का प्रयास नहीं हुआ है। इसके रचने में शेक्सपियर, फोर्ब्स, मोनियर विलियम्स, भाषाचन्द्रोदय, मुंगेर के मिशिनरी जान पार्सन्स और जान क्रिश्चियन के सुझावों से लाभ उठाया गया है।

इससे यह ज्ञात होता है कि हिंदी का कोई अच्छा व्याकरण इसके पहले अंग्रेजी में नहीं निकला था। इस पुस्तक की एक विशेषता है कि इसमें 'हिंदी सेलेक्शन्स' (हिंदी संग्रह) के अंतर्गत बाइबिल का अनुवाद, प्रेमसागर, हितोपदेश से अनुवाद, दमयन्ती कथा एक वैज्ञानिक लेख शकुंतला और रामायण के अंश संग्रहीत हैं।

इसी का आधार लेकर अपने 'भाषा भास्कर' नामक एक व्याकरण हिंदी में बनाया, जो शिक्षा-विभाग द्वारा स्वीकृत होकर खूब चला। इस व्याकरण ने परवर्ती व्याकरणों को प्रभावित किया है और इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। इस व्याकरण का ऐतिहासिक महत्त्व होने के कारण हम इसका विशेष परिचय देते है। पुस्तक के आवरण-पृष्ठ पर इस प्रकार अंकित है।

भाषा भास्कर
अर्थात्
हिंदी भाषा का व्याकरण

---

1. As Hindi vanises a good deal in different provinces, it was necessary to adopt some one form of it as standard; and, as that of Benares is generally acknowledged to be the purest, I have followed it

Preface—The Students' Grammar of the Hindi Language —P. S,

काशी नगर के पाद्री एथरिंगटन साहिब ने
विद्यार्थियों की शिक्षा निमित्त
बनाया
यीसुहि शीश नवाइ के कियो नयो यह ग्रन्थ।
भाषा भास्कर याहि लखि लखें लोग पद पन्थ॥

१८७० ई० में एथरिंगटन ने 'द स्टूडेन्ट्स ग्रामर आफ द हिंदी लैंग्वेज' लिखा था और नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज के डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्सट्रक्शन को पुरस्कार के लिए विचारार्थ भेजा गया था। पर लेफटनेन्ट गवर्नर ने यह सुझाव दिया कि यदि यह पुस्तक वर्नाक्यूलर में निकले तो पुरस्करीण हो सकती है। अतः यह पुस्तक उसी अंग्रेजी पुस्तक में कुछ हेर-फेर कर तैयार कराई गई।[१]

इस पुस्तक का अंतिम अध्याय छंदो निरूपण पंडित विशनदत्त का लिखा हुआ है और संपूर्ण पुस्तक को भी उन्होंने दुहराया था।

(अंग्रेजी का आमुख, बनारस, अक्टूबर १८७१ ई०)

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के निकलने पर ५०० रु०) का पुरस्कार लेखक को मिला था। दूसरे संस्करण (संशोधित) को कापीराइट सरकार ने खरीद लिया था।

पुस्तक में १२ अध्याय हैं:

१. वर्ण विचार
२. संधि प्रकरण
३. शब्द साधन
४. सर्वनामों के विषय में
५. क्रिया के विषय में

---

1. Being a work in the English languagə it hardly comes within the scope of prize notification., which relates only to vernacular literature. . .— The Book, if put in to a fome suitable for use is vernacular education, would be a valu able contribution to the vernacular literature, and as such, a fit subject for a prize.—Preface to the first edition of Bhasha Bhaskar.

६. कृदंत के विषय में
८. कारक के विषय में
८. तद्धित के विषय में
६. समास के विषय में
१०. अव्यय के विषय में
११. वाक्य विन्यास
१२. छंदो निरूपण।

व्याकरण की कुछ विशेषताएँ

'शब्द के उस खंड का नाम अक्षर है, जिसका विभाग नहीं हो सकता और उसके चीन्हने के लिए जो चिह वनाए गए हैं वे भी अक्षर कहाते हैं।

'अनुस्वार और विसर्ग भी एक प्रकार के व्यंजन हैं। अनुस्वार का उच्चारण प्रायः हल् नकार के समान और विसर्ग का हकार के तुल्य होता है।

अंत्य और आद्यस्वर के संयोग से जो संधिफल होता है उसे दिखलाने को लेखक ने एक उपयोगी चक्र दिया है।

सर्वनाम को भी संज्ञा का एक भेद माना गया है।

'सर्वनाम संज्ञा उसे कहते हैं जो और संज्ञाओं के बदले में कही जाए।

कारक उसे कहते हैं कि जिसके द्वारा वाक्य में विशेष करके क्रिया के साथ अथवा दूसरे शब्दों के संग संज्ञा का संबंध ठीक-ठीक प्रकाशित होता है।'

अपादान : 'क्रिया के विभाग की अवधि को अपादान कहते हैं उसका चिन्ह से है।

संप्रदान : संबोधन उसे कहते हैं जिससे कोई किसी को चिताकर अथवा पुकार कर अपने सम्मुख कराता है उसके चिह हैं, हो, अरे इत्यादि हैं।

'इसका भी स्मरण करना चाहिए कि कर्त्ता और संबोधन को छोड़ करके शेष कारकों के बहुवचन में शब्द और विभक्ति के मध्य में बहुवचन का चिह ओ लगाया जाता है, परंतु संबोधन के बहुवचन में निनुनासिक आ आता है।

'उत्तम पुरुष और मध्य पुरुष के संबंध कारक के एकवचन में मैं को में और तू को ते और बहुवचन में हमको हमा और तुमको तुम्हा आदेश करके

संबंध कारक की विभक्ति का के की का रा रे री हो जाता है और शेष विभक्तियों के संयोग होवे तो जैसा ने के साथ कहा है सोई जानो।

इन सर्वनामों के कर्म और सम्प्रदान कारक में दो-दो रूप होने से लाभ यह है कि दो को एकट्ठे होकर उच्चारण को बिगाड़ देते हैं। इस कारण एक को सहित और एक को रहित रहता है। जैसे मैं इसको तुमको दूँगा यह मैं इसे तुमको दूँगा ऐसा बोलना चाहिए।

भाषा :

जान्ने, (जानने) सुन्ना (सुनना)

'चेत रखना चाहिए कि हिंदी भाषा में अकारांत शब्द प्रायः हलंत के समान उच्चारित होते हैं।'

'चेत रखना चाहिए कि जिस कर्त्ता कारक के साथ ने चिह्न होता है वह अपूर्ण भूत और छोड़के केवल सकर्मक धातु की भूतकालिक के साथ आ सकता है। और यदि कर्म कारक का चिह्न लुप्त हो तो क्रिया के लिंग वचन कर्म के अनुसार होंगे, जैसे पण्डित ने पोथी लिखी, महाराज ने अपने घोड़े भेजे। परंतु जो कर्म अपने चिह्न को के साथ आए तो क्रिया सामान्य पुल्लिग, अन्य पुरुष एकवचन में होता है। जैसे मैंने रामायण को पढ़ा है, रानी ने सहेलियों को बुलाया इत्यादि'।

क्रिया की परिभाषा :

'कह आए हैं कि क्रिया उसे कहते हैं जिसका मुख्य अर्थ करना है वह काल पुरुष और वचन से संबंध रखती है। समझ रखो कि जैसे कर्तृ प्रधान क्रिया के साथ कर्त्ता का होना आवश्यक है वैसा ही कर्म प्रधान क्रिया के संग कर्म भी अवश्य रहता है, परंतु जहाँ अकर्मक क्रिया का रूप कर्म प्रधान क्रिया के समान मिले वहाँ उसे भाव प्रधान जानो।

इससे यह बात सिद्ध हुई कि जब प्रत्यय कर्त्ता में होता तो कर्त्ता प्रधान होता है और जब कर्म में होता है तब कर्म। इसी रीति से भाव में जब प्रत्यय आता है तो भाव ही प्रधान हो जाता है।

जैसे रात भर किसी से नहीं जागा जाता। बिना बोले तुमसे नहीं रहा जाता।

क्रिया के बनाने के विषय में :

धातु से :

सम्भाव्य भविष्यत : उ ए ए एं ओ एं इन स्वरों के लगाने से तीनों पुरुष की क्रिया दोनों वचन में हो जाती है और जो धातु स्वरांत हो तो ऊँ ओ को छोड़ शेष प्रत्ययों के आगे व विकल्प से लगाते हैं। जैसे हलंत धातु बोल से बोलूं बोले आदि होते हैं और स्वरांत धातु खा से खाऊँ खाए वा खावे आदि होते हैं।

धातु का हलंत और स्वरांत भेद कर काल-भेद समझाने का यह प्रयत्न अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। गुरु ने इस रीति से विवेचन नहीं किया। भूत के सभी भेदों के प्रत्यय व्यंजनांत और धातुओं में कैसे लगते हैं यह भी प्रत्ययों का चक्र बनाकर समझा गया है। धातु का विवेचन किए बिना क्रिया के कालभेदों को बताना ठीक नहीं।

इन प्रत्ययों के योग के बाद संभाव्य भविष्यत् के रूप इस प्रकार होंगे—

		ब०	ब०
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
मैं बोलूं	मैं बोलू	हम बोले	हम बोले
तू बोल	तू बोले	तुम बोलो	तुम बोलो
वह बोले	वे बोले	वह बोले	वे बोले
पु०			
खाऊँ—वही		हम खायें (खावें)	
तू खाए (खावे) वही		तुम खाओ	
वह—खाए (,,)		वे खायें, खावें	

'वुद्धि में आता है कि दो एकार्थक संस्कृत धातु अर्थात् या और गम् से से जाना क्रिया के समस्त रूप बन गए हैं या के प्रकार को ज आदेश करके ना चिह्न लगाने से साधारण रूप जाना बनता है, जिसकी सामान्य भूतकाल की क्रिया अर्थात् गया गम से निकली है।

आकांक्षा, योग्यता आसक्ति :

'वाक्य विन्यास में ये तीन बातें मुख्य हैं : आकांक्षा योग्यता और आसक्ति जिनके बिन जाने वाक्य बनाने में कठिनता होती है।

एक पद की दूसरे पद के साथ अन्वय के लिए जो चाह रहती है उसे आकांक्षा कहते हैं।

परस्पर अन्वित होने में अर्थ बोध के औचित्य को योग्यता कहते हैं।

पदों के सन्निध्य को प्रत्यासत्ति कहते हैं अर्थात् जिस पद का अन्वय जिस शब्द के साथ अपेक्षित हो उनके बीच में बहुत-से काल का व्यवधान न पड़ने पावे।

(जुलाई १८८६ ई० में मुंशी नवल किशोर प्रेस के छापेखाने में मुद्रित प्रति से)।

१२. रेवरेन्ड एस० एच० केलाग

आप अमेरिका प्रेस्बिटीरियन चर्च से संबंधित पादरी थे। अमेरिका ओरियन्टल सोसाइटी के भी आप प्रमुख सदस्य थे। आपका मिशनरी रूप में कार्यक्षेत्र हिंदी-प्रदेश ही रहा तथा इस सिलसिले में आपको हिंदी के विविध रूपों से परिचित होने का अवसर मिला था।

हिंदी व्याकरण की रचना

आपने हिंदी का एक विस्तृत व्याकरण १८७५ ई० में लिखकर प्रकाशित कराया। इसकी विशेषता यह है कि इस व्याकरण में प्रथम बार पूर्ण विस्तार के साथ 'उच्च हिंदी' (खड़ी बोली या साहित्य हिंदी) व्रज, रामायण की पूर्वी हिंदी का विशद विवेचन हुआ है। इसके साथ ही इसमें राजपूताना, कुमाऊँ, अवध, रीवा, भोजपुर, मगध और मिथिला की बोलियों की विशेषताओं पर भी विचार किया गया है। इस व्याकरण में व्युत्पत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है। सच तो यह है कि हिंदी के विविध जनपदी रूपों पर इसके पूर्व किसी भी व्याकरण में इतना विशद विवेचन नहीं मिलता।

बोलियों का व्याकरण

इसमें जिन बोलियों की शब्दरूपावली और धातुरूपावली दी गई है वे ये हैं :

(१) उच्च हिंदी, (२) कन्नोजी, (३) व्रज, (४) पश्चिमी राजस्थानी, (५) पूर्वी राजस्थानी, (६) गढ़वाली, (७) कुमाऊँनी, (८) नेपाली, (९) पुरानी बैसवारी, (१०) अवधी, (११) रीवाई, (१२) भोजपुरी, (१३) मागधी (मगही), (१४) मैथिली।

प्रथम संस्करण में १० बोलियों के रूप ही दिए गए थे—द्वितीय संस्करण में मागधी, मैथिली और नेपाली भी जोड़ दिए गए। चूंकि यह व्याकरण १८७५ ई० में ही निकला था, अतः उदाहरण में प्रेमसागर और लक्ष्मण सिंह कृत शकुंतला की भाषा से उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं। दूसरे संस्करण में लाला श्रीनिवास दास की रणधीर और प्रेम मोहिनी का भी उपयोग किया गया है।

बोलियों या भाषाओं का व्याकरणिक अध्ययन प्रस्तुत करने में लेखक ने बीम्स के बहुमूल्य ग्रंथ 'कम्पेरिटिव ग्रामर', हार्नले की कृतियों और ग्रियर्सन के पूर्वीय भारत की भाषाओं से सम्बद्ध लेखों से पूरी सहायता ली है। दूसरे संस्करण के समय पिनकाट का हिंदी मैनुयेल निकल चुका था, अतः इसका भी उपयोग किया गया। लेखक ने अपनी भूमिका में ऐसे अंग्रेज हिंदी विद्वानों का नामोल्लेख किया है, जिनसे उसे अपनी पुस्तक तैयार करने में सहायता मिली थी। उनके नाम इस प्रकार है :

(१) एफ० एस० ग्राउज़ और (२) विलियम ग्राउज़—सिविल सर्विस के सदस्य, (३) रेवरेन्ड ज़ेन्कर, (४) कोली एल० एम० एस०, अलमोड़ा, (५) एडविन ग्रीव्स एल० एम० एस०, मिर्जापुर, (६) रेवरेन्ड राव, (७) रेवरेन्ड ट्रेल।

हिंदी के महत्त्व पर विचार

केलाग ने हिंदी के महत्त्व को सही रूप में समझा था और उनका अभिमत है कि सरकारी क्षेत्रों में उर्दू को प्रश्रय और प्रोत्साहन मिलने का यह फल हुआ है कि अंग्रेज अधिकारी इस भ्रम में पड़े हैं कि यह उत्तर भारत की सामान्य भाषा है।[१] यद्यपि व्याकरणात्मक गठन में प्राय: हिंदी (खड़ी बोली

१. उर्दू शासन द्वारा सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गयी है, परिणाम यह हुआ है कि (यद्यपि यह भाषा पश्चिमी भाषा के एक ही रूप का प्रतिनिधित्व करती है और उत्तर भारत के मुसलमानों के पढ़ने-लिखने की भाषा है) विदेशी लोग इसी भाषा को पढ़ते और लिखते हैं, इस प्रवृत्ति ने केवल उस भाषा की उपेक्षा ही हुई है वरन् उसे दृष्टि से ओझल कर दिया गया है जो यथार्थत वृहत हिंदू जन-समुदाय की वाणी और आर्यकुल की सजीव भाषा (लिविंग पयंन स्पीच) है। बहुतों का यह विश्वास बन गया है कि उर्दू ही, जिसे वे जानते हैं, हिंदी मुसलमानों की भाषा है और यह माना जाने लगा है कि दोनों में केवल लिपि का भेद है और उर्दू से भिन्न हिंदी नाम मात्र की भाषा है, वस्तुतः ऐसी कोई भाषा है ही नहीं।

रूप) और उर्दू लगभग एक है पर केवल इसी रूप को जानने और सीखने से हिंदी का ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। यह भी एक भ्रम है कि उर्दू उत्तर भारत के हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा है और दोनों में लिपि मात्र का भेद है और उर्दू से भिन्न हिंदी की अलग और स्पष्ट सत्ता नहीं है। यह सिद्धांत इस व्याकरण में दिए गए शब्द-रूपों और धातुरूपों के देखने से ही स्पष्ट हो जाएगा। केलाग का कथन है कि मुझे भी हिंदुस्तान आने पर इस भ्रम में डाला गया कि हिंदी और उर्दू में केवल शब्दावली का भेद है, पर यह बात बहुत-कुछ उन्हीं पुस्तकों की भाषा पर लागू है, जो शिक्षा-संबंधिनी और धार्मिक कृतियाँ हैं, अथवा जो विदेशियों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लिखाई गईं (केलाग का संकेत प्रेमसागर और पाठ्यपुस्तकों से जान पड़ता है) अतः अनेक विदेशी लेखक ऐसा सोचते हैं कि अरबी-फारसी शब्दावली हटाकर उसके बदले संस्कृत शब्दों को रख देने से उर्दू शुद्ध हिंदी बन जाती है। ऐसी 'शुद्ध हिंदी' न रामायणकार (तुलसी) और न कबीर ही लिख सके हैं। यह मेरा भ्रम शीघ्र ही दूर हो गया। कभी-कभी संस्कृत के गंभीर शब्दों से भरी 'शुद्ध हिंदी' देहातियों को उससे भी अपरिचित लगती थी, जितनी कि उर्दू के कुछ अरबी-फारसी के शब्द। यह स्पष्ट था कि यद्यपि वे कुछ अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं, पर वे उर्दू नहीं बोलते। देहातियों की भाषा उर्दू से न केवल शब्दावली की ही दृष्टि से बल्कि व्याकरण की दृष्टि से भी भिन्न है। तुलसीदास, सूरदास और कबीर की भाषा और आधुनिक उर्दू में केवल शब्दों के चुनाव का अंतर नहीं, उनके बीच केवल शब्दावली का ही नहीं, व्याकरणिक रूपों और वाक्यविन्यास में भी अंतर है।[१]

केलाग के व्याकरण की विशेषता

केलाग के भूमिका में व्यक्त विचारों का हमने ऊपर सार दिया है। इससे स्पष्ट है कि केलाग ने हिंदी उर्दू के सूक्ष्म अंतर को समझने के विवेक का परिचय दिया और हिंदी के अन्य जनपदी रूपों के ज्ञान की आवश्यकता और उपयोगिता को भी अनुभव किया। केलाग के पूर्व किसी अंग्रेज हिंदुस्तानी

(एकजिस्टेंस ओन्ली इन नेम नाट इन रियल्टी) इस विचार का खंडन हमारे व्याकरण के नाम और क्रिया पदों के मानचित्र और रूपों से ही हो जाता है, अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं।

१. प्रथम संस्करण की भूमिका (पृ० स०-१५)

व्याकरण-लेखक ने हिंदी को अपने विविध रूपों के साथ जानने और पढ़ने के महत्त्व को उचित रूप में हृदयंगम नहीं किया था। एथरिंगटन ने अपने व्याकरण में केवल खड़ी बोली हिंदी का विवेचन किया था। अंतिम संस्करण में उन्होंने ब्रजभाषा व्याकरण बहुत संक्षेप में अवश्य दिया था। वेलंटाइन ने ब्रजभाषा व्याकरण की कुछ चर्चा कर दी थी और तासी ने अपने फ्रेंच में लिखित 'हिंदुई' के व्याकरण उर्दू के साथ ब्रजभाषा के रूप में दिए थे, जिसका आधार फोर्ट विलियम कालेज द्वारा प्रकाशित एक पुराना ब्रजभाषा व्याकरण था। सभी पिछले व्याकरणों ने 'पूरबी' बोलियों के रूपों की उपेक्षा की थी। केलाग का मत है कि 'पूर्वी हिंदी' ब्रजभाषा से भी कुछ अधिक हिंदी की पुरानी (क़्लासिक) बोली है। इसी में कबीर और तुलसी की लोकप्रिय कृतियाँ है, अतः इसका ज्ञान आवश्यक है। केलाग ने इन जनपदी रूपों को इसलिए महत्त्व दिया, चूँकि वे यह अनुभव करते थे कि विना इन विविध रूपों के ज्ञान के कोई मैजिस्ट्रेट गाँव के गवाह की बात को ठीक समझ नहीं सकता और न मिशनरी बाजार में जनता के बीच अपना उपदेश ही दे सकता है। अतः केलाग ने बहुत परिश्रम कर हिंदी का ऐसा व्याकरण प्रस्तुत करना चाहा, जिससे मुख्यतः हिंदी के प्रचलित रूप के साथ उसके विविध जनपदी या स्थानीय रूपों की व्याकरणिक विशेषताओं का ज्ञान हो सके। इस दृष्टि से इस पुस्तक की उपयोगिता निर्विवाद है। हिंदी के गठन और उसके ग्रामीण रूपों का जितना विशद और विस्तृत विवेचन पचास वर्षों बाद रचे हुए किसी हिंदी में लिखे व्याकरण में भी, श्री कामता प्रसाद गुरु के व्याकरण में भी नहीं मिलता।

अतः लेखक का यह दावा सही है कि इस व्याकरण में ऐसी सामग्री बहुत है, जो उनके पूर्व के किसी व्याकरण में नहीं मिलती। इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है :

(१) इस व्याकरण में हिंदी और उर्दू के व्याकरणिक गठन में जो समानता है, उसी को इस व्याकरण का आधार बनाया गया है। व्याकरणिक दृष्टि से हिंदी और उर्दू लगभग एक ही है। यहाँ हिंदी से अभिप्राय उस हिंदी का है जिसे स्टैंडर्ड परिनिष्ठित हिंदी कहते हैं और जिसे स्कूलों में शिक्षा के लिए ग्रहण किया गया है। हिंदी के विद्वान् के लिए हिंदी के दो रूपों का—ब्रज-

भाषा और पूरबी (बैसवारी या अवधी) का—भी ज्ञान आवश्यक है अतः इन दोनों का रूपों का विशद विवेचन किया गया है।

(२) इसके अतिरिक्त हिंदी की अन्य स्थानीय बोलियों के शब्दरूपों और धातुरूपों का भी विचार किया गया है। इससे हिंदी-भाषी जनता की 'जीवित भाषा' का पूर्ण विवेचन हो गया है। इससे बंगाल के पश्चिम और गुजरात-सिंध के पूर्व की भूमि के बीच की सभी हिंदी-क्षेत्र की बोलियों का सामान्य ज्ञान हो जाता है और किसी विदेशी को इस विस्तृत भाग में कार्य करते हुए हिंदी के स्थानीय रूप को समझने में कठिनाई दूर हो सकती है।

(३) उदाहरणों को चुनने में प्रायः लिखित पुस्तकों का ही सहारा लिया गया है। जहाँ भी मौखिक स्रोत से प्राप्त उदाहरण दिए गए हैं, वहाँ उनके ठीक होने की पूरी परीक्षा कर ली गई है। यूरोपियनों की लिखी हुई हिंदी की पुस्तकों से उदाहरण संकलित नहीं किए गए हैं, चूँकि यूरोपियनों की हिंदी में विदेशीपन के बने रहने की संभावना बनी रहती है। जिन पुस्तकों का मुख्यतः उपयोग किया गया हैं, उनमें प्रेमसागर और रामायण के अतिरिक्त राजनीति कबीर, सुखविलास और षट्दर्शन दर्पण, शकुंतला नाटक (लक्ष्मण सिंह) और मारवाड़ी के लिए मि० राक्सन का संपादित 'ख्याल' है। १८७५ ई० में लिखित इस व्याकरण में उस समय तक बहुप्रचलित ये ही ग्रंथ प्रसिद्ध थे। द्वितीय संस्करण में पिनकाट के हिंदी मैनुयेल के पाठों का भी उपयोग किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केलाग का हिंदी ग्रामर अपने समय के लेहाज़ से एक श्रमसिद्ध, व्यापक और उत्कृष्ट व्याकरण है। इसका तृतीय संस्करण बहुत वर्षों बाद टी० ग्राहम बेली, रीडर, लंदन यूनिवर्सिटी द्वारा संपादित होकर १९३८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें संपादक ने अपनी ओर से हिंदी वर्णों का उच्चारण-विधान पर एक 'नोट' मात्र जोड़ दिया है।

अन्य उल्लेख्य विषय

अब हम इस व्याकरण की कुछ उल्लेखनीय बातों की चर्चा करेंगे। हिंदी के उच्चारण का विवेचन करते हुए केलाग ने हार्नले और ग्रियर्सन का अनुकरण करते हुए एकार ऐकार, ओकार, और औकार के ह्रस्व उच्चारण का उल्लेख किया है और उसका प्रतिनिधित्व इस प्रकार किया है। ए ऐ ओ औ से किया है और उनका मात्रा चिह्न े ै ो ौ बनाया है। रामायण में जेहि में एकार का उच्चारण ह्रस्व होता है, अतः यह 'जेहिं' लिखना चाहिए। गोइठा में

ओकार ह्रस्व उच्चरित होता है, अतः उसे गोइठा लिखना ठीक होता है। हिंदी खड़ी बोली में भी अनेक शब्दों में ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ का उच्चारण ही प्रचलित है, पर हम लोग ऐसे स्थलों पर ह्रस्व उच्चारण सूचित करने को कोई चिह्न नहीं देते। हिंदी-भाषी शुद्ध उच्चारण से परिचित होता है, अतः अभ्यासवश वह उच्चारण में प्रायः गलती नहीं करता, पर अहिंदी भाषी कैसे सही उच्चारण कर सकता है? इस दोष को दूर करने पर अब तक हिंदी लेखकों का यथोचित ध्यान नहीं गया। जब कभी हिंदी-भाषी अपनी भाषा के उच्चारणात्मक कोश की रचना की आवश्यकता का अनुभव करेंगे, तब उन्हें एकार ओकार के ह्रस्व या किंचित लघु उच्चारण के पृथक् चिह्न बनाने की आवश्यकता का बोध होगा। हिंदी में मेहता, मेहरा, नेहरू, एक्का, मेहतर, एलावा, एहसान, केहुनी, केचुआ, गेहुअन, गेंहुआ, चेहरा, जेवनार और सेवार सेहरा आदि और ओसारा, ओहदा, ओहार, ओसाना, मोहरा, होरहा, खोज-वाना, गोजई, गोदना, घोटाला (गड़बड़ घोटाला) आदि शब्दों में ह्रस्व एकार और ओकार उच्चारण प्रचलित हैं। अतः ` ै ो ौ चिह्नों का प्रयोग वांछनीय है। हिंदी की बोलियों में ऐसे बहुसंख्यक शब्द हैं। श्री विश्वनाथ मिश्र ने मानस के राज संस्करण में इन चिह्नों को अपनाया है और यह उचित ही है।

इस व्याकरण में हिंदी-क्षेत्र में प्रचलित चार लिपियों को भी अंकित किया गया है। ये लिपियाँ हैं—नागरी, कैथी, महाजनी और बनियौटी। महाजनी और बनियौटी में भी थोड़ा भेद है, यह इसमें स्पष्ट दिखलाया गया है। देवनागरी और नागरी लिपि का अंतर भी बताया गया है। नागरी में ॡ ॡ नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक का यह मत है कि संस्कृत की लिपि को देवनागरी और हिंदी की लिपि को (जिसमें ऋ, ॡ ॡ, कम है और ड़, ढ़ अधिक है) केवल नागरी कहना चाहिए। केलाग के समय में नागरी शब्द का भी पर्याप्त प्रचार था और वह प्रायः लिपि के लिए और कभी-कभी भाषा के लिए भी प्रयुक्त होता था। 'नागरी प्रचारिणी सभा' न केवल नागरी लिपि का प्रचार वरन् नागरी (हिंदी) भाषा का प्रचार करने के लिए भी स्थापित हुई थी।

बोलियों के संबंध में केलाग के विचार

जिन १३ बोलियों का उल्लेख केलाग ने किया है, उनमें मारवाड़ी, मेवाड़ी (राजस्थान की), गढ़वाली कुमाऊँनी (पहाड़ी) और नेपाली भारत के उत्तरांचल

(स्वतंत्र नेपाल की) बोलियाँ हैं। यदि इन भागों को 'वृहत् हिंदी क्षेत्र' कहें तो हिंदी क्षेत्र की बोलियाँ केवल कन्नौजी और ब्रज पुरानी बैसवारी और अवधी, रीवाई, भोजपुरी, मागधी और मैथिली ही है। वास्तव में कन्नौजी-ब्रज को एक ही उपभाषा के दो भेद और बैसवारी-अवधी को एक ही उपभाषा के दो भेद कहना उचित ही है। 'रीवाई' (रीवा की बोली) भी बैसवारी अवधी उपवर्ग के निकट है। गढ़वाली, कुमाऊँनी और नेपाली को हिमालई शाखा नाम दे सकते हैं। अब शेष बोलियों को दो समूहों में रखकर विचार करना ठीक होगा।

(१) ब्रज-कन्नौजी (२) बैसवारी-अवधी-रीवाई, भोजपुरी, मागधी और मैथिली। इस दूसरे समूह को पूर्वी हिंदी अथवा 'पूरबी' कह सकते हैं। यह क्षेत्र प्राचीन शूरसेन और मगध के मध्यस्थित है और इस भाग में शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी प्राकृतों की सत्ता थी। यदि इन बोलियों को नीचे के तीन वर्गों में रख कर विचार करें तो वे इस प्रकार होंगे :

पश्चिमी हिंदी	कन्नौजी-ब्रजी, खड़ी बोली	शौरसेनी
पूरबी हिंदी	बैसवारी अवधी, रीवाई, भोजपुरी	अर्धमागधी
	मगही, मैथिली।	मगधी

ग्रियर्सन ने कभी 'हिंदी' के अंतर्गत उसकी दो पश्चिमी और पूरबी बोलियों को रखा और कभी 'हिंदी' से केवल पश्चिमी हिंदी को ग्रहण किया। भोजपुरी, मगही और मैथिली के लिए वे 'बिहारी' नाम सुझाते हैं। 'बिहारी' नाम राजस्थानी की तरह गढ़ा हुआ है। हमारे मत में ब्रजभाषा और पूरबी केवल दो भेद उचित हैं। इन दोनों नामों का प्रयोग मध्यकाल में इस क्षेत्र के कवियों ने किया भी था। इस 'पूरबी' को व्यापक मान कर उसी के अंतर्गत बिहार की भोजपुरी, मगही और मैथिली का भी विचार करना उचित है।

उच्च हिंदी

अब हम केलाग आदि यूरोपियन हिंदी पंडितों की उच्च हिंदी-विषयक धारणा की चर्चा करेंगे। यह उच्च हिंदी वास्तव में खड़ी बोली का ही नामान्तर है। केलाग ने प्रथम संस्करण में इसे ही स्टैंडर्ड 'हिंदी' लिखा था, पर द्वितीय संस्करण में उन्होंने भी 'हाई हिंदी' का प्रयोग किया। यह शब्द 'हाई जर्मन' के सादृश्य पर गढ़ा गया था। केलाग का कथन है कि यह कहीं

भी घर की बोली नहीं है (इन नो प्लेस दि लैंग्वेज ऑफ द होम्स)[१] और 'जीवित हिंदी बोलियों में ब्रज और कन्नौजी से इसका घनिष्ट संबंध है।' (ऑफ द लिविंग हिंदी कलोकियल्स इन स्टेंड्स इन क्लोजेस्ट कनेक्शन विथ द ब्रज एंड कन्नौजी) यह खड़ी बोली-विषयक धारणा 'शुद्ध' नहीं है, मात्र भ्रांतिपूर्ण है। 'खड़ी बोली' वास्तव में एक बोली है—दिल्ली के पास-पड़ोस की—और इसकी सत्ता दिल्ली-मेरठ की भूमि के घरों में भी है। इसे ही मध्यकाल में 'देहलवी' 'ज़बाने देहली' और लल्लू जी लाल ने 'दिल्ली आगरे की खड़ी बोली' के रूप में स्मरण किया था। ब्रजभाषा भी कभी ब्रज बोली थी, काव्य में प्रतिष्ठित होने के बाद वह 'ब्रजभाषा' बन गई। यह खड़ी बोली ही मुसलमान लेखकों के प्रयोग के बाद रेखता, और उर्दू आदि बन गई और लल्लू जी ने इसे ही खड़ी बोली नाम देकर इसमें से यामिनी भाषा निकाल कर, प्रेमसागर में स्थान दिया। यह ठीक है कि अंग्रेजी सरकार के प्रभाव और मिशनरियों की क्रियाशीलता का फल यह हुआ कि यह उच्च वर्गों के बीच शीघ्रता से १९ वीं सदी में फैल गई। इस प्रसंग में केलाग का विचार इस प्रकार है—यह (उच्च हिंदी) भारत की अंग्रेजी संस्कार के राजनैतिक प्रभाव और इस शताब्दी में मिशनरी कार्य के फलस्वरूप अस्तित्व में आई। 'उच्च हिंदी' शब्द से यूरोपियन विद्वानों का कुछ वर्षों से अभिप्राय उस बोली से हैं, जो व्याकरणिक रूप और गठन में मुख्यतः उर्दू या हिंदुस्तानी के समान हैं, जो हिंदुस्तान के मुसलमानों की वर्नाक्यूलर है। इसे वास्तव में, उच्च हिंदी का अरबीनिष्ठ या फारसीनिष्ठ रूप कह सकते हैं।[२] यह वह बोली है, जिसमें सरकार और अधिकांश में अंग्रेज और अमेरिकन मिशनरी अपनी हिंदी पुस्तकें छापते हैं और जिसमें हिंदी-भाषी जनता के साथ पत्र-व्यवहार किया जाता है। यद्यपि अधिकांश हिंदी भाषा जनता इसे समझती है, यह उच्च हिंदी कहीं भी हिंदुओं की घरेलू बोली नहीं हैं।' इसके बाद ग्रियर्सन का साक्ष्य भी केलाग ने

१. पे० ६७ दि० संस्करण।

. By this term 'High Hindi European scholars, of late years, have denoted that dialect of Hindi which essentially agrees in grammatical forms and constructions, with the Urdu or Hindustani, the vernacular of the Muhammadans of India. This latter, indeed might be well described as an Arabicized or Persianised form of High Hindi.

उद्धृत किया है, जिसमें ग्रियर्सन ने बताया है कि यहाँ के रहने वाले घरों में परस्पर जो भाषा बोलते हैं, वह गठन और मूल की दृष्टि से उस भाषा से भिन्न होती है, जिसे यूरोपियन सीखते हैं और जो कचहरियों में चलती है।

हिंदी में फारसी-अरबी शब्द

केलाग का कथन है कि 'प्योर हिंदी' के नाम पर कुछ विदेशी भी हिंदी में से फारसी-अरबी शब्दों का बहिष्कार करना आवश्यक समझते हैं और इसका समर्थन भी करते हैं। उनके समय में ए० परिगन की भी यही नीति थी। गिलक्रिस्ट ने भी इसी भाषानीति के कारण खड़ी बोली से यामिनी भाषा निकाल कर प्रेमसागर की भाषा लिखवाई थी। पर सच्ची स्थिति यह है कि जिस रूप में लोग प्रायः बोलते हैं, उस लोपित रूप में अरबी-फारसी का सर्वथा वर्जन नहीं होता। जन-हिंदी में बहुतेरे अरबी-फारसी शब्द बराबर चलते हैं और यदि उनके स्थान पर उनके संस्कृत पर्याय बोले जाएँ तो लोगों को कुछ अजीब-सा लगने लगता है, बहुप्रचलित अरबी-फारसी शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्द अपरिचित कृत्रिम और दुर्बोध लगते हैं। राज व्यवस्था और दैनन्दिन व्यवहार संबंधी सैकड़ों अरबी शब्द मध्यकाल में हिंदी की सभी बोलियों में इस प्रकार घुलमिल कर एक हो गए थे, कि उन्हें निकाल कर उनके स्थान पर संस्कृत पर्याय रखना भाषा-शुद्धि के नाम पर अनुचित नीति है। केलाग ने रामायण से गरीबनवाज, साहेब, लायक, बकसीस, बजाज, सराफ़, गुमान, गर्द, दरबार, गनी गरीब जिनिस, जहाज, लगाम, जीन आदि शब्द 'मानस' से निकाल कर यह दिखलाया है कि तुलसीदास ने भी 'शुद्ध हिंदी' नहीं लिखा। अतः हिंदी के तद्भव-तत्त्व पर भी केलाग ने एक भाषाविद् के योग्य शास्त्रीय विचार किया। व्युत्पत्ति-प्रकरण उनके इस व्याकरण की विशेषता है। ऐसा विस्तृत विवेचन किसी हिंदी व्याकरण में नहीं हुआ है। गुरुजी ने व्युत्पत्ति को उचित महत्त्व अपने व्याकरण में नहीं दिया। व्युत्पत्ति अथवा निरुक्त भारतीय व्याकरण शास्त्र में अनिवार्य माना जाता है।

हिंदी में तत्सम शब्द

हिंदी में तत्सम शब्दों के प्रयोग के सामान्य नियम पर भी प्रकाश डाला गया है। उस संबंध में यह बतलाया गया है कि संस्कृत शब्द का कर्त्ता एकवचन रूप, विभक्ति-हीन प्रयुक्त होता है, अतः दातृ, मातृ, नामन्, महिमन् नदी, दाता माता, नाम, महिमा आदि रूप चलते हैं। पर मनस्, चक्षुस् आदि

अस्, उस् में अन्त होने वाले शब्दों का स् भी लुप्त हो जाता है और मन, चक्षु ही हिंदी में चलते हैं। तर, तम प्रत्ययांत शब्द प्रायः बोलचाल में नहीं आते हैं। मन्दतर, पुण्यतर ऐसे शब्द सामान्यतः बोलचाल में नहीं चलते, पर श्री से बना श्रेष्ठ और प्रिय से बना प्रियतम प्रायः प्रयुक्त होता है। तत्सम क्रियाएँ हिंदी में नहीं हैं। कृदंतीय प्रत्ययों में अधिकतर वृत् से वर्तमान, कृ से कृत, वच् से उक्त और कृत से कर्त्तव्य, भू से भविष्य आदि शब्द चलते हैं। केलाग की पुस्तक के प्रकाशन के वाद संस्कृत शब्दों की बाढ़ आई और अनेक शास्त्रीय विषयों की शब्दावली और मुख्यतः विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में संस्कृत धातु, उपसर्ग-प्रत्यय आदि का अवलब लिया गया। अतः धीरे-धीरे हिंदी संस्कृतमुखी होने लगी।

लिंग-विषयक विचार

हिंदी का लिंग-विधान कठिन और जटिल माना जाता है। कोई शब्द क्यों पुंलिंग है और उसी वर्ग या ढंग का दूसरा शब्द क्यों स्त्रीलिंग, इसका कारण बताना कभी-कभी कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को सभी विद्वान् जानते हैं। हिंदी के व्याकरण लेखकों ने पर्वत, धातु और तिथि वाचक शब्दों के लिंग-निर्णय के लिए कुछ नियम दिए हैं, पर उनके लिए वे कोई कारण नहीं बता सके। केलाग ने इस संबंध में अनुमान रूप में कुछ कारण सुझाए हैं।

पर्वतों के नाम पुंलिंग कदाचित् इसलिए है, चूँकि पर्वत, गिरि आदि पर्वत वाचक शब्द पुंलिंग है। इसी प्रकार धातुओं, पत्थरों आदि के वाचक शब्द भी पुंलिंग है, चूँकि धातु, पाषाण पत्थर, रत्न आदि पुल्लिंग है। चाँदी, मृत्तिका, मक्षिका आदि इसलिए स्त्रीलिंग है, चूँकि इनमें ई और आ स्त्री प्रत्यय हैं। सप्ताह में वारों के नाम पुंलिंग है, चूँकि दिन, दिवस आदि स्वयं पुंलिंग है। 'तिथि' स्त्रीलिंग है, इसलिए तिथिवाचक शब्द स्त्रीलिंग है।

ये सुझाव अनुमान रूप में ही केलाग ने दिए हैं। इस शब्दों के लिंग का कारण हमें यह लगता है कि इन शब्दों के अंत्य स्वर के आधार पर तत्सम शब्दों का लिंग निश्चित हुआ है। तत्सम आकारांत पुंलिग और आकारांत स्त्रीलिंग होता हैं। तद्भव में प्रायः अकारांत स्त्रीलिंग और अकारांत पुंलिंग। किन्तु तद्भव में प्रायः मूल तत्सम रूप के लिंग का भी प्रभाव पड़ता है। इन नियमों से भी पर्वत्, धातु, दिन, तिथिवाचक शब्दों के लिंग जानने में सहायता मिलती है।

सर्वनाम का विवेचन

सर्वनामों के विवेचन की रीति में भी एक नवीनता दीख पड़ती है—जो प्राय: भारतीय लेखकों में नहीं मिलती।

आपके अनुसार सर्वनाम में लिंग का कोई चिह्न नहीं रह गया है। इनकी रूपावली में कुछ अनियम दीख पड़ता है। अन्य विशेषताओं का इस प्रकार उल्लेख किया गया है :

उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष में 'रा' संबंध का चिह्न है। जैसे मैं—मेरा, तुम—तुम्हारा। इस 'रा' के योग के पूर्व मैं और तुम में कुछ विकार होता है। निजवाचक 'आप' में संबंधचिह्न 'ना' लगता है जो 'आत्मनः' (सं०) का प्रभाव जान पड़ता है।

इसके बाद लेखक ने सर्वनाम रूपों की रचना समझाने के लिए एक सारिणी दी है, जिससे सर्वनामों के विविध रूप स्पष्ट हो जाते हैं। यह, वह निश्चय-वाचक सर्वनाम हैं। इन दोनों निचश्यवाचक और संबंधवाचक, परस्पर संबंध सूचक और प्रश्नवाचक सर्वनामों के विकारी एकवचन रूपों में 'स' जोड़ा जाता है, यह बात इस, उस, जिस, तिस, किस को देखने से स्पष्ट हो जाती है। बहुवचन रूपों में न या न्ह' चिह्न है। इन, उन, जिन, तिन, किन और इन्हें, उन्हें, जिहें, तिहें, किहें आदि रूपों को देखें। इ का संबंध य से, उ का व से है। केलाग ने इसे इस प्रकार से समझाया है—

	समीप बोधक निश्चय वाचक	दूर बोधक निश्चय वाचक	संबंध वाचक	नित्य संबंधी	प्रश्न वाचक
कर्त्ता कारक	य	व	ज	स	क
विकारी कारक	इ	उ	जि	ति	कि

चूँकि केलाग ने पुराने खड़ी बोली ग्रंथों की भाषा के आधार पर अपना व्याकरण बनाया था, इसलिए इसमें ऐसे कुछ रूप भी मिलते हैं, जो अब नहीं चलते। इन्हीं को, उन्हीं को, जिन्हों को, तिन्हों को, इन्हों पर, उन्हीं पर, जिन्हों पर, तिन्हों पर, किन्हों पर आदि रूप अब प्रचलित नहीं रह गए हैं।

य, व, ज, स, क को केलाग सार्वनामिक मूल (प्रोनामिलिन बेस) मानते हैं। वास्तव में इनसे अनेक प्रकार के शब्द बनते हैं—यहाँ, वहाँ, जहां, तहाँ, कहाँ आदि। विकारी कारकों के इ, उ, जि, ति, कि, में तना जोड़कर इतना, उतना, जितना, तितना, कितना आदि सार्वनामिक विशेषण मात्रा सूचक बनते

हैं, पुनः इन अक्षरों के वृद्धि रूप में 'सा' जोड़ने से सार्वनामिक विशेषण (गुण वाचक) बन जाते हैं—ऐसा, वैसा, जैसा, तैसा, कैसा।

क्रिया-विचार

केलाग का कथन है कि विधि रूप (इपेम्रेटिव) को यदि विशेष प्रकार का भविष्य मान लें तो हिंदी में कुल पंद्रह कालभेद (टेंस) हैं। इनमें से तीन काल भेद धातु से और शेष बारह भेद प्रत्ययों के योग से बनते हैं। क्रिया का सामान्न रूप (इनफिनिटिव) में ना युक्त होता है, जैसे चलता से चल, गिरना से गिर। इसके बाद आपने दो प्रकार के कालिक प्रत्यय बताए हैं—अपूर्णकालिक (इंपरफेक्ट) और पूर्णकालिक (परफेक्ट) प्रत्यय। इसके क्रमशः उदाहरण है 'ता' और 'आ' चलता, गिरता अपूर्ण प्रत्यय है और चला गिरा पूर्ण।

इसके बाद धातु के दो भेद किए गए हैं—'क्लोज' और 'ओपेन' अर्थात् व्यंजनांत और स्वरांत धातु। चल, गिर व्यंजनांत और ला, खा, दे स्वरांत धातु बताए गए हैं। यहाँ केलाग ने भी चल, गिर को व्यंजनांत धातु मानने में भूल की है। वास्तव में चल् गिर् व्यजनांत धातु है, चल गिर आकारांत हैं। यह 'भूल' इसलिए हुई कि धातु का स्वरूप (चलना, गिरना आदि) ना रहित रूप को माना गया। श्री कामताप्रसाद गुरु ने चल, गिर को धातु मान लिया हैं। मेरे विचार में चल् गिर् को व्यंजनांत धातु कहना चाहिए। चल, गिर को धातु (वर्बल रूट) न कहकर धातुमूल (वर्बलस्टेम) कहना उचित है।

'आ' कालिक प्रत्यय जुड़ने के पूर्व नीचे लिखे परिवर्तन होते हैं—आकारांत इकारांत, और ओकारांत—धातुओं में आ जुड़ने के पूर्व 'य' का आगम होता है।

(२) ईकारांत धातु में ई का इ हो जाता है।

ला—लाया, पी—पिया, बो—बोया।

धातुओं में 'आ' (पूर्ण कालिक प्रत्यक) नियमित रूप से जुड़ता है। केवल सात धातुओं में कुछ परिवर्तन होता है। ये धातु हैं—हो, मर, कर, दे, ले, जा और ठान जिनके रूप क्रमशः बताए गए हैं। हुआ, मुआ, किया, दिया, लिया गया ठया। यहाँ ह, भू, की दी, ली, ग और ठ रूप धातु धारण करते हैं ऐसा केलाग ने माना है। आधुनिक हिंदी में 'ठया' नहीं चलता है, अतः 'ठान' (ठावना क्रिया) को इस सूची स्थान नहीं मिलना चाहिए। आज कल ठान का भूतकाल ठाना ही चलता हैं। मर और कर के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इसके मरा

और करा रूप भी चलते हैं : 'मुआ' रूप भी अब शिष्ट नहीं माना जाता। विशेषण या संज्ञा रूप में ही मुआ का प्रायः प्रयोग होता है। 'उस मुए का नाम न लो।' वह मुए बराबर है। अतः वास्तव में स्वरांत धातुओं में दे, ले और जा' हो को ही अनियमित मानना उचित है। दे—दिया, ले—लिया, हो—हुआ। जा—गया।

काल-भेद विचार

इसके बाद हिंदी के १५ काल भेदों को तीन समूहों (ग्रुपों) में रखकर विचार किया गया है। प्रथम समूह में धातु में मात्र प्रत्यय के योग से बने काल हैं, द्वितीय समूह में सहायिका क्रिया और 'अपूर्ण प्रत्यय' से बने और तृतीय समूह में सहायिका क्रिया और 'पूर्ण प्रत्यय' से बने काल हैं। काल रूपों की रचना की दृष्टि से यह वर्गीकरण अधिक उचित और वैज्ञानिक लगता है। गुरुजी अपूर्ण प्रत्यय को वर्तमान कालिक कृदंत और 'पूर्ण प्रत्यय' को भूत कालिक कृदंत कहते हैं।

केलाग ने इस प्रकार 'समूह' बनाए है :—

समूह—१ धातु से बने काल	'गुरु' के दिए नाम
१. कंटिंजेंट फ्यूचर	(संभाव्य भविष्य)
२. एबसोल्यूट फ्यूचर	(सामान्य भविष्य)
३. इंपरेटिव फ्यूचर	(विधि)
समूह—२ अपूर्ण प्रत्यय से बने काल	
१. इंडेफिनिट इंपरफेक्ट	(सामान्य संकेतार्थ हेतु-हेतुमद्भूत)
२. प्रेजेंट ,,	(सामान्य वर्त्तमान)
३. पास्ट ,,	(अपूर्ण भूत)
४. कंटिंजेंट इंपरफेक्ट	(संभाव्य वर्त्तमान)
५. प्रिजंपटिव ,,	(संदिग्ध वर्त्तमान)
६. पास्ट कंटिंजेंट ,,	(अपूर्ण संकेतार्थ)
समूह—३ पूर्ण प्रत्ययों से बने काल	
१. इंडेफिनिट परफेक्ट	(सामान्य भूत)
२. प्रेजेंट ,,	आसन्नभूत (पूर्ण वर्त्तमान)
३. पास्ट ,,	(पूर्ण भूत)
४. कंटिंजेंट ,,	(संभाव्य भूत)

५. प्रिजंपटिव ,, (संदिग्ध भूत)
६. पास्ट कंटिंजेंट ,, (पूर्ण संकेतार्थ)

इस प्रकार के वर्गीकरण को स्वयं लेखक ने नवीन कहा है। आपके अनुसार ऐसी व्यवस्था और ऐसा नामकरण किसी हिंदी या हिंदुस्तानी व्याकरण में अब तक नहीं हुआ है। लेखक विवेचन की इस रीति को उचित और गंभीर दार्शनिक सिद्धांतों पर अवलंबित बताते हैं। अतः हम उनके विचार को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

'उपर्युक्त व्यवस्था और नामकरण इसके पूर्व के हिंदी या हिंदुस्तानी व्याकरणों से भिन्न है, पर ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह गंभीर दार्शनिक सिद्धांतों पर अवलंबित है और विभिन्न कालों के पारस्परिक संबंधों और विशिष्ट लक्षणों को सही ढंग से व्यक्त करता है। इन समूहों में न केवल बाह्य वैशिष्ट्य है और क्रिया के तीन पृथक् अंगों से ये भिन्न प्रकार से बनते हैं, पर प्रत्येक समूह के अन्तर्गत स्थित कालों में एक ऐसी पृथक् मूल धारणा विद्यमान है, जिसके कारण उनके विभिन्न प्रयोग संबंधित हैं। प्रत्येक 'क्रिया' पर, चाहे वह वास्तविक हो या संभावित, प्रगति की दृष्टि से तीन प्रकार से विचार किया जा सकता है अर्थात्—(१) अभी आरंभ नहीं हुआ है, (२) आरंभ हुआ है, पर पूर्ण नहीं हुआ है अथवा (३) पूर्ण हो चुका है। ऐसा विश्वास है कि काल के इन तीनों समूहों में ये ही मूल भाव अलग-अलग विद्यमान हैं।'[1]

1. The above arrangenent and nomenclature differs somewhat from any given in earlier Hindi or Hindustani Grammars; but it is believed to rest on sound philosophical principles, and to give a more precise expression to the distinctive characteristics and mutual relations of the several tenses. Not only do these several groups have an outward individual character, in respect of this deviation respectively from three different part of the verb, but one disitictlive radical conception will be found to underlie all the tenses of each group, with which all these various usages may be connected. Every action or state, whether actual or contigent, may be conceived of under three different aspects, relatively to

केलांग के तीन समूहों में काल-विवेचन को गुरुजी ने भी स्वीकार कर लिया है (देखिए हिंदी व्याकरण, पृष्ठ ३४६-५०) पर उनका नामकरण अपने ढंग पर किया है। उन्होंने भी तीन वर्ग बनाए हैं। पहले वर्ग में धातु से बने हुए काल, दूसरे वर्ग में वर्त्तमान कालिक कृदंत से और तीसरे वर्ग में भूतकालिक कृदंत से बने कालों को स्थान दिया है। पर उनका नामकरण भ्रामक है, क्योंकि वह कहीं अंग्रेजी रीति पर है और कहीं अपनी रीति पर है। उदाहरण के लिए दूसरे वर्ग के वर्तमान कालिक कृदंत से बने काल का नाम (१) सामान्य संकेतार्थ (हेतु हेतुमद्‌भूत काल), (२) सामान्य वर्तमान, (३) अपूर्ण भूत, (४) संभाव्य वर्तमान, (५) संदिग्ध वर्तमान, (६) अपूर्ण संकेतार्थ दिया है। किसी काल-भेद के नाम के साथ वर्तमान, किसी के साथ भूत और किसी के साथ संकेतार्थ इस तरह का नामकरण भ्रमोत्पादक होता है। केलाग ने इस समूह के कालों को 'अपूर्ण काल' (इम्परफेक्ट) कहा है। तीसरे वर्ग में भी गुरुजी एक ही काल को आसन्नभूत भी कहते हैं और वर्तमान भी। 'पूर्ण वर्त्तमान' प्रेजेंट परफेक्ट का अनुवाद जान पड़ता है। पर आसन्न भूत नाम देकर पूर्ण वर्तमान को कोष्ठ में रखा है।[1] इस वर्ग में भी एक काल का नाम है 'पूर्ण संकेतार्थ' जो 'पास्ट कन्टिन्जेन्ट' परफेक्ट का अनुवाद जान पड़ता है। यह न तो शब्दशः अनुवाद हुआ और न अच्छा। गुरु ने कहीं कन्टिन्जेनट का अनुवाद सभाव्य और कहीं संकेतार्थ किया है। यह भी ठीक नहीं हुआ। इन्डेफिनिट का अनुवाद सामान्य नहीं जँचता। लगता है कि गुरु जी भविष्य, वर्त्तमान और भूत के क्रम के प्रसंग में ही अपने सभी काल भेदों को रखना चाहते थे। केलाग काल-भेदों पर क्रिया-व्यापार की अनारंभता, अपूर्णता और

---

its non-progress. i, e, (1) as not yet begun, (2) as begun, but non completed, or (3) as completed. It is believed that these are the essentials ideas which severally pervade these three groups of tenses.—A Grammar of the Hindi Language, P. 228.

१. आसन्न भूतकाल से पूर्ण वर्तमान काल को गुरु जी ने अधिक सार्थक माना है। 'कालों के नामों में हमने केवल प्रचलित आसन्न भूतकाल' के बदले 'पूर्ण वर्तमान काल' नाम रखा है। इस काल से भूत काल में आरंभ होने वाली क्रिया की पूर्णता वर्त्तमान काल में सूचित होती है, इसलिए यह पिछला नाम ही अधिक सार्थक जान पड़ता है और इससे कालों के नामों में एक प्रकार की व्यवस्था भी आ जाती है।'

—हिंदी व्याकरण, पृष्ठ ३३२

पूर्णता की दृष्टि से विचार करते हैं। काल-रचना को समझने के लिए केलाग की यह रीति सरल-सुगम है, इसमें संदेह नहीं।

अन्य विषयों के विवेचन में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। क्रिया-विशेषण और अव्यय-विवेचन में भी व्युत्पत्ति पर विचार हुआ है और लेखक ने प्रत्येक हिंदी शब्द को संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश की शृंखला के बीच रख कर विचार किया है, तथा जनपदी बोलियों के व्याकरणिक रूप भी सर्वत्र विवेचित किया गया है। हिंदी में अब भी सभी जनपदी रूपों के अच्छे व्याकरण नहीं लिखे गये हैं। 'रामचरित मानस' के व्याकरण पर भी इस पुस्तक में अच्छा प्रकाश पड़ा है। किसी कृति का मूल्यांकन करते समय उसके रचना-काल पर विचार करना उचित है तथा यह भी देखना चाहिए कि पूर्व-प्रकाशित ग्रन्थों के संदर्भ में उसका क्या महत्त्व है। इस दृष्टि से इस व्याकरण की समीक्षा में यह अवश्य कहा जा सकता है कि यह अपने पूर्ववर्त्ती व्याकरण से—चाहे वे यूरोपियनों के लिए हों अथवा भारतीयों के—बहुत प्रौढ़, विद्वतापूर्ण और भाषाशास्त्रीय दृष्टि से सर्वांगपूर्ण है। बीम्स, हार्नले, ग्रियर्सन और अन्य संस्कृत-प्राकृत के गम्भीर अध्येताओं की पूर्वप्रकाशित रचनाओं से लेखक ने पर्याप्त लाभ उठाया। यदि इस कृति का हिंदी अनुवाद १९वीं शती के चतुर्थ चरण में निकल गया होता, तो हिंदी पाठकों को यह देखकर विस्मय होता कि अंग्रेजों ने हिंदी व्याकरण के लिखने में कितना श्रम किया था। ऐडम या एथरिंगटन के व्याकरण इसकी तुलना में बाल-बोध व्याकरण जान पड़ते हैं। यह केलाग का व्याकरण विबुधों को परितोष देता है। आज के पाठक को इसका एक ही अभाव खलता है, कि लेखक के आगे हिंदी गद्य के श्रेष्ठ उदाहरण नहीं थे। हरिश्चन्द्र के उदय-पूर्व के लिखित गद्य-ग्रन्थों के आधार पर ही मुख्यतः 'उच्च हिंदी' का व्याकरणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। १८९२ ई० में इस व्याकरण का द्वितीय संस्करण निकला, जिसका आमुख केलाग ने कैनेडा में बैठकर लिखा था। जान पड़ता है कि उस संस्करण में नव प्रकाशित भारतेन्दु-साहित्य से विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका। हो सकता है भारतेन्दु के नाटक केनेडा में लेखक को सुलभ नहीं थे अथवा उनका इसलिए विशेष उपयोग नहीं किया गया, चूंकि वे पाठ्यक्रम में नहीं थे। लक्ष्मणसिंह की शकुंतला और लाला श्रीनिवास दास के 'रणधीर और प्रेममोहिनी' का वाक्य-विन्यास के प्रकरण में उपयोग पर्याप्त रूप में हुआ है। सब मिलाकर यह कहने में हमें संकोच नहीं है कि केलाग का यह व्याकरण

प्रशंसनीय और गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। डा० श्रीकृष्णलाल भी 'हिंदी व्याकरण का विकास' में लिखते हैं—'विदेशियों द्वारा लिखित सभी व्याकरण-ग्रन्थों में केलाग का व्याकरण सर्वोत्तम स्वीकार किया जाता है।[1]

१३. एडविन ग्रीव्स

आपका जन्म ५ सितम्बर, १८५४ ई० को लंदन में हुआ था। १८८१ ई० में आप भारत आए और तब से १८९२ ई० तक मिर्जापुर में पादरी रहे। आपने हिंदी में पाँच पुस्तकें लिखीं, जिनका संबंध ईसाई मत से है। उनमें से दो पुस्तकों के कई संस्करण हुए। आपका एक लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'तुलसीदास का जीवन चरित' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था।[2]

ग्रीव्स का 'हिंदी ग्रामर' भी अंग्रेजी माध्यम से हिंदी व्याकरण के ज्ञान के लिए उपयोगी माना जाता है। केलाग की पुस्तक को ग्रीव्स भी सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, पर आरंभ में उस सेविशेष लाभ नहीं उठाया जा सकता। वह प्रौढ़ अध्येताओं के लिए ही विशेष उपयोगी है। अतः ग्रीव्स ने १८९६ ई० में (आधुनिक हिंदी का व्याकरण) 'ग्रामर ऑफ मार्डन हिंदी' नाम से एक व्याकरण रचा जो हिंदी सीखने वालों के लिए उपयोगी था। इसे मेडिकल हाल प्रेस, बनारस के डा० लज़ारस ने प्रकाशित किया था। इसका १९०८ ई० में दूसरा संस्करण भी निकला था। ग्रीव्स पादरी थे और प्रचार के सिलसिले में उन्हें हिंदी का अच्छा ज्ञान हो गया। इस अनुभव से लाभ उठाकर आपने एक नवीन व्याकरण १९१९ ई० में लिखा, जिसका नाम हिंदी ग्रामर है। अपनी सुबोधता और स्पष्टता के कारण इस पुस्तक को लोकप्रियता मिली। इस पुस्तक के बाद ही नागरी प्रचारिणी सभा से एक अच्छे व्याकरण को तैयार कराने की बात उठी और यह भार गुरु जी को दिया गया। ग्रीव्स ने १९१९ ई० में प्रकाशित अपने हिंदी ग्रामर के बाद अपनी पूर्व प्रकाशित पुस्तक को अपने शब्दों में 'रिटायर' हो जाने दिया।

इस पुस्तक में मुख्यतः आधुनिक हिन्दी को ही लिया गया। केवल कुछ स्थानों पर ब्रजभाषा की चर्चा मात्र कर दी गई है। १९१९ ई० तक हिंदी पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुकी थी और द्विवेदी जी के समान साहित्य-सूत्रधार

१. प्रकाशकीय वक्तव्य–हिंदी व्याकरण का विकास–हिंदी शब्दानुशासन, पृष्ठ २।
२. हिंदी ग्रामर–एडविन ग्रीव्स, लंदन मिशनरी सोसाइटी।

पाकर वेग से उन्नति करने लगी थी। ग्रीव्स ने लिखा है कि स्वाभिमानिनी हिंदी स्टैंडर्ड रूप धारण करने लगी है और अब इसके नये व्याकरण की आवश्यकता अनुभव होने लगी है।

आधुनिक हिंदी

इस पुस्तक में 'आधुनिक हिंदी' के संबंध में लेखक ने यह विचार व्यक्त किया है—"१८ वीं शताब्दी के आरंभ में कलकत्ते में लल्लू जी लाल और सदल मिश्र नामक दो पंडितों ने, कालेज के यूरोपियन हेड (प्रधान) की हिदायत और प्रेरणा से, जिसमें वे प्रोफेसर थे, उस आंदोलन को प्रवर्त्तित, बल्कि विकसित किया। यह कहना अधिक ठीक है, जो आधुनिक हिंदी के अस्तित्व का कारण हुई। प्रयास यह हुआ कि प्राकृत या अपभ्रंश से अधिक और संस्कृत से कुछ अंश में शब्दावली ग्रहण की जाय और जहाँ तक व्यावहारिक हो ऐसे फारसी और अरबी शब्दों का बहिष्कार हो, जो पहले से ही स्वाभाविक रूप में घुल-मिल न गये हों।" 'ग्रीव्स अन्य यूरोपियन लेखको की तरह यह नहीं मानते कि आधुनिक हिंदी का जन्म कालेज (फोर्ट-विलियम) में हुआ, वे केवल यह कहते हैं कि आधुनिक हिंदी के आंदोलन का आरंभ या प्रवर्त्तन कालेज में हुआ। इस से कदाचित् किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। आधुनिक हिंदी में फारसी-अरबी के शब्दों को स्थान नहीं मिले यह भाषानीति यूरोपियन अधिकारी (डा० गिलक्रिस्ट) की थी। यह गिलक्रिस्ट की भाषानीति के अनुसार थी और इसकी पुष्टि लल्लू जी लाल और सदल मिश्र के लेखों से हो जाती है।

---

1. In the beginning of the 18th Century, two pundits in Calcutta, Lallugee Lal and Sadal Misra, instructed and inspired by the Europen head of the College, in which they were professors, initiated or to speak more exactly, developed, a movement which is largely responsible for the existence of modern Hindi. The endeavour was made to draw an the Prakrits or Apabhramsa, and to some extent on Sanskrit, for the vocabulary, and to exclude, as far as practically Persian and Arabic words not already naturalised.

Hindi Grammar P. 3

नवीन व्याकरणिक शब्द

इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमें अंग्रेजी परिभाषिक शब्दों के साथ-साथ हिंदी व्याकरण में स्वीकृत पारिभाषिक शब्द भी दिए गए हैं। हिंदी व्याकरण में अनेक पारिभाषिक शब्द संस्कृत से लिए गए हैं और अनेक अंग्रेजी ग्रामर के शब्दों के आधार पर गढ़े गए हैं। इन्हें नवीन संस्कृत शब्द कह सकते हैं, चूंकि संस्कृत में पहले से वे वर्त्तमान नहीं थे, पर हैं संस्कृत के ही। जैसे अन्य शास्त्रों में सैकड़ों शब्द अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के आशय व्यक्त करने को गढ़े गये, वैसे ही व्याकरण में भी अंग्रेजी ग्रामर के बहुतेरे शब्द लेकर उनका संस्कृत अनुवाद किया गया।

नीचे ऐसे नवीन व्याकरणिक शब्दों की सूची दी जाती है, जिससे ज्ञात होगा कि अंग्रेजी ग्रामर ने हिंदी-व्याकरण-लेखन को किस मात्रा और रूप में प्रभावित किया है।

हिन्दी	अंग्रेजी
वर्णविचार	आर्थोग्राफी
वाक्यविचार	सिनटैक्स
क्रिया विशेषण	एडवर्ब
संयोजक अव्यय	कन्जंक्शन
विस्मयादिक अव्यय	इटरजेक्शन
विस्यमादिक बोधक अव्यय	,,
जातिवाचक संज्ञा	कामन नाउन
व्यक्तिवाचक सज्ञा	प्रोपर नाउन
भाववाचक संज्ञा	संबस्ट्रेक्ट नाउन
प्रथम पुरुष	फर्स्ट पर्सन
निश्चयवाचक सर्वनाम	डेफिनिट प्रोनाउन
अनिश्चयवाचक ,,	इंडेफिनिट प्रोनाउन
संकेतवाचक ,,	डिमान्स्ट्रेटिव प्रोनाउन
प्रश्नवाचक ,,	इंट्रोगेटिव प्रोनाउन
संबंध वाचक ,,	रिलेटिव ,,
निजवाचक ,,	रिफ्लेक्टिव ,,
आदरसूचक ,,	आनरफिक ,,

(आदर प्रदर्शक, आदरार्थक)

प्रेरणार्थक क्रिया	काजल वर्ब
संयुक्त क्रिया	कंपाउण्ड वर्ब
सहायक क्रिया	आक्जिलरी वर्ब
कर्तृवाचक संज्ञा	नाउन्स आफ एजेन्सी
क्रियार्थक ,,	वर्बलनाउन
संभाव्य भविष्यत्	कन्टिन्जेन्ट फ्यूचर
सामान्य ,,	एबसोल्यूट ,,
सामान्य वर्त्तमान	प्रेजेन्ट इंपरफेक्ट
अपूर्ण भूत	पास्ट ,,
संभाव्य वर्त्तमान	कन्टिन्जेन्ट प्रेजेंट
संदिग्ध वर्त्तमान	प्रीजम्पटिव ,,
सामान्य भूत	इन्डेफिनिट पर्फेक्ट
आसन्न भूत	प्रेजेन्ट पफक्ट
पूर्ण भूत	पास्ट ,,
संभाव्य भूत	कंटिन्जेंट ,,
संदिग्ध भूत	प्रिजम्पटिव ,,
विधि	इम्परेटिव ,,
कालवाचक क्रियाविशेषणण	एडवर्ब आफ टाइम
स्थानवाचक क्रियाविशेष	एडवर्ब आफ प्लेस
कालवाचक ,,	एडवर्ब आफ टाइम
भाववाचक अथवा रीतिवाचक	एडवर्ब आफ मैनर
परिणामवाचक	एडवर्ब आफ टाइम
विभाजक अव्यय	डिसजंक्शन
वाक्य विभाग अथवा वाक्य विश्लेषण	एनालिसिस
पदान्वय	पार्जिंग

इन अनुवादों में अनेक हिंदी व्याकरण में बंगला व्याकरण के माध्यम से लिए गए थे। पादरी आदम साहब के व्याकरण से पहले के किसी हिंदी व्याकरण का अब तक पता नहीं चला है। आदम साहेब के व्याकरणिक शब्दों पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट है। अतः हिंदी में जो नवीन व्याकरणिक शब्द

स्वीकृत और प्रचलित हुए, उनमें अनेक प्राय: बंगला लेखकों द्वारा किए हुए संस्कृत अनुवाद हैं। श्री कामता प्रसाद गुरु ने कुछ पारिभाषिक शब्द मराठी व्याकरण से लेकर अपने व्याकरण के माध्यम से प्रचलित कर दिए। उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी के शाब्दिक अनुवाद मात्र हैं। इस प्रकार अंग्रेजी ग्रामर ने हिंदी व्याकरण-लेखन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित किया है।

ग्रीव्स के व्याकरण की विशेषताएँ :

अब हम ग्रीव्स की इस पुस्तक की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करेंगे। व्याकरण ऐसा विषय है, जिस पर नया कहना आसान नहीं होता, प्रतिपादन में स्पष्टता और सुबोधता ही किसी व्याकरण के लिए यथेष्ट गुण समझा जाता है। इस दृष्टि से प्राय: यह व्याकरण अच्छा समझा जाता है, पर इसका क्रिया-विवेचन नए ढंग से हुआ है।

ग्रीव्स का क्रिया-विवेचन

जैसा कि ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं इस व्याकरण के अन्य तत्त्वों के विवेचन-प्रतिपादन में कोई विशेषता या मौलिकता नहीं, पर क्रिया-विवेचन करते समय ग्रीव्स ने अवश्य ही नई सूझ-बूझ दिखलाई है। किसी भी भाषा में क्रिया का प्रकरण क्रिया के काल-वचन आदि विविध भेद-जन्य रूपान्तरों के कारण कुछ कठिन और जटिल हो जाता है। संस्कृत व्याकरण धातुओं के विविध प्रकार के वर्गीकरण और गुण-भेदों के कारण जटिल हो गया है, पर हिंदी में यह विषय उतना कठिन या दुरूह नहीं है।

ग्रीव्स ने क्रिया का वर्गीकरण दो आधारों पर किया है—अर्थ और प्रयोग के आधार पर तथा रूप के आधार पर। इस द्विविध वर्गीकरण से हिंदी क्रियाओं की प्रकृति का अच्छा ज्ञान होता है। अत: हम लेखक के विवेचन का सार यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

अर्थ और प्रयोग के आधार पर वर्गीकरण

(१) ट्रांजिटिव	सकर्मक
(२) इन्ट्रांजिटिव	अकर्मक

(३) न्यूटर	क्लीव[1]
(४) पैसिव न्यूटर	निश्चेष्ट क्लीव[1]
(५) इम्पर्सनल	भाव प्रधान क्रिया
(६) पैसिव	कर्मवाच्य क्रिया[1]
(७) थाज़ल	प्रेरणार्थक
(८) कम्पाउंड	संयुक्त

सकर्मक-अकर्मक :

कर्म के भाव अथवा अभाव (अविद्यमानता) की दृष्टि से यह भेद किया जाता है। जहाँ कर्म अकथित रहता है, वहाँ भी क्रिया को कर्म की अपेक्षा रहती ही है। बिना कर्म का अनुमान किए क्रिया का अर्थ पूर्ण नहीं होता। तोड़ना, फाड़ना या देखना क्रिया के अर्थ को पूर्ण करने को ऐसी वस्तु का होना आवश्यक है, जिसे तोड़ा, फाड़ा या देखा जाय। इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि क्या सकर्मक-अकर्मक और ट्रांजटिव इंट्रांजिटिव एक ही विचार के सूचक हैं? मेरे तुच्छ मत में दोनों में अंतर्हित भाव एक नहीं है। कर्म क्रिया के साथ है या नहीं, इसी बात को लेकर संकर्मक-अकर्मक भेद किया जाता है। 'राम खाता है' में यद्यपि 'खाना' क्रिया से यह सूचित नहीं होता कि राम क्या वस्तु (कम) खाता है, यद्यपि खाने का कर्म अकथित है, पर कुछ खाया जाता जाता है अवश्य। पर अकर्मक में तो कर्म का पूर्ण अभाव रहता है और उसकी आवश्यकता नहीं होती।

ट्रांजिटिव-इंट्रांजिटिव :

ट्रांजिटिव का अर्थ अंग्रेजी में है—पासिंग ओवर अर्थात् स्थानांतरण। ट्रांजिटिव क्रिया से ऐसे कार्य का बोध होता है, जो कर्त्ता से होकर किसी वस्तु तक जाता है तथा इंट्रांजिटिव क्रिया केवल किसी अवस्था या कार्य का बोध होता है, जिसमें किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती। अमेरिका के प्रसिद्ध

---

१. न्यूटर और पैसिव न्यूटर आदि के आशय को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है। क्रिया के प्रसंग में इन शब्दों का प्रयोग अन्य लेखकों ने नहीं किया है। ग्रीव्स ने क्रिया के ऐक्टिव, पैसिव और न्यूटर रूपों की चर्चा की है।

व्याकरण-लेखक जार्ज ओ० कुर्मे ने यही परिभाषा दी है।[1] अतः सकर्मक-अकर्मक इसका सही शाब्दिक अनुवाद नहीं है। प्रत्येक क्रिया में 'गति निहित रहती है; जब वह किसी अन्य वस्तु की दिशा में जाती है तब ट्रांजिटिव और जब वह गति कर्त्ता तक ही रहती है, तब इंट्रांजिटिव। इस भेद में कर्म को महत्व न देकर, इस पर ध्यान दिया गया है कि क्रिया किस दिशा में जाती है और किसे प्रभावित करती है।

अकर्मक और न्यूटर क्रिया :

अकर्मक क्रिया भी दो प्रकार की होती है : (१) जिसमें कर्त्ता की चेष्टा लक्षित हो और (२) जिसमें क्रिया केवल एक निश्चेष्ट अवस्था का द्योतन करे। 'वह उठा है' वाक्य में 'उठना' क्रिया अकर्मक है, इसमें कर्त्ता ने कुछ चेष्टा की, क्योंकि बिना चेष्टा के उठना हो नही सकता। पर 'वह जीता है' में 'जीना' मात्र चेष्टाहीन अवस्था है। उसका 'सिर पिराता है' यहाँ सिर का 'पिराना' मात्र एक अवस्था का सूचक है। 'सिर का पिराना' यहाँ कर्त्ता की चेष्टा का फल नहीं है। ग्रीव्स ऐसी निश्चेष्ट अकर्मक क्रिया को न्यूटर' क्रिया कहते हैं, क्योंकि ऐसी क्रिया से जो निश्चेष्ट अवस्था सूचित होती है, वह कर्त्ता की चेष्टा के कारण नहीं है। 'वह सोता है' वह वहाँ पड़ा है' में सोना, पड़ना ऐसी ही क्रियायें हैं।

पैसिव न्यूटर :

ग्रीव्स ने हिंदी में पैसिव (कर्मवाच्य क्रिया) का एक रूप 'पैसिव-न्यूटर' माना है, चूँकि इसमें पैसिव और न्यूटर दोनों के लक्षण एक साथ मिलते हैं।

---

1. A transitive verb denotes, an action which passes over from the doer of the action to the object of it.

An intransitive verb denotes a state or simple action with. out any reference to an object—English Grammar—Georg O. Curme, p. 22.

A verb is transitive if the action does not stop with the agent, but passes from the agents to something else.

A verb is intransitive when the action stops with the agent and does not pass from the agent to anything else.

Nesfield. p. 5.

इसे स्पष्ट करने के लिए वे दो उदाहरण देते हैं। 'पेड़ हिलाया जाता है' और पेड़ हिल जाता है'। पेड़ हिलाया जाता है इससे यह पता नहीं लगता कि पेड़ आँधी या किसी आदमी द्वारा हिलाया जाता है। वक्ता को केवल यह बताना अभीष्ट है कि पेड़ किसी वस्तु या व्यक्ति द्वारा हिलाया जाता है। हिलाना क्रिया किसके द्वारा होती है, इसका पता नहीं लगता। ऐसी क्रिया को वे पैसिव मानते हैं। पर 'पेड़ हिल जाता है' या 'हिलता है' में 'हिल जाता' रूप पैसिव—न्यूटर है क्योंकि यहाँ बस पेड़ का हिलना बताया जाता है। तर्क के बल पर यह ठीक है कि हिलना अकारण नहीं हुआ होगा, पर 'हिल जाना' क्रिया से किसी कारण का संकेत नहीं मिलता और कारण बताना इष्ट नहीं जान पड़ता।

यह अंतर समझने के लिए दो और उदाहरण देखें। हिंदी में कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनके तीन रूप होते हैं—ऐक्टिव, पैसिव और पैसिव-न्यूटर यथा खोलना, खुलता, खुल जाना। 'खिड़की खोली गई' से यह अनुमान होता है कि किसी ने खिड़की खोली। पर 'खिड़की खुल गयी' से यह नहीं ज्ञात होता कि खिड़की का खुलना कैसे हुआ ? यहाँ बस यही बतलाया गया कि खिड़की का खुलना हुआ। पैसिव–न्यूटर में स्टेम[१] (क्रियामूल) में जाना जोड़ा जाता है।

खुल—खुल जाना

'खुल जाना' क्रिया का भूतकाल में खुल गया और भविष्य काल में 'खुल जाएगा। खुलना का खुला और खुलेगा। इसी प्रकार फट जाना—फट गया—फट जाएगा।

फटना—फटा—फटेगा।

'जाना' के जुड़ने का प्रभाव

अब यह विचारणीय है कि क्रियामूल (वर्बल स्टेम) या धातु में 'जाना' के जुड़ने का क्या प्रभाव पड़ता है। खुल जाना, फट जाना और खुलना में और फटना में कुछ अर्थ भेद है क्या ? कुछ विद्वान् 'जाना' को अवधारण मात्र

१. अंग्रेजी में रूट और स्टेम दो शब्द चलते हैं। हिंदी की हलंत धातुओं में अ का आगम होने के बाद ना जुड़ता है। पढ् धातु (रूट) है और पढ क्रियामूल (स्टेम)। कुछ हिंदी के व्याकरण लेखक पढ सुन, चल को ही धातु मानते हैं। पर यह उचित नहीं जान पड़ता। हिंदी में स्वरांत और व्यंजनांत दोनों प्रकार की धातुए है। स्वरांत धातुओं में (जैसे खा, पी सो) में ना सीधे जुड़ता है।

(इन्टेंसिव) मानते हैं, पर यदि अर्थ पर सूक्ष्म विचार किया जाए, तो कुछ अंतर मालूम पड़ता है। जाना पैसिव होने का संकेत करता है।

वह नीचे गिरती है।
वह नीचे गिर जाती है।

'वह नीचे गिरती है' में केवल नीचे गिरना ही बताना इष्ट है। वह आपसे नीचे गिरती है या किसी के धक्का मारने या ठोकर देने के फलस्वरूप नीचे गिरती है, यह ज्ञात नहीं होता। 'वह नीचे गिर जाती है' से यह सूचित नहीं होता कि वह किसी बाहरी दबाव या आघात से गिरती है, पर नीचे गिरने में उसकी असामर्थता का कुछ आभास मिलता है वह नीचे गिरायी जाती है' में तो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि वह (वस्तु) किसी के धकेलने या ठेलने से नीचे गिर जाती है।

ग्रीव्स के विवेचन में इंट्रांजिटिव के साथ, पैसिव-न्यूटर, ऐक्टिव और पैसिव रूपों का भी विचार किया है। नीचे कुछ क्रियाओं के इन रूपों को देखिए :

इंट्रांजिटिव	पैसिव-न्यूटर	ऐक्टिव	पैसिव
उखड़ना	उखड़ जाना	उखाड़ना	उखाड़ा जाना
कटना	कट जाना	काटना	काटा जाना
छिनना	छिन जाता	छीनना	छीना जाना
बँटना	बँट जाना	बाँटना	बाँटा जाना

इन उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि इंट्रांजिटिव में जाना जुड़ने से पेसिव-न्यूटर बनता है और 'ऐक्टिव' रूप में आ जुड़ने से पेसिव रूप बनता है। हिंदी व्याकरणों में अकर्मक-सकर्मक बनाने की विधि दी जाती है। जैसे उखड़ना अकर्मक से उखाड़ना सकर्मक। ग्रीव्स इस उखाड़ना को 'ऐक्टिव वर्ब' कहते हैं—हिंदी व्याकरण अकर्मक से बना सकर्मक। उखाड़ना में उखाड़ क्रिया मूल (स्टेम) है। 'उखाड़' में भूत कालिक प्रत्यय आ जोड़ कर उखाड़ा रूप बना। इसी प्रकार काटा छांटा छीना आदि। इस रूप के आगे जाना जोड़ कर पैसिव रूप बनता है।

इंपर्सनल वर्ब (भाव प्रधान क्रिया)

रूप की दृष्टि से इंपर्सनल वर्ब और पैसिव वर्ब एक है। पूर्ण भूत का प्रत्यय आ (य्+आ) क्रियामूल या धातु में दोनों अवस्थाओं में आता है। उदाहरण-चला जाना, खाया जाना,। कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य में क्रिया का क्या रूप होता है और कर्त्ता इन वाच्यों में किस रूप में या किस कारक में रहता है, इस पर हिंदी के व्याकरण लेखकों ने विचार किया है। भाववाच्य में कर्त्ता नहीं रहता, अतः भाव वाच्य में क्रिया सदा अन्य पुरुष एक वचन पुंलिंग रूप में रहती है। भाव वाच्य में क्रिया का जो रूप रहता है, उसे ही 'इंपर्सनल वर्ब' नाम दिया गया है। ग्रीव्स ने क्रिया के ऐक्टिव और पैसिव भेद भी किए है, खोलना 'ऐक्टिव' और 'खुलना' पैसिव रूप है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रिया के विवेचन में ग्रीव्स तथा अन्य अंग्रेज व्याकरण-लेखकों ने हिंदी क्रिया पर कई दृष्टियों से विचार किया है। कुछ पर हिंदी व्याकरण लेखकों ने ध्यान दिया और कुछ को महत्त्व नहीं दिया।

विराम-चिह्नों और अनुच्छेद का प्रयोग

हिंदी में अपना विराम चिह्न दो ही है '।', '।।' अंग्रेजी के विराम चिह्नों का प्रयोग अंग्रेजी का प्रभाव है।

श्री विश्वनाथ शुक्ल से मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि 'अंग्रेजी से लिए गए विराम चिह्नों का प्रयोग सर्वप्रथम हमें फोर्ट विलियम कालेज के द्वारा प्रकाशित की जाने वाली रचनाओं में मिलता है।, इस संस्था के सब से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन जिसमें नइ चिह्नों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है, लल्लू जी कृत प्रेमसागर तथा सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान थे।'

इस विवरण में त्रुटि इतनी है कि सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान कालेज ने प्रकाशित नहीं किया, उसकी हस्तलिखित प्रति वहाँ रख दी गई। अतः 'तथा सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान' इस अंश को वाक्य से हटा देना चाहिए।

प्रेमसागर में प्रथम पृष्ठ पर अल्प विराम, अर्द्ध विराम, पूर्ण विराम और दूसरे पृष्ठ पर प्रश्न चिह्न और विस्मय चिह्न मिलते हैं। अतः प्रेमसागर में इन चिह्नों का प्रयोग उन अंग्रेज अधिकारियों के सुझाव का फल जान पड़ता है, जिनके कहने पर यह ग्रंथ रचा गया था।

उसके आगे लेखक का कथन है :

'हिंदी भाषा में प्रस्तुत की जाने वाली रचनाओं को अनुच्छेदों में विभाजित करने की परंपरा का प्रारंभ भी फोर्ट विलियम कालेज के लेखकों ने ही किया था। लल्लू जी लाल ने अपने प्रेमसागर तथा सदल मिश्र ने अपने नासिकेतोपाख्यान में अनुच्छेदों की जो व्यवस्था की है, वह तार्किक आवश्यकता पर आधारित है।[1]

आधुनिक विराम-चिह्नों के प्रयोग के पूर्ण दूसरे ढंग के विराम चिह्न भी चलते थे। अध्यात्म रामायण में अर्घ विराम का चिह्न (.) है[2] (पृष्ठ ४५३)। छूट के लिए प्रयुक्त चिह्न' - है। किन्तु १८०६ ई० के संस्करण में, जो एशियाटिक सोसाइटी में है पूर्ण विराम का चिह्न है।

ऊपर हमने यूरोपियनों द्वारा रचित प्रमुख हिंदी या हिंदुस्तानी व्याकरणों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। अब हम कुछ सामान्य व्याकरण-लेखकों की कृतियों की एक सूची प्रस्तुत करते हैं, जिनमें प्रतिपादन की कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं हैं, पर इतिहास में उनका भी महत्त्व है।

जान डाउसन का 'ए ग्रामर आफ द उर्दू एवं हिंदुस्तानी लैंग्वेज'—लंदन, इसमें अपने पूर्ववर्ती अंग्रेजी में लिखित गिलिक्रिस्ट, शेक्सपियर, आर्नट, फोर्क मोनियर विलियम आदि सभी के व्याकरणों का लाभ उठाया गया है तथा अपने ढंग से वर्गीकरण भी किया गया। डाउसन ने हिंदुस्तानी को उर्दू ही मान लिया है और इसमें रोमन और फारसी लिपि का प्रयोग हुआ है।

इटली के पेन्जोनो विकारिओं ने 'ग्रामेटिका इटालियाना इंदोस्तान' नामक इटालियन में लिखित एक व्याकरण १८७४ ई० में प्रकाशित कराया। यह एक बड़ा ग्रंथ है। इटालियन भाषा में लिखे जाने के कारण इसका प्रचार कम हुआ।

१८७४ ई० में जॉन टी० प्लाट्स का हिंदुस्तानी ग्रामर लंदन से प्रकाशित हुआ। प्लाट्स ने भी हिंदुस्तानी से उर्दू भाषा को ग्रहण किया। प्लाट्स

---

१. हिंदी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव—(१८७०-१९२०)-विश्नाथ शुक्ल-पृष्ठ १८१-१८७

२. अध्यात्म रामायण, पृ० ४५३।

मध्यप्रदेश में शिक्षा-विभाग में इंस्पेकटर थे। पर आपने हिंदी को ही हिंदुस्तानी का मूल स्रोत माना है।[1]

१८८२ ई० में लंदन से ई० एच० पामर का 'सिम्पलीफायड ग्रामर ऑफ हिंदुस्तानी पर्सियन ऐंड अरेबिक' लंदन से निकला। इसमें हिंदुस्तानी का संक्षिप्त व्याकरण है। एम०-केंरसन का 'दि सिंटेंक्स ऐंड इडियमस ऑफ हिंदुस्तानी' १८९० ई० में लंदन से प्रकाशित हुआ, जिसमें केवल मुहावरे और वाक्य-विचार पर विचार किया गया है। इनके अतिरिक्त कैमिल्लो का १८९२ ई० में 'ग्रामेतिका इंदोस्ताना ओ उर्दू' फ्रेंच में प्रकाशित व्याकरण है।

१९०४ ई० में 'हिंदी इटीमॉलोजीज' नामक व्युत्पत्ति-विषयक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसके लेखक पाल ह्वाले हैं।

१९०६ ई० में डब्लू० आर० एम० होल टॉयड का हिंदुस्तानी फॉर एवरीडे लाहौर से प्रकाशित हुआ। इसमें उस हिंदुस्तानी पर विचार हुआ है जो प्रायः भारतीयों और ऐंग्लो-इंडियनों के बीच दैनिक व्यवहार में चलती है। १९०७ ई० में मेजर चैपमेन ने 'हाउ टु लर्न हिंदुस्तानी' लंदन से निकाला। यह एक सामान्य पुस्तक है, जो हिंदुस्तानी सिखलाने के लिए लिखी गई थी। डी० जी० फिल्लोट का 'हिंदुस्तानी स्टम्बलिंग ब्लॉक्स' १९०९ ई० में लंदन से प्रकाशित हुआ, इसमें भी हिंदी वाक्य-वियास और मुहावरों पर प्रकाश पड़ता है।

एच० सी० शोलबर्ग का 'कनसाइज ग्रामर ऑफ द हिंदी लैंग्वेज', १९४० ई० में इलाहाबाद से निकला, जिसकी भूमिका आर० डब्लू कमिंग्स ने लिखी है। इसमें केलॉग और ग्रीब्स से लाभ उठाया गया है। १९४४ ई० में ए० एच० हाली का 'कोलोकिअल हिंदुस्तानी' भी बोल-चाल की हिंदुस्तानी सिखलाने के लिए लिखी गई। यह पुस्तक भी सामान्य कोटि की है।

---

1. Urdu or Hindustani, though a composite language is derived mainly from Hindi. The Persian and Arabic language have contributed largely, but Hindi is the chief source."

—Platts, Hindustani Grammar.

व्याकरण-लेखन के प्रेरक अंग्रेज और परवर्ती व्याकरण लेखन पर उनका प्रभाव :

हमने १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपियन भाषाओं में लिखित 'हिंदुस्तानी व्याकरणों' का उल्लेख किया है। हिंदी में भी प्रथम व्याकरण-लेखन का श्रेय भी एक यूरोपियन-पादरी आदम को ही है। दूसरे हिंदी में व्याकरण लेखक अंग्रेज पादरी एथरिंगटन हैं, जिनका 'भाषा-भास्कर' बहुत दिनों तक पाठ्य-क्रम में सम्मिलित होने के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ था। इन अंग्रेजों का अंग्रेजी ग्रामर के ढर्रे पर ही हिंदी व्याकरण लिखने का प्रयास स्वाभाविक था। उसी सरणि पर हिंदुस्तानियों ने हिंदी-व्याकरण लिखे। इस प्रकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में उन आरंभिक यूरोपियन लेखकों ने हिंदी-व्याकरण-लेखन का दिशा-निर्देशन किया। जब पश्चिमोत्तर प्रदेश और विहार में स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई आरंभ हुई, तब शिक्षा-विभाग के अनेक शिक्षकों से अग्रेजों ने हिंदी व्याकरण लिखवाए। ऐसे व्याकरणों में तीन विशेषतः उल्लेख्य हैं :—

१. 'भाषा चंद्रोदय' (१८५६) इसके लेखक विहार के पं० श्रीलाल थे। यह श्री मन्हाराजाधिराज पश्चिम देशाधिकारी डाइरेकटर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन बहादुर के सरिश्ते में रचा गया था।'

२. भाषा तत्त्व बोधिनी अर्थात् हिंदी भाषा का व्याकरण।

'यह श्रीमान् अतिदयावान नारमल पाठशालाध्यक्ष श्री ट्रेशम साहिब की आज्ञा से राम जसन पंडित ने बनाया जो नारमल कालेज में छापी गई।'

उस समय 'भाषा' शब्द हिंदी के लिए पुनः प्रयुक्त होने लगा था। मध्य-काल में तुलसी, कबीर आदि में यह शब्द मिलता है। जब अंग्रेजों ने कामन (समान) भाषा के पोषण की नीति अपनाई, तब उसके लिए 'हिंदुस्तानी' शब्द चलाना चाहा। उस समय 'भाषा' शब्द को संस्कृत शब्दयुक्त हिंदी के लिए शिक्षा विभागीय अधिकारियों ने चलाना चाहा। पर गदर के पहले हिंदी नाम काफी प्रचलित हो चुका था। एथरिंगटन ने भी अपनी पुस्तक का नाम 'भाषा-भास्कर' रखा था।

३. शब्द प्रकाशिका-(१८७० ई० लखनऊ)—यह 'श्रीमद्विलियम हैण्डफोर्ड साहब बहादुर अवधदेशीय डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इंट्रक्शन की आज्ञानुसार' रची गई थी। इसके लेखक थे शीतल प्रसाद हेडमास्टर गवर्नमेंटस्कूल, उन्नाव।

जब राजा शिवप्रसाद अंग्रेज अधिकारियों की नीति से प्रभावित होकर हिंदुस्तानी के हिमायती बन गए, तब उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों के लिए एक व्याकरण लिखने का संकल्प किया। आपने-अपने हिंदी ग्रामर १८७५[1] ई० में हिंदी का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रथम पृष्ठ की पाद-टिप्पणी में कहा '(हिंदी व्याकरण में हिंदी) से यहाँ मतलब हिंद या हिंदुस्तान की उस देशी बोली से है जो अब यहाँ के सरकार, दरबार और हाट-बाजार में बोली जाती है। 'इस पुस्तक में लखनऊ में उस समय की फारसी-मुखी उर्दू को नापसंद करते हुए उन्होंने लिखा....'एक दिन था कि नवाब सआदत अली खाँ के मुंशी इंशा उल्ला खाँ ने कहानी बनाई, एक शब्द भी उसमें अरबी-फारसी का न आने दिया, अब वह है कि लखनऊ वालों की लिखावट से जो कई एक क्रिया और उपसर्ग हिंदी के निकाल कर फारसी के लिख दो सब का सब उर्दू से फ़ारसी बन जाय।' 'राजा शिवप्रसाद प्रेमसागर की शुद्ध हिंदी को फारसी उर्दू की तरह दुर्बोध मानते हैं।[2]

शिवप्रसाद जी की हिन्दी-विषयक हरेक रचना के प्रेरक प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप में शिक्षा-विभाग के अंग्रेज अधिकारी ही थे। उनका उद्देश्य हिंदी व्याकरण को उर्दू स्कवायद के निकट लाना था। उनकी सम्मति में हिंदी और उर्दू को पृथक् मान कर अलग-अलग व्याकरण लिखवाने की परम्परा डा० गिलक्रिस्ट के कारण आरम्भ हुई। "डा० गिलक्रिस्ट के मौलिवियाँ और पंडितों के कारण यह मूर्खता आरम्भ हुई, जिन्होंने उत्तर भारत की समान भाषा का व्याकरण लिखने को नियुक्त किए जाने पर, दो व्याकरण बना दिए, एक शुद्ध फारसी और अरबी और दूसरा संस्कृत और प्राकृत के आधार पर। मौलवी संस्कृत से पूर्णतः अनभिज्ञ थे और उन्होंने भाषा के आर्य-मूल की उपेक्षा की। पंडित भी परवर्त्ती सेमेटिक

---

१. यह व्याकरण श्री मन्महाराजाधिराज पश्चिमोत्तर देशाधिकारी श्रीयुत नव्वाब लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बहादुर की आज्ञानसार' शिव प्रसाद जी ने बनाया था।

2. Hence arose the Persian Urdu of the public officer, which unintelligible to the man of the population, and the almost equally unintelligible pure Hindi of the Premsagar—Preface—Hindi Grammar.

विकास को अस्वीकार कर उन्हीं के समान असहिष्णु हो गये।"[१] डा० श्री कृष्णलाल का यह अनुमान सही है कि राजा साहब ने अपने डाइरेक्टर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन की उस आशा को मूर्त्त रूप दिया, जो उन्होंने पश्चिमोत्तर प्रदेश में शिक्षा की प्रगति पर अपने प्रतिवेदन (१८७३-७४ ई०) में प्रकट किया था। 'मैं यह आशा करता हूँ कि देर नहीं है जब कि देशभाषा के दोनों रूपों (उर्दू और हिंदी) का एक समान व्याकरण और परस्पर परिवर्त्तनीय वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण संभव हो सकेगा।"[२]

इसके बाद १८७७ ई० में बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री का 'हिंदी व्याकरण' बिहार बन्धु प्रेस, बाँकीपुर से निकला। बिहार में खत्रीजी अपने ढंग से वही कर रहे थे, जो पश्चिमोत्तर प्रदेश में बाबू शिवप्रसाद। हिंदी के विषय में दोनों की विचारधारा और धारणा में भी बहुत साम्य था। खत्रीजी को भी अंग्रेज अफसरों से प्रेरणा मिली थी। हिंदी उर्दू में वह मुख्य भेद लिपि का ही मानते थे। अत: इस हिंदी व्याकरण के नीचे 'ए हिंदी ग्रामर' भी छपा है।[३] इसमें पहले उर्दू फिर हिंदी और अंत में अँग्रेजी के पारिभाषिक शब्द दिए गए हैं : जैसे,

पहला बाब	पहला खंड
बयान हरुफ	वर्ण विचार
हरुफ इल्लत	स्वर

1. The absurdity, began with the Mawlvis and Pandits of Dr. Gilchrist's time who being commissioned to make a grammar of the Comman speech of Utter India made two grammars, the one exclusively Persian and Arabic, the other exclusively Sanskrit and Prakrit. The Maulvis knew nothing of Sanskrit and ignored the Aryan basis of the vernacular. The Pandits were equally intolerent in refusing to recognise Semetic after growth."

Preface. Page 1.

2. डॉ० श्रीकृष्णलाल द्वारा उद्धृत-हिंदी शब्दानुशासन-पृष्ठ ५

I hope, however, ere long it may be possible to have a common grammar for both form of the vernacular (Urdu and Hindi) and convertible scientific term.

3. देखिये—खत्री अभिनन्दन ग्रंथ, बि० रा० परिषद् पटना

हरुफ सहीह	व्यंजन
फाइल	कर्त्ता
मफऊल	कर्म

इस प्रकार हिंदी व्याकरण यूरोपियन लेखकों के प्रभाव से अंग्रेजी ग्रामर के ढर्रे पर लिखा जाने लगा। यहाँ तक कि हिंदी के प्रबल समर्थक और सेवक बाबू श्याम सुन्दर दास भी इस प्रभाव में आ गए और वे अँग्रेजी ग्रामर के ऋण को स्वीकार करते हैं। बाबू साहेब ने १९०६ ई० में 'एन एलीमेन्टरी ग्रामर ऑफ हिंदी एंड उर्दू', लिखा था। इसकी भूमिका में आपने लिखा है [1]

'इस व्याकरण को तैयार करने में, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मैंने हिंदी व्याकरण लिखने की संस्कृत व्याकरण के ढंग की स्थिर रूढ़ पद्धति का अनुगमन नहीं किया है। अतः जिस सिद्धांत पर हिंदी और उर्दू भाषाओं के व्याकरण अब तक बने थे, उस सिद्धांत का त्याग कर मैंने आधुनिक अंग्रेजी व्याकरणों का निर्देशन स्वीकार किया है। (हिंदी अनुशासन, पृष्ठ ८ पर उद्धृत)।

अब हम कामता प्रसाद गुरु के प्रसिद्ध हिंदी व्याकरण का उल्लेख करते हुए यह दिखलाते हैं कि इस पर किस परिमाण में अँग्रेजी ग्रामर की पद्धति का प्रभाव है। गुरुजी लिखते हैं—"यह व्याकरण, अधिकांश में अंग्रेजी व्याकरण के ढंग पर लिखा गया है। इस प्रणाली के अनुसरण का मुख्य कारण यह है कि हिंदी में आरंभ ही से इसी प्रणाली का उपयोग किया गया है और आज तक किसी लेखक ने संस्कृत-प्रणाली का कोई पूर्ण आदर्श उपस्थित नहीं किया।"

"मेरा विचार था कि इस पुस्तक में विशेषकर कारकों और 'कालों' का विवेचन संस्कृत की शुद्ध प्रणाली के अनुसार करता, पर हिंदी में इन

1. In the preparation of this grammar, I have not followed, as already stated, the stereotype method of writing Hindi Grammars after the Sanskrit ones....I have, therefore rejected the principle on which all Grammars of Hindi and Urdu languages have so far been written and have, accepted the guidence of modern English Grammars.

विषयों की रूढ़ि, अंग्रेजी के समागम से, अभी तक इतनी प्रबल है कि मुझे सहसा इस प्रकार का परिवर्त्तन करना उचित नहीं जान पड़ा।"[१]

'इस पुस्तक में, अधिकांश पारिभाषिक शब्द 'भाषा-भास्कर' से लिए गए है, क्योंकि निर्दोष न होने पर भी वह पुस्तक बहुत दिनों से प्रचलित है और उसके पारिभाषिक शब्द हम लोगों के लिए नए नहीं हैं। 'किसी-किसी का मत है कि हिंदी में अँग्रेजी व्याकरण की 'छूत' न घुसनी चाहिए। ऐसे लोगों को सोचना चाहिए कि जिस प्रकार हिंदी से संस्कृत का संबंध नहीं टूट सकता उसी प्रकार अँग्रेजी से उसका वर्त्तमान संबंध टूटना, इष्ट होने पर भी शक्य नहीं। ....यदि संस्कृत में शब्दों के आठ भेद नहीं माने गए हैं तो हिंदी में उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से मानने में कोई हानि नहीं, किंतु लाभ ही है।'[२]

श्री कामता प्रसाद गुरु ने 'हिंदी व्याकरण' शीर्षक लेख में अँग्रेजों को पहले-पहल हिंदी का व्याकरण और हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने का श्रेय दिया है।

'हिंदी की इतनी उन्नति होने पर भी आज तक हिंदी में न तो हिंदी का व्याकरण ही लिखा गया और न (उससे कठिन) उसका इतिहास ही बना। ....विलायत वालों ने हिंदुस्तान-संबंधी अनेक विषयों के साथ-साथ अपनी भाषा में हिंदी साहित्य का इतिहास और उसका व्याकरण भी यथोचित पूर्णता से लिखा है, पर हम लोग शुरू आधार पर भी कुछ न कर सके।

........हिंदी के व्याकरण जो हिंदी में पहले-पहल लिखे गए हैं, वे बहुधा पादरी लोगों ने लिखे हैं। हम लोग भाषा भास्कर की निंदा किया करते हैं पर उसके सूत्र आज तक 'भाषा प्रभाकर' में पाए जाते हैं।"[३]....

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि हिंदी के प्रचलित व्याकरणों पर यूरोपियन लेखकों के लिखे हिंदी व्याकरणों का, विशेषतः पादरी आदम और पादरी एथिरिंगटन के व्याकरणों की छाया पड़ी है और हिंदी के पुराने व्याकरणों में अनेक अंग्रेज अधिकारियों की प्रेरणा या प्रोत्साहन से रचे गए थे।

---

१. हिंदी व्याकरण भूमिका

२. हिंदी व्याकरण पृस्ठ ७५

३. सरस्वती खंड १२, संख्या ३, पृष्ठ १३९-४३

प्रमुख कोशकार

प्रमुख कोशकार

भारत में अक्षरक्रम से कोश रचने की रीति यूरोपियनों ने ही चलाई। मध्यकाल में हिंदी के प्राय: सभी कोश पर्यायवाची पद्यकोश थे। इस प्रकार आधुनिक कोशों के आरंभकर्त्ता और निर्माता अँग्रेज ही थे। आरंभ-काल में यूरोपियनों द्वारा रचित कोशों का विवरण आगे प्रस्तुत किया जाता है।

१. गिलक्रिस्ट का अँग्रेजी-हिंदुस्तानी कोश—(१७८६-१७९० ई०)

यह कोश (डिक्शनरी इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी) १७८६-१७९० ई० के बीच छप कर प्रकाशित ही हुआ। हिंदुस्तानी कोश-निर्माण का यह आरंभ काल था, अतः इसका खूब स्वागत हुआ और यह इसके योग्य भी था। इस कोश और व्याकरण के प्रकाशन के बाद ही गिलक्रिस्ट का सुयश हिंदुस्तानी के अप्रतिम विद्वान् रूप में फैल गया। १८१० ई० में एडिनबरा से इसका एक नवीन संस्करण प्रकाशित हुआ था, जिसका संपादन करने में रोबक गिलक्रिस्ट के सहायक थे। इस संस्करण में फारसी लिपि का त्याग कर दिया गया, जिससे आकार में यह छोटा हो गया। गिलक्रिस्ट पर विचार के प्रसंग में मैंने इस कोश के महत्त्व की चर्चा की है।

२. कर्कपैट्रिक का कोश :

कर्कपैट्रिक गिलक्रिस्ट के समकालीन थे और आरंभ-काल में हिंदुस्तानी के अच्छे जानकारों में माने जाते थे। इन्होंने इस भाषा में दक्षता प्राप्त कर ली थी। वे कमांडर-इन-चीफ़ के फरासी सेक्रेटरी थे। १७८५ ई० में 'ए वाकेबुलरी, पर्शियन, अरेबिक ऐंड इंगलिश' (फारसी, अरबी और अँग्रेजी शब्दावली) लंदन में मुद्रित होकर निकला।

व्याकरण लेखन की योजना :

पुस्तक के अंत में न्यू हिंदी ग्रामर ऐंड डिक्शनरी की योजना दी हुई है, जिससे ज्ञात होता है कि लेखक ने आठ खंडों में एक वृहत् ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना बनाई थी। यह 'वाकेबुलरी' लारेंस सुलिवेन को समर्पित की गई थी, जिनका संरक्षण लेखक की इस कृति को प्राप्त हुआ था। कर्कपैट्रिक हिंदी में ऐसा कार्य करने में सक्षम थे। यदि यह योजना पूर्ण हो सकी होती, तो मेरा ख्याल है कि कर्कपैट्रिक गिलक्रिस्ट से बढ़कर हिंदुस्तानी सेवक माने गए होते।

यह योजना इस प्रकार थी :

पहले खंड में —हिंदवी लिपि और चिह्नों पर विचार

दूसरे खंड में—विभिन्न पदों पर विचार

तीसरे खंड में—व्युत्पत्ति और शब्द-गठन पर विचार

चौथे खंड में—वाक्य-विन्यास और मुहावरे

पाँचवें खंड में—मूल, व्युत्पन्न और समस्त हिंदी क्रियाएँ

छठे खंड में—शुद्ध हिंदी शब्दावली

सातवें खंड में—ऐसे फारसी-अरबी शब्द, जिनका प्रयोग वहुत होता है।

आठवें खड में अनेक अभ्यास-पाठ रहेंगे, जो इस व्याकरण में दिये गये नियमों के उदाहरण होंगे।

पहले खंड में हिंदुस्तानी शिष्ट भाषा की चर्चा है, जिसमें अरबी-फारसी और हिंदी का सदा मिश्रण होता है। लेखक के अनुसार हिंदुस्तान की यह शिष्ट भाषा (पोलाइट इंडियन) ज़बाने उर्दू से यह इस बात में भिन्न है कि जैसा उसका शब्दार्थ है, वह 'फौज़ी ज़बान' है और आलंकारिक अर्थ में दरबारी या शहरी जबान है। इसे ज़बाने 'रोजमर्रा' भी कहते हैं।

इसका परिशिष्ट (एपेंडिक्स) १७९९ ई० में जासेफ़ कूपर ने कलकत्ते से निकाला। इसमें सारिणी रूप में (टेबुल बनाकर) नागरी या हिंदुई वर्णमाला दी गई है। हिन्दुई के अक्षर कैथी-से लगते हैं।

ख	ख	च	घ	य़	य	ज	अ	ग	ग	फ़	फ
न	र	ऐ	ए	ऐ	ऐ	ऊ	य		घ	व	ब
ल	ल	ऐ	ऐ			झ	भ	भ	व़	व	

उक्त 'शब्दावली' की भूमिका में लेखक का कथन है—जब यह शब्दावली इस पुस्तक के अंत में वर्णित पाँचवें और छठे खंड में जोड़ दी जाएगी (ये खंड प्रेस के लिए तैयार हैं, पर नागरी टाइप बनने पर ही उनका प्रकाशन निर्भर है) तब मेरा विश्वास है कि भले ही यह पूर्ण न हो, पर शायद यह उस भाषा की, जिसे गलती से यूरोपियन 'मूर' कहते हैं, पर जिसे देशवासी हिंदी या हिंदुई कहते हैं, बृहत् शब्दावली होगी।

लेखक का मत है कि शुद्ध रूप में हिंदवी नागरी में ही लिखी जाती है। इस कृति में नागरी लिपि का प्रयोग करने में मेरी मुख्य दृष्टि यह थी कि विद्यार्थी को एक ऐसे माध्यम द्वारा सहायता मिले, जिससे वह वास्तविक हिंदी का उससे अधिक शुद्ध उच्चारण कर सके, जितना वह फारसी या अँग्रेजी लिपि में होने से कर सकता है।

कर्कपैट्रिक अपने प्रस्तावित व्याकरण में भाषा का नाम 'हिंदी' देते हैं, हिंदुस्तानी नहीं। गिलक्रिस्ट का कोश भी लगभग उसी समय १७८६ ई० में निकलना शुरू हुआ था। वे 'हिंदुस्तानी' नाम के समर्थक और प्रबल प्रचारक थे, जबकि उन्हीं के समकालीन कर्कपैट्रिक, 'हिंदी' नाम और नागरी लिपि की उपयोगिता को स्पष्ट स्वीकार करते थे। खेद है कि उनकी 'हिंदी ग्रामर और डिक्शनरी' नागरी टाइप के अभाव में गिलक्रिस्ट से कुछ पहले या साथ भी नहीं निकल पाई, नहीं तो कर्कपैट्रिक को उनसे कम ख्याति नहीं मिलती।

३. विलियम हंटर का कोश (१८०८ ई०)—

कप्तान जोसेफ टेलर ने एक हिंदुस्तानी अँग्रेजी कोश निजी काम के लिए बनाया था, जिसे फोर्ट विलियम कालेज के देशी विद्वानों की सहायता से डब्लू० हंटर ने संशोधित करा के १८०८ ई० में दो खंडों में प्रकाशित किया। यह टी० हर्बर्ट के हिंदुस्तानी प्रेस में मुद्रित हुआ था। इसकी विशेषता है कि इसमें अरबी-फारसी और हिंदी-संस्कृत के भी शब्द हैं। 'हिंदुस्तानी' शब्द के प्रयोग से यह न समझना चाहिए कि हिंदुस्तानी नामधारी कोशों में संस्कृत के या उच्च हिंदी के शब्दों को स्थान नहीं मिला करता था। अनेक अँग्रेजी हिंदुस्तानी कोशों में ऐसे बहुतेरे शब्द मिलते हैं, जो आज भी हिंदी के अच्छे कोशों में ही मिलेंगे। इस कोश में अनिल, अनल, अंगीकार ऐसे शब्द व्युत्पत्ति के साथ दिए गए हैं। यह कोश भी लोकप्रिय हुआ, पर रचयिताओं के निधन

के बाद दुर्लभ हो गया। इसका एक संस्करण लंदन से १८१७ ई० में इंगलैंड और भारत में पुस्तक की बढ़ती हुई मांग की पूर्त्ति के लिए निकाला गया। तीसरे संस्करण में खास हिंदुस्तानी शब्दों के अतिरिक्त इस कोश में 'दखिनी' के शब्द भी सम्मिलित कर दिए गए।

४. शेक्सपियर का कोश—

शेक्सपियर का कथन है कि भारत ऐसे विशाल देश की जहाँ अनेक जातियों के लोग रहते हैं, उस सब से अधिक व्यापक भाषा में भेदों का होना स्वाभाविक है, जिसे कभी उर्दू, ज़बाने उर्दू, रेख्ता, हिंदी, हिंदुस्तानी या दखिनी कहते हैं और जहाँ एक जगह प्रचलित शब्द को कभी-कभी दूसरे हिस्से के लोगों को समझना भी कठिन हो जाता है। इसलिए तीसरे संस्करण में दखिनी रचनाओं से बहुतेरे शब्द चुनकर शामिल किए गए। चौथे संस्करण में ऐसे बहुत-से शब्द और शब्दसमूह मुद्रित या हस्तलिखित गद्य-पद्य पुस्तकों से लेकर जोड़ दिए गए, जो उसे १८३४ ई० के बाद से खास कर इंडिया हाउस की लाइब्रेरी में मिले। जिन पुस्तकों एवं लेखकों से लेखक ने शब्द लिए थे। उनका उल्लेख इस प्रकार है।

वली, मीर, तकी, सौदा, मीरहसन, आराइशे-महफिल, आखाक़-ह-हिंदी, इखवाम-सफा, खिराद-अफरोज़, गुल वकावली, बागोबहार, नस्तेवेनज़ीर, तोता कहानी, बागे उर्दू, गंज-इ-खुतूत, जब्दतु-इ-ख्याल, अनवरे सुहेली, दखिनी कानून-इ-इस्लाम (ले० डा० हकलोज़)।[1] इसके अतिरिक्त रेवरेन्ड एम० डी० ऐडम की 'डिक्शनरी' इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी में टी० थामसन की 'हिंदी इंगलिश डिक्शनरी' एच० एम० इलियट के ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स के सप्लीमेंट, प्रेमसागर, फूलबान और गुलशनेइश्क़ से शब्द लिए गए।

पर इन पुस्तकों से भी अधिक लाभ लेखक ने उस पांडुलेख से उठाया, जो मद्रास के स्व० डा० हैरिस कई खंडों में इंडिया हाउस लाइब्रेरी में छोड़ गए थे। इससे अनेक शब्द शेक्सपियर ने लिए थे। डा० हैरिस ने अपने शब्द-संग्रह का हिंदुस्तानी और दखिनी का प्रामाणिक ग्रंथ बनाने के लिए बहुतेरे देशी पंडितों से अनेक शब्दों का अर्थ-निर्णय करने में मदद ली थी। शेक्सपियर

---

१. डा० हकलोज़।

ने हैरिस के हस्तलेख को इंडिया हाउस में खोज निकाला और बहुत समय देकर उसमें से बहुतेरे शब्दों को अपने ग्रंथ में स्थान दिया। इस कोश में भी संस्कृत के अनेक शब्द हैं, जैसे अपराहण उपस्थ, उपाख्यात, एकाक्ष, कोपान्वित। शेक्सपियर के कोश के प्रकाशक हैं पेलहम रिचार्डसन्, २३ कार्नहिल लंदन।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेज विद्वानों में यह परंपरा रही है कि वे अपने पूर्ववर्ती विद्वान् के कार्य को उसमें वृद्धि और संशोधन कर आगे बढ़ाते हैं। कोश को अधिक पूर्ण करने के उद्देश्य से शेक्सपियर ने अपने पूर्व प्रकाशित कोशों से पूरा लाभ उठाया। उर्दू पुस्तकों से अधिक शब्द लेने का एक कारण यह भी था कि उस समय तक साहित्यिक महत्त्व की पुस्तकों का खड़ी बोली में अभाव था।

५. थामस रोबक का लोकोक्ति-संग्रह-(१८२४ ई०)

इस कोश में फारसी और हिंदुस्तानी कहावतों और कहावती वाक्यांशों का संग्रह किया गया है। इसका संकलन और अनुवाद मुख्यतः स्व० थामस रोबक ने किया था। ये मद्रास इस्टाबलिशमेंट में कप्तान, फोर्ट-विलियम कालेज में परीक्षक और एशियाटिक सोसाइटी के मेम्बर थे। यह १८२४ ई० में हिंदुस्तानी प्रेस, कलकत्ता में मुद्रित हुआ। इसके संपादक थे एच० एच० विलसन, जिन्होंने पुस्तक को गिलक्रिस्ट को समर्पित किया।

विलसन भूमिका में लिखते हैं कि 'हिंदुस्तानी या हिंदी की कोई पुस्तक ऐसी नहीं है, जिसे खोलने पर प्रायः हर पेज पर कुछ स्थानीय प्रयोग कहावतें, वाक्यांश (फ्रेंच) कहावती वाक्य या अपरिचित अंतर्कथा न मिल जाय।'

जब डा० विलियम हंटर कालेज की काउंसिल के सेक्रेटरी थे, उसी समय वे कालेज में पढ़ाई जाने वाली भाषाओं की कहावतों का संग्रह कर रहे थे। पर १८११ ई० में वे जावा भेज दिए गए। जाते समय उन्होंने अपना किया हुआ संग्रह कैप्टेन रोबक को सौंप दिया, जो इस काम में बड़े उत्साह से लग गए। पर अपने काम की भीड़ की वजह से वे भी १८१९ ई० तक इसे पूरा न कर सके। उनके निधन के बाद यह काम विलसन ने उटा लिया और इस तरह अपने उन स्वर्गीय मित्रों के काम को पूरा किया, जो अपने महत्त्वपूर्ण संग्रह को मुद्रित रूप में देखने से वंचित रह गए।

६. रोबक का नाविक कोश :

यह नौ-सेना और नाविक शब्दों का कोश है, जिसकी प्रेरणा लेखक को डा० गिलक्रिस्ट से ही मिली थी। इस कृति का आरंभ भी गिलक्रिस्ट ने ही किया था। जब लेखक रोबक इंगलैंड से बंगाल की समुद्रयात्रा पर थे, तब उन्होंने इसे लिखना आरंभ किया था और इसे भारत पहुँचने पर अनुभवी सारंगों और विभिन्न बंदरगाहों के योग्य व्यक्तियों की सहायता से इसे पूर्ण किया था। इसकी रचना उन यूरोपीय नाविकों के उपयोग के लिए की गई थी, जिनपर एशियाई नाविक काम करते थे। यह हिंदुस्तान आने वाले नियमित जहाजों और कंपनी के अतिरिक्त जहाजों और हिंदुस्तान के एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाहों के बीच व्यापार करने वाले और पाइलट पोतों पर काम करने वालों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।[१]

नाविक हिंदुस्तानी :

जहाजों में काम करने वालों के बीच एक खास तरह की हिंदुस्तानी चल पड़ी, जिसका नाम 'नाटिकल हिंदुस्तानी' रखा गया। यह एक अपभ्रंश भाषा है, जिसमें अरबी, मलय, तमिल, पुर्तगाली और उर्दू का मिश्रण हुआ। बीम्स के अनुसार यह बंगाल की खाड़ी में सिंगापुर से कलकत्ता और कलकत्ता से कोलम्बो के बीच लाने वाले कई देशों के जहाजों पर बोली जाती है। बंगाल की खाड़ी का यह नाविक जीवन बड़ा विचित्र है। यह अपनी अलग दुनिया ही है। इन जहाजों के कमांडर और अफसरान यूरोपियन होते थे, पर जहाजी (नाविक) अक्सर चटगाँव (मद्रास तट और पूर्वी बंगाल के होते थे। इसी वर्ग की भाषा 'नाविक हिंदुस्तानी' या 'जहाजी हिंदुस्तानी' कहलाती है।[२]

मध्यकाल में यूरोप में पुर्तगालियों की शक्ति के उदय के बाद भारत का समुद्री व्यापार पुर्तगाली नाविकों के हाथ में आ गया। उस समय उनकी

---

१. १८११ ई० के १० वें विवाद (डिसपिउटेशन) का विवरण—पृ० २८८। यह पुस्तक इंगलैंड में पुनर्मुद्रित हुई थी। कलकत्ते से भी इसके दो संकरण निकले। १८८२ ई० में यह पुस्तक संशोधित और परिवर्धित रूप में जार्ज स्माल के संपादन में 'ऐ लश्करी डिक्शनरी' नाम से निकला। यह पुस्तक रोबक की नैवेल डिक्शनरी चतुर्थ संस्करण १८४८ ई० पर आधारित है।

२. देखिए मेमायंस आफ ए बंगाल सिविलियन—बीम्स, पृ०-१९३।

प्रतिद्वंद्विता अरबी नाविकों से ही थी। पूर्वी बंगाल, बंबई, मद्रास के समुद्रतट के नाविक बराबर अरबी और पुर्तगालियों के संपर्क में आते थे। फलतः बहुतेरे ऐसे शब्द नाविकों के बीच चल पड़े, जिनका मूल पुर्तगाली में मिलता है।

कुछ, ऐसे शब्दों का मूल रूप देखिए :

मेट	Mate
बुर्द	Board
बाल्टी	Balti, पुर्त Blade
बर्तन	Burton
कमरा	Camera
पाल	Paul
बम्बा	पुर्त Bomba
प्वाइंट	,, Ponta

७. ओरियंटल प्रवर्बियल डिक्शनरी (१८२४ ई०) :

कालेज के सेक्रेटरी डा० विलियम हंटर का लोकोक्ति-संग्रह में विशेष उत्साह था, अतः जो भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं, उनकी कहावतों का संग्रह करना उन्होंने शुरू कर दिया, पर इसमें हाथ लगाने के शीघ्र ही बाद १८११ ई० में वे जावा के एक अभियान पर भेज दिए गए। जाते समय इस काम को रोबक को सौंप दिया, जिन्होंने उसे बड़े उत्साह से आगे बढ़ाया। पर १८१९ ई० तक अन्य कार्यों में व्यस्तता के कारण वे इस काम को पूरा न कर सके। इस तरह यह काम अधूरा रह गया। हंटर और रोबक दोनों अपने बोए बीज की फसल को पकते देख नहीं सके। अब एच०एच० विलसन ने अपने युगल मित्रों की स्मृति में इस महत्त्वपूर्ण काम को उठा लिया और पूरा किया। यह उस पुस्तक का इतिहास है, जो हंटर, रोबक और विलसन के संयुक्त श्रम का फल था। यह १८२४ ई० में हिंदुस्तानी प्रेस, कलकत्ता में छपी और संपादक विलसन द्वारा गिलक्रिस्ट को समर्पित की गई थी। संपादक का वक्तव्य है कि 'कहावतों में हिंदुस्तानी बहुत समृद्ध है और हिंदुस्तानी या हिंदी के किसी विद्यार्थी को शायद ही कोई पुस्तक ऐसी मिलती हो, जिसके प्रत्येक पेज पर स्थानीय प्रयोग, मुहावरे अपरिचित अंतसंकेत और कहावती सूत्र न मिलते हों।'

संपादक महोदय सूचित करते हैं—'पुस्तक का ढांचा तो डा० हंटर का है, जिन्होंने फारसी कहावतों का प्रथम भाग स्वयं संकलित और अनुवादित किया था। संग्रह का शेषांश कैप्टेन रोबक का है। उन्होंने फारसी और हिंदुस्तानी कहावतों के प्रथम भाग का अनुवाद और दूसरे भाग का भी बहुलांश पूरा कर लिया था। फारसी के द्वितीय भाग की अंतिम कहावतों के अनुवाद और हिंदुस्तानी के प्रायः दूसरे भाग के लिए ही मुझे उत्तरदायी समझा जाना चाहिए।'

इस कहावत-संग्रह में हिंदुस्तानी कहावतों का अच्छा संग्रह है। आरंभिक काल में ऐसा कार्य इन अंग्रेजों द्वारा हो सका, उसे मन में रखते हुए इस कार्य की गुरुता सराहनीय है।

८. शरीर-रचना और चिकित्सा-शब्दावली :

पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में, चिकित्सा-संबंधी-शब्दावली तैयार कराने की दिशा में, प्रथम महत्त्वपूर्ण पद उठाया श्री पीटर ब्रॅटन सर्जन ने, जो ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में मेडिकल इंस्टिट्यूशन के सुपरिंटेंडेंट थे। उन्होंने मानव-शरीर के अवयवों और चिकित्सा-संबंधी शब्दों का एक संग्रह भारत के मेडिकल डिपार्टमेंट के मेम्बरों के लिए १८२५ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित किया।[1] इस शब्द-संग्रह की एक विशेषता यह है कि इसमें कॉलम बनाकर एक साथ अंग्रेजी, अरबी, फारसी, हिंदी और संस्कृत के पर्याय रोमन, नागरी और अरबी शब्द दिए गए हैं, जो बड़े उपयोगी हैं और आगे इस प्रकार की शब्दावली बनाने में सहायक सिद्ध होंगे।

---

1. Vocabulary of the names of the parts of the Human Body and of medical and technical terms in English, Arabic, Persian, Hindi and Sanskrit, for the use of the Members of Medical Department in India by Peter Breton Surgeon, in the service of the Hon'ble East India Company, Superitendent of the Medical Institution Calcutta, 1825.

नीचे हम इस पुस्तक से कुछ उदाहरण देते हैं :

अं०	अ०	फा०	हि०	सं०
फ्लेश	लहम्	गोश्त	सगोती	मांस
स्वेट	अर्क	सद्	पसीना	स्वेद
अम्ब			कोठी	गर्भाधान
नियल	लवन	सरेपिस्तन	भिटनी	चूचुक

नीचे हम केवल अंग्रेजी, हिंदी और संस्कृत पर्याय देते हैं :

अं०	हिं०	सं०
पैलरी	सितंग	शीतांग
हैमीफ्लंजिया	अधंग	ऊर्ध्वांग
टिटेनस	धनुषवायु	धनुषटंकार
स्क्रोफुला	कंदाल	कंठमाला
टेनेस्मस	मरोड़ा	शूल

९. एम० टी० आदम का कोश :

इस कोश पर हिंदी में इस प्रकार अंकित है :—

'इंराजी ओ हिंदी अभिधान

श्रीयुत् आदम साहेब ने बनाया

कलिकाता स्कूल बुक सोसाईटी के लिए छापा हुआ।'

इसे ऐंग्लो-हिंदुई कोश कहा गया है। 'हिंदुई' से अभिप्राय हिंदी का है। उस समय तक प्रायः हिंदुई शब्द हिंदी के लिए चलता था, यद्यपि हिंदुई के लिए हिंदी शब्द १८२४ ई० से चल पड़ा था। पुस्तक पर अंग्रेजी में दिए हुए 'एडवर्टिज़मेंट' में बनारस ५ अक्तूबर अंकित है। स्कूल बुक सोसाइटी प्रेस, कलकता में यह पुस्तक छपी थी। हिंदी नाम पर बंगला प्रयोग का प्रभाव स्पष्ट है। 'इंराजी' अंग्रेजी के लिए, 'ओ' और के लिये और 'अभिधान' कोश के लिये यह स्पष्ट ही बंगला प्रभाव का सूचक है। इसका प्रथम संस्करण १९२९ ई० में और द्वितीय संस्करण १८३८ ई० में

निकला था। एम० टी० आदम साहेब के आगे 'रेवरेंड' शब्द इस बात का सूचक है कि वे पादरी थे। वे बनारस में ईसाई धर्म के प्रचारक थे।

यह कोश भारत में दुर्लभ है। प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हिन्दी में रचित यह प्रथम कोश है। इन्हीं आदम साहब का एक हिंदी व्याकरण भी मिलता है। इसका विस्तृत परिचय प्राचीन व्याकरणों के प्रसंग में देखिए।

१४–दे रोजारिओं का अंग्रेजी, बंगला और हिंदुस्तानी कोश, १८३७ ई०

यह कोश १८३७ ई० में कलकते से प्रकाशित हुआ। यह रोमन लिपि में था। इसमें ऐसे बहुतेरे शब्द छोड़ दिए गए जो गिलक्रिस्ट के कोश में थे। इसमें कुछ ऐसे अंग्रेजी शब्द भी हैं, जिनका अर्थ विस्तार से स्पष्ट किया गया, चूँकि हिंदुस्तानी का उपयुक्त प्रति शब्द देना कठिन था। गिलक्रिस्ट के कुछ शब्दों को कदाचित् इसलिए इसमें स्थान नहीं दिया गया, चूँकि उनका अर्थ संदिग्ध था या प्रयोग विरल था।

११–'ग्लासरी' का निर्माण

बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स ने १८४२ ई० के अगस्त में यह निर्णय किया कि शासन के प्रत्येक विभाग में व्यवहृत शब्दों का संग्रह कर शब्दावली तैयार कराई जाय। इस हेतु भारत की सुप्रीम सरकार ने सभी प्रेसिडेंसियों से सहयोग करने का अनुरोध किया। मि० वार्डन ने, जब वे बम्बई में थे, एक शब्द-सूची बनाई और अनेक मुद्रित शब्द-संग्रहों को वर्णक्रम से संकलित कर इंडिया हाउस ने छपवा कर अफसरों के पास भेजा। छः मास बाद बंगाल और मद्रास से अंशतः ये शब्द-सूचियाँ लौट कर आईं, किन्तु बम्बई से कोई सूची नहीं लौटी। इससे बहुत सहायता नहीं मिली। बाद में छपी पुस्तकों का उपयोग किया गया। इस समय गोल्डविन का 'डिक्शनरी आफ मोहम्मडन ला ऐंड रेवन्यू टर्म्स' (मुस्लिम कानून का कोश और रेवेन्यू शब्द) रूसों की फारसी शब्दावली (वोकाबुलरी आफ़ पर्शियन वर्ट्स) और लेफ्टनेन्ट रावडेसन की इंडियन वोकाबुलरी' (भारतीय शब्दावली) उपलब्ध थे। प्रीवी काउन्सिल के रिकार्ड

१—डिक्शनरी, इंगलिश, बंगाली, ऐंड हिंदुस्तानी, रोमन लिपि।

क्लार्क भी भारतीय पारिभाषिक शब्दों के संग्रह में लगे हुए थे। उन्होंने पार्ले-मेंट की कमिटी की रिपोर्टों से, रेगूलेशनों से सदर अदालत कलकता के फैसलों से और हैरिंग्टन के रेगुलेशनों के विश्लेषण से (एनालिसिस आफ रेगूलेशन्स) सामग्री का संचयन किया था। इसे विलसन के उपयोगार्थ क्लार्क ने दे दिया और संग्रह को ग्लासरी में सम्मिलित कर लिया गया। इसके अतिरिक्त कलकता, आगरा, मद्रास और बम्बई की सदर अपील कोर्टों की मासिक रिपोर्टों और बंगाल के जिला और सबार्डिनेंट कोर्ट के फैसलों का भी उपयोग किया गया। पश्चिमोत्तर प्रांत के रेव्यून्यू अफसरों की सेटलमेंट (बन्दोवस्ती) रिपोर्टों से भी लाभ उठाया गया। इस प्रकार यह योजना बड़े श्रम से सरकार की ओर से तैयार कराई गई थी। अंग्रेजों का एक बड़ा गुण है कि वे किसी काम को उचित रीति से करना जानते हैं। इस प्रकार सात वर्षों की अवधि में (१८४६-५३ ई०) यह प्रशासनिक शब्दावली कम्पनी-काल में बनी।

१२—फैलन साहब के कोश

फैलन का जन्म कलकते में सन् १८१७ ई० में हुआ था। कोश-निर्माण के क्षेत्र में फैलन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। १८६५ ई० के आसपास फैलन साहब बिहार में स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। वे हिंदी के सच्चे हितैषी थे। उनके समय में स्कूलों में हिंदी जारी हो गयी थी। आपने हिंदी में स्कूली पुस्तकें लिखवाने के लिए अनेक लेखकों को प्रोत्साहित किया। आपकी प्रथम डिक्शनरी का मूल नाम है ए न्यू हिंदुस्तानी—इंगलिश डिक्शनरी, विथ इलस्ट्रेशन्स फ्रॉम हिंदुस्तानी लिटरेचर एंड फोकलोर। १८७९ ई० में प्रकाशित यह वृहत् कोश अपने ढंग का अनोखा है और शब्दों और कहावतों के प्रयोग जुटाने में कठिन श्रम किया गया है। इस कोश को देखने पर लेखक के परिश्रम और कार्य-विधि की प्रशंसा करने को पाठक विवश अनुभव करता है। यह कोश बम्बई के गवर्नर सर रिचार्ड टेम्पुल को समर्पित किया गया है। जब वे बंगाल में लेफ्टनेंट गवर्नर थे, तब उन्होंने लेखक को इस महान् कृति की रचना और प्रकाशन के हेतु उदार सहायता दी थी।

प्रायः अंग्रेजी लेखकों ने अपनी पुस्तकें व्याकरण कोशादि रचने में हिंदुस्तानी पंडितों और मुंशियों से सहायता ली है और सच यह है कि बिना उनकी सहायता के वे विदेशी कभी वैसी कृतियाँ नहीं तैयार कर सकते थे, जैसी वे

प्रस्तुत कर सके। पर बहुत कम साहबों ने हिंदुस्तानियों की सेवा और सहयोग का उचित उल्लेख किया है। फैलन साहब इसके अपवाद कहे जा सकते हैं। जहाँ एक ओर उन्होंने पी० वेली सी० आई० कर्कपैट्रिक, एभ० एफ० कोल और कैप्टेन मार्शल का नाम लिया है, वहाँ लाला चोखेलाल प्लीडर और उनके योग्य सहकर्मी, लाला फकीरचन्द, हेड असिस्टेन्ट मुंशी चिरंजीवी लाल, मुंशी सैयद अहमद, मुंशी जगन्नाथ और दिल्ली के मुंशी ठाकुरदास, दीनापुर के मुंशी लियाकत हुसैन, पंडित श्रीनारायण, मेयो कालेज, मुन्शी निहाल चंद, डिप्टी इन्स्पेक्टर स्कूल, मुंशी विशम्भर नाथ और दिल्ली के मुन्शी रामप्रसाद, मेरठ के मोहम्मद महमूद, फरुखाबाद के रामनाथ तिवारी, दिल्ली के मुंशी किशोरीलाल, रोहताक के मुंशी एहसान अली और दरभंगा स्कूल के हेडमास्टर मि० बाटलिग के द्वारा प्राप्त सहायता का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार हिन्दी उर्दू के अनेक विद्वानों के परामर्श और सहयोग का लाभ उठाकर फैलन ने इस कोश को जो रूप दिया उसे सबने उपयोगी मानकर मुक्त कंठ से सराहा।

इस कोश की विशेषताओं पर फैलन साहब ने बड़े विस्तार से लिखा है। इसके प्रकाशन के पूर्व ही आपने एक 'प्रास्पेक्ट्स' छपाया था, जिसमें कोशकार के मंतव्य और दृष्टिकोण पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। हम उसका सार-संक्षेप में प्रस्तुत करना आवश्यक सकझते हैं।

किसी भाषा की सम्पत्ति उसक बोलचाल वाले रूप में ही निहित होती है। भावग्राही और कल्पनाशील पौर्वात्यों की दैनिक व्यवहार की बोलियों के विविध रूपों से जो परिचित हैं, वे यह जानते हैं कि वे कितनी समृद्ध हैं। जनता का वह जीवित उच्चरित रूप प्रायः हमारे कोशों में नहीं मिलता। पंडितों और मौलवियों ने जनता के लिए अर्थहीन विचित्र अरबी ध्वनियों और ठंढे संस्कृत शब्दों को ठूंस कर एक शक्तिमयी चुटकीली भाषा मेंशब्दाडम्बर से उसे जीवन्त शक्ति से वंचित कर क्लीव बना दिया।

खेतिहर वर्ग, बनिया, बजाज, दलाल, चमार, डोम, कुंजरा, बनजारा, भठियारा, दारे, चाबुक-सवार, मानावती (भाठ, चारण, गवैये, नट, जादूगर, स्वांग करने वाले और ऐसे ही अन्य वर्ग, जिनसे समाज का अधिकांश बना है। इस कोश में ऐसे वर्गों की भाषा को प्रमुखता मिली है। इनकी गँवारी बोलियों को इस कोश में प्रमुख स्थान मिला है। इन बोलियों का ज्ञान उन यूरोपियनों

के लिए अधिक उपयोगी होगा, क्योंकि जन-सम्पर्क में सब लोगों को आना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त इस कोश में रेख्ती या जनानी बोली को भी प्रमुख अंग बनाया जाएगा। लेखक की जानकारी में ऐसा कोई कोश अब तक नहीं मिलता है, जिसमें इस बोली के शब्दों को स्थान मिला है।

संकलविता ने अपनी योग्यता के संबंध में यह सूचित किया है कि वह कई साल दिल्ली और बिहार में रह चुका है। मुगलों की राजधानी में दरबार के असर से भाषा का शिष्टरूप मिलता है। सबसे पूर्वी प्रांत बिहार में इस भाषा का पुराना रूप मागधी या मगही में मिलता है। इस पर अरबी-फारसी के मौलवियों और संस्कृत के पंडितों का प्रभाव कम पड़ा है। इसके अतिरिक्त ब्रजबोली के केन्द्र मथुरा और आगरा, जहाँ दिल्ली से कम फारसी शब्दों का मिश्रण हुआ है, अयोध्या, काशी, बीकानेर और जोधपुर (मारवाड़ी के लिए) की यात्रा कर शब्दों का संग्रह किया गया है।

फैलन लिखते हैं कि अरबी फारसी और संस्कृत के प्रोफेसर के पद तो कालेजों में हैं, पर वर्नाक्यूलर के लिए कोई प्रोफेसर नहीं नियुक्त होता। देखिए फैलन १८७५ ई० के लगभग मातृभाषा के प्रोफेसर के पद की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। हिन्दी और उर्दू भाषा का जो पूरा जानकार है, वही इन भाषाओं को पढ़ा सकता है। संस्कृत के विद्वान् हिंदी के पंडित भी होते हैं, यह फैलन नहीं मानते थे। फैलन की दृष्टि कितनी निर्मल थी। उनके पचास वर्ष बाद भी 'हिंदी' के स्वतंत्र ज्ञान पर जोर नहीं दिया जाता था। हिंदी वे लोग ही पढ़ाते थे, जो संस्कृत के पंडित थे, हिंदी की विशेष योग्यता हो या न हो। फोर्ट वि० कालेज में गिलक्रिस्ट आदि हिंदुस्तानी के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे, पर १८५७ ई० के बाद जब नयी यूनिवर्सिटियाँ बनीं, तब हिंदी या उर्दू के विशेषज्ञों को हिंदुस्तानी, हिंदी या उर्दू का प्रोफेसर नहीं बनाया गया।

फैलन के कोश के आमुख से यह जानकारी मिलती है कि जब बिहार में हिंदुस्तानी का आंदोलन सरकारी प्रेरणा से उठा, तब हिंदुस्तानी में टेकनिकल पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का पहला प्रयत्न हुआ था। यह कार्य अंग्रेज अफसरों के संकेत या माँग की पूर्ति के लिए हुआ था। फैलन इसे बोलचाल की हिंदी की शक्ति और अभिव्यक्ति-क्षमता का प्रमाण मानते हैं।

इस कोश में १२१६ पेज (रॉयल आक्टेवों) हैं। शब्दों के अनेक रूपों के साथ व्युत्पत्ति भी दी गई है। शब्द हिंदी और रोमन लिपि में भी लिखे गए हैं।

कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

अभिमान—अभमान, अभवान, सं० पु०। सं० अभि अधिक, मन्-मनन करना।

अंग्रेजी अर्थ—प्राइड, सेल्फ-कनसीट, एरोगेंस, हाटीनेस, हाटियर, वेन-ग्लोरी,

ओवर वीनिंग, अभिमान गलाना, अभवान, निसाना,। पुरानी हिन्दी।

टु ब्रिंग डाउन वन्स प्राइड।

नख पर जाय गोवर्धन धारियों

इन्द्र को अभिमान गलियों ब्रज रासलीला

इस पद्य का अंग्रेजी में अनुवाद भी दिया गया है। अपान हिज नेल ही हेल्ड अप गोवर्धन ग्रेट इन्द्राज लाफ़टी प्राइड वाज हम्बल्ड देन।

अटकन मटकन

बच्चों का एक खेल (ए चाइल्डस गेम)

अटकन मटकन दही चटाकन

अगला झूले बगला झूले

सावन मास करेला फूले—बच्चों का खेल।

अन्टा—संज्ञा-पुं० हि० अंडा—

१—एक बड़ी कौड़ी

२—एक बिलियर्ड बाल

३—अफीम का अंश (अफीम की बड़ी गोली)

अंटा बन्धू-सं० पु० हिं० वंधक से—

वह कौड़ी जिससे जुआड़ी खेलता है या जब सब पैसे हार जाता है, जिसे वंधक रखता है।

अंटा चित, जफील या गुड़गुड़ होना क्रिया सं०

१—नशे में होना, बेहोश हो जाना

शराब पीते ही अंटा चित हो गया

२—गिरना, लड़खड़ाना, गिर पड़ना

अंटा घर-बिलियर्ड खेलने का कमरा

विशेष— यह सब अर्थ कोश में रोमन में या अंग्रेजी में दिये गए हैं।

फैलन जो हिंदुस्तानी कहावतों का विशाल संग्रह छोड़कर गए थे, उसे संपादित और संशोधित कर प्रकाशित किया कैप्टेन आर० सी० टेम्पुल ने। इस कार्य में उनकी सहायता की दिल्ली के लाला फकीरचंद और ठाकुर दास ने। इन दोनों ने फैलन की भी सहायता की। यह पुस्तक १८८६ई० में मेडिकल प्रेस, बनारस में मुद्रित हुई और इसका मूल्य १०रु० था। टेम्पुल ने फैलन द्वारा संग्रहीत कहावतों का केवल अनुवाद किया और टिप्पणियाँ दीं। फैलन ने कहावतों का संग्रह १८७०-१८८० ई० के बीच में किया था। इस कोश की विशेषता यह है कि इसमें उत्तर भारत की लोकवार्ताओं से और हिंदी की बोलियों से कहावतों का संग्रह किया गया था।

नीचे हम इस कोश से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं

अकेला चलेन बाट, काढ़ बैठे खाट
अलख पुरुख की माया, कहीं धूप, कहीं छाया
आलस निद्रा और जंभाई, ये तीनों हैं काल के भाई
अमीर को जान प्यारी, फकीर को एक दम भारी
अपना हाथ जगन्नाथ
अपना मरन जगत की हांसी
अपने ढिग पैसा तो पराया आसरा कैसा ?
बाहर मीयां सूबेदार, घर में बीबी झोंके भाड़
बालू की भीत ओछे का संग
पतुरिया की प्रीत तितली का रंग
बाप चुप चुप बेटा लपझप
एक ओर चार बेद, एक ओर चतुराई
लाड़ला लड़का जुआरी, लाड़ली लड़की छिनाल
मास न ननदी आपही अनंदी।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता कि फैलन साहब ने ऐसी कहावतों को जुटाने में कितना श्रम किया होगा। यही जन-हिंदी है, जिससे हम साहित्यकता और शिष्टता के नाम से, दिन-दिन दूर हटते जा रहे हैं।

फैलन हिंदी के-जनहिंदी के-कैसे जबर्दस्त हिमायती थे, यह उनके निम्नांकित विचारों से अवगत होगा :

हिंदी इसी मिट्टी की बोली है और अरबी या फारसी से अधिक जनमानस के निकट है। अतः फारसी से ज्यादा पसंद के योग्य है। बहुतेरे फारसी और अरबी शब्द उन देशीयों द्वारा प्रविष्ट हुए, जो विदेशी भाषा के ढंग पर बोलना चाहते थे और कम समझ में आने वाली बेकार की किताबों से जन-भाषा में पहुँचना चाहते थे। जो सच्ची जनभाषा है, वह दबाई जाती है, एक ओर फेंक दी जाती है और घृणापूर्वक उपेक्षित की जाती है। इस कोश के आमुख से ज्ञात होता है कि फैलन एक लोकोक्ति-कोश भी बनाना चाहते थे।

१३. फैलन का लोकोक्ति कोश :

आपने लगभग १२००० कहावतों का संग्रह कर भी लिया था। इनमें मारवाड़ी, मगही, भोजपुरी और तिरहुती कहावतें भी थो। वह लोकोक्ति संग्रह के क्षेत्र में भी अग्रसर थे। उनके कोश की एक विशेषता है कि उन्होंने हिंदी प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित सैकड़ों शब्दों के अर्थ को निश्चित करने का प्रथम प्रयास किया। इस कार्य की महत्ता और गुरुता का कुछ अनुमान तब हमें होगा, जब हम इसके लगभग पचास वर्षों के बाद बने हिंदी 'शब्द सागर' में दिए अनेक शब्दों के अर्थ की तुलना, इस कोश में दिए अर्थ के साथ करेंगे।[१]

१४. फैलन का कानून और वाणिज्य कोश (१८७५-७९ ई०) :

फैलन ने इसके अतिरिक्त एक कानून वाणिज्य कोश भी बनाया, जिससे भारतीय न्यायालयों में प्रयुक्त तत्कालीन शब्दावली पर अच्छा प्रकाश पड़ता

१ देखिए-'रेवरैन्ड जेम्स लैंग का ओरियन्टल प्रावर्ब्स डा० महादेव प्रसाद साहा द्वारा संपादित।

है। इसका नाम है—हिंदुस्तानी-इंगलिश ला ऐंड कमर्शियल डिक्शनरी।' जिस समय बीम्स अपनी निबंधमाला में हिंदुस्तानी में अरबी-फारसी तत्त्व पर जोर दे रहे थे, उस समय फैलन ने उनसे अपना मतभेद व्यक्त करने का साहस दिखलाया।

'भारतीय न्यायालयों की शब्दावली में कुछ हिंदी शब्द-समूह मिल ही जाते हैं। फिर भी अच्छी हिंदी का अधिकांश, पद्धतिरूप में अज्ञान, कुरुचि या भ्रष्ट योजना के कारण बहिष्कृत किया जाता है। जनता के मुख में सदा रहने वाला शब्द वह प्रचलित बोली, जिसमें शहर और गाँव में लोग खरीद-बिक्री और कारबार करते हैं, जो किसानों की, राष्ट्र के अधिकांश की, मातृभाषा है, उसे विदेशी भारी-भरकम शब्दावली को ग्रहण कर ठुकराया जाता है। पर जनता की शब्दावली इस प्रकार हटाने की चीज़ नहीं है। बहुजन की भाषा को अल्पजन की भाषा कभी हटाने में सफल नहीं हुई है। कचहरियों—दफ़्तरों से मार कर खदेड़ी हुई जन-हिंदी अब भी हाट-बाट, सामाजिक और घरेलू जीवन के परिचित संबंधों के बीच जीवित है। चुटीली उक्तियों, कहावतों और देश के जातीय गीतों में उसकी प्राणधारा और प्रभाव बना है, जिसके सामने वह विदेशी और अल्पज्ञात शब्दावली दुर्बल और निस्सार है। प्रजा के अभ्यास और संपर्क में इस हिंदी शब्दावली की जड़ गहरी है। वे बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे की भावना और बुद्धि के निकट है। उनमें व्यापक जीवनीशक्ति है, अभिव्यक्ति की क्षमता है, जो उनके साथ पर बलात् ठेले हुए अरबी और फारसी शब्दों में कदापि नहीं आ सकती।'[१]

डा० फैलन उस जमाने में हिंदी के प्रबल समर्थक थे, जब प्रायः अंग्रेज अफ़सर उर्दू या उर्दूमुखी हिंदुस्तानी का पक्ष ले रहे थे। हिंदुस्तानी में अरबी फारसी तत्त्व अधिक हो या हिंदी तत्त्व, जब यह प्रश्न बीम्स ने उठाया था, तब फैलन ने हिंदी का ही पक्ष लिया।

हिंदी-उर्दू के अनेक विद्वानों से परामर्श और सहायता का फल यह हुआ कि इस कोश की उपयोगिता को सबने स्वीकार किया। इसके आमुख में लेखक लिखते हैं :

'लोककथाओं से, कहावतों, गीतों, नाटकों और पहेलियों से तथा कबीर की साखी और शब्द से बहुतेरे उदाहरण लिए गए हैं। लिखित साहित्य में

१. इन्ट्रोडक्टरी डीज़रटेशन–इंगलिश-हिंदुस्तानी लॉ ऐंड कमर्शियल डिक्शनरी।

सबसे अधिक उद्धरण नज़ीर से हैं, जो सत्यकाव्य के यूरोपियन स्टैंडर्ड के अनुसार हिंदुस्तानी का एकमात्र कवि है, पर जिसे देशी शब्दपूजा के कवि भी मानने को तैयार नहीं है।'

१५. बेट का कोश :

इस कोश का नाम है—'ए डिक्शनरी आफ हिंदी लैंग्वेज़'। यह फरवरी १८७५ ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक हैं जे० डी० बेट। इसमें तीन पूर्ववर्ती कोशों का उल्लेख है–१—हिंदी डिक्शनरी-रेवरेंड जे टी० थामसन। ये दिल्ली के बैपटिस्ट मिशनरी थे।

(२) फोर्ब्स की डिक्शनरी।

(३) शेक्सपियर की हिंदुस्तानी डिक्शनरी। इसमें हिंदुई को हिंदी से अभिन्न माना गया है। हिंदी को हिंदुई का बहु प्रचलित रूप और हिंदुई शब्द को 'हिंद' से निष्पन्न बताया गया है।

हिंदी की व्यापकता का लेखक ने इस प्रकार वर्णन किया है :

'यह भाषा बंगाल की पश्चिमी सीमा से पंजाब तक और हिमालय के पाददेश (तराई) से मद्रास प्रेसिडेंसी की सीमाओं तक ब्रिटिश-भारत और इस विशाल क्षेत्र के अंतर्गत स्थित देशी राज्यों की जनभाषा है। इस क्षेत्र में अन्य भाषाएँ भी हैं, जिनमें मुख्य उर्दू है, जो खासकर बड़े शहरों में बोली जाती है। हिंदी की आठ बोलियाँ प्रायः गिनी जाती हैं, जिनके विशिष्ट लक्षणों में स्पष्ट भेद है, पर लगभग सभी विशेषताएँ स्पष्ट ही सबका एक जनक होने के कारण हैं। इस विशाल देश हिंदुस्तान में कोई भाषा इतनी अधिक संख्या में बोली नहीं जाती।'

१६. डंकन फोर्ब्स का कोश (१८४८ ई०) :

डंकन फोर्ब्स एल० एल० डी०, किंग्स कालेज, लंदन में प्राच्य भाषाओं और साहित्य के प्रोफेसर थे। इस हिंदुस्तानी अंग्रेजी कोश में एक संशोधित भाग अंग्रेजी और हिंदुस्तानी भी है। कोश का प्रथम भाग ईस्ट इंडिया कंपनी के बुकसेलर एच० एलेन ऐंड को० द्वारा १८४८ ई० में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने आमुख में बताया है कि यह कोश उन्हीं हिंदुस्तानी के अध्ययन-अध्यापन

के बीस वर्षों के अनुभव के बाद रचा था। हंटर का १८०८ ई० में प्रकाशित कोश इसका मुख्य आधार था। इसमें गिलक्रिस्ट के 'हिंदी मॉरल प्रीसेप्टर' (लंदन, १८२१ ई०) में दी गई 'अनोखी' शब्दावली में से भी बहुतेरे शब्द लिए गए थे।

इस कोश में जिन पूर्व-प्रकाशित कोशों का उल्लेख हुआ है, उनमें प्रमुख ये हैं :

१. डिक्शनरी आफ मोहम्मडन लॉ ऐंड बंगाल रेवेन्यू टर्म्स, कलकत्ता, १७६७ ई०।

२. ए ग्लासरी ऑफ इंडियन टर्म्स, आगरा, १८४५ ई० एच० एम० ईलियट।

३. डा० ऐडम कृत हिंदी डिक्शनरी।

४. थामसन की 'हिंदी ऐंड इंगलिश डिक्शनरी' दिल्ली १८५६ ई०।

५. द 'रोज़ारियो की 'ए डिक्शनरी, इंगलिश, बंगाली, ऐंड हिंदुस्तानी।

आपने १८४७ ई० में लंदन से प्रकाशित 'रेजीमेंटल मुंशी' नामक पुस्तक का भी उल्लेख किया है, जिसमें काफी अंग्रेजी फौजी शब्द भी संकलित है।

१७. थामसन की स्कूल डिक्शनरी :

इस कोश में शब्द-संग्रह मात्र है और इसकी रचना वैज्ञानिक पद्धति पर नहीं हुई है। मि० थामसन की उल्लेख्य योग्यता यह है वे अनेक वर्ष उपरिवर्ती प्रांतों (अपर प्राविंसेज़) में रह चुके थे और वहां की आम ज़बान के अच्छे जानकार थे। आपने जन-शिक्षा के लिए अनेक पुस्तकें भी रची थीं। आप श्री रामपुर मिशन से संबद्ध थे। यह कोश सामान्य है, पर इस लेखक की यह उक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

'कलकत्ते में सरकारी आश्रय में जो अरबीनिष्ठ हिंदुस्तानी फली-फूली और जिसे फोर्ट विलियम कालेज के मुंशी और मोहम्मडन कालेज के मौलवी और विद्यार्थी बोलते हैं, वह उस भाषा से बिल्कुल भिन्न है, जो भारत के किसी भाग में प्रचलित है।[१]

---

1. 'The Arabian Hindoostanee which has grown up at Calcutta under the fostering care of Government, and is

१८. जानप्लाट्स का कोश :

इस कोश का पूरा नाम है—'ए डिक्शनरी ऑफ उर्दू, क्लासिकल हिंदी ऐंड इंगलिश'। इसके लेखक प्लाट्स ऑक्सफोर्ड में फारसी के प्रोफेसर थे। इस कोश की एक विशेषता है—शब्दों की व्युत्पत्ति पर प्रकाश। लेखक ने हिंदी शब्दों की व्युत्पत्ति बताने में वररुचि के प्राकृत प्रकाश, हेमचंद के प्राकृत व्याकरण और बीम्स के 'आधुनिक आर्य-भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण, हार्नले के 'गौडियन भाषाओं पर निबंध' और हार्नले के हिंदी धातु-संग्रह से लाभ उठाया।

व्युत्पत्ति-निर्देश की कठिनता और दुरूहता का अनुभव करते हुए लेखक का कथन है :

'हमारे ज्ञान की वर्तमान आरंभिक अवस्था में शब्दों की व्युत्पत्ति का निश्चय करना अति कठिन है, प्रत्येक अवस्था में तो असाध्य है। इस कृति के इस अंश की अपूर्णता और त्रुटियों को मैं स्वयं सखेद अनुभव करता हूँ, पर जिन विद्वानों को इस विषय की आंतरिक कठिनाई की जानकारी है, वे इस अंश के प्रति उदार होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। अनेक शब्दों का प्राकृत मूल ज्ञात नहीं हो सकने के कारण हमने केवल संस्कृत समशब्द दे दिए हैं। हाल के गढ़े बहुतेरे हिंदी शब्द वास्तव में संस्कृत शब्दों के विकार मात्र हैं। अतः केवल उनके संस्कृत मूल को दे देना पर्याप्त है। बहुत अवस्थाओं में हिंदी शब्द के गठन में सरल संस्कृत तत्त्व मात्र का उल्लेख कर दिया गया है और संस्कृत व्याकरणानुसार उनके संयोग को दिखलाने की चेष्टा नहीं की गई है, चूँकि वैसे संयोग से निर्मित शब्द न तो संस्कृत में है और न हो सकते थे। जो मेरे पाठक इस रीति की निंदा करना चाहते हैं, उनसे मैं यही चाहूँगा कि वे बीम्स के उन पृष्ठों पर ध्यान दें, जो निर्णयात्मक रूप से यह दिखला चुके हैं कि अपने शब्द-गठन में भारत के प्राकृतभाषी जन पाणिनीय नियमों से बँधे नहीं थे।' (पंचम संस्करण, १९३० ई०)।

जिस कोश में व्युत्पत्ति-निर्देश नहीं हो, वह विद्वानों का परितोष नहीं

---

spoken by the Moonshees of the College of Fort William and the Moulvees and students of the Mohammedan College, is quite a different language from that which prevails in any other part of India.'

करता। खेद है कि अभी तक हिंदी के अच्छे कोशों में, यहाँ तक कि शब्द-सागर में भी, व्युत्पत्ति पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार नहीं हुआ है। अतः इस दृष्टि से इस दिशा में प्लाट्स का प्रयास सर्वथा अभिनंदनीय है।

चूँकि इस कोश में क्लासिकल हिंदी के शब्द भी हैं, अतः हजारों संस्कृत शब्द भी मिलते हैं। हिंदुस्तानी नाम वहन करने वाले अंग्रेजों के अन्य कोशों की भांति इसमें भी संस्कृत के कठिन शब्द मिलते हैं—यथा आद्य, आढ्य, अध्यारोप, उद्दीपन आदि।

खंड : २

यूरोपियन : हिंदी के प्रेरक और पोषक रूप में

हिंदी को फोर्ट विलियम कालेज में अंग्रेजी राज्य में प्रथम बार राजाश्रय प्राप्त हुआ था। उस दृष्टि से कॉलेज की स्थापना का अत्यंत महत्त्व है। कलकत्ता में देश के सभी भागों से हिंदी संस्कृत के पंडित आ आकर जुटने लगे। जिस प्रकार मुगल-काल में दिल्ली का राजाश्रय पाकर हिंदुस्तानी का उर्दू रूप विकसित हुआ था, उसी प्रकार कलकत्ता में हिंदी के खड़ी बोली और ब्रजभाषा रूपों को अंग्रेजों ने संरक्षण और पोषण दिया। यहाँ हिंदी लेखकों और कवियों के आश्रयदाता 'श्री महाराजाधिराज सकल गुन निधान पुण्यवान महाजान मारविकरू वेलिजली गवरनर जनरल प्रतापी' थे। इस संबंध में प्रेम-सागर के लेखक लाल कवि की उक्ति देखी जा सकती है—

> कवि पंडित मंडित किए नग भूषन पहिराय।
> गाहि-गाहि विद्या सकल वस कीनी चित चाय॥
> दान रौर चहूँ चक्र में चढ़े कविन के चित।
> आवत पावत लाल मनि हय हाथी बहु वित॥[१]

इसका अर्थ है कि वहाँ महाराजाधिराज ने कवियों और पंडित को रत्न (नग) और भूषण पहिरा कर मंडित किया। उनके दान का हल्ला चारों ओर फैल गया। वहाँ कवि आकर लाल मणि, हय हाथी और बहु चित्त पाते थे। 'लाल' शब्द श्लिष्ट है। लाल--लल्लू जी का उपनाम और मणि-विशेष भी। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कंपनी के राज्य में कवियों को पूरा सम्मान कलकत्ता में प्राप्त होता था। कवियों और पंडितों को घोड़ा-हाथी भी महाराजाधिरज 'वेलेजली' से भी प्राप्त होता था,

---

१. प्रेम सागर—ना० प्र० स० पृष्ट ४१ तृतीय संस्करण प्रेमसागर के मूल पाठ का श्री योगधारा मिश्र ने परिष्कार कर दिया था। परिष्कार में प्रायः तदभव रूपों को तत्सम में बदल दिया गया।

इसका कोई अन्य प्रमाण तो नहीं मिला है, पर लल्लू जी का कथन अतिशयोक्ति मात्र कह कर टाला नहीं जा सकता। संभव है कुछ पंडितों और कवियों को, प्राचीन राजकीय परंपरा का अनुसरण करते हुए, तत्कालीन गवर्नर जनरल ने इस प्रकार सम्मानित और पुरस्कृत किया हो।

कालेज से संबद्ध पंडितों और मुन्शियों की कृतियों के लिखाने और प्रकाशित करने में जो आर्थिक सहायता और सुविधा मिली उसका हम उल्लेख कर चुके हैं। श्री रामपुर में जब बाइबिल के विविध भारतीय भाषानुवादों के प्रकाशन की योजना बनी, तब अनेक भाषाविदों को उस स्थान में काम मिल गया और उन्हें समुचित पुरस्कृत किया गया। केरे ने जब देश-भाषाओं और हिंदी की अनेक जनपदी बोलियों में बाइबिल के अनुवाद निकाले तब अनेक पंडितों और मुंशियों को जीविका और प्रश्रय मिला। मिशनरी अनुवादों में प्रायः हिंदी शैली अपनाई गई, चूंकि जनता तक ईसाई धर्म ग्रंथों को पहुँचाना अभीष्ट था।

ईसाई पाठ्य-पुस्तकें

जब पादरियों ने मिशन स्कूल हिंदी क्षेत्र में खोले तब उनका ध्यान पाठ्य पुस्तकों को तैयार करने की ओर गया। उस समय हिंदी क्षेत्र में आगरा और मिर्जापुर और मुंगेर मिशन के प्रमुख गढ़ थे। १८२२ ई० का प्रकाशित एक ज्योतिष-विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तामसन नामक यूरोपियन का मिलता है, जो न केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह एक विदेशी की कृत्ति है, वरन् वह लल्लू जी के एक समकालीन की रचना है। यह 'ज्योतिष और गोलाध्याय' की नाम पुस्तक अनुवादित पाठ्य ग्रंथ हैं, जिसके रचयिता तामसन साहेब है। इसमें खगोल और भूगोल का वर्णन है।

आगरे की स्कूल बुक सोसाइटी ने १८३७ ई० में इंगलैंड का इतिहास और १८३६ ई० में मार्शमैं के प्राचीन इतिहास का अनुवाद प० रतनलाल से 'कथासार' नाम से कराया, जिनके संपादक जे० जे० मूर थे। यहीं से भूगोल सार और रसायन प्रकाश भी निकले थे। कलकत्ते से पदार्थ विद्यासार नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। १८४० ई० में इलाहाबाद से आजमगढ़ रीडर निकला। शेरिंग साहेब के सम्पादकत्व में अर्फन प्रेस, मिर्जापुर से कई पुस्तकें निकलीं, जिसमें मुचरिच दर्पण भूगोल विद्या, मनोरंजक वृत्तांत, जन्तु प्रबंध, विद्या सागर और विद्वान संग्रह उल्लेख्य है। इन शास्त्रीय ज्ञान वर्धक पुस्तकों की भाषा अपेक्षा

कृत स्वच्छ और परिमार्जित है। आसी और जान के ईसाई भजन भी बाद में यहीं से प्रकाशित हुए।

उदन्त मार्तण्ड और अंग्रेज

पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के पीछे मिशनरियाँ का हाथ था, यह मिशन प्रेसों से प्रकाशित पुस्तकों से प्रकट होता है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि उदन्त मार्तण्ड (प्रथम हिंदी समाचार पत्र) भी 'श्रीमान् गवरनर जेनरेल बहादुर की आयस से' ही निकला था। इस प्रकार पत्रकारिता को जन्म देने में भी उनका प्रेरक नहीं तो आदेशक रूप दिखाई पड़ता है।

हिंदी में अनेक शिक्षा-क्रम में उपयोगी ग्रंथ अंग्रेज अधिकारियों की प्रेरणा से ही लिखे गए और प्रायः लेखकों ने अंग्रेजों के संरक्षण एवं पोषण का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है।

भूगोल सार

ऐसी पुस्तकों में 'भूगोल सार' नामक एक भूगोल-संबंधी पुस्तक है, जिसके लेखक श्री ऊँकार भट्ट जोशी हैं। यह पुस्तक १८३६ ई० में कलकत्ते में छपी थी। इस पुस्तक के लेखक की भाषा मालवा की भाषा से प्रभावित है और अक्षरों की दृष्टि से पुस्तक की भाषा दोषपूर्ण है। १८३६ ई० के लगभग हिंदी लिखने की पंडितों की रीति का यह नमूना है। इससे पादरी आदम की भाषा कहीं उत्कृष्ट है। इस पुस्तक के लेखन की प्रेरणा और पद्धति पर जोशी जी के प्रारंभिक कथन से अच्छा प्रकाश पड़ता है। अपने संरक्षक और प्रेरक अंग्रेज अधिकारियों के लिए जो विरुदावली शैली अपनाई गई है, वह ध्यातव्य है।

'स्वस्ति श्रीमन् संपूर्ण गुण से अलंकृत सर्वशास्त्रज्ञ अति प्रवीण पंडित लोगों के गुण के जानने वाले दीन अनाथ के संरक्षण करने वाले आश्रित लोगों के मनोर्थ पूर्ण करने वाले सभा मनरंजक समस्त जन के धर्म्म के निभावने मुलक मालवे भोपाल जिले के अजंठ राज्य मान्य राज्य श्री लानू सिलट विल्किन्सन् साहवे बहादुर ने सीहोट छावनी मो हुकुम दिया कि श्री मद्भागवत का सिद्धांत शिरोमणि वा जयन मत वा अंग्रेज लोग की दरियाप्ति इन सबमो भूगोल कहाँ फरक है सो इन चारो मत के फरक निकलना जिस्मो गयर वाजवी नजर आवे उसकु असत्य लिखना जिस्यो ईलम से वा अकिल से वा गणित से

अच्छा वाज दी नजर आवे उसकु सत्य लिखना किसी मत का भि भुला जा न रखना यह बात सुन कर साहबे बहादुर के हुकुम कु शिर पर रख कर आप्टे के रहने वाले ब्राह्मण, गुजराति और दुंवरजात ज्योतसी उंकार भट्ट ने सिरोमणि के श्लोक का आधार लेके आरंभ किया अवर इस ग्रंथ का नाम भूगोल सार रखा है अवल हरेक तकरार कहने वाला अवर सुनने वाला दो सक्स विगर नहीं हो सकती है इस वास्तें गुरु शिष्य के संवाद से यह ग्रंथ रचा गया है इस मो जाहाँ-जाहाँ फरक रहा होवे सो पंडितों ने निकालना उन्हों कुं हमारा नमस्कार है।' (पृ० १-२)।

इस भाषा को देखकर यह स्पष्ट है कि इसका लेखक भाषा-विवेक से सर्वथा रहित था और उसने हिंदी के मानक उच्चारण के अनुसार अक्षरी नहीं रखी। श्री लल्लू जी और सदल मिश्र की रचनाओं के लगभग २५ वर्षों बाद ऐसी भद्दी और भोंडी भाषा देखकर खेद होता है। हिंदी गद्य को आगे बढ़ाने का किसी ने प्रयास नहीं किया। जैसा जिसे रुचा, वैसा ही वह लिखने लगा। अतः श्री बालमुकुंद गुप्त का सं० १९६४ में यह कथन सत्य था कि 'पर दुख की बात है लल्लू जी के पीछे बहुत काल तक ऐसे लोग उत्पन्न नहीं हुए जो उनके दिखाए मार्ग पर चलते और उनके किए हुए काम की उन्नति करते। इसी से उनका काम जहाँ का तहाँ रह गया। देवनागरी अक्षरों में प्रेमसागर के ढंग का नई-नई रचनाएँ करने वाले लोग साठ साल तक फिर दिखाई नहीं दिए।'

इसका एक कारण यह था १८४५ ई० तक किसी अंग्रेज अधिकारी का हिंदी में पुस्तकें लिखवाने में विशेष अनुराग नहीं था और राजकीय संरक्षण के अभाव में किसी का ध्यान इस पर नहीं था। १८४५ ई० के बाद पश्चिमोत्तर प्रदेश में स्कूलों में हिंदी की ठीक से पढ़ाई आरंभ होने पर शिक्षा विभाग का मुख्य ध्यान पाठ्य पुस्तकों पर गया। अतः १८४५ ई० के बाद पाठ्यपुस्तकों का युग आरंभ होता हैं।

भूगोल हस्तामलक

यह पुस्तक कलकत्ते के संस्कृत प्रेस से १८५५ ई० में छपी थी। इसके लेखक 'बनारस अंजटी' के मीर मुंशी बाबू शिवप्रसाद ने थे, जो बाद

में राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद कहलाए। यह 'पश्चिम देशाधिकारी श्रीयुत लफ्टन्ट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार' बनाई गई थी।[1]

इस पुस्तक के प्रथम भाग में एशिया के प्रमुख देशों का वर्णन है। अन्य देशों का भी संक्षिप्त परिचय है। हिंदुस्तान के संबंध में १९-२० पृष्ठ हैं। 'उपोद्‌घात' से ज्ञात होता है कि वैताल पचीसी की चाल पर इसकी भाषा थी। उर्दू को उस समय की इस देश की मुख्यभाषा कहा गया है।[2] पुस्तक १८५३ ई० में ही लिखी गई थी, पर छपी १८५५ ई० में। यह पुस्तक देश की तत्कालीन सामाजिक अवस्था के जानने के लिए उपयोगी है।

भारत की भाषिक स्थिति के संबंध में यह उद्धरण महत्त्वपूर्ण है—'बोली इस मुल्क में अब उर्दू मुख्य गिनी जाती है, परंतु यह केवल थोड़े ही दिनों से जारी हुई। उर्दू का अर्थ लश्कर है, जब तुर्क, अफगान और मुगलों की हिंदुस्तान में बादशाहत हुई और उनके आदमी यहाँ लश्कर के दर्मियान बाजारियों के साथ हर वक्त खरीद फरोख्त में बोलने चालने लगे, तो उनकी अरबी फारसी और तुर्की इन लोगों की हिंदी के साथ मिल कर यह एक जुदी बोली हो गई और इसका निकास उर्दू अर्थात् लश्कर के बाजार से होने के कारण नाम भी इसका उर्दू की जुबान रखा गया। महाराज पृथ्वीराज के भाट चंद ने जो दोहरे बनाए हैं वह इसी असली हिंदी बोली में है, जो मुसलमानों के चढ़ाव से पहले इस देश में बोली जाती थी, अब जिस बोली में फारसी अरबी के शब्द कम रहते हैं और हिंदी हर्फों में लिखी जाती हैं, उसे हिंदी और जिस्में फारसी अरबी के शब्द अधिक रहते हैं और फारसी हर्फों में लिखी जाती है, उसे उर्दू कहते हैं।' (पृष्ठ ६४)।

---

१. मुख पृष्ठ पर लिखा है—'श्री मंमहाराजाधिराज पश्चिमदेशाधिकारी श्रीयुत लफटन्ट गवर्नर बहादुर की आज्ञानुसार बाबू शिवप्रसाद बनारस अँजटी के मीर मुंशी ने बनाई।'

२. 'कितने मित्रों की संम्मति थी कि यह पुस्तक छुट हिंदी बोली में लिखी जावे, पारसी का कुछ भी पुट न आने पावे. परंतु हमने जहाँ तक बन पड़ा बैयाल पचीसी की चाल पर रखा. और इसमें यह लाभ देखा, कि पारसी शब्दों के जानने से लड़कों की बोलचाल सुधर आवेगी, और उर्दू मी जो अब इस देश की मुख्य माषा है सीखनी सुगम पड़ेगी।' 'वेआल पचीसी' में 'आ' स्पष्ट ही मुद्रण दोष है, 'ता' होना चाहिए। भूगोल हस्तामलक का यह संस्करण रायल एशियाटिक सोसाइटी में है।

इस लम्बे उद्धरण को देने का प्रयोजन उस टिप्पणी की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना है, जो 'हिंदी' शब्द पर उन्होंने दी है। 'पुरानी पोथियों में जो दस भाषा लिखी है अर्थात् पंच गौड़ और पंच द्राविड़। पंच गौड़ में सारस्वत, कान्य कुब्ज और मिथिली और उड़ेसा। और पंच द्राविड़ में तामल, महाराष्ट्र, कर्नाट, तेलंग और गुर्जर। सो इनमें से जो बोली कान्य कुब्ज में बोली जाती थी वही हिंदी की जड़ है।'—इस विचार की तुलना कोलब्रुक के विचार से कीजिए, जो एशियाटिक रिसर्चेज में प्रकाशित है।

इस पुस्तक में दो तरह की भाषा मिलती है—एक हिंदुस्तानी (सरल उर्दू) और दूसरी तत्सम युक्त शैली वाली हिंदी। यू० पी० में बाबू शिवप्रसाद को अंग्रेज अफसरों ने ही 'हिंदुस्तानी' पक्ष लेने को प्रेरित किया था। बिहार में राय सोहन लाल का भी यही 'रोल' था। दोनों शिक्षा-विभाग के इन हिंदुस्तानी अधिकारियों को शैली या हिंदुस्तानी को चलाने और बढ़ाने को आदेश मिला था। 'विद्यांकुर' की भूमिका में शिवप्रसाद ने स्पष्ट लिखा है, 'जब मैं मि० विलियम एडवर्डस के अधीन शिमला में काम कर रहा था तब मैंने चेम्बर में 'रुडिमेंट्स आफ नालेज' और 'इंट्रोडक्शन' टु साइंसेज के पहले के कुछ पेजों के आधार पर नागरी में 'मालूमात' और भूगोल नाम की दो लघु पुस्तकें पहाड़ी राज्यों के स्कूलों के लिए लिखी थीं। उस समय के पश्चिमोत्तर प्रांत की गवर्नर मि० शामसन इससे इतने खुश हुए कि ग्रामीण स्कूलों में चलाने के लिए उन पुस्तकों को मि० एच० स्टीवार्ड, डी० पी० आई को दे दिया। उन्होंने उन पुस्तकों को अपने पंडितों को दिया, जिन्होंने हिंदी संस्कृत से फारसी शब्दों को निकाल कर उनके स्थान पर संस्कृत शब्द रख दिए और उर्दू संस्करण में सभी संस्कृत शब्दों को फारसी अरबी में बदल दिया गया। बोलचाल की एक ही जबान के दो रूपों के बीच की खाई को चौड़ा करते हुए दो पृथक् भाषाओं को बनाने का काम, लगभग एक सदी के तीसरे हिस्से तक चलता रहा। सरकार के १३ जून १८७६ ई० के आर्डर नं० १७५ ए के अनुसार पंडितों और मौलवियों की इस पंडिताई पर रोक लगा दी गई और कामन भाषा की पुनर्स्थापना के पक्ष में प्रतिक्रिया का आरंभ हुआ। आगे आप यह लिखते हैं कि इस प्रांत के देहाती स्कूलों में प्राथमिक पुस्तकें इसी कामन भाषा में नागरी और फारसी लिपि में लिखाने की कोशिश हो रही है।

१८७३-७४ ई० में पश्चिमोत्तर प्रांत में शिक्षा की प्रगति की रिपोर्ट में डाइरेक्टर ने लिखा था–

मुझे आशा है कि शीघ्र ही वे देशभाषा (उर्दू और हिंदी) के दोनों रूपों का एक कामन (उभयनिष्ठ) व्याकरण और वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण हो सकेगा।

१८७३ ई० महत्त्वपूर्ण वर्ष है, क्योंकि इसी समय अंग्रेजी अफसरों के मन में हिंदी और उर्दू के बीच बढ़ती हुई खाई को पाटने के लिए 'हिंदुस्तानी' (उर्दू अर्थ में नहीं, बीच की जबान, कामन लैंग्वेज के रूप में) बढ़ाने का विचार जगा और पश्चिमोत्तर प्रांत और बिहार में भी हिंदुस्तानी को संरक्षण मिला और उसे बढ़ाने की संगठित चेष्टा हुई।

इसी प्रकार बिहार में बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को भी अंग्रेज अधिकारियों से हिंदुस्तानी के समर्थन की प्रेरणा मिली थी। उनका यह कार्य शिवप्रसाद जी के प्रयत्नों से तुलनीय है। खत्री जी की पुस्तकें लन्दन सेछपी और इसकी प्रशंसा अंग्रेज लेखकों ने की थी।[1] ग्रियर्सन के प्रकरण में हम यह दिखलायेंगे कि श्री अयोध्या प्रसाद सिंह उपाध्याय हरिऔध ने ग्रियर्सन की इच्छा की पूर्ति के लिए ही तद्भव शैली में ठेठ हिंदी का ठाठ लिखा था।

रानी केतकी की कहानी और अंग्रेज

यह कहानी कब लिखी गयी यह प्रामाणिक रूप से ज्ञात नहीं। श्री व्रजरत्नदास के अनुसार यह सं० १८६० ई० (सन् १८०३ ई०) में लिखी गई थी। पर इसकी पुष्टि में वे कोई प्रमाण नहीं देते। नागरी प्रचारिणी सभा में प्राचीन हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि १८०८ ई० की है। इसके बाद संवत् १९०३ की काश्मीरी यंत्रालय से इसे छपाया गया। जयपुर निवासी स्कूल बुक सोसाइटी के ग्रन्थ-शोधक की इच्छा से यह ग्रन्थ संवत् १९०३ में काश्मीर यंत्रालय कलकत्ता में छपाया गया। इस संस्करण में इसकी भाषा को ठेठ हिंदुस्तानी का कहा गया है। पर इसमें इसके पहले के एक संस्करण का उल्लेख है, जिसे हरिराम पंडित लखनऊवासी ने संग्रह किया था। तीसरी बार इसे लखनऊ के लामार्टिनिएर कालेज के प्रधानाध्यापक मिस्टर शिंट ने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के १८५२ ई० के २१ वें भाग में अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया था। यह कहानी फारसी लिपि

१. देखिए-खत्री अभिनन्दल ग्रन्थ, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

में अपूर्ण छपी। इसे विशप्स कालेज के प्रो० लेटर ने २४ भाग में पूरा करके प्रकाशित कराया। शिट के अनुसार यह शब्दों और मुहाविरों का कोश है और इससे इनके प्रयोग का ठीक ज्ञान होता है। इस प्रकार शिट और स्लेटर ने ही अंग्रेजी अनुवाद सहित इसे एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित कर इसे महत्त्व दिया। १८७४ ई० में शिवप्रसाद के गुट के तीसरे भाग में यह 'कहानी' 'ठेठ हिंदी में' के नाम से प्रकाशित हुई। इसमें कुछ संशोधन परिवर्तन भी शिवप्रसाद जी ने किया था। अतः एक प्रकार से सोसाइटी का पाठ ही ठीक जान पड़ता है, क्योंकि जैसा प्रसिद्ध है, रानी केतकी की कहानी फारसी अक्षरों में ही लिखी गयी थी। इस प्रकार अंग्रेजों को ही इसके सुसंपादित प्रकाशन का श्रेय है।

२. फोर्ट विलियम कालेज और उसकी देन

मार्क्विस वेलेजली ने इस कालेज की स्थापना ४ मई, १८०० ई० को की। इसके उद्देश उच्च और महान् थे। उन्हें यह आवश्यक अनुभव हुआ कि 'आदरणीय ईस्ट इंडिया कंपनी के जो सिविल सर्वेन्ट भारत सरकार में उच्च और महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं वे सुयोग्य बनें, ताकि अपने पद और स्थान के गुरुतर कर्त्तव्य का पालन कर सकें तथा साहित्य और विज्ञान की पर्याप्त शिक्षा के साथ ही ग्रेटब्रिटेन के कानून, शासन और संविधान के समुचित ज्ञान से युक्त हों तथा हिंदुस्तान और दक्खिन की विभिन्न देशभाषाओं, प्रांतीय प्रथाओं और रीतियों का भी उन्हें ज्ञान हो, जहाँ वे शासनार्थ नियुक्त किये जाएँ। चूंकि भारत में ऐसी कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है, जहाँ कंपनी के जूनियर सिविल सर्वेन्टों को उत्तम शिक्षा दी जा सके, सपरिषद् गवर्नर जनरल इस कालेज की स्थापना हेतु ऐक्ट बनाया।

वर्तमान भारतीय भाषाओं में हिंदुस्तानी को सभी प्राच्य भाषाओं में प्रथम स्थान दिया गया। यहाँ हिंदुस्तानी, बंगला, तेलुगु, मराठी, तामिल और कन्नड की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। काउंसिल के १८ अगस्त १८०० ई० की कार्यवाही (मिनट्स) के विवरण द्वारा वेलेजली ने सूचित किया कि उस समय बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बनारस, कर्नाटक में कंपनी की जागीर नादेन सरकार, बड़ा महाल और दूसरे जिले जो १७९२ ई० की श्री रंगपट्टम की संधि से मिले थे, कंपनी के यूरोपियन सिविल सर्वेन्टों के सीधे शासन के अंतर्गत थे।

आरंभ में ही वेलेजली द्वारा स्थापित इस संस्था को बाधाओं का सामना करना पड़ा, चूँकि 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' ने इसकी उपयोगिता को कभी ठीक से नहीं समझा, अतः उसने यह आदेश दिया कि यह संस्था तोड़ दी जाए। इसके लिए प्रमुख कारण ये बताए गए कि ऋण अत्यधिक है, मुद्रा का भारत में बड़ा अभाव है और सार्वजनिक साख (पब्लिक क्रेडिट) गिर गई है और वाणिज्य में लगी कम या पूर्णतः रुद्ध हो गई है। वेलेजली ने संस्था का प्रबलता के साथ पक्ष लिया और सबल शब्दों में लिखित एक प्रतिनिधि पत्र (रेप्रजेंटेशन) कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के चेयरमैन को दिया। इसमें एक अत्युपयोगी व्याकरण के लेखक और कोशकार रूप में हिंदुस्तानी भाषा के शिक्षक डा० गिलक्रिस्ट ने भूरि-भूरि प्रशंसा की, जिनके परिश्रम और प्रतिभा के फलस्वरूप सर्वव्यापक बोलचाल की भाषा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना अब संभव हो गया।

कालेज में हिंदुस्तानी की शिक्षा पर बड़ा जोर था। अतः विद्यार्थियों की प्रगति को जाँचने के लिए कुछ दिनों बाद ही एक कमिटी गठित की गई, जिसने २९ जुलाई १८०० ई० को अपने रिपोर्ट में गिलक्रिस्ट की विद्वता की पुनः सराहना की। इस प्रसंग में उन जूनियर सिविल सर्वेन्टों का नाम भी जानना आज भी रुचिकर होगा, जिन्होंने हिंदुस्तानी भाषा में प्रगति की थी और फलस्वरूप पुरस्कृत हुए थे।[१] इसमें अनेक आगे चलकर हिंदुस्तानी के सेवक रूप में प्रसिद्ध हुए।

हिंदुस्तानी का शिक्षण-स्तर :

कालेज में हिंदुस्तानी का कितना ज्ञान अपेक्षित था यह हम पाठ्यक्रम और प्रश्नावली के आधार पर अनुमान कर सकते हैं। परीक्षाओं के व्याकरण के कुछ प्रश्न नमूने के तौर पर हम इस अध्याय के अंत में देखते हैं, जिससे यह ज्ञात होगा कि इन अंग्रेज अध्येताओं को हिंदी व्याकरण का अच्छा ज्ञान करा दिया जाता था। इनमें से कुछ प्रश्न आज भी कालेज की हिंदी परीक्षा में दे दिए जाएँ तो विद्यार्थी को काफी कठिन लगेंगे। कैप्टेन टेलर की सहमति यह थी कि यद्यपि हिंदुस्तानी शिक्षण-स्तर कभी बहुत ऊँचा नहीं था, पर वह कम भी नहीं था। जिस तरह हर्टफोर्ड कालेज में हिन्दुस्तानी

---

१. इन नामों में जान मान्करन, विलियम वटरवर्थ बेली, विलियम मार्टिन, जेम्स इन्टर आदि बाद में प्रसिद्ध हुए।

की अवज्ञा होती थी, वह बात फोर्ट विलियम में नहीं थी। यहाँ हिंदुस्तानी की प्रतिष्ठा थी और इसके समुचित ज्ञान पर जोर दिया जाता था।

सरकार ने कालेज के परीक्षकों से विमर्श कर हिंदुस्तानी का स्तर निर्धारित करने के लिए एक कमिटी बनाई। इस कमिटी के तीन सदस्य थे मेजर टेलर, कैप्टेन ई० मैकेट, लेफ्टनेन्ट कर्नल पैटन। २२ अप्रैल, १८२३ ई० को इस कमिटी ने दुभाषिया पद के उम्मीदवारों से यह अपेक्षा की।

(१) व्याकरण के सामान्य सिद्धांतों का दृढ़ आधार युक्त ज्ञान
(२) उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियों की जाँचने की योग्यता,
(३) उर्दू और हिंदी में बातचीत की योग्यता इतनी हो, कि आसानी से तत्क्षण किसी आर्डर को बोलियों में समझा जा सके और रिपोर्ट, कागज पत्र आदि का अंग्रेजी में अनुवाद कर सके।

कमिटी में इसके लिए ये सिफारिशे कीं :

(१) व्याकरण के सामान्य प्रमुख नियमों पर, बारीकियों पर नहीं, चुने हुए प्रश्न दिए जाएँ।

(२) परीक्षक के साथ मौखिक परीक्षा।

(३) कुछ चुने हुए आर्डरों और रूल, रेगुलेशनों का हिंदुस्तानी की दोनों लिपियों में अनुवाद करना।

(४) हिंदुस्तानी के बागोबहार, खड़ी बोली के प्रेमसागर और फारसी के गुलिस्तां या अनवर सहेली को पढ़ने और उल्था करने की योग्यता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दुभाषिया के लिए काफी ज्ञान की आवश्यकता थी। उस समय अंग्रेजी जानने वाले हिंदुस्तानी बहुत ही कम थे, इसलिए दुभाषियों की बराबर जरूरत पड़ती थी और इनके लिए कालेज परीक्षाएँ लेता था।

सार्वजनिक वाद-विवाद योजना (पब्लिक डिस्प्यूटेशन) :

विद्यार्थियों की योग्यता को जांचने के लिए कालेज में सार्वजनिक वाद-विवाद पद्धति अपनायी गई। प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी सीखी हुई भाषा में सबके बीच बोलना पड़ता था। द्वितीय सार्वजनिक वाद-विवाद के विवरण से ज्ञात

होता है कि डब्ल्यू० बी० बेली भारतीय भाषाओं के सबसे योग्य विद्यार्थी थे।[1] उन्हें चारों भाषाओं हिंदुस्तानी, बंगला, फारसी और अरबी में 'डिगरी आफ आनर्स' प्रतिष्ठा की उपाधि मिली थी। प्रथम-वाद विवाद में उन्होंने हिंदुस्तानी और बंगला में भाग लिया था। हिंदी में बेली ने एक थीसिस लिखी थी[2] और ग्रीक लैटिन में भी पुरस्कृत हुए थे। १८०२ ई० में कालेज में पठित निबंधों का जो संग्रह निकला, उसमें बेली का भी एक निबंध है, जिसमें भारतीय काव्य का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है।

'संस्कृत और हिंदुई के काव्यस्रोतों से बहुत थोड़ा ही हमारे आगे प्रस्तुत हुआ है, पर जो भी थोड़ा-सा आया है उसके बल पर ही हम यह निर्णय दे सकते हैं कि प्रथम में सोफोक्लीज की शक्ति के साथ पिंडार का वैभव है, और द्वितीय में ओविड का संपूर्ण सौंदर्य थियोक्रिटस के माधुर्य के साथ विद्यमान है,

इस उद्धरण से प्रकट है कि संस्कृत और हिंदुई की काव्य-संपदा को वे उत्तम ग्रीक काव्य के समकक्ष मानते थे।

तृतीय वाद-विवाद २० सितम्बर, १८०४ ई० को हुआ। विषय था—'संस्कृत भारत की पितृभाषा है' इस अवसर पर कैप्टेन जोन्स मोअर, असिस्टेन्ट प्रोफेसर ने माडरेटर का काम किया था। इसके विवरण से कई महत्त्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि 'प्राच्य लिपियों के मुद्रण की कला में देशी कारीगरों द्वारा बहुत सुधार हो चुका है और अनेक देशी विद्वान् प्राच्य साहित्य की कई कृतियों के प्रकाशन में लगे हैं। ८ मार्च, १८०६ ई० के चतुर्थ वाद-विवाद की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी प्रेस में है'। पुनः १५ फरवरी, १८०८ ई० की रिपोर्ट से यह जानकारी मिलती है कि विद्वान् हिंदुओं ने एक छापाखाना खोला है, जिसमें संस्कृत ग्रन्थों को छापने के लिए तरह-तरह की साइज के नागरी टाइप के पूरे फाउंट हैं।

इस प्रेस को संस्कृत के उत्तम कोशों और संस्कृत व्याकरण के नियमों के संग्रह को प्रकाशित करने को कालेज ने प्रोत्साहित किया है। अन्यत्र यह उल्लेख है कि बाबू राम संस्कृत प्रेस के स्वामी और संचालक हैं। २ मार्च

---

१. बेली १७९९ ई० में 'राइटर' होकर आये थे और बढ़ते-बढ़ते १८२८ ई० में कुछ दिन तक स्थानापन्न गवर्नर हो गए। बाद में कोर्ट के डाइरेक्टर बनाए गए। आप गिलक्रिस्ट के छात्र थे।

२. उनकी हिंदुस्तानी की थीसिस भाषा उर्दू है।

१८०८ ई० की रिपोर्ट से विदित होता है कि 'एक फारसी और हिंदुस्तानी शब्दावली और दूसरी सस्कृत और बंगाली शब्दावली तैयार कर ली गई है और उन्हें छाप कर योग्य व्यक्तियों के यहाँ भेजा जायगा ताकि वे भारत की अन्य भाषाओं के तत्संबंधी पर्याओं को अंकित कर सकें। "इस बीच १२ प्रमुख भाषाओं की तुलनात्मक शब्दावली, अमरकोश के विस्तार और, क्रमानुसार मि० कोलब्रुक द्वारा इस काम के हेतु नियुक्त व्यक्तियों द्वारा तैयार हो चुका है और इसकी एक प्रति कालेज की लाइब्रेरी में सुरक्षित करने को तैयार कर ली गयी है।' इन भाषाओं में बंगला, उड़ीसा, तिरहुत, हिंदुस्तान, पंजाब, कश्मीर, नेपाल गुजरात, कनारा और तेलगाँवा, मराठा और तामूल या मलाबार की भाषाएँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि १८०८ ई० में ही एक बहुभाषी कोश की योजना पूरी हो चुकी थी। भारतीय भाषाओं के यूरोपियन विद्वानों की दूरदर्शिता का यह परिचायक है। उन्होंने उसी समय यह अनुभव कर लिया कि संस्कृत ही इन भाषाओं की जननी है और अमरकोश ऐसा लोकप्रिय संस्कृत कोश ऐसा तुलनात्मक कोश बनाने के लिए आधार का काम दे सकता है। खेद है कि ऐसा कोश उस समय छप नहीं सका। तब से आज डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक समय गुज़र चुका, पर अब तक ऐसा बहुभाषी प्रामाणिक कोश नहीं निकल सका। कोलब्रुक की सूझ और दूरदर्शिता की जितनी प्रशंसा की जाए वह कम है। उसी के आस-पास ऐसे ही बहुभाषी कोश बनाने में विलियम कैरे भी जो भारत की दर्जनों भाषाओं और उपभाषाओं में बाइबिल का रूपांतर निकालना चाहते थे, लगे थे। उनके द्वारा प्रस्तावित कोश की बहुमूल्य हस्तलिखित सामग्री १८११ ई० के भीषण अग्निकांड में, श्री रामपुर के छापाखाने में आग लगने पर जल कर भस्म हो गई। इन अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय आर्यभाषाओं की प्रकृति को सही रूप में समझ लिया था कि इन सभी आधुनिक भाषाओं के शरीर में संस्कृत रक्त समान प्रवाहित है और सबमें समान शब्दावली इन भाषाओं की विशेषता है।

१८०८ ई० में डा० हन्टर कृत एक हिंदुस्तानी, अंग्रेजी कोश प्रकाशित हुआ। हिंदी की दृष्टि से कई सूचनाएँ, न वे वाद-विवाद के विवरण से मिलती हैं।

(१) तुलसीदास की रामायण और बिहारी लाल की सतसई बाबूराम पंडित के संस्कृत प्रेस में छपी।

(२) हिंदुई भाषा और हिंदुस्तानी कहानियों का संग्रह छपा।

(३)— व्रजभाषा का व्याकरण तत्व, अंग्रेजी अनुवादक श्री लल्लू लाल कवि। इसे तैयार करने में हिंदुस्तान के प्रोफेसर कैप्टन टेलर ने उनकी सहायता की थी। व्रजभाषा को व्रज (जिसमें मथुरा वृन्दावन और ग्वालियर तक का क्षेत्र है) की बोली कहा गया है। टेलर को हिंदुस्तान की बोलियों में इसी बोली का अध्ययन करने को दिया गया, चूँकि इस भाषा का मुख्य आधार वहाँ की बोली है।[१] यह व्याकरण अब नहीं मिलता। लल्लू जी ने गिलक्रिस्ट के आग्रह पर 'कवायद हिंदी' भी रचा था। यह पुस्तक भी अब अप्राप्य है।

(४) प्रेमसागर का कुछ अंश भी छपा। इसका पहला भाग कई वर्षों पूर्व निकल चुका था।

(५) राजनीति–व्रजभाषा से अनूदित। यह हितोपदेश से लिया गया।

इन सूचनाओं से ज्ञात होता है लल्लू जी ने अंग्रेजी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनका एक अंग्रेजी हिंदी कोश (पुस्तिका) भी मिला है। हिंदी लेखकों में वे ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने अंग्रेजी सीखी थी। लगता है कि कॉलेज से संबंधित होने पर, और गिलक्रिस्ट कोलब्रुक आदि साहबों के संपर्क में आने पर उन्होंने कुछ अंग्रेजी सीख ली होगी।

१४ वें वाद-विवाद के विवरण से यह ज्ञात होता है कि कुछ 'मिलिटरी' के विद्यार्थियों ने लेफ्टनेंट प्राइस से व्रजभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया

---

१ इसका परिचय रोबक ने इस प्रकार दिया है—

"Grammatical principles of the Braj bhasha or Dilect of Braj, comprising Mathoora, Brindavan and the adjacent territory as far as Gwalior. with an English translation by Shri Lalololal kavi, the Bhasha Moonshi—assisted by capt Taylor Professor of the Hindoostanl Language, to whom is inscribed the Study of one of the forms of Indian Dialects' considered to form a principal part of the basic of this language-(The Annals of the College of Fort William 182.)

था। हिंदी का ज्ञान उन सबके लिए जरूरी समझा जाता था, जिन्हें भारत के सभी वर्गों की जनता से संपर्क और व्यवहार बनाए रखना पड़ता था। खास कर फौजी अफसरों के लिए तो इस भाषा का ज्ञान बहुत जरूरी माना जाता था चूंकि कंपनी की नौकरी में, बंगाल की फौज में ज्यादातर ऐसे सिपाही थे, जो ब्रजभाषा या कोई ऐसी बोली बोलते थे, जिसका मुख्य अंग हिंदी है।

जान पड़ता है कि संपूर्ण प्रेमसागर के प्रकाशन (१८१० ई०) के बाद कालेज के शिक्षकों के भाषा-विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और गिलक्रिस्ट के प्रभाव से जो हिंदुस्तानी के पक्ष में ज्यादा ध्यान और उत्साह था, वह मंद पड़ने लगा। इस वैचारिक परिवर्तन को लाने का बहुत कुछ श्रेय प्राइस साहब को है जो ब्रजभाषा के विशेषज्ञ बन गए थे। प्रेम सागर के प्रकाशन के बाद[१] यह स्पष्ट हो गया कि हिंदू प्रजा इस भाषा को अधिक पसंद करती है और गिलक्रिस्टी तथाकथित हिंदुस्तानी से काम नहीं चलने का। यों तो कालेज में ब्रजभाषा को पहले से स्थान था, लल्लू जी ब्रजभाषा के ही मुंशी थे और इसी से उनसे ब्रजभाषा व्याकरण लिखवाया गया। कंपनी के फौजी अफसर सिपाहियों की बोली को ठीक से समझ सकें, इसीलिए हिंदी के ब्रजभाषा रूप को भी महत्त्व दिया गया।

कालेज का पुस्तकालय—

१८१८ ई० में कैप्टन लाकेट ने कालेज के पुस्तकालय के विवरण में बताया कि उस समय वहाँ ८४३१ मुद्रित और २९९४ हस्तलिखित पुस्तकें थीं। अतः कुल ११,३३५ पुस्तकें कालेज पुस्तकालय में थीं जिनकी कीमत दो लाख से कम नहीं कूती जा सकती। करीब ५० हजार की अंग्रेजी पुस्तकें और पांडुलिपियां कम दाम लगाने पर भी डेढ़ लाख की होगी। "मैं ऐसा कोई संग्रह नहीं जानता, जहाँ इससे अधिक संख्या में हों। मैं पेरिस की रायल लाइब्रेरी की पुस्तक संख्या नहीं जानता।"[२] इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि समय की दृष्टि से यह विशाल और मूल्यवान संग्रह था। समकालीन विशाल विदेशी पुस्तकालयों के समकक्ष यह फोर्ट विलियम कालेज का पुस्तकालय था।

१-२ अक्तूबर, १८१० ई० को प्रेम सागर कालेज की लाइब्रेरी में रखा गया।
३. बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेंट, पे० २३, वाल्यूम २३।

कालेज के साहित्यक कार्यों का महत्त्व—

यह संस्था अपने उन उद्देश्यों की प्राप्ति में असाधारण रूप में सफल हुई, जिन्हें इसके संस्थापक ने घोषित किया था। लेखकों की साहित्यिक प्रवृत्तियों को इस संस्था ने संरक्षण दिया तथा जहाँ तक हिंदुस्तानी की बात है, यह उसका सबसे बड़ा केंद्र बन गई। हिंदुस्तानी के दोनों रूपों–हिन्दी और उर्दू गद्य का यह प्रसूतिगृह कहा जा सकता है–क्योंकि इसी कालेज के हिंदुस्तानी प्रोफेसर गिलक्रिस्ट की प्रेरणा और प्रोत्साहन से इन दोनों रूपों में प्रथम बार गद्य रचा गया और यहीं पर हिंदुस्तानी मुद्रण की उचित व्यवस्था की गई। इसी कालेज के दो प्रोफेसर गिलक्रिस्ट और केरे ने हिंदी में गद्य की पुस्तकें लिख कर, छात्रोपयोगी पुस्तकों का संकलन-संपादन कर, और हिंदी में और इसके अनेक रूपो में बाइबिल का प्रकाशन कर, हिंदी की सेवा गद्य के आरंभ काल में की। १८०० ई० के पूर्व जो गद्य था, वह नगण्य था अथवा अमुद्रित रूप में उपलब्ध होने के कारण जनता की पहुँच के बाहर था। भारतीय भाषाओं के विकास में इस कालेज का योगदान ऐतिहासिक महत्त्व का है। यहाँ के प्रोफेसरों में गिलक्रिस्ट अपने समय के सबसे बड़े हिंदुस्तानी विद्वान् थे और केरे संस्कृत हिंदी के विद्वान् के अतिरिक्त ईसाई धर्म के सबसे बड़े मिशनरी माने गए। फोर्ट विलियम कालेज और श्री रामपुर, ये ही १८०० के बाद लग-भग पचीस वर्ष तक हिंदी के सुदृढ़ गढ़ के रूप में सारे देश में मान्य हुए। हिंदुस्तानी भाषाविद् के रूप में गिलक्रिस्ट सबसे महान् थे। अपने व्याकरण और कोश की रचना कर उन्होंने हिंदुस्तानी के अध्यन-अनुशीलन का मार्ग सुगम और प्रशस्त कर दिया।

कालेज के अपने प्रकाशन और अपने संरक्षण एवं प्रोत्साहन से निकले हुए प्रकाशनों की धूम मच गयी। विभिन्न विषयों पर संस्कृत और हिंदी के अनेक ग्रंथ मुद्रित हुए, जिनसे भारत की रीति-नीति, प्रथा, कानून और धर्म पर अच्छा प्रकाश पड़ा। देशी जनों को भी अपनी प्रिय पुस्तकें मुद्रित रूप में सुलभ हो गईं, नहीं तो अनेक बेठनों में बंधी हुई नष्ट हो जातीं और दीमकों का आहार बन जातीं। कालेज के प्रकाशनों में ऐसे अनेक अंग्रेजों की कृतियाँ हैं, जो यदि उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता तो कभी भी प्रकाश में नहीं आतीं और इंगलैंड के विद्वानों को प्राच्याविदों के बीच वह उच्च और गौरवपूर्ण स्थान नहीं मिलता, जिसे प्राप्त करना उनका कर्त्तव्य था। रोबक ने अपनी पुस्तक

की भूमिका में ऐसे उद्‌गार व्यक्त किये हैं जिससे कोई निष्पक्ष विद्वान् असहमत नहीं होगा।

लार्ड मोयरा की भी यह धारणा थी कि यदि सरकार इस संस्था की स्थापना कर साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन और रक्षण नहीं देती, तो वे प्रवृत्तियाँ क्रमशः मंद पड़ते-पड़ते लुप्त ही हो गई होतीं। इसके ही द्वारा साहित्य-निर्माण के कार्य में नवजीवन का संचार हुआ।

कालेज से संबंधित हिंदुस्तानी के विद्वानों की प्रमुख कृतियों का हमने उल्लेख किया है। अब हम नीचे कालेज के प्रकाशनों की सूची प्रस्तुत करते हैं :

कालेज के प्रकशन—

(१) द स्ट्रेन्जर्स ईस्ट इंडिया गाइड टु हिंदुस्तानी
(२) द हिंदी डाइरेक्टर या स्टूडेन्ट्स इन्ट्रोडक्शन टु द हिंदुस्तानी लैंग्वेज-हिंदुस्तानी डिक्शनरी के लेखक
(३) ए डिक्शनरी हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश। इसे मूल रूप में कैप्टेन जासेफ टेलर ने प्राइवेट काम के लिए संकलित किया था।
(४) द हिंदी मैनुअल या कैसकेट आफ इंडिया। मिर्जा काजिम अली और लल्लू जी लाल। इसमें सिंहासन बतीसी माधोनल और वैताल पचीसी के अंश हैं।
(५) बिहारी सतसई—बाबूराम पंडित द्वारा संपादित।
(६) सभाविलास—लल्लूजी लाल
(७) न्यू टेस्टामेंट का हिंदी रूपांतर
(८) ओरियंटल फैबुलिस्ट
(९) डायलग्स—इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी

फोर्ट विलियम कालेज में हिंदुस्तानी के प्रोफेसर :

(१) जान बाथेविक गिलक्रिस्ट एस्वायर एल० एल० डी० फा० आर० एस० ई०, अप्रैल १८०१ ई०।
(२) एडवर्ड स्काट वारिंग एस्कायर, जून १८०१ ई०। जनवरी १८०२ ई० तक असिस्टेंट प्रोफेसर
(३) विलियम मैकडूगल असिस्टेन्ट प्रोफेसर, नवम्बर १८०० ई०।

(४) कैप्टेन जेम्स मोआट—पहले असिस्टेन्ट प्रोफेसर (फरवरी १८०३ ई०) और बाद में डा० गिलक्रिस्ट के बाद हिंदुस्तानी के प्रोफेसर नियुक्त हुए (१८०६ ई०)।

(५) कैप्टेन जॉन विलियम टेलर—मेजर मोअर के बाद २२ फरवरी, १८०८ ई०।

(६) लेफ्टनेंट रसल मार्टिन—१६ नवम्बर, १८१३ ई० को असिस्टेंट प्रोफेसर नियुक्त। २३ दिसंबर, १८१६ ई० को त्यागपत्र देकर इंगलैंड वापस गए।

(७) कैप्टेन टामस रोबक—दिसंबर १८१६ ई० में कार्यकारी असिस्टेंट प्रोफेसर।[१]

मि० डब्लू बी० बेली का हिंदुस्तानी-विषयक दावा, (६ फरवरी, १८०२ ई०)

हिंदूस्तान में काररवाई के लिए हिंदी ज़बान और ज़बानों से जीआदः दरकार है। हिंदूस्तानी जवान कि जिसका जिक्र मेरे दावे में है उसको हिंदी उर्दू और रेख्तः भी कहते हैं और यह मुरक्कब अरबी और फारसी ओ संस्कृत या भाषा से है और यह पिछली अगले ज़माने में तमाम हिंद में राऐज थी।

---

१. इस अध्याय में मस्तुत सामग्री के संचयन में रोबक की पुस्तक से विशेष सहायता ली गई है। इस पुस्तक का अंग्रेजी नाम इस प्रकार है :

"Extracts from the Annals of the College of Fort William from the period of its foundation by His Excellency Richard Marquis Wellesly K. P. on the 4th. May 1800 to the present time." Compiled from official records. Arranged and published by Thomas Rocbuck Captain in the Madras Native Infantry, Public Examiner in the Hindostanee, Braj Bhasha, Persian and Arabic languages, Printed by Phillip Pereira at the Hindustani Press, Calcutta, 1819.

अरब के सौदागरों की आमद-ओ-रफ्त से और मुसलमानों की अक्सर यूरिश और हुकूमति के आमी के वाइस अलफाज़ि अरबी और फारसी उसी पुरानी बोली में बहुत मिल गए और एक जवान नई बन गई जैसे कि बुनियादी कदीम पर तामीरि नो होवे गरज़ू रफ्‌त: रफ्‌त: इस जबानिजदीद ने यिह सूरत और रोनक पकड़ी और दिल्ली के अहलि दरबार ने चाहा कि यिही बोली हमारे उन कामों में जो ज़बान से तअल्लुक रखते हैं वसीतः से तब यिह बतदरीज हर तरफ फैली चुनांचि नतीज: इसका यिह हुआ कि हरएक मुसलमानि दरबार छोटे और बड़े में भी एक मुदत में यिह नई ज़वान जारी हुई।

आखिउल अमर यिह बोली हिंदुस्तान सबको अज़ीज और प्यारी हुई ओ अक्सर मुतवतिनों ने इसी मुरक्कबज़बान पर नागि़व होकर इसको अव्वल कीआ कि अपने ऐसे मुआमलात जिनका इस्तिहकाम माकूफ़ तहरीर पर न हो उनमे इसी से कलाम करें।

जो इख्तिलाता मुसलमानों का हिंदूओं के सार्थक्त सबब और वजह से कबही कसरत से हूआ और कबही किल्लत से-पस इसी वास्ते हिंदी ज़बान में अजनबी डालफाजों की आमेज़िश कबही कसीर कबही कजील हूई।

यिह इख्तिलाफ ज़बान का तीन वजह से बाहर नहीं याने मुहावर ऐ कदीम य दिहाती—अनुमी या शहरी—दरबारी या इलषी जों कोई चाहे इन तीनों का इमतियाज़ बखूबी करे, कि हरऐक का मकाम जुदाजुदा और फाऐदः हिंदूस्तान की हरएक कौम ओ कवाइल में अलाहिदः अलाहिदः पैहले मुहावरे मे अजनबी अलफाज़ कम दखीलु हुए हैं इसी वास्ते बुह अपनी जगह की देसी भाषा से अकसर जीआद निसबत रहता है और सदरे में तखमीनन अजजऐ मखलूती जुज़ि असली के मुतसावी हैं तीसरे में अरबी और फारसी अलफाज की जीआद तो कमाल है।

इस ज़बान के गलबे में जुफ बाने बाने मुल्कों में कितने आरिजो से जो पड़ा है सो उनकी तफसील जरूर नहीं क्यूंकर कि ये हरऐक साहिबि और पर खुद ब खुद रोशन है।

लेकिन इस इकरार से मेरा दावा कुछ जईफ नहीं हो जाता, क्यूँकि अगर यि हिंदूस्तान की सर जमीन पर कई एक सरकार और सूबे के लोग अपनी अपनी देसी भाषा बोलते हैं तो भी मैं मुसिर हूँ कि उनमें से या कोई एक

अजनवी बोली में से जो अब हिंदूस्तान में मुखवज़ है बराबर हिंदूस्तानी ज़बान के उमूमन कोई मुफीद नहीं।

ओ यिह बात साहिवि फिक्र पर अया है कि किसी मुल्कि वसी में अगर चि बहुत देसी भाषा बल्कि वाजी ज़वाने मुख्तलफ भी वोलने में आती है तो भी दरवारी और दारुस्सलतन की ज़बान लाकलाम फाइदे में औरों तरजीह रखती है और इसी सवव से वहाँ सब कोई क्या मुतवतिन क्या अजनवी पहले इसी को मुकद्दमें जानकर इसतेमाल में लाते हैं। अब चाहता हूँ कि ऐसी कई दलीलें नकल करूँ कि मेरे दावे की इस वात का मूजिव हों। हिंदुस्तान की तमाम सरज़मीन में कम कोई मसलमान नज़र आवेगा जो हिंदूस्तानी ज़बान समझता या वोलता न होगा। हिंदू भी जो क़दरेइमतियाज़ रखता हो या मुसलमानों से या अंग्रेजी कौम से जिसको कुछ ऐलाकः है थोड़ी बहुत इसविहाल अपने नहीं हो सकता कि न जाने। अकसर अजनवी कौमों ने कि वू ओद वाश अपनी हिंदूस्तान में की है इसी ज़बान को वसीलः गुफ्त ओगू का इख्तीआर करते हैं चुनांचि हम लोग ओ पुर्तकज़ओ बलदेज़ओ फरानसीस ओ दीनामार ओ अरब तुर्क ओ यूनानी ओ हरमनी ओ गुरजी ओ पारस ओ मुगल ओ चीनी ओ गैरे इस जात के शाहिदर्द जिंदः है

हिंदूस्तान के अकसर लश्करों में यही ज़बान जनाव ओ सुवाल का वसीलः पड़ती है अगर चिहर ऐक आदमी उन्ह में अपने-अपने देश की बोली जान्ता है।

सेंतबंध के करीब से कावल तक एक मुल्क कि जिसकी लंबाई हजार कोस कम ओ बेश और चौड़ाई सात सौ कोस तखमीनन है—बड़ी गंगा केइस तरफ उसमें जिन वस्तीओ शहरों पर मुसलमानों का तसुर्रफ ओ आमेजिश हुई उन्हीं में ऐसे आदमी कम पाए जाएंगे जो हिंदूस्तानी जबान वकदर जरूरत के न जान्ते होंगे किता नजर इससे कि गंगा के उस पार की अकसर जगहों में मशहूर ओ मुखवज़ है।

जो रह किसी कौम के रसूमात और चलन और तवारीख का दरयाफ करना उनकी जबान की शितालाई पर पेशतर मौकूफ़ है बस और मुल्कों को निसवत वसबब मुस्खलिफ़ होने दी न ओ फिकह ओ रुसूम और आदत के हिंदूस्तान में यिह शिनासाई (खुसूसन) बीआदः जरूर है।

जब तलक किसी मुल्के के साहिबि तसल्लुत और हाकिम अपनी रैयत की जबान से वाकिफ न हो जुल्म ओ फसाद (खाल्मख्वाह) अंजाम होगा।

अगर चि किसी एक जारी ज़बान में इल्मी किताबों की किल्लत हो तो वो लेकिन वही ज़वान उमूराति मुल्की तजारती लश्करी और अदालती के वसीले के वास्ते सब ज़वानों से उस दयार में मुफीद ओ मुनासिब है।

अब यिह बात कहनी जरूर हुई कि हनोज पांच चार सद्‌की नहीं गुजरी कि फिकह फराइज और काऐद कवानीन और तमाम इलम अजनवी ज़बान से हमारे मुल्क में सीखा और लिखा जाता था इस पर भी अंग्रेजी ज़वान उस ज़बाने पर गालिव चली आई और यह भी दलीलि दवी है कि वहाँ की रोममरः काविल इसलाह और तहसील के था।

अगर चि साहिवि मुहावरः हिंदूस्तानी ज़बान के यिह वफखर नहीं करते कि इसमें वहुत नसर की किताबे या तसानीफि इल्मी हैं पर कितने एक किस्से खूब ओ गज़ले मरगूज ओ गैरे नज्म में मौजूद है। दरकिनार यिह कि मुआसलति महाजनी ओ लश्करी ओ मुहिम्माति मुल्की ओ गैरे कि तजल्लुक न विश्तख्वाद से रखते हैं उन्हों में भी ज़बान हिंदी जानी है।

और यिह बात किस् पर छिपी नहीं कि यहाँ के दानिशमंदों की तालीम और मुवाहसः ओ मुनाज़रऐ इल्मी इसी ज़वान में होता है और जो कोई चाहे कि कुछ तसनीफ़ करे या और किरू से कुछ मतलव लिखवाए इसी में खैआल करता और इसी में मानी समझता एक फाएदः यिह भी है कि अक़सर और जवानों का इक्तिसाव इसकी खूब शिनासाई से आसान होता ओ सिर्फ यिही जवान वसीलः है कि जिससे करार वाक़ई वेःनसाफी ओ तगल्लुव रैयत से दूर हो जावे।

जिन मुकद्दिमों का जिक्र हुआ अगर उनकी बिना रास्ती पर फिलदाकः काइम है तो मैं हैरान हूँ कि उन्ह के नतीजे के वातिल करने पर वुह कौन-सी दलीलें होंगी जो कोई लावेगा और वुह नतीजः लाकलाम यिही है कि सौदागर मुसाफिर मुल्की ओ लश्करी उहदेदार हकीम ओ तवीव हासिलि कलाम हरऐक तरह के आदमी ओ को जो सरोकार छोटे-बड़े मुआमलों से हिंदुस्तान में रखते हों, हिंदूस्तानी बोली उमूमन और बोलीओं से ज़ीयादः तर दरकार ओ मुफ़ीद

है और इसी सबब से लाज़िम है कि सब जबानों की निसबत क़दर ओ वनजीह रखे।

इसकी लिखावट की कुछ विशेषताएँ :

न र के स्थान पर	द़	द	ग
ऐ ए के स्थान पर	अ़	अ	ह
ऩ ज़ के स्थान पर	इ		
व ब के स्थान पर	स		वु

कालेज में हिंदुस्तानी व्याकरण का शिक्षण-स्तर :

फोर्ट विलियम कालेज ने १८०८ ई० में एक पुस्तक 'अरबी, फारसी और हिंदुस्तानी भाषा के व्याकरणिक तत्त्वों पर प्रश्नावली' (ए सीरिज़ आफ क्वेस्चन्स आन द ग्रामेटिकल प्रिंसिपल्स आफ द अरेबिक, पर्शियन एंड हिंदुस्तानी लैंग्वेज़ज़) प्रकाशित की। यह पुस्तक थामस हवर्ड के हिंदुस्तानी प्रेस, काशी तल्ला नं० ७१, कलकत्ता में छपी थी। प्रश्नावली लगभग १६० वर्ष बाद भी बहुत दिलचस्प और सूचनात्मक है।

वर्णमाला :

हिंदुस्तानी भाषा में प्रयुक्त भारतीय, फारसी और अरबी में कौन-से वर्ण प्रयुक्त होते हैं ? उन्हें वर्णक्रम से नागरी, फारसी और रोमन लिपियों में व्यक्त कीजिए।

संज्ञा-विशेष्य :

हिंदुस्तानी संज्ञाओं की रूपावली में कितने कारक माने जाते हैं ? यदि किसी कारक के अनेक चिह्न हैं तो सोदाहरण बताइये।

हिंदुस्तानी विशेष्यों के बहुवचन रूप कैसे बनते हैं ? बहुवचन के यदि कोई चिह्न हैं तो बताइए ?

पुल्लिग संज्ञाएँ हिंदुस्तानी में स्त्रीलिंग में कैसे परिवर्त्तित होती हैं ?

विशेषण :

हिंदुस्तानी विशेषण में कारक और वचन से क्या परिवर्तन होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए, जितने विशेषण उदाहरण रूप में देना आवश्यक हो उनके रूप बताइए। कौन-से विशेषणों में प्रत्यय लगते हैं ?

कैसे क्रमवाचक संख्याएँ आवृत्तिवाचक संख्याओं में परिवर्तित होती हैं ?

सर्वनाम :

हिंदुस्तानी के व्यक्तिवाचक सर्वनाम कौन-से हैं और उनके रूप कैसे चलते हैं ?

क्रिया :

हिंदुस्तानी क्रिया की धातु क्या मानी जाती है और किस रीति से काल और अवस्थाएँ उनसे बनती हैं ? 'देखना' क्रिया के उतने रूप कर्तृवाच्य में दिखलाइए जितने उदाहरण द्वारा समझाने के लिए आवश्यक है।

कितने प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ हिंदुस्तानी में होती हैं ? उनके जिस वर्ग से आप परिचित हों बताइए। उनके बनने की रीति को बताइए और प्रत्येक के उदाहरण दीजिए।

क्या कभी फारसी-अरबी शब्दों से भी हिंदी की क्रियाएँ बनती हैं ? यदि बनती हों तो उदाहरण दीजिए। हिंदी क्रियाओं के पूर्ण भूत रूप कैसे बनते हैं।

वाक्य-विन्यास :

'ने' प्रत्यय जुड़ने पर संज्ञाओं या सर्वनामों पर क्या प्रभाव पड़ता है। किन क्रियाओं में और किन कालों में यह वाक्य गठन में लगता है ? उनमें किन अवस्थाओं में यह नहीं लगता ?

विशेष्य और विशेषण का संबंध हिंदुस्तानी वाक्य के गठन में कैसा रहता है ? क्या यह नियम अनिवार्यतः पालन किया जाता है या कब उसे छोड़ दिया जाता है ? उदाहरण दीजिए :

कर्त्ता और कर्म के साथ कर्तृवाच्य क्रिया का सामान्यतः कहाँ स्थान होता है ? और भाव वाच्य क्रिया की ऐसी रीति से प्रयोग में क्या स्थिति होती है। प्रत्येक के उदाहरण दीजिए।

क्या कर्म कारक का चिह्न कभी संबंध में लगता है या उसके विपरीत भी होता है ?

जब कोई विशेष संज्ञा या विशेषण के बीच में संबंध का चिह्न आता है, तब उसका क्या प्रभाव पड़ता है ?

(विलियम चैपलिन की थीसिस की प्रतिलिपि डा० माताप्रसाद गुप्त के पास है।)

कंपनी ओर फोर्ट विलियम कालेज की भाषा नीति :

ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के साथ जब से शासन भी करने लगी, तब से उसे यहाँ की देश-भाषाओं के संबंध में अपनी नीति का निश्चय करना पड़ा। इस देश की प्राचीन और नवीन दोनों भाषाओं के ज्ञान की उपयोगिता और महत्त्व को कंपनी सरकार को स्वीकार करना पड़ा। प्राचीन भाषाओं के अनुशीलन से अंग्रेजों को हिन्दू-मुस्लिम प्रजा की विचार परंपरा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होता था, पर देशी प्रजा से स्थानीय भाषाओं और भारत की लोकप्रिय भाषा को सीखने से ही संपर्क स्थापित किया जा सकता था। अतः कंपनी ने जब कालेज की स्थापना की तो प्राचीन भाषाओं-संस्कृत, अरबी-फारसी और देश की बहुमान्य भाषा हिंदुस्तानी और प्रादेशिक भाषाओं बंगला, मराठी, तेलुगू, तमिल आदि की पढ़ाई की व्यवस्था की थी। कंपनी का प्रयोजन फारसी और हिंदुस्तानी से अधिक था। अतः इन भाषाओं के अध्ययन पर कालेज में अधिक जोर दिया जाता था। कंपनी की भाषा नीति या भाषिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कालेज स्थापित हुआ था अतः दोनों की भाषा नीति में कोई अंतर नहीं था। कंपनी के सर्वोच्च शासनाधिकारी ने गिलक्रिस्ट को नियुक्त किया था और वे गिलक्रिस्ट के हिंदुस्तानी ज्ञान से इतने प्रभावित थे कि कालेज के प्रथम हिंदुस्तानी प्रोफेसर गिलक्रिस्ट की भाषा-विषयक नीति के समर्थक ही नहीं पोषक बन गए। जो कालेज के प्रोफेसरों ने चाहा वही नीति कंपनी सरकार को भी मान्य थी। अतः कालेज में ही हिंदुस्तानी की शैली, मुहावरे या रूप पर जो विवाद या विचार-विमर्श होता था, वही महत्त्वपूर्ण था और उसे ही कंपनी के अधिकारी मान्यता देते थे। जो सिविलियन अफसर कालेज में पढ़ते थे, वे सब गिलक्रिस्ट की नीति से

प्रभावित होते थे। कंपनी के 'मुंशी' हिंदुस्तानी के प्रोफेसर के इच्छानुसार या आदेशानुसार हिंदुस्तानी की तीनों शैलियों में कोर्ट स्टाइल, मिडिल स्टाइल और मुंशी स्टाइल सभी में रचनाएँ प्रस्तुत कर देते थे। जैसा हम आगे उदाहरणों से दिखलायेंगे कि गिलक्रिस्ट स्वयं मिडिल स्टाइल को ही सर्वोत्तम (बेस्ट) मानते थे, पर चूँकि उनके समय में फारसी का राजभाषा रूप में बोलवाला था और उसका अच्छा ज्ञान अफसरों के लिए आवश्यक सा हो गया था, अतः वे फारसी-अरबी शब्दों से युक्त हिंस्तानी को अफसरों के लिए अधिक उपयोगी मानते थे। फारसी के करीब ऐसी हिंदुस्तानी पड़ती थी, इसलिए फारसी मुखी हिंदुस्तानी से प्रयोजन सिद्ध होने की आशा थी। पर यह बात नहीं है कि उनका मिडिल स्टाइल या हिंदुई स्टाइल का प्रयोजन नहीं समझते थे। आखिर लल्लू जी लाल और सदल मिश्र के खड़ी बोली में लिखने के प्रेरक भी तो वही थे। वे खड़ी बोली के प्रेमसागरी रूप को हिंदुओं की हिंदुस्तानी मानकर घोषित कर रहे थे। वे यह मन में महसूस करते थे कि अरबी-फारसी आदि से लदी हुई जबान का हिंदुओं के गले के नीचे उतरना कठिन है। हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू शब्दों के प्रयोग में भी बड़ी ढिलाई थी। हिंदुस्तानी शब्द थोड़े दिनों से ही चल रहा था, गिलक्रिस्ट ने ही इसको अपनाने और फैलाने में बहुत जोर लगाया, नहीं तो उनके समकालीनों में ही कई अंग्रेजों ने 'हिंदी' शब्द का ही प्रयोग किया है, भले ही हिंदी से अभिप्रेत उर्दू ही रही हो। कर्कपाट्रिक ने 'हिंदी व्याकरण कई खंडों में निकालने की योजना बनाई थी। पर गिलक्रिस्ट हिंदी, हिंदुस्तानी उर्दू और रेख्ता चारो नामों को कभी पर्यायवाची भी मानते थे। वे आज के अर्थ में हिंदी के लिए प्रायः हिंदुवी, हिंदुई या हिंदवी भी प्रयोग करते थे। इन शब्दों के प्रयोग को देखकर जल्दी से कुछ धारणा बना लेना उचित नहीं है। कब, कहाँ और किस प्रसंग में किस नाम का प्रयोग हुआ है, यह ध्यान से देखना होगा।

विलियम बटरवर्थ बेली ने १८०२ ई० में हिंदुस्तानी को मुसलमानों और कदरे इम्तयाज रखने वाले हिंदुओं की जबान माना है।

'हिंदुस्तानी की तमाम सरजमीन में कम कोई मुसलमान नजर आवेगा, जो हिंदुस्तानी जबान समझता या बोलता न हो।

हिंदू भी जो कदरे इम्तयाज रखता हो या मुसमानों से या अंगरेजी काम से जिसको कुछ ऐलाकः है थोड़ी बहुत इस बिहाल अपने नहीं हो सकता कि न जाने।

इसके बाद वे कहते हैं कि हिंदुस्तान में बसी हुई कौमों के बीच भी यही जबान 'सामान्य माध्यम है'।

'इसके अतिरिक्त भारत में बसे हुए सभी विदेशी परस्पर इसी माध्यम को अपनाते हैं और इसी में अपनी भावना और इच्छा को व्यक्त करते हैं। इस बात की सत्यता के हम लोग स्वयं प्रमाण हैं, जैसे कि पोर्चुगीज, डच फ्रेंच, डेन, अरब और तुर्क, यूनानी आर्मेनियम, जार्जियन, फारसवासी, मुगल और चीनी भी।'[१]

इसे बेली साहब जब हिंदुस्तानी कहते हैं, तो यह स्पष्ट है कि वे हिंदुस्तानी और उर्दू में अंतर नहीं मानते। कालेज के पत्राचार, गवर्नर जेनरलों के भाषण और मतव्यों से यह स्पष्ट है कि हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू तीनों का एक ही अर्थ में प्रयोग होता था। 'नकलियात-ई-हिंदी' में हिंदी उर्दू के लिए आया है। यहीं बात लतायफह हिंदी मुतंखबात-इ-हिंदी, हिंदी मेतुअल और हिंदी स्टोरी टेलर सब पर लागू है। गिलक्रिस्ट ने 'हिंदी' का प्रयोग हिंदुस्तानी या

1—"It is more over the general medium by which many persons of variuos foreign nations settled in Hindoostan communicate their wants and ideas to each other. Of the truth of this indeed we ourselves are an evidence as are the Portiguese, Dutch, French, Danes Arabs Turks, Greeks, Armenians, Persians, Moghals and Chinese'
"But the state of things has long since ceased to exist
"You are now constantly called upon the administer justic to the humblest, to ascertain the sights and interests and institutions of the ruadest classes...But if you can not speak their language (Persian and Oordoo are nearly as foreign to then as English) the best lawas of the Government will be mockery" Lord Amherst.
Annals of the College of Fort William 1819 No. 25.)

उर्दू के लिए ही किया है। जब वे खड़ी बोली का नाम लेते हैं या हिंदुई कहते हैं, तभी उनका प्रयोजन आज की 'हिंदी' से होता है। धीरे-धीरे मुसलमानों ने हिंदी शब्द का प्रयोग कम कर दिया और वे उर्दू, जबाने उर्दू आदि शब्दों को अपनाने लगे, तब हिंदू भी हिंदुस्तानी के इस रूप को जिसमें संस्कृत शब्द तत्सम और तद्भव रूप खुलकर लिए जाते थे 'हिंदी' कहने लगे।

१८२५ ई० तक अंग्रेज अधिकारियों का भ्रम दूर हो गया और उन्हें यह बोध हुआ कि हिंदुस्तानी नाम पर चलने वाली उर्दू से पूरे हिंदी क्षेत्र की जनता से संपर्क नहीं किया जा सकता चूँकि उनके लिए कालेज की हिंदुस्तानी लगभग एक विदेशी भाषा के तुल्य है।

अतः १८२५ ई० में लार्ड एम्हर्स्ट ने अफसरों को संबोधित करते हुए कहा-

'यह जो पहले की स्थिति अब नहीं रह गयी। अब आपको बराबर छोटे से-छोटेके साथ न्याय करना होगा, भोड़े गँवार लोगों के अधिकारों, स्वार्थों और संस्थाओं को जानना होगा। अगर आप उनकी जबान नहीं बोल सकेंगे। चूँकि फारसी और उर्दू करीब-करीब अंग्रेजी की तरह उनके लिए विदेशी हैं, तो सरकार के अच्छे-से-अच्छे कानून भी मजाक हो जायेंगे।' इसके भी कुछ पहले से अफसरों का भ्रम दूर होने लगा था कि उर्दू रूपी हिंदुस्तानी से ग्रामीण जनता परिचित है। जब वे जनता के निकट संपर्क में आए तब तो उन्हें साफ जाहिर हो गया कि इस तथाकथित हिंदुस्तानी से काम नहीं चलने का। १८१५ ई० में ही टेलर ने कालेज काउंसिल को पत्र लिखा था, जिसमें हिंदुस्तानी या उर्दू का हिंदी से भेद दिखलाया था और हिंदी शब्द का हिंदुई या हिंदवी के अर्थ में प्रयोग किया था। कालेज में विलियम प्राइस के बाद हिंदुस्तानी जिसका पहले रौब गालिब था, वह कम होने लगा। उन्होंने हिंदुस्तानी और हिंदी में भेद इस तरह दिखलाया—

> हिंदुस्तानी—एक बार किसी शहर में यूं शुहरत हुई कि उसके नजदीक के पहाड़ को जनने का दर्द हुआ।
>
> हिंदी—एक समय किसी नगर में चर्चा चली कि उसके पड़ोस के पहाड़ को प्रसूत की पीर हुई।

---

१. पृ० १६० का फुटनोट देखिए।

१८२४ ई० के बाद तो उर्दू से हिंदी का भेद स्पष्ट घोषित किया जाने लगा। हिंदी के लिए हिंदुई, हिंदवी आदि का प्रयोग कम होते-होते लुप्त ही हो गया। जब हिंदी शब्द उर्दू से भिन्न शैली और प्रवृत्ति का द्योतक हो गया, तब हिंदुओं ने अपनी भाषा को वही नाम दे दिया।

कंपनी और कालेज का संबंध प्रायः अच्छा ही रहा। दोनों की भाषा नीति लगभग एक ही थी। पादरियों ने अवश्य ही शुरू से ही यह समझ लिया था कि जनता हिंदी का हिंदुई रूप पसंद करती है, वही जानती और बोलती है। उर्दू ढंग की हिंदुस्तानी एक खास वर्ग की भाषा है, उन हिंदुओं की भाषा है, जो कभी मुसलमानी दरबार या शासन से संबद्ध थे या जो अब अंग्रेजों के इर्द-गिर्द मंडराते हैं। २४ सितंबर, १८२४ ई० सरकार के जेनरल डिपार्टमेंट के सेक्रेटरी डी० डी० रडेल को अपने पत्र में लिखा था—

'कालेज में हिंदुस्तानो जिस रूप में पढ़ाई जाती है, उसे उर्दू, जबाने देहली या देहली दरबार की जबान कहा जाता है। बोलचाल के काम में ऊँचे वर्ग के देश-वासियों और खासकर मुसलमानों के बीच सारे भारत में आती है, पर चूँकि मुगलों ने इसे प्रचलित किया था और खास तौर से यह अरबी, फारसी और पश्चिमी या उत्तरी प्रांतों से निकली थी, यह अब तक हिंदुओं के लिए एक विदेशी भाषा समझी जाती है।' (फोर्ट विलियम कालेज प्रोसीडिंग्स, जिल्द ९, पे० ४९६) रडेल हिंदुस्तानी के परीक्षक रह चुके थे। इसलिए उनके अभिमत का महत्त्व है। अंग्रेजों के हिंदुस्तानी पक्षपात का फल यह हुआ कि उस समय के पश्चिमोत्तर प्रांत (आज के उत्तर प्रदेश के लगभग बराबर क्षेत्र) में जहाँ हिंदू मुसलमानों का अनुपात ९ और १ का था, हिंदुस्तानी के नाम उर्दू चल पड़ी थी। यदि इस क्षेत्र के साथ विहार सागर और नर्मदा घाटी को भी संमिलित किया जाता था तो यह अनुपात और भी बढ़ जाता था। फल यह हुआ कि १८५६ ई० में एक लेखक के विचार में, आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा जो शिक्षित मुसलमानों और यूरोपियनों से अलग रहते थे, ऐसी भाषा बोलते थे, जिसे उनके बहुत कम हाकिम समझ पाते थे। इस प्रकार १८४५ ई० के पूर्व हिंदुस्तानी के नाम पर उर्दू को फैलाने की ऐसा कोशिश हो रही थी, जिसके पीछे अफसर वर्ग का बहुत बड़ा हाथ था। हिंदी के पक्ष में जनता थी—पर हिंदुस्तानी के पोषक अफसर वर्ग की नीति के विरुद्ध थी।

बहुत-से हिंदुस्तानी अफसर भी साहबों की नीति को देख कर उनके ही राग में राग मिला रहे थे। १८५७ ई० के बाद कंपनी का शासन काल समाप्त हो गया। उसके बाद शिक्ष.-विभाग के माध्यम से हिंदुस्तानी को पोषण होने लगा। जब अफसरों ने देखा कि उर्दू को सहन करने को हिंदू प्रजा तैयार नहीं दीखती तब कुछ अफसरों ने शिक्षा विभाग के माध्यम से उर्दू की ओर झुकी हुई हिंदी को हिंदुस्तानी के नाम पर हिंदुओं के गले के नीचे उतारने की कोशिश की। इस नीति के समर्थक हिंदुस्तानी स्कूल इंस्पेक्टर अँग्रेज हाकिमों को मिल ही गए जिनमें उत्तर प्रदेश में शिवप्रसाद सितारेहिंद और बिहार में राय साहब सोहनलाल प्रमुख थे। गदर के दस वर्षों के अंदर हिंदी क्षेत्र हिंदी की शैली के लिए विवाद आरंभ हुआ, जिसके पीछे अँग्रेज हाकिमों के विचार और भाषानीति का प्रत्यक्ष हाथ था।

इस तरह हम देखते हैं कि किस प्रकार कालेज की भाषानीति कंपनी की भाषानीति बनी, और बाद में उर्दू को हिंदुस्तानी नाम से १८५७ ई० के बाद, हिंदी पर थोपने का प्रयत्न हुआ। उस समय कुछ अँग्रेजों ने जनभाषा हिंदी का पक्ष लिया, पर अधिकतर अँग्रेज सीनियर अफ़सर जो कंपनी के समय से उच्च पदों पर थे, अपनी सुविधा के लिए हिंदुस्तानी को ही हिंदी के नाम पर चलाने की कोशिश में लगे थे।

विलियम प्राइस और हिंदी-हिंदुस्तानी :

गिलक्रिस्ट हिंदुस्तानी की जिस शैली का शिक्षा-क्रम में महत्त्व देते थे, अब वह उर्दू कहलाती है। यद्यपि वे ब्रजभाषा और खड़ी बोली में भी अनेक पुस्तकें तैयार कराने और उन में गद्य लिखवाने के मूल प्रेरक रहे, पर एक साथ अनेक शैलियों या भाषाओं को उनके द्वारा प्रश्रय दिए जाने का मुख्य कारण यह था कि वे यह चाहते थे कि तत्कालीन अँग्रेज अफसर हिंदुओं के बीच प्रचलित इन रूपों से भी परिचित हों, क्योंकि हिंदुस्तानी का उद्देश्य हिंदी क्षेत्र की सामान्य प्रजा के लिए सुबोध नहीं था। अफसरों का काम फौजी सिपाहियों और सौदागरों से बराबर पड़ता था, इसलिए हिंदी को—नागरी लिपि में लिखित उसके ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों रूपों को भी—हिंदुस्तानी पाठ्य-क्रम में गौण स्थान मिला। १८१५ ई० के बाद ब्रजभाषा और हिंदी की पढ़ाई की उपयोगिता का अधिक अनुभव हुआ। प्राइस ने प्रेमसागर के शब्दों

का अँग्रेजी में अनुवाद किया।[१] २५ जुलाई, १८१५ ई० के वार्षिक समारोह में एडमांस्टन ऐक्टिंगविज़िटर ने इसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। उसी समय विलियम प्राइस कालेज में व्रजभाषा, वंगला और संस्कृत के सहायक प्रोफेसर रूप में पढ़ा रहे थे। बाद में वे हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष हुए। अनेक वर्षों तक अध्यापन के बाद हिंदी और हिंदुस्तानी (उर्दू) के पारस्परिक संबंध और अंतर को प्राइस ने समझ लिया। यह उनके विचारों से स्पष्ट होगा, जिसका सार इस प्रकार है—

'हिंदी और हिंदुस्तानी में सबसे बड़ा अंतर शब्दों का है। हिंदी के लगभग सभी शब्द संस्कृत के हैं। हिंदुस्तानी के अधिकांश शब्द अरबी और फारसी के हैं।

इस संबंध में डा० गिलक्रिस्ट कृत 'पालिग्लोट फैबुलिस्ट' से एक छोटा-सा उदाहरण लेकर हम संतोष कर सकते हैं। हिंदुस्तानी–'एक बार किसी शहर में यूँ शुहरत हुई कि उसके नजदीक के पहाड़ को जनने का दर्द उठा।' हिंदी–'एक समय, किसी नगर में, चर्चा फैली कि उसके पड़ोस के पहाड़ को जनने का दर्द उठा'। दोनों के शब्द कहाँ से लिए गए है, इस संबंध में बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। दोनों के रूप को विगाड़े बिना अंतर और भी अधिक हो सकता था।

हिंदी के संबंध में एक और महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि यह नागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिए। संस्कृत-प्रधान रचना जब फारसी लिपि में लिखी जाती है तो शब्द कठिनता से बोधगम्य होते हैं। कालेज के पुस्तकालय में एक ऐसे हिंदी काव्य पद्‌मावत की दो प्रतियाँ हैं, जिनके पढ़ने में मेरा और भाषा मुंशी का निरंतर परिश्रम व्यर्थ गया है।

नई लिपि और नए शब्द सीखने में विद्यार्थियों को कठिनाई होगी। किंतु इससे उनके वास्तविक ज्ञान की वृद्धि होगी। उनका हिंदुस्तानी ज्ञान थोड़े परिवर्त्तन के साथ फारसी ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इससे वे न तो भाषा और न देश के विचारों के साथ ही परिचित हो पाते हैं। हिंदी के अध्ययन से भी इससे कोई सहायता नहीं मिलती। किंतु हिंदी के साथ-साथ

1. "A vocabulary, Khuree Bolee and English of the principal words occuring the Premsagar by Lieut, William Price. Asstt. Professor of the Bengali and Sanskrit languages in the college of Fort William, Printed at the Hindoostanee Press in one Vol., 1814."

फारसी ज्ञान से विद्यार्थी हिंदुस्तानी रचनाएँ सरलतापूर्वक पढ़ सकेंगे एवं हिंदुओं और उनके विचारों से परिचय प्राप्त करने में भी कोई कठिनाई न होगी।'

इसी सिलसिले में उन्होंने कहा है—खड़ी बोली ही, न कि व्रजभाषा जैसा कि डा० गिलक्रिस्ट का कहना है, हिंदुस्तानी का आधार है, उसी के अनुरूप हिंदुस्तानी का व्याकरण है।'[१]

इससे जान पड़ता है कि १८२४ ई० तक हिंदी क्षेत्र की भाषिक स्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर अंग्रेजों को यह अनुभव होने लगा कि केवल 'गिलक्रिस्टी हिंदुस्तानी' को शिक्षाक्रम में स्थान देने से उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती, जिसके लिए कालेज की स्थापना हुई थी। १८२४ ई० तक जो भाषा हिंदुस्तानी के नाम पर पढ़ाई जाती थी, वह उर्दू या जबाने देहली थी। यह उस पत्र से स्पष्ट हो जाता है, जो डो० डी० रडल ने सी० लुशिंगटन को २४ सितंबर, १८२४ ई० को लिखा था।

'कालेज में जैसी हिंदुस्तानी पढ़ायी जाती है वह उर्दू या जबाने देहली या देहली दरबार की ज़बान के नाम से प्रसिद्ध है और वह सारे भारत के उच्च वर्गीय देशवासियों और मुख्यतः मुसलमानों में बोलचाल के काम में आता है, पर चूँकि इसे मुगलों ने चलाया था और मुख्यतः अरबी-फारसी और अन्य पश्चिमी या उत्तरी स्रोतों से निकली है, इसलिए यह अब भी सामान्यतः हिंदुओं के लिए एक विदेशी भाषा ही है।'[२]

---

१. प्रोसीडिंग्स आफ दि कालेज आफ फोर्ट विलियम १५ दिसंबर, १८२४ ई०, होम डिपार्टमेंट. मिसलेनियस जिल्द ९, पृ० ५०३-५०६, इंपीरियल रेकार्ड्स डिपार्टमेंट, नई दिल्ली—साहित्यि चिंतन, पृ० ६२-६४ पर उद्धत।

२. "The Hindustanee as it is tought in the college distinguished by the titles of Oordoo, Delhi Jaban etc. or the language of the Court of Delhi is used for colloquial purposes, among the higher classes of the natives, and especially of Mohammadans, throughout India, but having been introduced by the Moghuls and being chief by derived from Arabic, Persian, and other Western or Northern sources, it may still to the Hindoos at large be considered as a foreign tongue (Letter from D. D. Ruddel to C. Lusburgton, Secretary to the Government, General Department, Dated college of Fort William, 24th. Sept., 1824."

प्राइस के विचारों की पुष्टि लार्ड एम्हर्स्ट ने भी १८२५ ई० के अपने दीक्षांत भाषण में किया। अतः इसके बाद अंग्रेज अफसरों को हिंदी (आधुनिक अर्थ में) सीखने का अनुरोध किया गया। फौजी अफसरों को हिंदी का ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से व्रजभाषा और हिंदी सीखने पर पहले भी जोर दिया जाता था, पर अब सबके लिए हिंदी की उपयोगिता स्वीकृत हुई। इस प्रकार कालेज के अधिकारियों के दृष्टिकोण में १८१५ ई० के बाद से ही परिवर्तन आरंभ हो गया था और १८२५ ई० तक वह निश्चित रूप से परिवर्तित हो गया। आपने लल्लूजी लाल को व्रजभाषा व्याकरण रचने को प्रेरित किया। टामस रोबक ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया । गिलक्रिस्ट ने 'क़वायद हिंदी' (जो वास्तव में उर्दू का व्याकरण है) लिखने के प्रेरक थे। प्राइस ने १८२७ ई० में हिंदी ऐंड हिंदुस्तानी सेलेक्शंस प्रकाशित कराया जिसमें भी हिंदुस्तानी और व्रजभाषा व्याकरण के मूल तत्त्व दिए गए हैं। इस संग्रह में बैताल पचीसी, भक्तमाल के कुछ अंश, कबीर के रेखते, सुन्दर कांड आदि हैं। कुछ भजन और रोचक कहानियाँ भी संकलित हैं। इस परिवर्तित नीति का ही यह फल था कि १५ जनवरी, १८२५ ई० को प्रकाशनार्थ पुस्तकों की मांग करते हुए कालेल कौंसिल ने इस प्रकार की सूचना प्रचारित की थी :

'इस्तहार यह दिया जाता है कि जो कोई पोथी छपाने के लिए कालेज कौनसल से सहायता चाहता हो वह अपनी दरखास्त में यह लिखे :

१. कि पोथी में केत्ता पन्ना और पन्ने में कित्ता पंक्ति कित्ती लंबी

२. कितनी पोथियाँ छापेगा ओ कागद कैसा तिस लिए अक्षर और कागद का नमूना लावेगा और किस छापाखाना में छापेगा ओ सब छप जाने में कित्ता समय लगेगा और तैयार हुए पर पोथी कित्ते दाम को देवेगा।'[१]

इस इस्तहार की भाषा में इन शब्दों पर ध्यान दीजिए। 'पोथी', 'सहाय', पन्ना', 'पांत्ति', 'अक्षर'-ये संस्कृत मूल के शब्द हैं। वुह (वह) केत्ता (कितना) कित्ती (कितनी), कित्ते (कितने), कित्ता (कितना)। ये कित्ता, कित्ती आदि खड़ी बोली की बोलचाल में अब भी मेरठ के पास-पड़ोस में चलते हैं।

प्राइस का संबंध १८३१ ई० तक कालेज से था। उनके ही काल में 'हिंदी' नाम उस शैली के लिए रूढ़ होने लगा, जो अब भी प्रचलित है। पादरी आदम ने उन्हीं के काल में अपना हिंदी व्याकरण और कोश हिंदी में लिखा था।

१. साहित्य चिंतन पृ० ९९ पर उद्धृत।

इस प्रकार 'हिंदी' का रूप क्या हो इसे निश्चय करने में और इसे शिक्षा-क्रम में पहले से अधिक महत्त्व देने का श्रेय विलियम प्राइस को ही है। उन्होंने स्वयं हिंदी की कोई पोथी नहीं लिखी और न लिखवाई, पर कालेज में हिंदी को उचित स्थान दिलाने में प्रयत्नशील होकर सफल हुए।

३. नागरी मुद्रण और यूरोपियन

यूरोप में नागरी-मुद्रण

किर्चरी अथानासी (Kircheri Athanasii) की पुस्तक 'चाइना इलस्ट्रेटा' १६६७ ई० में नागरी में छपी, जिसमें ब्राह्मण वर्णमाला (De Literis Brahmanus) के पाँच प्लेट हैं। एक प्लेट में पाणिनि का प्रथम सूत्र अइउ और बारहखड़ी के कुछ रूप भी हैं। यह पुस्तक राष्ट्रीय ग्रंथालय में है। आगरा के जेसुइट कालेज से संबद्ध फादर हेनरिक राथ (Father Heinrich Roth) ने संस्कृत पढ़कर उसका एक व्याकरण रचा। ये १६६४ ई० में रोम में किर्चरी से मिले थे। राथ के ही सहयोग से किर्चरी ने अपनी पुस्तक में अवतारों के नाम, व्याकरण के सूत्र और बारहखड़ी नागरी में छपवायी थी। एम्स्टरडम से प्रकाशित होरट इंडिकस मालाबारी (Hortus Indicus Malabari) की भूमिका में भी संस्कृत की ११ पंक्तियाँ देवनागरी में मुद्रित हैं। कदाचित् यह मुद्रण ब्लाक से हुआ था।

थियोसफिलस सिग फ्रिड वेयरा के 'हिस्टोरिया रेग्मी ग्रेड कोरम बैक्ट्रियानी' में भी नागरी के कुछ नमूने मिलते हैं। नागरी अक्षर एक शिरोरेखा से बंधे हुए नहीं, वरन् टाइप की तरह सटे हुए किन्तु पृथक् हैं। टाइपों का आकार पर्याप्त बड़ा और कलकत्ते से छपी गिलक्रिस्ट कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर' में उपलब्ध टाइप से भी भद्दा होने के कारण नागरी मुद्रण के पूर्व रूप का द्योतक हैं।

१७४५ ई० में शुल्जे की 'ग्रामेटिका हिंदोस्तानिका' देवनागरी में छपी और उसमें क से ह तक सारे अक्षर नागरी के हैं। इसके बाद १७७१ ई० में 'अल्फाबेटम ब्राह्मणीकम सिउ इंदोस्तानम् युनिवर्सिटिस कासी' (Alphabetum Brahmanicum seu Indostanum Uriversitates Kasi) पुस्तक प्रकाशित हुई। यह 'बखा' (भाषा) की चल टाइप से छपी पहली पुस्तक है। यह हिंदी

वर्णमाला या व्याकरण की पुष्पम पुस्तक कही जाती है। पर कैंटलियर की पुस्तक इसके पहले लिखी जा चुकी थी।

भारत में मुद्रण का आरंभ

मुद्रण का शिशु-युग

'भारत में मुद्रण का इतिहास यह बताता है कि मुद्रण का आरंभ देश के समुद्रतट पर हुआ था। पश्चिमी समुद्रतट पर गोआ, कोचीन, पुडीकेल (कन्या-कुमारी से कुछ मील उत्तर) व्यापिकोट्टा (कन्गानोट से एक मील दक्षिण) और अम्बल कादू (त्रिचर से बीस मील दक्षिण एक गांव) ही वे स्थान हैं' जहां भारतीय मुद्रण का शिशु-युग बीता। उसके बाद पूर्वी तट पर ट्रांक्विबार, मद्रास, फोर्ट विलियम कलकत्ता और श्री रामपुर में भारतीय मुद्रण को निश्चित रूप मिला। छापेखाने या मुद्रणयंत्र का आविष्कार यूरोप में हुआ था, अतः इस देश में भी मुद्रण यूरोपीयों ने ही आरंभ किया।

पोर्चुगीज जेसुइट मिशन ने कोचीन में १५७७ ई० में और वे० वेली में १५७८ ई० में प्रेस स्थापित किया। १६१६ ई० में बंबई के पोर्चुगीज भाग में जेसुइट मिशन ने एक प्रेस खोला था। कहा जाता है कि १६६२ ई० में काठि-यावाड़ के भीम जी पारिख ने गवर्नर जनरल के यहाँ बम्बई में एक प्रेस खोलने की अनुमति के लिए आवेदन दिया था ताकि वे हिन्दू धर्म-ग्रंथ छाप सकें। इस काम के लिए उन्होंने इंगलैंड के एक मुद्रण-विशेषज्ञ हेनरी वैलेस को ठीक कर लिया था। इस संबंध में आगे क्या हुआ इसका पता नहीं है। पर यह निश्चित है कि शिवाजी के समय में दक्षिण भारत में प्रेस स्थापित हो चुके थे। पर ये सारे प्रयास पोर्चुगीज प्रदेशों में हुए थे।

ब्रिटिश क्षेत्र में डेनिश मिशन द्वारा त्रिनकुवार में रोमन टाइप में मुद्रण आरंभ हुआ और प्रथम बार १७१४ ई० में न्यू टेस्टामेंट के तमिल अनुवाद में तमिल टाइप का प्रयोग हुआ।

गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स की सलाह और आग्रह से मि० विलियम्स ने बंगाली टाइप बनाना स्वीकार किया था। ऐसे देश में, जो यरोपियन कारी-गरों के संपर्क से दूर था, उसे अकेले ही धातु, मेटालर्जिस्ट (धातु शिल्पी) एन-

ग्रेवेर (गढ़िया) फाउन्डर (टाइप ढालने वाला) और मुद्रक (प्रिंटर) का काम करना पड़ा।'[1]

रोमन कैथोलिक मिशन ही इस दिशा में अग्रदूत था और इसने ही देशी भाषाओं में बाइबिल का मुद्रण किया। बाद में ट्रान्क्विबार और श्री रामपुर के प्रोटेस्टेन्टों ने भी बाइबिल के प्रचार के लिए मुद्रण आरंभ किया। १५५६ ई० में गोआ में एक प्रेस चल रहा था। भारतीय भाषाओं में सबसे पहले मलयालम और बाद में तमिल मे ही चल टाइप में मुद्रण आरंभ हुआ। १५७७ ई० में मलाबारी भाषा में और १७०८ और १७११ ई० में तमिल में पुर्त्तगालियों ने टाइप बनवाए। रिबेरियो दोस सैंक्टोस (Riberio dos Sanctos) के अनुसार १६५५ ई० के पहले गोआ से १३ पुस्तकें छप चुकी थीं। इन पुस्तकों में से एक पुस्तक मराठी में 'संत पीटर का चरित' इस्टीवो द क्रुज (Easteavo de Cruz) १६३४ ई० का है। यह भारतीय भाषा में किसी यूरोपियन द्वारा लिखी पहली पुस्तक कही जाती है। यह पुस्तक ब्रिटिश म्यूजियम में है और उसका टाइप निकृष्ट है।[2]

बंगाल में मुद्रण का आरंभ :

१७७८ ई० में मि० बोल्ट्स ने यह शिकायत की थी कि कलकत्ते में एक भी प्रिंटिंग प्रेस नहीं है। १७७८ ई० में बंगाल में पहला प्रेस खुला। यहीं पर हैलेहेट का बंगाली ग्रामर, फिरंगियों को बंगला सिखलाने के लिए छपा था।

१७७२ ई० जार्ज हैडले कृत मूर भाषा का व्याकरण छप चुका था।[3] बंगाल में हैलहैड के बंगला ग्रामर को छापने को, मि० एंड्रयूज के हुगली प्रेस के

---

१. रामरतन भटनागर के हिस्ट्री आफ हिंदी जर्नलिज्म से उद्धृत।

२. इंट्रोडक्शन आफ यूरोपियन प्रिन्टिंग इन ईस्ट, रिचार्ड गार्नेट
यह १८९७ ई० में द्वितीय ईंटरनेशल लाइब्रेरी कान्फ्रेंस, लन्दन की कार्यवाही के विवरण में (ट्रान्सेक्शन्स एँड प्रोसीडिंग्स) प्रकाशित है।

३. हैडले की पुस्तक का नाम है :
Grammatical remarks on the practical and vulgar dialect of the Hindostan Language, commonly called Moors, with a vocabulary, English and Moors, London 1772.

लिए विलकिंस (१७५०-१८३६ ई०) ने बंगला टाइप बनाए थे। विलकिंस न केवल बंगला टाइप के बल्कि हिंदी टाइप के भी जनक थे। ये बंगाल के, कंक्सटन कहलाते हैं। इस कार्य में इनके सहायक पंचानन कर्मकार हुए। विलकिंस १७७० ई० में कंपनी की नौकरी में आए। इन्होंने संस्कृत पढ़ी। बंगला और नागरी मुद्रण के इतिहास में ये आरंभकर्त्ता होने के कारण चिर-स्मरणीय रहेंगे। १७८६ ई० में ये इंगलैंड वापस चले गए। १८०० ई० में ये इंडिया आफिस के प्रथम लाइब्रेरियन और १८०६ ई० में हेलेबरी कालेज में प्राच्य विद्याओं के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। १८०८ ई० में विलकिंस का संस्कृत ग्रामर निकला, जिसका नागरी टाइप पहले के टाइपों में सबसे सुन्दर था। नागरी टाइप के इस प्रथम अंग्रेज निर्माता का निधन १८३६ ई० में हुआ।

पंचानन कर्मकार :

विलकिंस के भारतीय सहायक पंचानन कर्मकार का नाम भी बंगला और नागरी टाइप के निर्माता के रूप में स्मरणीय है। १७९८ ई० में कैरे ने सुना कि कलकत्ते में एक टाइप फाउन्ड्री स्थापित होने वाली है और इसके लिए किसी देशी कारीगर ने 'पंच' काटे हैं। पर यह योजना ठप पड़ गई। उसके बाद उन्होंने सुना कि एक पुराना छापाखाना बिकने वाला है। उसे उन्होंने ४० पौंड में खरीदा। यह प्रेस मि० उडने (Udney) ने खरीद कर मिशन को दान में दिया था। जब यह मदनाबती में एक बगल के कमरे में रखा गया, तब झुंड के झुंड देशी लोग उसे देखने को इकट्ठे हो गए। जब उसकी अद्‌भुत शक्ति का परिचय कैरे ने दिया तब उन्होंने कहा कि यह एक यूरोपियन मूर्ति है। इस तरह मदनाबती में कैरे ने यह लकड़ी का छापाखाना खड़ा किया। जब कैरे श्री रामपुर आए, तब यह प्रेस भी अपने साथ लेते आए। उन्होंने न्यू टेस्टामेंट का अपना बंगला अनुवाद इसी प्रेस में ७ फरवरी, १८०१ ई० को छापा था। इसका टाइप उनके पुत्र फेलिक्स (Felix) और सहयोगी वार्ड ने 'सेट' किया था। कुछ समय बाद कैरे ने एक विज्ञापन देखा कि देशी भाषाओं के लिए एक 'टाइप फाउन्ड्री' कलकत्ते में स्थापित हुई है। पता लगाने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इस फाउंड्री के पंचों को पंचानन ने काटा है। पंचानन त्रिबेनी के निवासी थे, पर उस समय गार्डन रीच में कोलब्रुक के घर के पास ही रहते थे। कोलब्रुक के अधीन ही वे काम करते थे। पंचानन के दामाद मनोहर भी उनके ही साथ रहते थे। वे भी पंच काटने में पंचानन के समान

ही दक्ष थे। पहले तो कैरे ने कोलब्रुक से कई बार अनुरोध किया कि वे पंचानन को अपने कार्य से मुक्त कर दें और पंचानन को अधिक वेतन का प्रलोभन भी दिया, पर जब यह उपाय भी कारगर नहीं हुआ, तो कैरे ने कोलब्रुक से यह अपील की कि मुझे पंचानन को कुछ ही दिनो के लिए दे दीजिए। आखिर कोलब्रुक इस अपील से द्रवित हो गए और उन्होंने पंचानन को श्री रामपुर जाने की अनुमति दे दी। डेनिश सरकार की मदद और दबाव से कैरे पंचानन को श्री रामपुर में रोक रखने में सफल हो गए। कोलब्रुक ने पंचानन को वहाँ से मुक्त कराने के लिए भारत-सरकार को दरखास्त भी दी और कानूनी कारंवाई करने को विवश हुए, पर कैरे ने सफाई में कहा कि देश में अपने ढंग का एकमात्र सुयोग्य कारीगर पंचानन पर किसी व्यक्ति विशेष का एकाधिकार नहीं होना चाहिए। पर, असल बात यह है कि केवल शक्ति के प्रयोग से पंचानन श्री रामपुर में नहीं ठहरे थे, वे स्वेच्छा से कैरे के कुचक्र में योग दे रहे थे।[१] कैरे के इस प्रवंचनापूर्ण कृत्य को 'पवित्र प्रवंचना' (पायस फ्रॉड) नाम दिया गया है। पंचानन कर्मकार का श्री रामपुर में आगमन कितना महत्त्वपूर्ण है, यह कैरे के 'मेमोयर्स' से प्रकट होता है। 'परम पिता परमेश्वर की कृपा से हमें ऐसा कलाकार प्रेस स्थापित करते ही मिला, जिसने चार्ल्स विलकिंस के विचारों को अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया था। उसकी सहायता से हमने टाइप फाउन्ड्री बनायी। यद्यपि अब वह दिवंगत है, किंतु अपनी कला कई साथियों को इतने अच्छे रूप में दे गया है कि वे लोग अब सुन्दर टाइप बना और ढाल रहे हैं। ये इतने शुद्ध हैं कि इनकी तुलना किसी भी यूरोपीय कलाकार से की जा सकती है।[३] यदि भुलावा और धोखा देकर कैरे पंचानन को श्री रामपुर बुला कर रख नहीं लेते तो पंचानन की निपुणता से लाभ उठाने का श्रेय कोलब्रुक को ही मिलता। इस प्रकार पंचानन कर्मकार का कार्य-क्षेत्र डेनिश प्रदेश श्री रामपुर हो गया, नही तो वे कोलब्रुक के अधीन कलकत्ते में ही अपना कार्य करते होते।

---

१. कुछ लोगों के अनुसार मनोहर पंचानन का भतीजा था।

२. ए नोट आन द अर्लियस्ट बंगाली पंच कटर
बंगाल पास्ट एँड प्रेजेंट, वाल्यम—९, १९१४

३. द मेमोयर्स रिलेटिव टु ट्रांसलेशंस जार्ज स्मिथ के कैरेज लाइफ से उद्धृत—अनु० कृष्णाचार्य, पृ० १८१।

जब फोर्ट विलियम कालेज को देशी भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई, तब कालेज ने कलकत्ते के छापाखानों को देशी भाषाओं में पुस्तकें छापने के लिए प्रोत्साहित किया। परन्तु उस समय छापाखाने यूरोपियन या ऐंग्लों-इंडियनों के हाथ में थे, इसलिए भारतीय भाषाओं की वर्णमालाओं के लिए उनके बनाए 'फाउन्ट' संतोषजनक नहीं थे। अतः कालेज के अधिकारियों ने अपने मुंशियों और पंडितों को उत्तम फाउट बनवाने के लिए प्रेरित किया। अधिकारियों ने ऐसे प्रेसों को संरक्षण देने का निश्चय किया। इसका परिणाम यह हुआ कि फारसी, हिंदी और बंगला विभाग के कुछ शिक्षकों ने उत्तम फाउन्ट और नये मुद्रणयंत्रों को स्थापित करने में रुचि दिखलाई। कालेज के प्रोफेसरों की लिखी पुस्तकें छापने के लिए ये नये फाउन्ट व्यवहार में लाये गए। १५ फरवरी १८०८ ई० की कालेज रिपोर्ट से यह सूचना मिलती है कि एक छापाखाना संस्कृत पुस्तकों के मुद्रण के लिए प्रशिक्षित हिंदुओं ने खोला था, जिसमें विभिन्न साइजों के उत्तम नागरी टाइप देखे गए थे। इस प्रेस को संस्कृत कोश और व्याकरण छापने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। एक स्थान पर संस्कृत प्रेस के स्वामी और संचालक रूप में बाबूराम पंडित का उल्लेख है। दूसरे स्रोत से यह सूचना मिलती है कि खिजिरपुर में एक संस्कृत प्रेस भाषा मुंशी लल्लू जी लाल ने स्थापित किया था। यदि एक ही संस्कृत प्रेस से अभिप्राय हो तो ऐसा लगता है कि लल्लू जी लाल का इस प्रेस से संबंध बाद में हुआ, पहले इसके स्वामी और संचालक बाबू राम पंडित थे। यह भी हो सकता है कि दोनों संस्कृत प्रेस पृथक् हों। कहा जाता है कि सुधरे हुए बंगला के फाउन्ट, कालेज के बंगला-शिक्षक कालीकुमार राय की हस्तलिपि के आधार पर बने थे और पंचानन कर्मकार ने टाइपों को 'कास्ट' किया था। इस प्रसंग में यह उल्लेख रोचक होगा कि कालेज प्रेस में ही हिंदी पुस्तकों की छपाई पहली बार हुई थी।[१]

श्रीरामपुर के प्रेस में किस प्रकार काम होता था और क्या व्यवस्था थी, इसका स्पष्ट वर्णन वार्ड के एक पत्र में है, जो उन्होंने १८११ ई० में लिखा था।

---

१. इन्ट्रोडक्शन आफ यूरोपियन प्रिंटिंग इन्टू द ईस्ट-रिचार्ड गार्नेट।
ट्रान्जेक्शनस एंड प्रोसीडिंग्स ऑफ द सेकेंड इंटरनेशनल लाइब्रेरी कॉंफरेन्स, १८९८ ई०

'अन्दर प्रवेश करते ही आप देखेंगे कि आपका भाई एक छोटे कमरे में लिख-पढ़ रहा है और उसकी नजर आफिस पर है, जो १७० फुट लम्बा है। वहाँ आप हिंदुस्तानियों को धर्मग्रंथों (स्क्रिप्चर्स) का विभिन्न भाषाओं में, अनुवाद करने या प्रूफ-शीटों को शुद्ध करते पाएँगे। केसों में रखे हुए अरबी फारसी नागरी, तेलुगु, पंजाबी, बंगला, मराठी, चीनी, उड़िया, बर्मी, कन्नर ग्रीक, हेब्रू और अंग्रेजी के टाइपों को आप देखेंगे और हिंदू, मुसलमान, हिंदुस्तानी, ईसाई कम्पोज करते, शुद्ध करते और टाइप वितरित करते हुए पायेंगे। आफिस के आगे स्याही बनाने वालों की बगल में तरह-तरह के टाइप ढालने वाले होंगे और एक विशाल दिवारों से घिरा खुला स्थान होगा, जहाँ हमारा पेपर मिल है, क्योंकि अपना कागज हम स्वयं बनाते हैं।[१]

इससे यह ज्ञात होता है कि भारतीय भाषाओं में नागरी, तेलुगु पंजाबी, बंगला, मराठी, उड़िया और कन्नड़ के टाइप १८११ ई० में ही बन चुके थे और इस सारे काम में हिंदुस्तानी लगे हुए थे। श्री रामपुर की ख्याति मुद्रण-कार्य में शीघ्र ही सारे देश में फैल गई और यहाँ प्रेस के सारे उपकरणों टाइप ढालने कागज-स्याही बनाने आदि का केन्द्र बन गया।

जब श्री रामपुर के मिशनरियों को नागरी टाइप बनाने की जरूरत हुई तो पहले तो उन्होंने इंगलैंड में ही बनवाना चाहा, पर यह ज्ञात होने पर कि वहाँ टाइप बनवाने में खर्च अधिक पड़ेगा, उन्होंने श्री रामपुर में ही टाइप बनवाने का निश्चय किया। नागरी टाइप बनवाने के संबंध में विलकिंस से सलाह ली गई। इन्होंने ३० साल पहले अपने हाथ से टाइप काटे थे और इस विषय में एक मात्र विशेषज्ञ थे। जब यह ज्ञात हुआ कि इगलैंड में ३०० पंचों को बनवाने में ७०० पौंड खर्च पड़ेगा, तब हिंदुस्तानी कारीगरों से श्री रामपुर में ही टाइप बनवाने का निश्चय किया गया। यहाँ १०० पौंड में ही ७०० अक्षर का पूरा 'फाउन्ट' तैयार करा लिया गया।

---

१. 'द फर्स्ट प्रिंटिंग प्रेसेज इन इंडिया,-लियो प्रोसरपियो' (द न्यु रिव्यू, वाल्यूम १९३१, पे० ३२१-३३०।

२ हिस्टरी ऑफ अर्ली प्रिन्टिग इन वेस्टर्न इंडिया द फर्स्ट प्रिंटिंग इन प्रेसेज इन वेस्टर्न-इंडिया देवनागरी टाइपोग्राफी इन इंडिया एंड बॉम्बे, सुन्दरराबभास्कर वैद्य।

३ अलिवेस्ट जेसुइट प्रिन्टिग इन इंडिया, जे० एं० एस० बी० (१९१३) ई०। यह निबंध रे० से खिलो गोमेज रोडलेस के स्पेनिश निवन्ध से अनूदित हुआ।

पंचानन ने मनोहर को टाइप ढालने की कला में इतना प्रवीण बना दिया था कि उसका स्मरण भी केरे के मेमोयर्स में प्रशंसापूर्वक किया गया है। वह (मनोहर) सब भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त लिपियों में टाइप बनाने लगा। उसके द्वारा बनाए टाइप मिशन प्रेस में और बिक्री के रूप में ४० वर्षों तक वितरण के प्रधान आधार थे। वह अन्त तक लुहार जाति का हिंदू बना रहा और श्री रामपुर में १८६० ई०तक पूर्वीय देशों का टाइप निर्माण केन्द्र।' यह कहा गया है कि पंचानन और मनोहर अच्छे यूरोपियन कारीगरों के समान टाइप बनाने में दक्ष हो गए थे। मार्शमेन ने जान लान के योग से धातु निर्मित चल टाइपों से चर्च प्रिंटिंग में बहुत प्रगति की।

बम्बई में १८१२ ई० में देशी भाषाओं का पहला प्रेस फर्दुन जी मर्जबान ने स्थापित किया। आरंभ में नागरी टाइप श्री रामपुर से या इंगलैंड से मँगाये जाते थे। १८१३ ई० में जान शेक्सपियर कृत हिंदुस्तानी ग्रामर में दो पृष्ठ नागरी लिपि और हिंदी भाषा में छपे थे। लंदन में नागरी लिपि का चल टाइप में मुद्रण का यह पहला नमूना है। इसके पहले विलिकिन्स का संस्कृत व्याकरण १८०८ ई० में लंदन से निकल चुका था। १८१३ ई० का टाइप पहले से अधिक सुन्दर है। बहुत दिनों तक श्री रामपुर के बने हुए टाइप ही प्रायः इस देश में चलते रहे। बाद म नागरी को सुडौल और सुन्दर रूप देने का श्रेय बम्बई के निर्णय सागर प्रेस को है। यहाँ के टाइप को लोगों ने इतना पसंद किया कि 'बम्बइया टाइप' की धूम मच गई।

हिंदी मुद्रण का आदिकाल

१८०२ ई० के पूर्व हिंदी की किसी मुद्रित पुस्तक का अब तक पता नहीं लगा है। इसके बाद कलकत्ते में तीन प्रेसों का उल्लेख मिलता है।

१. हरकारू प्रेस—इस प्रेस से मिस्कीन का मर्सिया नागरी में छपा था। इसका शीर्षक-पृष्ठ अँग्रेजी में है। यह मात्र बारह पृष्ठों की पुस्तिका है। इसकी एकप्रति एसियाटिक सोसाइटी में है। इसके बाद यहाँ से सिंहासन बत्तीसी और माधोनल छपीं। १८०२ ई० में ही डब्लू० बी० वेली की हिंदुस्तानी थीसिस नागरी में इस प्रेस में छपी।

---

१. हिंदी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पृ० १३७।

२–हिंदुस्तानी प्रेस

इस प्रेस से लल्लू जी का अपूर्ण प्रेमसागर छपा था। फोर्ट विलियम कालेज की थीसिसों की संग्रह-पुस्तिका मे चेपलिन की 'सती होने की रीति' (६ पृष्ठ) १८०३ ई० में इसी प्रेस से छपी थी। अतीक सिद्दीकी की उर्दू पुस्तक 'गिलक्रिस्ट' के अनुसार इस प्रेस को गिलक्रिस्ट ने स्थापित किया था। यद्यपि इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि हिंदुस्तानी प्रेस के मालिक गिलक्रिस्ट ही थे, पर ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रेस से उनका घनिष्ठ संबंध अवश्य था। इसी प्रेस से १८०५ ई० में हंटर कृत बाइबिल का अनुवाद निकला था। यह अनुवाद कालेज के 'सुशिक्षित देशीयों, ने (लर्नेड नेटिव्स) ने किया था। इसी प्रेस को हिंदुस्तानी की अनेक पुस्तकें छापने का श्रेय है। अतः इस प्रेस के माध्यम से भी हिंदुस्तानी ने गिलक्रिस्ट की देन महत्त्वपूर्ण है।

३–संस्कृत प्रेस, खिदिरपुर

मिर्जापुर के बाबूराम पंडित ने यह प्रेस १८०६ ई० के लगभग कोलब्रुक की प्रेरणा से खड़ा किया था। यह प्रेस खास कर संस्कृत पुस्तकें छापने को खोला गया था। कुछ ही वर्षों में बाबूराम ने बहुत धन उपार्जित कर लिया था। 'फ्रेंड आफ इंडिया' (२६ फरवरी १८३५ ई०) ने लिखा है कि कुछ सफल हिंदुस्तानी मुद्रकों की आमदनी काउन्सिल के मेम्बर के बराबर थी।

कलकत्ते के इन तीनों प्रेसों में दो-हिंदुस्तानी प्रेस और संस्कृत प्रेस-के प्रेरक अंग्रेज ही थे। 'हिंदुस्तानी' के विद्वान् और समर्थक गिलक्रिस्ट हिंदुस्तानी प्रेस से संबद्ध थे और संस्कृत के विद्वान् कोलब्रुक संस्कृत प्रेस के प्रमुख प्रेरक और पोषक थे।

कलकत्ते के इन आद्य प्रेसों के बाद श्री रामपुर के मिशन प्रेस का उल्लेख आवश्यक है। इस प्रेस का प्रकट उद्देश्य था बाइबिल का देशभाषाओं में मुद्रण का प्रचार करना। इस प्रेस के प्रमुख प्रेरक, पोषक और संचालक श्री रामपुर के बॅपटिस्ट त्रिमूर्ति थे -जिन्हें ईसाई धर्मग्रंथों के हिंदी और उसके विविध जनपदी रूपों का अनुवाद छापने का श्रेय दिया जाता है। इस त्रिमूर्ति-कॅरे मार्शमैन और वार्ड में वार्ड का मुद्रणकार्य के प्रवर्त्तन और संचालन का मुख्य श्रेय है।

श्री रामपुर का प्रेस बाइबिलों के अनुवाद छाप कर प्रसिद्ध हुआ। कैरे ने १८११-१२ ई० में हिंदी बाइबिल निकाला, फिर १८१३ ई० में व्रजभाषा बाइबिल निकाला। उसके बाद कन्नौजी, उदयपुरी, जयपुरी, बघेली, मारवाड़ी, हाड़ौती, बीकानेरी और उज्जैनी में भी बाइबिल के अनुवाद निकाले। हिंदी के विविध जनपदी रूपों में गद्य लिखने का यह प्रथम प्रयास था और भाषा की दृष्टि से भी ये अनुवाद बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

हिंदी की छपाई का आरंभकाल कलकत्ते में बीता था। क्रानिक प्रेस में मुद्रित गिलक्रिस्ट के हिंदुस्तानी ग्रामर (१७९६ ई०) और डब्लू० किर्क केपैट्रिक के एक वाकेबुलरी, पर्शियन, अरेबिक एंड इंगलिश के कुछ अंश देवनागरी में मुद्रित हैं। १८०१ ई० में गिलक्रिस्ट का हिंदी एक्सरसाइजेज' (फोर्ट विलियम कालेज की हिंदुस्तानी की पहली और दूसरी परीक्षा के लिए) छपा। उसके बाद गिलक्रिस्ट की 'नकलियात हिंदी' हिंदुस्तानी प्रेस से छपी थी। ये दोनों पुस्तकें हिंदुस्तानी भाषा के शिक्षण से संबंधित थीं, पर ये रोमन लिपि में छपी थीं। वास्तव में १८०२ ई० से ही हिंदी पुस्तकों का मुद्रण आरंभ होता है। आरंभ में हिंदी में मुद्रित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१८०२ ई० विलियम बटरवर्थ बेली की थीसिस, ६ फरवरी १८०२ ई० को होने वाली डिसप्यूटेशन (विचार-विमर्श) के अवसर पर पठित, 'आनरेबुल कंपनीज प्रेस' से प्रकाशित। यह प्रेस लंदन से १८०२ ई० में मँगाया गया था। इसी में देवनागरी टाइप का आरंभिक रूप देखने को मिलता है।

१८०३ ई० 'सती होने की रीति' २९ मार्च १८०३ ई० को पठित विलियम चैपलिन की थीसिस।

१८०४ ई० हिंदी रोमन आर्थोएपिग्राफिकल अल्टीमेटम', हिंदुस्तानी प्रेस १८०४। यह पुस्तक अंग्रेजी में है, जिसमें शकुन्तला नाटक की कहानी दी हुई है। इसमें देवनागरी टाइप का एक चार्ट है, जो पिछले टाइप से अधिक सँवारा हुआ है।

इस वर्ष जे० रोमन की थीसिस 'दर—ममालिक हिंद की जबानों की असल बुनियाद संस्कृत है' (२० सितंबर, १८०३ ई० को पठित, रोमन अक्षरों में छपी)।

१८०५ ई०— सुन्दर कवीश्वर। काज़िम अली और लल्लू जी लाल द्वारा संपादित सिंहासन वतीसी—हिंदुस्तानी प्रेस।

न्यू टेस्टामेंट। फोर्ट विलियम कालेज के 'लर्नेड नेटिव्स' द्वारा हिंदुस्तानी में अनूदित। इसे मूल ग्रीक से डा० हंटर ने मिलाया और दुहराया। इस पुस्तक का टाइटिल रोमन लिपि में है। पुस्तक नागरी लिपि में छपी है—इसमें प्रथम चार गास्पेल का अनुवाद है। यह हिंदुस्तानी प्रेस से छपा था। इसके पहले का कोई बाइबिल अब तक नहीं मिला है। इसका एक संस्करण ऐसा भी मिला है, जिसमें अनुवादक में केवल विलियम हंटर का नाम है।

१८०९ ई०— अँग्रेजी सन् १८०४ साल १ आईन इसके अनुवादक थे, एच० पी० फोर्स्टर, डब्लू० वी० वेली (१८०५-१८०७ ई०), जे० वाकर (१८०८ ई०) एम० एच० टम्वल (१८०९ ई०)। इसका रचना काल (१८०५-१८०९ ई०) है। इसकी एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध है।

१८१० ई०— अँग्रेजरी सन् १८०३ ई० साल के आइन सन् का फीहरिस्त। अनुवादक एच० पी० फार्स्टर। नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध।

१८१० ई०— प्रेम सागर पूर्ण। यह संस्कृत प्रेस से छपी थी। १८०३ ई० में इस पाठ्य पुस्तक का कुछ अंश छपा था।

१८१३ ई०— एक ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज, लंदन १८१३ ई०। इसमें पाँच प्लेट नागरी के हैं। लिपि लेखन-विधि। पेज १५२-१५५ में पंचतंत्र की कहानी का हिंदी अनुवाद दिया गया है। भूमिका में नागरी के लिए चार्ल्स विलकिंस को धन्यवाद। (राष्ट्रीय ग्रंथालय में उपलब्ध)

१८१७ ई०— व्रजविलास—व्रजवासीदास कृत। संस्कृत प्रेस।

१८२० ई०— सरस रस--लल्लू जी लाल कवि द्वारा संपादित, संस्कृत प्रेस।

४. देवनागरी को रोमन लिप्यन्तरण

जब वारेन हेस्टिंग्स के आदेशानुसार हेलहेड को हिंदू लॉ का कोड बनाना पड़ा, तब उसे संस्कृत और हिंदुस्तानी शब्दों को रोमन में लिखने की विधि पर विचार करने की आवश्यकता हुई। उसने जो विधि अपनाई, उसमें व्यंजनों को जिन रोमन अक्षरों द्वारा लिखने का उसने निश्चय किया, वे प्रायः विलियम जोन्स को भी मान्य हुआ। त-द और ट-ड में हेलहेड ने भेद नहीं किया, दोनों को t-d से ही व्यक्त किया। उसके बाद नागरी अक्षरों को रोमनाक्षरों द्वारा व्यक्त करने की अनेक रीतियां चल पड़ीं, जिसके कारण एकरूपता लाने के लिए एक पद्धति चलाने की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। एशियाटिक रिसर्चेज़ (प्रथम खंड १७८८ ई०) में देवनागरी के रोमनीकरण के पूर्व प्रयासों में डेवी, विलियम्स और हेलहेड की रीतियों का उल्लेख हुआ है। इस समस्या को सुलझाने में फास्टर, कैरे, शेक्सपियर और हाटन आदि ने भी कार्य किया था। डा० गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी के रोमनीकरण पर सविस्तार विचार किया है और अपनी हिंदुस्तानी-रोमन-वर्णमाला के पक्ष में बहुत कुछ लिखा, यहाँ तक कि एक पुस्तक ही लिख डाली तथा अपने विशाल कोश और व्याकरण के माध्यम तथा पाठशालाओं आदि द्वारा अपनी प्रणाली का प्रचार किया।

लार्ड कार्नवालिस के शासन-काल के अंतिम भाग में गिलक्रिस्ट का व्याकरण और कोश निकला और दोनों की भूमिकाओं में उस भाषा के अक्षरों के उच्चारण और लेखन-रीति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उनके रोमन प्रत्यक्षर निश्चित किये। एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना के बाद ही विलियम जोंस ने इस प्रश्न को फिर से उठाकर इसकी आवश्यकता पर जोर दिया कि भारतीय शब्दों को रोमन लिपि में लिखने की एक निश्चित प्रणाली अपनाई जाय।

हेलहेड की प्रणाली से जोंस संतुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने भारत की भाषाओं के उपयुक्त एक रोमन वर्णमाला निकाली, जो बाद में उनके नाम पर ही प्रसिद्ध हुई। सोसाइटी ने इसी वर्णमाला को ग्रहण किया और अपने सभी प्रकाशनों में इसका व्यवहार कर प्रचलित किया। किन्तु एशियाटिक सोसाइटी एक विद्वत्-परिषद् और शोध-संस्थान मात्र थी, जिसके कारण इसके प्रकाशनों

का क्षेत्र सीमित था। १७८८ ई० में एशियाटिक रिसर्चेज़ के प्रथम खंड में प्राच्य शब्दों को रोमन लिपि में लिखने के प्रश्न पर विलियम जोंस ने विचार किया। जोंस की रोमन वर्णमाला की विशेपता यह थी कि यह देवनागरी के वर्णक्रम के अनुरूप बनाई गई थी। प्रत्येक देवनागरी वर्ण के लिए रोमन अक्षर निर्धारित कर दिया गया। सोसाइटी की रोमन वर्णमाला को स्वीकृत कराने के लिए प्रस्ताव और प्रयत्न हुए, फिर भी इसका अधिक प्रचार नहीं हो सका, चूँकि राज-काज और दैनिक व्यवहार उसी रोमन में चल पड़ा था, जिसमें हिंदुस्तानी ध्वनियों को रोमन में मनमाने ढंग से व्यक्त किया जाता था। ठीक से हिंदी-हिंदुस्तानी न जानने वाले अपने अशुद्ध उच्चारण के अनुसार रोमन अक्षरों में लिखते थे, किसी निश्चित प्रणाली के अनुसार हिंदुस्तानी शब्द अथवा नाम लिखे नहीं जाते थे। स्थिति ऐसी होने पर भी सोसाइटी की रोमन वर्णमाला को साधारणतः मान्यता नहीं मिली, यद्यपि इसके समर्थक विलियम जोंस और कोलब्रुक आदि प्रसिद्ध विद्वान् थे। जोंस की वर्णमाला की प्रबल प्रतिद्वन्द्विनी गिलक्रिस्ती वर्णमाला थी, जिसका साधारणतः हिंदुस्तानी सीखने वाले अंग्रेजों में काफी प्रचार था। दोनों प्रणालियों में मुख्य अंतर स्वरों को लेकर था। 'अ' को रोमन में जोन्स 'a', गिलक्रिस्ट 'u' और हेलहेड 'e' लिखते थे।

इन तीनों विद्वानों की स्वर लिखने की रीति नीचे दी जाती है।

	हेलहेड	गिलक्रिस्ट	जोन्स
अ	e	u	a
इ	ee	i	i
ई	ee	ee	i
उ	oo	oo	u
ऊ	oo	oo	u

बाद में हेलहेड की प्रणाली बन्द-सी हो गई। केवल गिलक्रिस्त और जोंस की प्रणालियाँ मैदान में रह गईं। अतः आगे हम मुख्यतः इनपर ही विचार करेंगे, चूँकि आगे के कई दशकों तक इन्हीं दोनों में प्रतिद्वन्द्विता बना रही और इनके ही पक्ष-विपक्ष में विद्वानों के बीच विवाद चलता रहा। आज हिंदी पाठकों को इस वाद-विवाद में उतनी दिलचस्पी न मिले, पर एक समय

यह महत्त्व का विषय समझा गया और इसपर तत्कालीन यूरोपियन विद्वानों ने जमकर विचार-विमर्श किया और उसमें गर्मागर्म बहसें चलती थीं।

गिलक्रिस्ट और जोन्स-प्रणाली की तुलना :

जोन्स

अ	a	आ	a
इ	i	ई	i
उ	u	ऊ	u
ए	e	ऐ	ai
ओ	o	औ	ou

गिलक्रिस्ट

अ	u	आ	a
इ	i	ई	c
उ	oo	ऊ	oo
ए	e	ऐ	ue
ओ	o	औ	ou

दोनों प्रणालियों में चार स्वरों में कोई अंतर नहीं है। केवल छः स्वर दोनों में भिन्न रूप में रोमन में व्यक्त किए गए हैं। बस इसी भेद को लेकर दोनों के समर्थकों में मतभेद था। दोनों प्रणालियों के गुण-दोषों पर विद्वानों ने अपने सुचिंतित विचार उपस्थित किए। गिलक्रिस्ट और जोंस की प्रणालियों के निकलने के तीस वर्ष बाद तक सरकार ने किसी के पक्ष में अपनी सहमति प्रकट नहीं की। पर आरंभ से ही गिलक्रिस्ट प्रणाली की ओर कुछ संशोधन के साथ झुकाव स्पष्ट दीख पड़ा। जोंस की रोमनलिपि किसी सरकारी विभाग में नहीं चली। यह सोसाइटी के प्रकाशनों तक सीमित रही। इसे कोलब्रूक ने अपनाया, कुछ संशोधन सहित चार्ल्स विल्किंस ने इसका प्रयोग रिचार्डसन की 'पर्शियन डिक्शनरी' में किया और फिर शेक्सपियर की हिंदुस्तानी डिक्शनरी में भी इसका प्रयोग हुआ।

१८२२ ई० में यह निर्णय हुआ कि ज़मीन की बंदोबस्ती के सिलसिले में रैयतों ओर मौज़ों के नाम हिंदुस्तानी उच्चारण के अनुसार रोमन लिपि में सही तरीके से दर्ज किए जाएं। अब तक हिंदुस्तानी नामों के लिखने में कोई निश्चित रीति नहीं होने से बड़ी गड़बड़ी थी, जिसका फल यह हुआ था कि एक ही नाम के अनेक, कभी-कभी विलक्षण, स्पेलिंग मिलते थे। नामों के विचित्र रोमन स्पेलिंग १९वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक चलते थे। उदाहरण के लिए एक सरल शब्द 'अली' एडजूटेंट जेनरल आफिस के सत्र प्रकाशन में इन विविध रूपों में लिखा था—Ali, Alee, Ulee, Allie। दूसरे शब्द शेख की रोमन लिपि में क्या विचित्र गति हुई, देख लें। Sheikh, Shaiekh, Shaick, Sheick, Shaikh, Shaik उस समय भी दोनों प्रणालियों की अच्छाई-बुराई पर खूब विचार किया गया। बाद में गिलक्रिस्ट-प्रणाली को ही अपनाया गया, पर कुछ ध्वनियों के (जैसे ऐ, ओ, और ई) उनके रोमन लिप्पंतरण को नहीं माना गया। इस रोमन वर्णमाला के अनुसार लिखने का एक परिपत्र (सर्कुलर) भी निकाला गया, रजिस्टर तैयार कराए गए, जिनमें इसी प्रणाली के अनुसार ज़मीन, जायदाद, स्थान और व्यक्ति के नाम दर्ज किए गए। हम लिख चुके हैं कि विगत तीस साल से अँग्रेजों में प्रायः गिलक्रिस्ट-प्रणाली की ओर झुकाव था, अब सरकारी आदेश से समर्थित होने के कारण वही प्रणाली संशोधित रूप में सरकारी दफ्तरों और आम व्यवहार में चल पड़ी।[1]

गिलक्रिस्ट की रोमन प्रणाली :

कैप्टेन रोबक इस प्रणाली के प्रबल समर्थक थे। जोंस प्रणाली से इसकी तुलना करते हुए उन्होंने गिलक्रिस्ट प्रणाली की सरलता और उपयोगिता की प्रशंसा की है। रोबक का कथन है कि।

---

१. भारत के अनेक स्थानों के नामों के अँग्रेजी स्पेलिंग की विलक्षणता का यही कारण है। उस समय जो स्पेलिंग (अक्षरी) चल पड़ा, वह अब तक चलता रहा। कुछ भौगोलिक नामों के स्पेलिंग में स्वराज्य बाद सुधार हुआ, पर शेष अब भी पुराने रूप में ही लिखे जाते हैं। बनारस-Benares, कानपुर-Cawnpore, मथुरा-Muttra आरा-Arrah, सोनपुर-Sonepore, लखनऊ-Lucknow, कश्मीर-Kashmere, गंगा-Ganges, बंगाल-Bengal। इन शब्दों में रोमन स्वरों को ध्यान से देखिए।

(१) चूँकि यह प्रणाली जोंस-प्रणाली से प्राच्य शब्दों को रोमन द्वारा व्यक्त करने में उत्कृष्टतर हैं।

(२) चूँकि गिलक्रिस्ट प्रणाली से अरबी-फारसी शब्दों को नागरी लिपि में और नागरी को अरबी-फारसी में लिखा जा सकता है। जान पड़ता है कि जोंस का केवल ध्यान प्राच्य शब्दों को रोमन लिपि में लिखने पर था।

(३) चूँकि गिलक्रिस्ट ने प्रत्येक अक्षर के लिए भिन्न-भिन्न अक्षर दिए और चिह्नों के द्वारा ह्रस्व-दीर्घ का भेद नहीं बताया, जैसा कि जोंस ने किया है।

(४) चूँकि अपने महत्त्वपूर्ण हिंदुस्तानी प्रकाशनों के कारण गिलक्रिस्ट-प्रणाली जोंस-प्रणाली से अधिक इस देश में सुपरिचित है।

यह प्रणाली डा० हंटर के बहुमूल्य 'हिंदुस्तानी ऍंड इंगलिश डिक्शनरी' में स्वीकृत है। इस प्रणाली को किंचित् संशोधित रूप में निम्नलिखित प्राच्य-विद्या-विशारदों ने अपनाया है।

डा० लमस्डेन, मेजर जे० वेस्टन, डा० कैरे, मेजर जेम्स मोअट, मेजर जे० डब्लू० टेलर, कैप्टेन लाकेट, जार्ज स्विन्टन, विलियम बटरवर्थ वेली, जान थार्डोंड इलियट, कैप्टेन रसल मार्टिन और जान एटकिंसन।

गिलक्रिस्ट ने अरबी-फारसी लिपि में लिखित हिंदुस्तानी को ध्यान में रखकर अपनी प्रणाली निकाली थी तथा अँग्रेजी के प्रचलित उच्चारण को ध्यान में रखकर हिंदुस्तानी ध्वनियों को व्यक्त करने के हेतु रोमन अक्षर निर्धारित किए थे। उनकी प्रणाली अपने अंतिम विकसित रूप में हिंदी-रोमन आर्थियोएपिग्राफिकल अल्टीमेटम में है। एक दो अपवाद छोड़कर वह अँग्रेजी अक्षरों द्वारा प्राच्य ध्वनियों को एक निश्चित और संगत रीति से व्यक्त करने में समर्थ है। इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि भारतीय उच्चारण और लिपि से सर्वथा अनभिज्ञ अँग्रेजी का जानकार भी प्रायः मूल उच्चारण समान उच्चारण सीख सकता है।

जोंस की रोमन-प्रणाली :

जोंस-प्रणाली के समर्थकों और पक्षधरों के तर्क को हम ट्रेवेलियन के माध्यम से इस प्रकार जानते हैं।

जोंस प्रणाली ही वास्तव में एक सर्वांगपूर्ण पद्धति (सिस्टम) है। जहाँ पृथक्-पृथक् मूल ध्वनियों में साम्य है, वहाँ उनके रोमन प्रत्यक्षरों में भी साम्य है, जैसे ह्रस्व-दीर्घ का भेद एक निर्धारित रीति से दिखलाया गया है। अ a, आ ā, इ i, ई ī, उ u, ऊ ū। यही बात संयुक्त स्वरों के रोमन प्रत्यक्षरों में भी पाई जाती है। ऐ जो अ इ का, औ जो अ उ का संयुक्त स्वर है, वह रोमन में भी संयुक्त रूप में लिखा जाता है—ai, au गिलक्रिस्ट-प्रणाली में स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ रूप में, एक अपवाद छोड़कर रूप-साम्य नहीं है। उनकी पद्धति में u का दीर्घ a, i का दीर्घ ee और ऐ और औ संयुक्त स्वरों का ue, uo है। इससे सीखने वाले के मन में कैसी भ्रांति होगी, यह विस्तार से बताना आवश्यक नहीं है।.... 'इस विलक्षण अव्यवस्थित प्रणाली में ऐसा लगता है कि दीर्घ स्वरों का अपने सहचर ह्रस्व स्वरों से तलाक हो गया है, संयुक्त स्वरों का अपने जनक स्वरों द्वारा अपहरण हो चुका है और वे जिप्सी बच्चों से भी अधिक विकृत हो गये हैं।.... अक्षर-लेखन की यह कोई पद्धति ही नहीं है, बल्कि एक नया शब्द गढ़ने की अनुमति मिले तो मैं इसे ऐसा काक-लेखन कहूँगा, जो भ्रांत, धूमिल और विसंगत है।[१]

जोंस ने एक ध्वनि के लिए एक ही रोमन अक्षर दिया है, जबकि गिलक्रिस्ट ने ई, उ, ऊ के लिए दो-दो अक्षर ee, oo, oo दिए हैं। यह बड़ा भद्दा ढंग है। इससे समय और पैसे का व्यर्थ अपव्यय होगा। इसके बाद ट्रेवेलियन ने दोनों प्रणालियाँ नीचे का वाक्य लिखकर दिखलाया है कि जोंस-प्रणाली से जहाँ ३० अक्षर लगते हैं वहाँ गिलक्रिस्ट-प्रणाली से ३८।

जब सुबह हुई वजीरज़ादी भी पहुँची—

Jab soobh hooee wazeer-zadee bhee puhoonchee—38

Jab subh hui wazir-zadi bhi pahunchi—30

---

1. In this eccentric system of letters long vowels are actually divorced from the partners and diphthongs are in like manner kidnapped from their parent vowels and disfigured worse than gypsy children.... This is not a system of orthography, but, if I may be allowed to invent a word, of kakography, of confusion, mistification and absurdity'.

(इस प्रसंग में नागरी लिपि में अक्षरों की संख्या गणनीय है। अक्षर १६, मात्रा ६)।[१]

'गिलक्रिस्टीय रोमन वर्णमाला के तीन अक्षर न तो अँग्रेजी के हैं और पृथ्वी की किसी अन्य भाषा के जिसका नाम हमने सुना है। ये अक्षर हैं— ow, ue, uo। ये बर्बर अक्षर कभी भी किसी अँग्रेज यूरोपियन या हिंदुस्तानी के हृदय में स्थान नहीं पा सकते।' स्पेलिंग की अँग्रेजी पद्धति (इसे आर्थोग्राफी कहने का मैं प्रतिवाद करता हूँ) एक भूलभुलैया है, भ्रांति है, विसंगति है और हमारे युग और राष्ट्र का अपमान है।[२] इतने कठोर शब्दों में ट्रेवेलियन ने अँग्रेजी स्पेलिंग की निंदा की है।

जोंस-प्रणाली में देवनागरी वर्णमाला के साँचे में रोमन वर्णमाला को ढालने का प्रयत्न स्पष्ट लक्षित होता है। यह सही है कि दोनों ने अँग्रेजी वर्णमाला की खान से ही धातु निकालना चाहा, पर एक के हाथ लगा खरा सोना और दूसरे के हाथ लगी मिट्टी मिली धातु। गिलक्रिस्ट ने अँग्रेजी स्पेलिंग के विकृत और अपूर्ण अंगों को चुना और जोंस ने उन अंगों को चुना जो सही सिद्धांत और पूर्व और पश्चिम की उत्कृष्ट लिपियों के अनुरूप हैं। au औ का उच्चारण भी causa (लैटिन उच्चारण) के कारण सुपरिचित है और uo उस गिलक्रिस्टीय प्रतीक धर्मलिपि (हायरोग्लिफिक) के निकट है तथा जो गिलक्रिस्ट के भिन्न अ uo को ठोकर का पत्थर समझते हैं, वह भी कोई अँग्रेजी कोश उलटने का कष्ट करेगा, उसे आरंभ में ही का 'अ' उच्चारण वाले पाँच सौ शब्द मिल जाएँगे।

अब प्रश्न यह है कि हम किस कसौटी पर यह जाँच कर यह निर्णय करें कि दोनों में किसकी प्रणाली उत्कृष्टतर है? उत्तम लिपि का लक्षण क्या है? विद्वानों के अनुसार उत्तम लिपि में ये गुण होने चाहिए :

---

१. जब हम भारतीय भाषाओं को रोमन में लिखने के आंदोलन की चर्चा करेंगे तब रोमन से नागरी की श्रेष्ठता दिखलाने के प्रसंग में टाइप संख्या की गणना का महत्त्व ज्ञात होगा।

२. The English system of spelling, in short (I protest against its being called orthography) is a labyrinth a chaos, an absurdity, a disgrace to our age and nation'.

(१) प्रत्येक स्वतंत्र ध्वनि का द्योतन स्वतंत्र चिह्न द्वारा होना चाहिए।

(२) जो ध्वनियां मूलतः एक हैं और जिनमें केवल कालमात्रा के कारण उच्चारण में भेद है, उनके प्रत्यक्षर भी परस्पर भिन्न नहीं होना चाहिए।

(३) ऐसे व्यंजन, जैसे ट वर्गीय और त वर्गीय ड–द, ट-त जिनमें स्थान-भेद के कारण ही उच्चारण-भेद है, बहुत भिन्न नहीं होना चाहिए। जोंस ने dd′, tt′ के रूप में यह भेद दरसाया है।

इन आधारों पर परीक्षण करने पर जोंस-प्रणाली उत्कृष्टतर सिद्ध होती है।

विलसन भी जोंस-प्रणाली को इसीलिए श्रेष्ठ मानते हैं, चूंकि मूल वर्ण-क्रमानुसार ही इसमें भी वर्णक्रम हैं और सादृश्य के सिद्धांत को मान कर सदृश दो वर्णों को रोमन लिपि में सदृश रखा गया है। अतः जोंस-प्रणाली सरल, संगत और वैज्ञानिक है।

१८३४ ई० में ट्रेवेलियन, डफ येट्स और पीयर्स ने जोंस-प्रणाली में कुछ संशोधन कर देशभाषा की पुस्तकों के मुद्रण के लिए मान लिया।

एम० क्रो की प्रणाली—

जिस समय जोंस और गिलक्रिस्ट-प्रणालियों के गुण-दोषों पर बाद-विवाद चल रहा था, उसी समय एम० क्रो ने एक पुस्तिका Suggestions for the Prepartions of a Glossary of Indian Technical Terms, १८४५ ई० में प्रकाशित कराई। इस पुस्तिका में लेखक ने प्रचलित प्रणालियों की तुलना करते हुए एक नवीन प्रणाली का सुझाव रखा। इस प्रणाली में रोमन लिप्पंतर इस प्रकार है।

a	अ	e̱	ए	k	क	t	त
a	आ	e̱	एं	ḵ	ख	t	थ
ạ	अ	e	ए:	l	ल	ț	ट
a̱	आं	g	ग	m	म	ț	ठ
a̩	अः	g̣	घ	n	ड० भणन	u	उ
b	ब	h	ह	ō	ओ	u̱	ऊ
ḇ	भ	i	इ	o̱	ओ	u̱	उ

c	च	i̱	ई	p	प	u̱	ऊं
c̱	छ	i	ई	p̱	क	v̱	उः
d	द	ị	इः	r	र	v	व
ḏ	ध	j	ज	r̦	ड़		
d̦	ड	j̄	झ	r̠	ढ़		
d̠	ढ						

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें अंग्रेजी वर्णक्रम से हिंदुस्तानी ध्वनियों को रखा गया है। महाप्राणत्व और दीर्घत्व के लिए अंग्रेजी अक्षर के नीचे — चिह्न दिया गया है। ध द का ट और ड से अंतर नीचे—देकर किया गया है। ढ के नीचे विंदी भी लगाकर घ से अंतर दिखलाया गया है। विंदी अनुस्वार का भी काम करती है।

इस पुस्तिका में 'क्रिश्चियन आवलजर्वर' का एक उद्धरण दिया गया है, जिसमें उस देवनागरी के दोषों का उल्लेख है, जिसके प्रति प्राच्यविद्यानुरागियों को अतिशय मोह था।

आपके अनुसार द-ड और त-ट को, जो मूलतः एक ध्वनियाँ हैं, जिनके उच्चारण में केवल 'टोन' का भेद हैं भिन्न रूप में हैं, संयुक्त ध्वनियों को पृथक्-पृथक् रूप मिले हैं। महाप्राण वर्णों के साथ भी यही बात है। यह कौन नहीं मानेगा कि ये सारे पृथक् रूप व्यर्थ ही वर्णमाला को बढ़ाते हैं। इससे कितनी स्पष्ट यह रीति है कि सभी दीर्घत्व और महाप्राणत्व के लिए कोई निश्चित चिह्न हो। यह रीति कितनी सुविधाजनक है जो यूरोपीय वर्णमाला में स्वीकृत है। यदि यह रीति भारतीय वर्णमाला में स्वीकृत हो जाए तो इससे बहुतेरे अक्षरों से छुटकारा मिल जाएगा।[१]

---

1. "In both these respects the Deva Nagari is exceedingly imperfect, Consonant sounds, such as the two ds and the two ts, marked by Jones d and d and t and t, though radically the same and differing only in the tone of pronounciation, are represented by characters totally different. Vowel sounds, such as the long in the tone of their pronounciation, are expressed by seperate characters, sounds not elementary, i.e. compound sounds, which ought surely

जोन्स-प्रणाली इसलिए अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी, चूँकि किसी प्राइमर, स्पेलिंग बुक (अक्षरी-शिक्षण पुस्तक) व्याकरण या शब्द-संग्रह में इसका ग्रहण नहीं हुआ। इसके हिमायती केवल वैज्ञानिक नामावली आदि में ही इसका प्रयोग करते रहे। गिलक्रिस्ट-प्रणाली के प्रचलन का कारण यही है कि उन्होंने शिक्षा की पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की। आखिर पुस्तकों और व्याख्यायों के अतिरिक्त उनका 'सिस्टम' है क्या ? उनके अपने स्कूल को छोड़कर वह कहाँ सिखलाई जाती है और अपनी पुस्तकों के सिवा और कौन पुस्तक उनकी रोमन लिपि में छपी है ?

हमने उभयपक्ष के समर्थकों के तर्क-प्रतितर्क को लगभग उन्हीं के शब्दों का भाषान्तर करके दिया है। इससे ज्ञात होगा कि अंग्रेज इस प्रश्न को कितना महत्त्व देते थे। यूरोपियन यहाँ की भाषाएँ सीखना चाहते थे, उन्हें हिंदुस्तानी के दोनों रूपों को-हिंदू-उर्दू को सीखने का चाव था, पर वे यह भी चाहते थे कि दो लिपियों के सीखने के श्रम से वच जांय। उस समय ऐसे कम ही विदेशी थे जो दोनों लिपियों में हिंदुस्तानी पढ़ सकते थे। अंग्रेज रोमन लिपि को भारतीय ध्वनिक्रम के अनुरूप ढालने के पक्ष में थे। जोन्स ने देवनागरी पर आघृत रोमन वर्णमाला प्रस्तुत की और मुख्यतः इसका प्रयोग संस्कृत लिखने में किया।

---

to be expressed by a combination of the elemental or simple sounds that compose them are expressed by a combination of the elemental or simple sonnds that compose them, are represented by separate letters. Of this description are all the aspirated letters, which from no large a proposition of the Devanagari and other alphabets. Who can say that this is not a very unnecessary multification of alphabetic characters ? How vastly more a clear mark, or a letter of aspiration, which could be applied to all vowels and all consonants ! This is an expedient not less admirable in theory than convenient in practice which has been resorted to in the European Alphabets. And if after this truly philosophical model, the Sanskrit and other Indian Alphabets were framed anew, we should at once get rid of a great number or very superfluous characters.

हिंदी के लिए भी यही वांछनीय थी। फिर अंग्रेजों के हेतु तो इसकी उपयोगिता प्रकट थी, क्योंकि वे रोमन लिपि द्वारा हिंदुस्तानी सीखना चाहते थे। पर बिना देवनागरी या उर्दू लिपि (संशोधित अरबी-फारसी लिपि) जाने उन हजारों पुस्तकों से लाभ नहीं उठा सकते थे, जो केवल उन्हीं लिपियों में मुद्रित रूप में उपलब्ध थीं।

१८३४ ई० में बंगाल से यह आन्दोलन उठा कि सभी हिंदुस्तानी पुस्तकों को रोमन में मुद्रित कर दिया जाय। इस विवाद में मिशन के विद्वानों में डा० डार्फा पीयर्स पेटस और टामस ने भाग लिया। कंपनी के सेवकों में एच० टी० प्रिन्सेप, जे० प्रिन्सेप, जान टेल्ट, चार्ल्स ट्रेवेलियन ने भाग लिया। बाद में इंगलैंड और अमेरिका के मिशनरियों ने और कुछ जर्मन प्राच्यविदों और भाषाशास्त्रियों ने इस समस्या पर कई संमेलनों में विचार किया। उस समय एक मिशनरी वर्णमाला का प्रस्ताव भी हुआ और वह प्रकाशित भी की गई।

जब रोमन में ही हिंदुस्तानी पुस्तकों के छापने का आन्दोलन अंग्रेजों के बीच जोर शोर से उठा, तव हिंदी-उर्दू के प्रेमियों को अपनी भाषा के लिए खतरा दीख दड़ने लगा। यह आन्दोलन बेन्टिक के शासनकाल में ही उठा था और तेजी से बढ़ने लगा। उस समय में हिंदी क्षेत्र जाग्रत नहीं था, वंगभाषी बंगाल के बाहर शिक्षा इतनी कम थी कि वहाँ न तो कोई समाज-नेता और न साहित्य-नेता ही था, जो इस खतरे से हिंदी भाषी जनता को सचेत करे और प्रतिवाद में आवाज बुलंद करे। अच्छी बात यह हुई कि यूरोपियनों में ही दो दल हो गए, एक दल देशभाषाओं के लिए रोमन लिपि ग्राह्य मानता था तो दूसरा दल इस परिवर्तन का विरोधी था और इसे जन-भावना पर देवनागरी ऐसी विकसित और वैज्ञानिक लिपि पर प्रहार मानता था।

भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि

जब रोमन में देवनागरी लिखने के संबंध में अंग्रेजों ने विचार किया, उसी समय कुछ के मन में यह विचार उठा कि यदि भारत की अन्य भाषाओं की पुस्तकें केवल रोमन लिपि में छपें तो हमलोगों को बड़ी सुविधा होगी और साथ ही जिस देश में अनेक लिपियाँ चलती हों, वहाँ एक भाषा जानने वाले को अन्य भाषा को पढ़ने और सीखने में लिपि-जन्य बाधा दूर हो जाएगी। भिन्न लिपि में भिन्न भाषा सीखने में जितनी कठिनाई होती है, उससे कम कठिनाई एक

ही लिपि वाली अन्य भाषा के सीखने में होती है। अतः अन्य भाषा को सीखने में भिन्न लिपि बहुत बड़ी बाधा बन जाती है, पर यह बाधा अनिवार्य मान कर लोग लिपि सीख कर अन्य भाषा सीखते ही हैं। इस देश में एक-लिपि-ग्रहण की उपयोगिता को भी पहले-पहल अंग्रेजों ने ही अनुभव किया और इसके लिए आंदोलन उठाया। पर, जैसा उनके लिए स्वाभाविक था, इसके हेतु उन्हें रोमन लिपि ही सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ी। उनका रोमन के प्रति पक्षपात स्वाभाविक था, पर अंग्रेजों में भी अनेक ऐसे न्याय-बुद्धि विवेकशील व्यक्ति थे, जिन्होंने देशभाषाओं के लिए देशी लिपियों के पक्ष में ही अपना अभिमत खुल कर व्यक्त किया। जब अंग्रेज इस देश में आये थे उस समय देशभाषाओं की बात छोड़िए, संपूर्ण भारत में प्रचलित संस्कृत भाषा भी अनेक प्रदेशों में स्थानीय लिपियों में लिखी जाती थी तथा देवनागरी का अखिल भारत में प्रचार नहीं था। इस महादेश में एक लिपि की आवश्यकता और उपयोगिता को अंग्रेजों ने समझा था; वह तो ठीक है, पर लिपि की उपयोगिता सीमित है, वह वाचन-मात्र की सुविधा दे सकती है, अन्य भिन्न भाषा को समझने में सहायता नहीं करती। रोमन लिपि द्वारा हम लैटिन, जर्मन, स्पेनिश आदि पढ़ भर लेते हैं, उन भाषाओं को जान नहीं पाते। अत: एक लिपि का लाभ सीमित है। आर्यमूल की परस्पर संबद्ध सगोत्र भाषाएँ यदि देवनागरी में लिखी जाने लगे तो एक भाषा का जानने वाला अन्य भाषा पढ़ सकता है, सहस्रों संस्कृत शब्दों को, सबमें समान रूप से व्यवहृत होने के कारण, समझ भी सकता है, फिर भी चूँकि वह भाषा भिन्न है, इसलिए उसे अभ्यास करना ही पड़ेगा। द्रविड़ भाषाएँ यद्यपि भिन्न कुल की हैं, पर उनमें भी संस्कृत शब्दावली मिलती हैं, अत: यदि लिपि की एकता हो जाए तो देवनागरी का ज्ञाता उसे सीखने में शीघ्र प्रगति कर लेगा। आर्यमूल की वर्तमान भाषाएँ हिंदी, पंजाबी, बंगला, आसामी; उड़िया, गुजराती और मराठी के वाक्य गठन और शब्दावली में इतनी समानता है कि वे सब संस्कृत रूपी वटवृक्ष की शाखाएँ जान पड़ती हैं। अतः यदि ये सभी वर्तमान आर्यभाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाने लगें तो एक की समृद्ध से सब समृद्धि हो जाएगी। जो बात हमने देवनागरी को

अखिल भारतीय रूप में ग्रहण करने के परिणाम रूप में बतायी है, वही बात रोमनलिपि के 'ग्रहण' के फलस्वरूप होगी, ऐसा उस समय अंग्रेज विद्वान् मामते थे।[१] अंग्रेजों ने इसलिए भी रोमन लिपि का पक्ष लिया था, चूंकि वे यह जानते थे।

देवनागरी की श्रेष्ठता उसकी ध्वन्यात्मक शुद्धता के कारण है, यह यूरोपियन विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। संस्कृतज्ञ 'ओरियंटलिस्ट' ही नहीं, प्रशासन से सम्बद्ध व्यक्तियों ने भी, जिन्हें इस लिपि का ज्ञान था, उन्होंने इसकी सराहना की। अत: भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि ग्रहण करना सर्वथा अनुचित समझा गया। उस समय यदि अंग्रेजों ने सभी भारतीय भाषाओं के लिखने के लिये रोमन के स्थान पर देवनागरी का समर्थन किया होता, तो भारत के भाषिक क्षेत्र में बड़ा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने का श्रेय उन्हें मिलता। उत्तम लिपि की कसौटी पर देवनागरी ही खरी उतरती है, इसे अनेक अंग्रेज विद्वानों ने स्वीकार किया था। इस प्रसंग में हम सर असर्किल पेरी का मत उद्धृत करते हैं, जिसमें उन्होंने यह बताया है कि जहाँ किसी बच्चे को यूरोप में भाषा सीखने में कई वर्ष लग जाते हैं, वहाँ देवनागरी के कारण हिंदू बालक को केवल तीन मास लगते हैं।[२]

---

1. "If all the Indian dialects were represented in the same English character, it would be seen and felt that the natives are not divided into so many sections of foreigners to each other, that they have all fundmentally the same language, when a native theroughely masters one dialect he is already acquainted with the meaning of numberless words in every other. If all were represented in the same English character, a Pandit or Munshi might in the course of his life time master all these language of Hindustan."

1. "The perfection of a written character seems to be that it should convey through the eye an accurate isdea of the pronounciatan of each word, and this attribute is fully possessed by the Deva nagari in which Sanskrit is witten and by all the best native alphabets...The value of the charactisstic is attested by the fact that Hindu children are able to read directly they have learnt the value of each letter, so that an accompalishment for which years are often needed in Europe, is acquired in India in three months".

Quoted in Common Character and Primary Education.

देवनागरी की यह ध्वनि-प्रणाली भारत के बाहर, लंका, मलयद्वीप, तिब्बत और मध्य एशिया तक प्रचलित है। यह प्राचीन आर्यों की बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस वर्णमाला ने इन सभी देशों की भाषाओं को लाभान्वित किया है। उन सभी भाषाओं के उच्चारण की रक्षा इस लिपि के ध्वंयात्मक आधार को ग्रहण करने से हुई है।[२]

यह मुसलमानों और हिंदुओं को, आर्यभाषियों और द्रविड़भाषियों को, सबको स्वीकार्य हो सकती है। उर्दू-हिंदी की लिपियों में जो वैषम्य है और दोनों के समर्थक जिस भावना से अपनी-अपनी लिपि से, अपनी भाषा और संस्कृति से उसे संबंधित मान कर चिपटे हुए हैं, इस स्थिति को देखकर यह आशा बलवती हुई कि इस बहुभाषी और बहुलिपीय देश में रोमन लिपि चल सकती है।

एक हिंदू किसी मुसलमान से बात तो कर सकता है, पर लिपि-भेद के कारण परस्पर पत्र-व्यवहार नहीं कर सकता। यह पंडित भी किसी महाजन की मुड़िया लिपि को पढ़ नहीं सकता। यह बात सर्वविदित है कि अंग्रेजों के आगमन के बाद, प्रेसों के खुलने के कारण हिंदी और संस्कृत छापने के लिए देवनागरी के उपयोग के फलस्वरूप उस लिपि का जैसा प्रसार और प्रचार हुआ वैसा उसके पूर्व इस देश में नहीं था।

---

2. The system, an outcome of the remarkable philological and phonological precision, the early Indian surpassed all ancient peoples, has been of priceless service, it has provided all the languages with an exact reflex of their pronounciation and it furnished them their history. Nor has this alphabetic legacy from Aryan India confined its benefits to the languages of the subcontinent. Ceylone and the Malay Islands, further India, Tibet and Central Asia were equipped with exact notation, which record their pronounciation at the law.

(Quotation fram F. N. Thomas. Toe Legacy of India Edited by G. T. Garrnh oxford, P. 46.).

देवनागरी के प्रचार में अंग्रेजों का योगदान :—

देवनागरी के विस्तार और प्रचार में अंग्रेजों के योगदान को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। उनका यह योग चेष्ठित न रहा हो या प्रत्यक्ष वे इसके पोषक न हों, पर यह बात विदित है कि उनके आने के समय काशी क्षेत्र के बाहर प्रायः संस्कृत भी स्थानीय लिपि ही में पढ़ी-लिखी जाती थी। बंगाल मे बंगाक्षर में, दक्षिण में ग्रंथम् में, कश्मीर में शारदा लिपि में प्रायः संस्कृत लिखी जाती थी।

जिस देश में १८ वीं शती तक प्राचीन संस्कृत भाषा भी भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रायः अपनी प्रादेशिक लिपि में लिखी-पढ़ी जाती थी, उस देश में देवनागरी में संस्कृत लिखे जाने के बहुत बड़े प्रचारक शिक्षा-विभाग के माध्यम से अंग्रेज हुए, इस बात को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। संस्कृत और देवनागरी लिपि का जो सहज संबंध आज मान लिया जाता है, वैसी स्थिति १८५७ ई० के पूर्व नहीं थी। इस विषय में डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का मत है कि 'नागरी १८६० ई० के बाद क्रमशः संस्कृत की एकमात्र लिपि बन गई और यह ब्रिटिश प्रशासकों के केंद्रीय करण की एक विशाल देन थी'। 'चूंकि बनारस में देश भर के पंडित एकत्र होकर संस्कृत के लिए नागरी लिपि का प्रयोग करते थे, इसलिए यूरोपीय छात्रों ने उसे विशेष मान्यता दी। कोलब्रूक के १८०५ ई० में प्रकाशित पहले संस्कृत व्याकरण में नागरी का प्रयोग किया गया। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में यूरोप और भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कृत पुस्तकें नागरी में निकलीं। एशियाटिक सोसाइटी के महाभारत, मैक्समूलर के ऋग्वेद आदि में नागरी का प्रयोग हुआ और उसे देवभाषा की लिपि के कारण देवनागरी कहा जाने लगा....हर जगह सस्कृत विद्वानों ने पहले देवनागरी को संस्कृत के लिए एक सहायक लिपि के रूप में स्वीकार किया और फिर वह अन्य क्षेत्रीय लिपियाँ, जैसे ग्रंथ, मैथिल और शारदा को अपदस्थ करने में सफल हो गई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने १८६०ई० में उसे एक अतिरिक्त लिपि के रूप में माना। १८५७ ई० में बननेवाले कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयों ने संस्कृत के लिये देवनागरी को आदर्श लिपि माना। इस प्रकार देवनागरी संस्कृत के लिए एक अखिल भारतीय लिपि बन गई।'

(रजत जयंती ग्रन्थ—बम्बई विद्यापीठ)

यूरोपियनों द्वारा लिखित हिंदी पद्य और गद्य

के

कतिपय उदाहरण

उपदेश कथा

और

इंगलैंड की उपाख्यान का चुम्बक।

ष्टुयार्ट साहेव ने किया हुआ।

Stewart's

Historical Anecdotes with

A sketch of the History of England

AND

Her Connection with India

Translated by Rev. W. T. Advin.

HINDEE

Calcutta

Printed at the Calcutta School Book Society's Press

11, Circular Road,

1825.

हिं० यू० वि० : व्य० क्र०—२३

सत् उपदेश

किसी ने एक बुद्धिमान् से प्रश्न किया कि बालकन् को क्या सिखावना उचित है ? तिसमें इसने उत्तर दिया कि मनुष्य भाव होने के समय में जो चाहिये, सोइ बालकन् को सिखावना योग्य है, और एक पण्डित ने भी यह कहा कि, बालकों को जिस् मार्ग में चलाना उचित है सो सिखाओ, क्योंकि वह वृद्ध होके भी उस मार्ग को त्याग नहीं करेगा। पे०—१

सद्गुण की कथा

सद्गुण के द्वारा सौभाग्य और यश का लाभ है। मनुष्य में मेहत् होने का सद्गुण लक्षण है। जो मनुष्य अपने साथी में सद्गुण को नहीं चाहता, तब उस में सद्गुण का लेश भी नहीं है। सद्गुण युवा मनुष्य का अपूर्व भूषण है और कंगाल मनुष्य का सहाय है, और दुःखित लोग के चैन का उपाय है। और जो सेवक अपने जीवने के कारण सेवकाई करता है, वह उसके द्वारा सम्पति को पावता है। वह बड़े से बड़े राजा के तेज का मुकुट है। सद्गुणी लोग दुःख पावने से भी अन्त में अच्छे होने की आशा करने सके। सद्गुण का उलटा करने से सद्गुणी लोग ने दुःख पावना भी भला है।

एक व्यापारी बहुत भला और प्रतिष्ठित था, जिसके अभाग्य से समय के अनुसार व्यापार के काम में सब सम्पत् का टोटा होने से दरिद्री होके बड़ी आपद में पड़ा और बड़ा दुःखी होके कि कोई मेरी सहायता करे इसी आशा से उसने किसी नगर में प्रवेश किया। पहिले से जिन लोगन के संग व्यवहार था, उनके साथ भेंट करके अपने दुःख का समाचार देके जिसमें फेर व्यापार करने सके, ऐसी उनके निकट प्रार्थना किई। और जिनके ऋण का शोध करने नहीं सका था, उनके विश्वास के कारण कहा कि तुम्हारा जो मैं धरावता हूँ, सो सब शोध करूँगा। यह मेरी इच्छा है, और जो ईश्वर की इच्छा होय कि उसका मुजको सिद्धि होय। व मैं आनन्दित हूँगा। यही सब खेद की

बातें सुनके सबके अन्तःकरण में दया जन्मे। तब सब महाजन इकट्ठे होके रहने लगे, कि सहायता करने से भला होयगा और सोई करने को पण किया और उन्हीं के बीच में एक महाजन के इस व्यापारि के पास एक सहस्र रुपये पावने थे, वह मनुष्य स्वभाव से निठुर, और उसने यद्यपि इस व्यापारी की दुर्दशा देखी और उसके दुःख की बातें सुनी, तथापि दया नहीं करके इसे ऋण के कारण उसको बन्दीशाला में बंधवाय दिया। पीछे इस कंगाल व्यापारी का बड़ा बेटा, इस प्रकार की विपत् का समाचार सुनके बहुत दुखित हुआ और रोता रोता इस नगर में प्रवेश करके, उसी धनी के पावों में पड़के, नेत्र के आंसून् से पांव धोयके कहने लगा कि हे महाराज, अनुग्रह करके मेरे पिता को बन्धन से छोड़ दो। जो कोई अटक नहीं होय तब यह फेर व्यापार करके प्रथम आपका ही ऋण शोध करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। मेरा यौवन और आठ लड़कों के अवश्य पालन करने के लिए मेरी माता का दुःख आप देखो, ऐसा और कोई दुःखी नहीं है, इसलिए हे महाराज, आप इन सबके ऊपर दया कीजिये। जो आपके अंतःकरण में दया नहीं होय, तब हमारे पिता के कारण हमको बंदीशाला में बाँधकर उसको छोड़ दो कि उनका वह पालन करें। इस बालक के पिता की ऐसी बातें सुनके, इस धनी के अंतःकरण में दया जन्मी, और आंसू भरे नेत्रों से इस युवा को उठायकर कहने लगा कि ऐ बालक, तू मत रो, तेरे पिता को मैं अभी छोड़ देता हूं। तब वह धनी इस् बालक की सपूताई को और अपनी निठुराई को देखके लज्जित हुआ, और तुरन्त उसके पिता को बंदीशाला में छोड़ दिया।

देखो बुरे लोग के संग रहने को नहीं चाहता, परन्तु कीर्ति और दीनताई के करना, ये दोनों मनुष्य को बहुत शोभित करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा वह प्रतिष्ठा और सम्मान को पावता है। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है और प्राचीन लोगों ने भी कहा है कि आगे जो अब प्रधान कुल में उत्पन्न होके अपनी खराई और धर्म कार्य के कारण प्रतिष्ठा और आदर को पाये और उन्होंने भी संसार का निंदित व्यवहार त्यागा था। और प्राचीन लोगों में भी ये व्यवहार त्यागे हुवे थे और जो कुछ भले थे वे उन्होंने ग्रहण किये थे। जहाँ धर्मशास्त्र का प्रमाण और पवित्र शास्त्र का भला उपदेश पाया जाये, वहाँ संसार का निंदित व्यवहार करना परामर्श नहीं है। जब दण्ड का भय नहीं है, तब अटक रहते उसी समय में सद्गुण का अनुष्ठान करना और पवित्र शास्त्र के

नियम का पालन करना, और ठीक और धर्म करना, और विपत् के भय विना निष्कारण गाली को तुच्छ जानना, और जो निषिद्ध है, सो नहीं करना और ईश्वर की इच्छा करने को त्याग नहीं करना, इन्हीं सब आचरणों को करके मनुष्य की महिमा प्रकाश को पावती है। देखो कुसंसर्गी सब भी इसकी बड़ाई करते हैं, जो भी वात से ऐसा स्पष्ट कहें नहीं तो भी मन में उन्को मानने होयगा। (पृ० २३-२७)

योवनकाल में विद्या उपार्जन की कथा

आगे सिसेरो नाम करके एक मनुष्य सद्विवेक और बड़ा ज्ञानवान् वा सत्यवादी था। उसने आपही से चेष्टा करके, भली प्रकार से ज्ञान का स्वरूप समझा और उसका विचार सब स्थान में माना गया और उसने ज्ञान के विषय में यही वात कही कि ईश्वर की ओर मार्ग दिखावने को और मनुष्यों को काम दिखावने को ज्ञान के विना क्या है? अर्थात् ज्ञान नहीं होने से कुछ नहीं होता, इसके निमित्त ज्ञान सबसे बहुत उत्तम है और जो तिसका यत्न से उपार्जन नहीं करता, परन्तु प्रति दिन आलसी रहता है, सो सुखी किस प्रकार से होगा। यह हम नहीं जानते, जैसे सर्व जाति होके निर्विघ्न सोने से उससे कोई नहीं, डरता, तैसे ज्ञान शून्य आलसी जो लोग सो किसी काम का नहीं, और सत् सभा में भी शोभा को नहीं पावता, सो आपही कुसंग में फिर के कुकर्म में ही मग्न होता है, तिसलिये उसको सभी कोई अपमान करते हैं।

ज्ञानवान् और पुण्यशील लोग को देखो, कि सबको सुख और उत्तम विद्या देने के कारण अपनी शक्ति के अनुसार चेष्टा करता है, इसलिये सोई उपकारी मनुष्य और मनुष्यों का अलंकार है।

'इंगलैण्ड की उपाख्यान का चुम्बक' अंश से

ईसामसीह के संवत् १६०० वरस् में साहब लोग ने इस देश में आवने के लिए जो व्यवहार किया था, वह मैं थोड़े में समझाऊंगा। १४६० वरस् में इस देश में आवने को एक नया मार्ग पाया गया। जब पृथिवी का आकार और खगोल की गति भली प्रकार से जानी नहीं गई, तिस काल में जहाज समुद्र के बीच से चलने नहीं सक्ते किनारे किनारे जाते। तिस् करके जल के मार्ग जाना आवना

करना बहुत् भयानक और दुर्लभ था। जब पृथिवी का आकर और खगोल की गति और कोम्पास भली प्रकार से जाने गये, तब जलमार्ग सहज् होने लगा, और तिस् करके साहब लोगों को वा और और लोगों को बहुत् लाभ दीखने लगा। देखो जलमार्ग से जाने आवने की सुधराई से और वनिज के बढ़ने से सब लोग बहुत् कमाई करने लगे। पहिले कोई ऐसा उपाय नहीं था कि जिस् करके सहज से विद्या और ज्ञान सर्वत्र प्रगट होय, क्योंकि पुस्तकें विद्या प्रगट करने का मुख्य उपाय है, परन्तु हाथ के लिखने में जितनी अवश्य उतनी नहीं देने सकते, इसलिये ऐसा उसका उपाय भया है कि बहुत सहज से अनेक २ पुस्तकें त्यार होने लगीं, उस्का नाम छापा विद्या है। और पृथिवी का एक नया खण्ड, जिसको अब आमेरिका कहते हैं, इस समय में प्रथम प्रगट भया। परन्तु तिस्के पहिले इस् देश को परदेशी लोग नहीं जानते थे, इसलिये देखो केवल विद्या करके और २ देश के लोगों के साथ वनिज और व्यवहार बढ़ा। तिस् उपरान्त विद्या और ज्ञान की सर्वत्र चर्च्चा होने लगी।

ईसामसीह के सम्वत् के १६०० वरस् में बंगाल के लोगों के साथ बनिज करने की सनद इंगलैण्ड के राजा ने कोम्पानी को पहिले दिई। पीछे जो सब अपनी सम्पत् बनिज करने को साधारण एक पूंजी एकट्ठी किये, उन्हीं को कोम्पानी कहा जाय। तव इस कोम्पानी को पूंजी कमती वढ़ती केवल पाँच लाक्ष रुपये थे। पीछे यह कोम्पानी को पूँजी कमती बढ़ती केवल पाँच लक्ष रुपये थे। पीछे यह कोम्पानी बनिज करने के लिये चार जहाज अनेक प्रकार की सामग्री से भर के इसी देश में आय के व्यापार करने से लाभ भया। फेर फिर के जाने के समय इन जहाजों करके इस देश से जो जो द्रव्य सामग्री अपने देश में ले गये, तिसमें भी थोड़ा बहुत लाभ हुआ, ऐसा लाभ देख के यह बनिज सदा करने को उन्को भरोसा हुआ। फेर वे एक सनद पाये और अपने व्यापार के लाभ से भी एक कोटि बांस लाख रुपये बढ़े।

ओलन्देज, और फिरंगी, और इंगरेज लोग, अपने अपने बनिज करने का स्थान बंगाले में पावने के पहिले समुद्र के तीर में मालावार और करमेण्डेल नाम करके पास करने के लिये दो स्थान पाये थे। तिस् समय में एक साहब बहुत बड़ा वैद था, जो सूरत में वास करता था। इंगरेज उसी से बंगाले का बनिज करने पाये, ऐसा हुवा कि ईसामसीह के सम्त् के १६२६ वरस् में आगरे में

शाहजहाँ बादशाह की बेटी को एक बड़ी पीड़ा हुई थी, यह समाचार साहब लोग पाये के इस डाक्तर साहब को सूरत से आगरे भेज दिये, उसने अपनी सुचिकित्सा से इस बादशाह की बेटी को रोग से भला किया। तिस्में बादशाह ने बहुत् सन्तुष्ट होके इस डाक्तर साहब को बहुत साधन देके अपने राज के भीतर कर बिना वनिज सर्वत्र करने को सनद भी दिई। वह इस सनद को पाय के बंगाले में आया और सामग्री द्रव्य मोल लिई, सूरत को भेजने के कारण जहाँ उस् काल में इंगरेंजों की एक कोठी थी।

इसके उपरान्त बंगाले के नवाब की एक प्यारी स्त्री को पीड़ा हुई, उसका समाचार भी डाक्तर साहब पाय के फिरके शीघ्र उसको रोग से छुटाया। वह नवाब साहब ने देख के बहुत सन्तुष्ट होके उसको अनेक धन देके अपने पास चिकित्साई के करने के काम पर रखा। और सनद जो डाक्तर साहब के पास बादशाह की दिई थी, उसको उसने भी दृढ़ किया, और जो नवाब ऐसा नहीं करते, तब कुछ फल उससे नहीं होता। इस नवाब साहब ने और इंगरेज लोगों को बंगाले में इस प्रकार से आवने को और बनिज करने के आज्ञा दिई।

उस् काल में जो सूरत में बड़ा साहब था, उसको उस डाक्तर साहब ने अपनी सुख्याति का समाचार लिखा। अनन्तर इस बड़े साहब के परामर्श से ईसा मसीह के सम्वत् १६४० के वरस में कोम्पानी ने इंगरेज की विलायत से दो जहाज बंगाले में भेजे। जो तिस में मुखिए थे उनको इस डाक्तर साहेब ने नवाब के पास ले जाय के मिलाया, पीछे नवाब साहब ने नवाब के पास ले जाय के मिलाया, पीछे नवाब साहब ने उनका शिष्टाचार से सत्कार किया और उनके कालेज कि काम में सहायता किया। उपरान्त इस बनिज में जो लाभ भया है, तिससे कोम्पानी को सदा बनिज करने का साहस हुआ। अनन्तर अनेक जहाज पहुँचने से बोझाई करने की सामग्री इकट्ठी होके एक स्थान में रहें ऐसी इच्छा थी, इसलिए कोठी बनाने को अवश्य प्रयोजन भया। इसलिए कोम्पानी ने हुगली में एक कोठी बनाई।

इस देश में इस कोम्पानी का प्रथम रहना, प्रभुत्व, और देशाधिपति होने का पूरा वृतान्त सुनेने से हिन्दु लोगों को बहुत सुख होयगा। इसलिए हमको बूझ पड़ता है कि हिन्दुलोगों की सर्वथा प्रवृत्ति और इच्छा होती है, और हिन्दु लोगों

के भीतर जो लोग बड़े पण्डित हैं, वे यह कोम्पानी कैसे इस देश का राजा हुवा, इसके विवरण का ग्रन्थ रचने को प्रवृत होंगे क्योंकि छापा विद्या से थोड़े मोल से बहुत् विद्या प्रगट होय । यह पूर्वोक्त वृत्तान्त सब लिखने से ग्रन्थ होय बहुत इसके निमित इहाँ लों बस है ।

देखो, यह कोम्पानी इस देश का राजा होके प्रजा का सुख और सम्पद होने की चेष्टा करने लगा, और प्रजालोगों को सुख से रखने के लिये ऐसा व्याकुल हुवा, कि पृथिवी के मध्य में कभी कोई पृथ्वीपति प्रजा लोग को सुख में रखने के लिए ऐसा व्याकुल नहीं हुआ । तिसलिये कोम्पानी के इस प्रकार सच्चरित्र को सबके सुख का बड़ा कारण जानना सबको उचित है ।

इंगलैण्ड के राजा का शासन

राजा और दो सभा से इंगलैण्ड का शासन होता है जो राजा मर जाय तब उसका बड़ा बेटा राज्य पर बैठे, परन्तु वह भी सभासदों के सिद्धान्त के अधीन है । राजा व्यवस्था के अनुसार युद्ध वा सन्धि करने सके, और राजकाज में लोग को रखने सके । परन्तु बिना व्यवस्था के कोई कर्म्म करने नहीं सके, और यह व्यवस्था भी सभासदों की सम्मति बिना नहीं चलने सके, और प्रजा का कर भी लेने नहीं सके। और वे सदा राजा और दो सभासदों के ठहराव के बिना कोई व्यवस्था चलने और कारण नहीं होने सके । उन दोनों सभान का वृत्तान्त यही, प्रथम सभा कुलीनों की और द्वितीय लोगन् की । कुलीनों की सभा में कुलीन वंश में उत्पन्न लोग ज्येष्ठानुक्रम से बैठ और चौबीस जन धर्माध्यक्ष और दो जन प्रधान धर्माध्यक्ष तिनके मध्य में बैठें। द्वितीय लोगों की सभा में तीन देश के लोग से चुने हुए छः सौ लोग मन के उपयुक्त उसी सभा में बैठें। द्वितीय लोगों की सभा में तीन देश के लोग से चुने हुवे छः सौ लोग मन के उपयुक्त उसी सभा में बैठें । उन्हीं का मुख्य कर्म यही है कि वर्ष २ कर का निर्णय करना और सुचेताई से व्यवस्था करना, जिसलिये उनकी सम्मति बिना राजा अपना कर लेने नहीं सके। जो राजा के मन्त्री व्यवस्था से विपरीत कोई कर्म करे और उनसे लोगों को दुःख होय, तब उनके नाम पर इसी सभा में नालिश होय ।

दि कोर्स आफ डिवाइन रिविलेशन (हिंदी) का एक अंश

हे परमेश्वर जगदघमोचक। कीजे कृतार्थ अति जड़ मोचक।
जातें निर्मल विवेक पाओं। औरों को सत्पन्थ दिखाओं।

शिष्य कहता है ।। हे गुरुजी ! भिन्न-भिन्न मत के गुरु लोग जितने इस देश में मिलते हैं सो सबके सब अपने नई मुक्ति ही के खोजने में तत्पर बताते हैं, इससे हमको जान पड़ता है कि उन सभों के समझ में मुक्ति ही परमार्थ है और सब बुद्धिमानों को चाहिये कि उसकी चिंता में सदा लगे रहें। अब आप कृपा करके कहिये कि मुक्ति का उपाय कैसा जाना जायेगा। गुरु उत्तर देता है। शिष्य तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उचित और बुद्धिमान के योग्य है क्योंकि मुक्ति इतर सब पुरुषार्थों से उत्तम है, इसलिए कि इतर सब पुरुषार्थ अनित्य हैं, परंतु मुक्ति नित्य है। और तुमने जो प्रश्न किया है उसका यह उत्तर है कि मुक्ति का उपाय केवल शास्त्र से अर्थात् ईश्वर के उपदेश से जाना जाता है और दूसरी किसी भांति से उसका जानना अशक्य है। कोई मनुष्य कितना ही विचारी और पंडित हो परंतु ऐसा नहीं कि जो अपनी बुद्धि के प्रभाव से मुक्ति के भेद को निकाल सकें ।।१।। शिष्य ।। गुरुजी मनुष्यों को केवल इंद्रिय ही नहीं है कि जिससे केवल प्रत्यक्ष विषय का जान सकें और अप्रत्यक्ष विषय को न जाने परंतु विचार की शक्ति भी है जिससे बहुत से अप्रत्यक्ष विषयों को जानते हैं। इससे हम पूछते हैं कि मुक्ति के भेद को भी विचार से क्यों न जान सकेंगे ।।गुरु।। हे शिष्य तुम्हारी बात सच है कि मनुष्यों को अपनी बुद्धि की शक्ति से बहुतेरी अप्रत्यक्ष बातों का ज्ञान मिलता है, क्योंकि जो जो बातें देखने में अथवा सुनने में आई हैं उनके विचारने से और अनेक बातें समझ पड़ती हैं जैसा कि बालू में मनुष्य के पांव के चिह्न देखने से अनुमान करते हैं कि कोई यहां से इस दिशा को गये हैं। अथवा किसी एक गांव को देखके जिसमें सब घर उजाड़ हो गये हैं और छपरछानी जल के राख हो गई तब यह अनुमान करते हैं कि किसी शत्रु ने इस गांव को लूट लिया है किंवा आग अथवा और किसी विपत के पड़ने से सब प्रजा लोग अपने अपने घर छोड़ के भाग गये हैं। अथवा ग्रीष्मकाल में गंगा के किंवा यमुना के बढ़ने से जानते हैं कि हिमालय के शिखरों में तुषार घाम से गल गया और उसके पानी के सोते पर्वत से उतर के मिल गये हैं और नदियों को बढ़ाया है अथवा ग्रीष्म-

काल में ठण्डे बतास के चलने से समझते हैं कि कहीं पानी बरसा है। इसी भांति के अनुमान से विद्या की भी बहुतेरी बातों का ज्ञान होता है। जैसे किसी एक तारे को आकाश के किसी एक स्थान पर किसी एक दिन में देख के और फिर प्रति बरस के उसी दिन पर उसी स्थान में देखने से अनुमान होता है कि इस तारे का ऐसा नियम है कि बरस में अपनी फेरी को पूरी करे। ऐसी ऐसी बातों के देखने से क्रम से ज्योतिष विद्या बनी है। उसी प्रकार से प्रत्येक जाति के पदार्थों के गुण और स्वभाव के देखने से उन उन पदार्थों की विद्या प्राप्त होती है। इसी रीति के अनुमान से ईश्वर का भी ज्ञान मिलने सकता है। जैसा इस विशाल संसार के देखने से अनुमान होता है कि अवश्य इसका कर्त्ता कोई समर्थ बुद्धिमान होगा॥ तैसा ही अपनी बुद्धि से भले और बुरे काम को अलगाय सकते हैं। समझते हैं कि कौन काम उचित और कौन अनुचित है। तैसा परलोक का भी कुछ कुछ अनुमान हो सकता है। जब देखते हैं कि अनेक सत्पुरुष जीवन पर्यन्त दुःख पाते हैं और अनेक दुष्ट लोग अतकाल लौं भी कल्याण का भोग करते हैं तब विचारी लोगों के मन में यह अनुमान उत्पन्न होता है कि ऐसा भी कोई स्थान होगा कि जिसमें कर्म के अनुसार साधु और दुष्ट दोनों को फलभोग होगा अर्थात् साधु लोगों का भला और दुष्टों को दण्ड होगा। ऐसे ऐसे अनुमानों से परमेश्वर के और परलोक के और इतर अप्रत्यक्ष पदार्थ के विषय में मनुष्य अपनी बुद्धि से कुछ थोड़ा बहुत ज्ञान पाने को समर्थ है। परंतु परमेश्वर और परलोक के विषय में केवल बुद्धि के द्वारा से ज्ञान प्राप्त होता है सो स्पष्ट और पूरा नहीं है और उसमें अनेक शंका रहती है। उन संदेहो से बुद्धि संतोष न पाके पूरे ज्ञान की लालसा करती है।

डाड्स्ले के संग्रह की पहली कहानी का गिलक्रिस्ट कृत अनुवाद
यह रोमन लिपि में है। यहां उसका देवनागरी में रूपांतर प्रस्तुत है।

The Course of Divine Revelation. A Brief outline of Communicaion of God's with Manana of the Evidences and Doctrines of Christianity with Allusions to Hindu Tenets in Sanskrit, Hindi and English-Caltutta, Printed at th e Baptist Mission Press, Circular Road, 1846 MDCCCXLVI.

बन्ने इज़राइयल हमेशः खुदा की बादशाहत में कुरकुराया बरबराया करते थे, इस वास्ते कि मानन्द और कोमों के उनमें बादशाह न था आखिर जैद्र (?) कि उनका हिमायती था उससे कहा कि तू बादशाहत कर, हमने तेरी पुश्त दर पुश्त की सल्तनत कबूल की, उसने जवांमर्दी से अपनी न माना, बल्कि उन लोगों को बताया कि बादशाह तुम्हारा खुदा है। जब वह मर गया अब मालिक कि उसका बेटा हरम से था उसने जो थम, दुत, जैद्र के जो और सत्तर बेटे थे, उनको मार डाला और शेखमी उनकी मदद से बादशाह हुआ तब जोथम ने उनकी हिमाकत के जुटाने को और इस बात के साबित करने को कि जो भारी भरकम होते हैं उनको अकसर धोखा कम होता है बत अक्स उसके कमीनों को राज की ख्वाहिश बहोत होती है कि इसमें जुल्म और गरूर बहोत सा कीजे कहा इस तौर से कि सुनो शेखमी ओ मेरी बात कि खुदा तुम्हारी भी सुनेगा। एक वक्त दरख्तों ने भी अपनी बेपरवाई और बराबरी की हाल से, कि जिस पर खुदा ने उनको रखा था बेज़ार होकर आपस में एक बादशाह ठहराने के लिए मशवरन की और जैतून से कहा, हमारा तू बादशाह हो। उसने कहा कि मैं अपनी चिकनई की खूबी कि जिससे खुदा और खिलकत खुश हैं उसे छोड़कर हाकिमी के बोझ से नाखुशी उठाऊँगा और सूखों पर हुकूमत करुँगा ? बाद उसके अंजीर से कहा कि तू हमारी सरदारी कबूल कर। उसने भी जवाब दिया कि मैं हुकूमत की कड़वाहट के लिए अपने अच्छे फूलों की मिठास छोड़ूँगा और दरख्तों का सरदार होऊँगा ? फिर गाछों ने अंगूर से कहा कि तू साहिबी कबूल कर वह बोला कि मैं अपनी शराब की लज्जत कि जिससे अल्लाह और उसके बन्दे खुश हों, तजूँगा और पेड़ों की बादशाही के वास्ते दुखदर्द रियासत का सहूंगा ? हम अपनी किस्मत पर राजी हैं, जाओ किसी और को सल्तनत के लिए ढूंढों तब सब बिरिछों ने मकोय से कहा कि आ तू हमारा बादशाह हो। उसने कहा कि मैंने तुम्हारी बादशाहत कबूल की। तुम सब मेरे साये तले चैन से रहो, अगर मुझे मानोगे तो पनाह में रखूंगा नहीं तो मेरे कांटों में से एक आग पैदा होगी कि तुम सबको लबनान के सर्व समेत जला कर खाक कर देगी।

जान पारसन की भाषा का उदाहरण

"सात बरस का एक लड़का था जो किसी मित्र के यहां अकेला गया था-

उसके माँ बाप उसके सगे नहीं थे परन्तु वह अपने माता-पिता की बातें स्मरण कर बहुत चौकस रहता था कि किसी बात में न भूले चूके। एक दिन उसके मित्र लोग उसे एक प्रकार की रोटी खाने को दिया चाहते थे पर उसने न लिई। उन्होंने पूछा क्या यह रोटी तुमको अच्छी नहीं लगती। वह बोला बहुत अच्छी लगती है। उन्होंने फिर पूछा, तो क्यों नहीं खाते हो। उसने कहा मेरे माँ बाप इस प्रकार की रोटी नहीं खाने खाने देते हैं। किसी ने कहा भला क्या होगा एक वेर तो खाओ तुम्हारे माँ-बाप वहुत दूर हैं वे इस बात को काहे को जानेंगे। लड़के ने बहुत उपयुक्त उत्तर दिया कि वे जाने अथवा न जाने तो भी मैं उनकी आज्ञा नहीं टालूँगा मैं उनका वचन मानूँगा नहीं तो चाहे कोई जाने चाहे न जाने मेरा मन तो जानेगा और मुझे दोष देगा और वेचैन करेगा।"

भक्तिवोधक अर्थात् एक सौ परमार्थी वृत्तान्त, द्वितीय संस्करण, १८६४ ई०।

जान पार्सन का गद्य

पार्सन के ख्रीष्टियान मंडली का वृत्तान्त।

यह गोटलबर्थ ने अलेमानीय भाषा में लिखा था जिसका पहले अंग्रेजी में अनुवाद हुआ था। जान पार्सन ने उसका अनुवाद हिंदी में किया। इसका तीसरा संस्करण १९०२ ई० में मेडिकल प्रेस, बनारस में मुद्रित हुआ था। अनुवादक ने भूमिका में लिखा है—

ईश्वरदया सहाय तें सबरो भया समाप्त।
प्रिय पढ़वैयन को अधिक ज्ञान हर्ष हो प्राप्त॥
भूल-चूक करु प्रभु छमा काज न तजु फल हीन।
आश्रित योहन पारसन बिनती करत अधीन॥

इस पुस्तक की एक विशेषता है कि देशवाचक और व्यक्तिवाचक नामों का उच्चारण प्रचलित अंग्रेजी उच्चारण से भिन्न है। इस पुस्तक की भाषा का उदाहरण नीचे दिया जाता है—

मंगल समाचार पहिले यिहूदिया देश में जो आशिया महाद्वीप के पश्चिम खण्ड में है प्रगट हुआ और जैसे सूर्य पूर्व में उदय होकर पच्छिम की ओर बढ़ता जाता है तैसे मंगल समाचार का प्रकाश भी पूर्व से पच्छिम की ओर फैलता

गया। परन्तु, आशिया का महाद्वीप जिसमें ज्योति का उदय हुआ था सो मूर्तिपूजा और मिथ्या मत के अंधकार में पड़ा हुआ है। जब ख्रीष्ट मत का सूर्य यिहूदिया देश से अस्त होके पच्छिम पर उदय हुआ तबसे मुहम्मदीय मत यिहूदिया और सूरिया और क्षुद्रआशिया और पारस देशों में प्रवल हो रहा है। सच है कि कई एक ख्रीष्टियान मंडलियां मुसलमानों के देशों में पाई जाती हैं अर्थात् यूनानीय निस्तोरीय अमनीय और लिबानोन पहाड़ों पर भारोपीय मंडलियाँ परन्तु उनका मत ऐसा अशुद्ध है कि ख्रीष्ट मत कहवाने के योग्य नहीं है। अरबिया देश और सिंध और गंगा इत्यादि नदियों के समीप के किसी किसी देश के लोग मुहम्मद को मानते हैं। आगे चीन देश के सिवानों तक सकल देशों के लोग जो मुसलमान नहीं है सो हिंदू धर्म को अथवा बौद्ध मत को मानते हैं। चीन देश के निवासी जो तैंतीस करोड़ मनुष्य होंगे सो सबके सब किसी न किसी भांति के देवताओं की पूजा करते हैं और हिमालय पर्वतों की उत्तर अलंग के समस्त देशों के लोग डलई लामा की पूजा करते हैं। यह पूजा मूर्तिपूजा के समान नाना अनर्थ विधियों के साथ होती है। इस वर्णन से बूझ पड़ता है कि कई एक ख्रीष्टियान मंडलियों को जो बहुत भ्रष्ट भी हुई हैं छोड़ के आशिया महाद्वीप के अधिक लोग अधम देवताओं की पूजा कर रहे हैं। केवल दक्खिनी सिवाने से सुसमाचार के उपदेशकों के द्वारा से थोड़ी ज्योति चमकने लगी है। (पृ० २२४)

पादरी टी० एवन्स

मूर्तिमुद्गर

पादरी टी० एवन्स साहेब मुंगेर निवासी कृत बैपटिस्ट मिशन मुंगेर द्वारा प्रकाशित १८८५.

इसमें मूर्तिपूजा का अनेक प्रमाणों से खंडन किया गया है। लेखक का कथन है—'इस पोथी को लिखने से मेरा अभिप्राय यह है कि इसके द्वारा लोगों की आंखें खुलें और वे मूर्तिपूजा के गुण और दोष को विचारें और जब निर्पक्ष हो के ऐसा करेंगे तो उनको स्पष्ट दीखेगा कि मूर्तिपूजा केवल वृथा नहीं परंतु ईश्वर के सामने महापाप है। इसकी भाषा का एक उदाहरण देखिए—

'यह बात ठीक है कि ईश्वर सर्वत्र है, जैसे वायु सर्व स्थान में है। परन्तु यदि कोई कहे कि इसलिये ईंटा पत्थर इत्यादि सब कुछ वायु है तो उसको लोग बावला कहेंगे। उसी प्रकार से ईश्वर सर्व स्थान में तो हैं परन्तु ईश्वर काठ पाषाण धातु इत्यादि की मूर्ति में नहीं है। परन्तु वह इनसे परे परमात्मा है जिसका न रंग है, न रूप है और जो आंखों से देखा नहीं जाता है। इस कारण उनका यह तर्क भी भ्रष्ट है।' (पृष्ठ १०)

एवंस साहेब ने कुछ पद्य भी मूर्तिपूजा के विरोध में रचा है।

प्रभुनाथ दया अब वेग धरो। जित मूर्ति रहें सब लोप करो ।।
सत सूर छटा परकाश करो। तम पुंज घना अब नाश करो ।।
प्रभु यीशु महा बलिदान भयो। तिन लागि नरा निज जीव दयो।।
तिहि हेत क्षमा अब पाप करो। जऊ प्रेम भने नर जाति तरो ।।

पादरी व० फ० जानसन

आपने लैंडमार्क्स आफ ऐंश्यंट हिस्ट्री का संसार का 'प्राचीन संक्षेप इतिहास' नाम से सरल हिंदी में उलथा किया। यह १८९८ ई० में इलाहाबाद की क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हुआ था।

आदि पुरुष अर्थात् आदम का वृत्तांत, (मूलरूप में)

'आरंभ में सारी सृष्टि ईश्वर से सृजी गई। सूर्य, पृथिवी, चंद्रमा, तारागण सब उसके हाथ के बनाए हुए हैं और वह ग्रह मार्ग भी जिसमें वे आज लों घूमते उसी से ठहराये गए हैं और जो कुछ रूपान्तर किसी समय किसी में हुआ है सो ईश्वर की इच्छा के अनुसार हुआ है क्योंकि वह उन सभों को संभालता और उनकी रक्षा करता है।

पृथिवी सृजी गई और क्रम-क्रम से उन पशु पक्षी आदि जीवों के लिए जो अब उसमें पाये जाते हैं तैयार किई गई और तब पृथिवी का अधिकारी अर्थात् मनुष्य सृजा गया। वह भी पशुओं के समान देंहधारी हुआ परन्तु एक बात में वह पशुओं से भिन्न है क्योंकि उसको अमर आत्मा दिया गया है।

पहले आदि पुरुष अर्थात् आदम सृजा गया परन्तु समस्त जीव जंतुओं में उसका कोई साथी न मिला सो ईश्वर ने हव्वा को जो पहिली स्त्री थी बनाया। वह आदम की पत्नी हुई और इन दोनों के वंश से पृथिवी के समस्त निवासी काले, गोरे उत्तम अधम आज लों उत्पन्न होते हैं। जब लों आदम और हव्वा ईश्वर को भजते और उसकी आज्ञाओं के अनुसार चलते थे तबलों वे बड़े सुख से रहते थे और ईश्वर की प्रीति में अति मग्न थे।'

पादरी एडविन ग्रीफ़्स

पादरी एडविन ग्रीफ़्स ने कई पुस्तकें ईसाई मत की पुष्टि के लिए हिंदी में बनाई। आप लंदन मिशनरी सोसाइटी, बनारस के पादरी थे। आपकी तीन पुस्तकें मुझे देखने को मिलीं—

१. प्रेरितों की क्रियाओं के वृतान्त की व्याख्यावली।

२. ईश्वर का अवतार लेना और प्रायश्चित करना।

३. हिन्दू मत और मसीही मत।

अंतिम पुस्तक से हम नीचे एक अवतरण देते हैं। लेखक की भाषा का इससे अच्छा परिचय मिलता है।

'पुराणों में बहुत से देवताओं और देवियों की चर्चा है और वे बहुधा ईश्वरों के समान बतलाए जाते हैं। प्रायः करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश मुख्य गिने जाते हैं पर और बहुत से हैं जैसे गणेश इंद्र लक्ष्मी भवानी इत्यादि और इनको छोड़ के विष्णु के अवतार हैं विशेष करके राम और कृष्ण जो मानों अलग अलग ईश्वर गिने जाते हैं। चंद भक्त विष्णु को और चंद शिवको मुख्य और श्रेष्ठ मानते हैं। अधिक लोग कभी एक देवता कभी दूसरों की पूजा किया करते हैं वे मानों सभों की शरण लेते हैं।

तौ भी मैं समझता हूँ कि पुस्तकों में और लोगों के कहने और कहीं न कहीं और कभी न कभी यह अनुमान या विचार कुछ न कुछ होता है कि नाम तो बहुत हैं, पर अवश्य एक ही ईश्वर होगा पर अपने अनेक गुणों के कारण वह नाना प्रकार के नाम और रूप धारण करके अपने तई प्रगट करता है। पर मेरी समझ में यह उन लोगों का कभी का कहना ही है पर वे नित

ऐसा नहीं कहते हैं और बहुत ही कम ऐसा सोच विचार करते हैं। वे बहुतों की पूजा करते हैं इस कारण कि वे उन बहुतों को भिन्न-भिन्न ईश्वर मानते हैं और उनके ध्यान में यह सिद्धान्त ठीक नहीं बैठता है कि सचमुच एक ही ईश्वर हैं।

ज्योति किरण अर्थात् धर्म की मूल कथा—

इसकी लेखिका हैं मिस सेरा जोसफ, जिन्होंने इसे "एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक" से सहज हिंदी भाषा में उतारा।

यह १८८५ ई० में मिशन प्रेस में दूसरी बार नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्राक्ट और बुक सोसाइटी की ओर से इलाहाबाद मिशन प्रेस में छापी गई थी। इसकी भाषा को 'सहज हिंदी' बताया गया है। सहज हिंदी से यह अभिप्राय यह जान पड़ता है कि इसमें कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ—जैसा कि ख्रीष्टानुकरण में मिलता है।

इससे भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। यह लड़कों के लिए लिखी गई थी, अतः इसकी भाषा सहज है।

"जगत की सृष्टि का वर्णन"

उत्पत्ति १ पर्व :

मेरे प्यारे लड़कों मैं जानती हूँ कि तुमने सुना है कि ईश्वर ने इस जगत को सृष्टि किई। क्या मनुष्य ऐसे जगत की सृष्टि कर सकता है? नहीं। ऐसे जगत की सृष्टि मनुष्य कभी नहीं कर सकता। मनुष्य पेटी, टोकरी आदि अनेक वस्तु बना सकता है, किन्तु किसी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकता। किसी बढ़ई को तुम चीन्हते हो जो पेटी बना सकता है यदि तुम उसे एक सने घर में बंद करके कहो कि तुम एक पेटी बिना बनाए बाहर नहीं निकलने पाओगे और उसे पेटी बनाने के लिए लकड़ी, पेंच हथियार और जितनी आवश्यक वस्तु हैं, कुछ मत दो वह कभी पेटी बनाकर बाहर निकल सकता है? कभी नहीं। जब तक वह लकड़ी आदि वस्तु न पावेगा कदापि पेटी न बना सकेगा, पर ईश्वर को जगत की रचना के लिये किसी वस्तु की आवश्यकता न थी। उसने केवल आज्ञा दिई और सब जगत बन गया। बिना सामग्री किसी

पदार्थ का बनाना सृष्टि करना कहलाता है। ईश्वर को छोड़ दूसरा कोई सृष्टि नहीं रच सकता। तुम जानते हो कि ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता क्यों कहते हैं? इस कारण कि उसने सब वस्तुओं की सृष्टि की है। सृष्टिकर्त्ता एक ही है। स्वर्ग के दूत अथवा मनुष्य एक बूँद पानी या एक छोटी मक्खी भी बना नहीं सकते। यह तो तुम जानते हो कि छः दिन में ईश्वर ने इस जगत के सारे पदार्थ बनाए परन्तु किस दिन क्या बनाया यह मैं अब बतलाती हूँ।

(पृ० १-२)

"ख्रीष्टानुकरण" लाटिन से जान ह्यूलेट कर्त्तृक अनुवादित

इस पुस्तक की भाषा संस्कृतनिष्ठ और अत्यंत उत्कृष्ट है। इसकी रचना १८७५ ई० और १८७८ ई० के बीच में हुई थी। यह वही समय था, जब हरिश्चन्द्र हिंदी को अपने ग्रंथों से समृद्ध कर रहे थे।

१. उत्तम मनुष्य का विभव निर्मल अंतःकरण का आनंद है। तेरा अंतःकरण निर्मल होवे तो तू सदा आनंदित होगा। निर्मल अंतःकरण बहुत दुःख सह सकता और विपत्तियों में अत्यंत आनंदित रहता है।।

दुष्ट अंतःकरण सदा भयातुर और व्याकुल है। यदि तेरा हृदय तुझ पर दोष न लगावे तो तू मधुर विश्राम प्राप्त करेगा।।

जिस समय तूने सुकर्म किया है केवल उसी समय आनंद कर।।

जो विभव मनुष्य से प्राप्त होता है सो अल्पकालिक है। शोक सदा संसार के विभव का अनुगामी है।।

उत्तमजनों का विभव उनके अंतःकरण में है।। और अन्य मनुष्यों की जिह्वा पर नहीं है। निर्दोषियों का आनंद ईश्वर के कारण और ईश्वर में स्थित है और उनका हर्ष सत्यता के कारण है।।

जो जन सत्य और नित्य विभव का अभिलाषी है, सो अनित्य विभव की चिंता नहीं करता है।। और जो अनित्य विभव का अभिलाषी है सो अनित्य विभव की चिंता नहीं करता है।। और जो अनित्य विभव का अन्वेषण करता है अथवा उसको अपने हृदय से तुच्छ नहीं जानता है सो यह प्रमाण देता है कि वह स्वर्गीय विभव का अल्प प्रेमी है।। (पृ० ७९-८०)

१. हे मेरे आत्मा तू सर्वावस्था में सवापेक्षा प्रभु में सदा विश्राम पावेगा क्योंकि वही साधुन का अनंत विश्राम है। हे प्रेममय और मधुमय यीशु अनुग्रह कर कि मैं समस्त सृष्ट पदार्थ की अपेक्षा समस्त कुशल और सौंदर्य की अपेक्षा समस्त विभव और सम्मान की अपेक्षा समस्त पराक्रम और गौरव की अपेक्षा समस्त ज्ञान और विदग्धता की अपेक्षा समस्त धन और शिल्प की अपेक्षा समस्त यश और प्रशंसा की अपेक्षा समस्त मधुरता और शांति की अपेक्षा समस्त आशा और प्रतिज्ञा की अपेक्षा समस्त योग्यता और अभिलाषा की अपेक्षा तुझमें विश्राम पाऊँ ।।

अनुग्रह कर कि मैं उन समस्त दानों और उपकारों की अपेक्षा जो तेरी दया और उदारता से प्राप्त हो सकते हैं और उन समस्त हर्षों और आह्लादों की अपेक्षा जिनको मनुष्य का हृदय ग्रहण और अनुभव कर सकता है, तुझमें विश्राम पाऊँ।

२. क्योंकि तू हे मेरे प्रभु परमेश्वर सर्वापेक्षा उत्तम है। केवल तू अत्यंत महान् केवल तू अत्यंत सामर्थी केवल तू अत्यंत यथेष्ट और परिपूर्ण केवल तू अत्यंत मधुर और संतोषी है।

केवल तू अत्यंत प्रिय और प्रेमी केवल तू सर्वापेक्षा अत्यंत महान् और प्रतापी है क्योंकि तुझमें समस्त उत्तम पदार्थ एकत्र और सिद्ध रूप से त्रैकालिक है। (पृ० १५५-१५६)

———

ख्रीष्टचरित्रामृत

अंग्रेजी टाइटिल

THE LIFE OF CHRIST

Translated into Hindi Verse

Sri Rampur Press

1838

पुस्तक पर लेखक का नाम अंकित नहीं है। कदाचित् यह किसी भारतीय की रचना है। ऐसी ही एक रचना बंगला में ख्रीष्टविवरणामृत मिलती है। इस हिंदी पुस्तक की रचना चौपाई-दोहे की शैली में है। रामचरित मानस की वर्णनपद्धति अपनाई गई है। इसके लेखक, तासी के अनुसार, पंडित रामजस हैं और यह १८३३ ई० में श्री रामपुर से मुद्रित हुआ था।

।। ख्रीष्टचरितामृत पुस्तक ।।

चौपाई

ख्रीष्ट चरित्र कहूं सुनि लीजै,
अमृत पुस्तक से बरनन कीजै।
महातेजस्वी पुरुष जो कोई,
तिहि जश गुण गाय सुखि होई।
जो जगदीश्वर सर्व विख्याता,
सभ सृष्ट का है सुखदाता।
ताहि विनिवत मन आनंद होई,
काटत पाप फंदा सब सोई।
सृष्ट को रचना ताको कारण,
देस यिहूदा में देह धारो,
जग तारण हित मरण विचारो।

है सोई आप जगत उद्धारी,
मरियम पुत्र यिशु बलधारी।
ईश्वर सुत सतरूप अनूपा।
जीवजंत सबन को भूपा ।।
दया निधान और करूणानिधि प्रेमी प्रेम अपार।
जग तारण नर देह धर, प्रगटो वह अवतार ।।
हिंदुस्थान के देश कर मुक्त काज बड़ जानि
बहु अंगरेज ज्ञानी गुणी कियो चरित्र बखानि
सो तो हिंदी भाषा गावो,
मुक्त काज को जतन उपावो।
छंद बंद रीति रस सारा,
बरनो ज्ञान मुक्त अनुसारा।
ख्रीष्ट चरित्र नाम ते हे भाषा,
अमृत पुस्तक नाम तिहि राखा।
है सब जो कोई पढ़े पढ़ावे,
ख्रीष्ट प्रताप तरण पद पाये।
अब्राहम को वंश उजियारा,
ताहि वंश जन्म प्रभु धारा।
भयो दाउद राजा बलधारी,
तेहि कुल ख्रीष्ट भए अवतारी ।।

दोहा

यिशु जन्म बरनन करू श्रवन करो सब कोइ।
पापी जीव उधार को निरुपन कारण सोइ ।।

अंतिम अंश

दोहा

ख्रीष्ट चरित्र अमृत कथा परम पवित्र उदार,
सुनो सभी चित लाय जन पूर्ण भयो यह बार।
ईश्वर सुन अवतार की कथा आदि और अंत,
या पुस्तक में बारता तात काल परजंत ।।
यिशु ख्रीष्ट मरियम तनह दाउद वंश के नंद,
ताके चरित्र अपार है सुक्षम कहे प्रचण्ड।

गालिलवासी जो वह जन्म लियो जहां आई
नाजरेत अस्थान में प्रगटो प्रभु सुखदाई।
सब जीवन उद्धार हित आप कष्ट फल लेई।
अंत गयो स्वर्ग लोक कों वलिदान कर देहि।
अपने परजिन्ह दुख सहो जग सुख देने काज,
पूरण हो मन कामना यही अनुग्रह तोहि।

आरती

जै यिशु ईश्वर पुत्र पवित्र पूरण दाउद वश उजागरं,
मरियम पुत्र मनुष्य रूपी यिशु ख्रीष्टनमामिहं।
जगतमाता सुख को दाता सृष्टिपाप निवारणं
जै ख्रीष्ट स्वामी अन्तरज्ञानी तोहि चरण प्रणामिहं।
पर उपगारी दुख निवारी दीनहित दयासागरं।
तोहिनाम गुण प्रताप पूरण कृपा सिंघ करुणामयं।
सर्वपाप नाशी दुख अविनाशी मंगल रूपप्रचारणं।
शरण सेवक आनंद पावत सुख रूप सुखसागरं।
जो धर्म पुस्तक वचन पालन सकल विधि प्रभु तुम किया।
जगततारण हेतु स्वामी अपने प्राण प्रभु तुम्ह दिया।
जै नाथ सर्वगति जान हो तुम्ह अंतरज्ञानी गुणमयी।
वार-वार तुम्ह नाम गुण प्रभु सुमिरि मन आनंद भई।
अब दया दृष्टिनिहार सब विधि दास बिनती मानियो।
तोहि चरण शरण नित सुख आनद मोहे दास अपनो जानियो।
करत बिनती बार-बार प्रभु तुम्ह चरणपर सिर धरूं।
हो कृपाल सब दुःख तासो पाप रहित जीवन बनो।
वह वार वारंवार तुमको सिर नाऊं सुख दीजिए।
कृपा करि दुःख कष्ट हरि प्रभु कृपासिंघ करण भए।

अष्टपदी राग काफी

यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं मैं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं।
ख्रीष्ट अवतार भयो जगकारण तासें प्रेम लगाऊं।
मैं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं।
मरियम गर्भ जन्म जिन धारा पापी जन को कियो निस्तारा।

प्रेमी जनको प्रेम बढ़ाया स्वर्गराज को तेज दिखाया ।
ताहि चरण चित लाऊं, मैं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं ।
रोगी दोषी के दुःख टारे सब जीवन के रोग निवारे ।
अंधरो नैन ज्योति दरसाई गूंगे मुख सो बोल सुनाई ।
कुष्टी अंग शुद्ध कर दीने, लंगड़े पग चलने को कीने ।
मूए कबर से बहुर जिलाए जिन्ह गहे चरण संताप मिटाये, ।
ईश्वर सुत चरित्र बरनन सुनावूं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं ।
देस यिहूदा में तन धारा ईश्वर आज्ञा सिर पर धारा ।
दाऊद वंश को किथा उजारा ताके नाम होत उद्धारा ।
कीन्हें उन्ह तो चरित्र अपारा सकल जीव सुखदायक धारा ।
ईश्वर को वह पुत्र बलधारा ता प्रभु के गुण गावूं ।
मैं यिशु चरण शरण चित लाऊं, मैं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं,
सबके बदले आपको दीना पापी जीव का तारण कीना ।
यिरुशालम माह पधारा ईश्वर आज्ञा सिरपर धारा ।
आप मरण जिन्ह आप विचारा । हो बलिदान जगत उद्धारा ।
जी उठ दर्श दिखाय सिधारा मनुष्य पुत्र के चरित्र अपारा । ताकी स्तुति गावूं
एकादश शिष्य बलधारी सबन्त गुणवंत दया अधिकारीं । तिन्को सदा प्रणाम हमारी
ईश्वर जोति सबमें कलकारी देखो ख्रीष्ट चरित्र विस्तारी,
मैं बार बार सिरनावूं मैं यिशु ख्रीष्ट के गुण गावूं ।

'दाऊद माला' से भजन १३१

अधम दास की बिंती सुनिये, हे परमेश्वर त्राता ।
है नहिं गर्वी चित्त हमारा, मैं निज आँख न ऊँच पसारा ।
बड़ी बात अरु अद्भुत में नहिं हों लवलीन सुहाना ।
सदृश और चुपचाप न कीनो, अपन प्राण को मैं प्रभु दीना ।
दूध छुटा शिशु करत मात, ज्यों विश्राम सुजाना ।
मो पै होत विश्रामी प्राण, दूध छुटा मैं बाल समाना ।
ईश्वर जानत है जगराजा, जग के जो सुखदाता ।
हे इसरायल ईश्वर केरे, आशावान तू होहु अबेरे ।
अब से सदा काल लों उसमें, रहो प्रेम से माता ।।

'आसी' कृत

मोहि पापी पे कृपा कीजिये, हे प्रभु दीन दयाला।
दंड न क्रोध से दे तू मो को, ईश्वर कृपा विशाला ।।
मुझ पर न्याय तू पूरा कर मैं, दुःखित लचार निराला।
अपराधों का भार जु मेरा, मोको करत बिहाला ।।
मेरा मन जो पतित लचारा, लहे न सुख केहु काला ।।
तुम से है प्रभु मेरी आसा, तुम ही तारणमाला।
हे प्रभु सुनो दुहाई मेरी, दूर करो भ्रम जाला।
निज अपराधन को मन खोलो, मानूं मैं जगपाला ।।
मो पै करो दया की दृष्टि, मोहि न त्यागु दयाला ।।
हम से दूर न हो करु जलदी, यम निस्तार भुआला ।।
आसी को नहिं भूलो स्वामी, क्षमा करो अघमाला ।।

गीतें

हमारे प्रभु और त्राण करनहारे
यिशु ख्रीष्ट की बन्दिगी में
गाने के वास्ते।।
देखो पृथ्वी के अंत से हमारे प्रभु यिशु के नाम के
गान सुनने में आये हैं ।।
तामसेन कृत ।।[1]
श्री रामपुर में छापा हुआ ।।
सन् १८२८ मसीही में ।।

———

१. इनका अंग्रेजी नाम है रेवरेंड जे० टी० टामसन। यही तामसन साहेब ज्योतिष और गोलाध्याय (१८२३ ई० में मुद्रित) के रचयिता जान पड़ते हैं।

मिशनरी प्रार्थनायें

एक सौ पैंतीसवाँ गीत

प्रभु का राज्य आवे।

१. आवे प्रभु आपका राज्य
आवे सत्य और धर्म का राज्य
होवें तेरे अधीन सब
देश के देश फिर जावे अब
आवे प्रभु आपका राज्य
आवे सत्य और धर्म का राज्य

२. देखो सभी भटके हैं
धर्म से सुख से परे हैं
कोई नहीं जाने भक्ति को
दौड़े जाते नरक को
आवे प्रभु आपका राज्य
आवे सत्य और धर्म का राज्य

३. प्रभु कौल भी आपका है
सबको आश्रय लेना है
खींचिये सबके दिलको अब
आप में लवलीन होवें सब
आवे प्रभु आपका राज्य
आवे सत्य और धर्म का राज्य

४. सब जात ईश्वर प्राप्त होय अब
समीप होवे सबके सब
सबके पाप का मोचन होय
हृदय शुद्ध और मुक्ति होय
आवे प्रभु ख्रीष्ट का राज्य
होवे सिद्ध सब जग का कार्य

एक सौ एक्यावनवाँ गीत
तेरा राज्य बढ़े

१. प्रभु यिशु अपने राज्य को
सारे जगत में चलाव
अपने परित्राण के काम को
सभी लोगों को जताव ।।

२. दूर कर डालो देवता पूजा
देवते को लोग भूल-भूल जांय
तू ही सारे लोग का राजा
तेरी शरण सब आ जाय ।।

३. फैलाव मंगल समाचार को
सबके मनको फेरि-फेरि देव
और पूरब सेति पश्चिम को
सारे देश में जयी हो ।।

४. जब तक प्रभु तेरी स्तुति
जगह-जगह किई जाय
सबको होवे अच्छी गति
आनन्द चित से गीत भी गाय ।।

५. प्रभु तू तो अधिकारी
सारे देश का हुआ है
प्रगट करो अपनी बारी
जगत्राता तू ही है ।।

एक सौ उनासी गीत ।।
भरतपुर का नाश होना ।

१. वै प्रभु तू ही ईश्वर है
नहीं तुझ बिन कोई और
न सत्ता किसी और की है
न देवता और ।।

२. अब पखंड सबका खुला है
अब देवा-देवी क्या
बलदेव में अब क्या रहा है
अब मूरत मंदिर क्या ।।
३. ओ ईश्वर तू ही प्रकाश हो
अँधेरा कीजिये दूर
मुक्त ज्ञान सब देश में फैला देव
हो पृथ्वी भी भरपूर ।।

'रविवार' (शीर्षक मेरा)
उनचालिसवाँ गीत ।

१. यिह दिन कहलाता रविवार
और सबसे उत्तम लाखों बार
आज भोर को प्रभु यिशु ने
मुक्त साधा उठके मरण से ।।
२. अब आव सब काम से अलग हो
सब धन्दा झंझट पाप छोड़ देव
और ख्रीष्ट के प्रेमी लोगों के संग
गीत गाव् मनाव और पढ़ो सग
३. महात्म्य ख्रीष्ट के दिन भर गाव
सब लोग को ख्रीष्ट के प्रेम जनाव
आनन्द से कहो सबके पास
कि यिशु ख्रीष्ट से त्राण की आस ।।
४. उसही ने पाप को मिटाया
धर्मात्मा हमें दिलाया
उसी से मौत को डरते नहीं
उसीसे स्वर्ग को चले जाएँ

तेरासीवाँ गीत ।।

१. देख ईश्वर आत्मा है
निराकार अदृश्य है
वह है निरंजन अद्वैत्य है
एक ब्रह्म द्वैत्य नास्ति है ।

२. अनादि अनन्त वह है
और मुक्त के आदि अन्त है
वह प्रेम है ज्योति है असम है
और कर्त्ता सृजक है।

३. और किसी मनुष्य ने उसे न देखा है
पै हमरे प्रभु यिशु ने
उसे प्रकाश है

४. देख ईश्वर पूर्ण ब्रह्म
वस् रहा था ख्रीष्ट में
और ईश्वरता का गुण असम
था व्यापक यिशु में ।।

५. हां यिशु ईश्वर है
देह धारा जग् वास्ते
पाप प्रायश्चित कारण मरा है
फ़ेर उठा मरण से।

६. आव पूजो उसको अब
सत्य मानो उसे सब
है जगतकर्त्ता तारणहार
निस्संदेह सबके वह ।।

७. वह फिर भी आवेगा
जग को विचारेगा
और कर जैसे फल सबको
ख्रीष्ट जरूर देवेगा ।

८. ऐ यिशु ईश्वर आव
आव मुझे स्वर्ग ले जाव
मैं आश्रित तुम्हारे मरण के
मुक्त मुझे पूर्ण देव।

एक सौ इकसठवाँ गीत ॥

प्रभु यिशु मेरा है तो सब कुछ मेरा है ।

१. जो प्रभु यिशु मेरा है
तो जग में सब कुछ मेरा है
मैं ईश्वर पाके और क्या चाहूँ
अब राजी खुशी संतुष्ट हूं ।
२. जो संसार में और कुछ न रहे
सिर्फ प्रभु मेरा ईश्वर होय
मैं राजी खुशी इससे रहूँ
मैं जीते मरते प्रभु पावूं ।
३. हां यही मेरी दौलत है
और कुछ की मुझे गरज नहीं
दुःख-सुख में मुझे प्रभु है
और प्रभु मुझको बहुत ही है ।
४. ऐ मेरे जी अब खुशी रह
सब हाल में तू संतोषी रह
जो दौलत मेरी ख्रीष्ट में है
सो जुग-जुग रहेगी अक्षय ॥

ख्रीष्टका आवना

१. देख वह चला आता है
बादल ऊपर सवार है
सब कोई उसे देखेंगे
पापी विलाप करेंगे
आये प्रभु यिशु ख्रीष्ट
मेरा तारक मेरा ईष्ट ॥
२. आश्रित तब खुश होवेंगे
पूरी निजात पावेंगे ।
अनंतकाल के सुख में तब
दाखिल होंगे सबके सब
आए प्रभु यिशु ख्रीष्ट
मेरा तारक मेरा ईष्ट ॥

३. धरती आसमान कापेंगे
आग से भस्म होवेंगे
प्रभु ख्रीष्ट जब आवेगा
सारी सृष्ट नाश होवेगा
आए प्रभु यिशु ख्रीष्ट
मेरा तारक मेरा ईष्ट ॥

४. अविश्वासी जेते लोग
सबको होगी नरक भोग
धरती आसमान चले जायँ
ख्रीष्ट का वचन अटल रहे
आये प्रभु यिशु ख्रीष्ट
मेरा तारक मेरा ईष्ट ॥

एक सौ नब्बेवाँ गीत ।

१. विश्वास ही से मुक्ति है
अविश्वासी नारकी है
जो कोई प्रभु ख्रीष्ट का है
नरक सेति बचा है।

२. हाँ अं लोगों यिह सत्य है
अविश्वासी नारकी है
उसका न तो आशा है
न कुछ मनको शान्ति है ॥

३. वह पाप में अपने मलीन है
अधर्मी में वह राजी है
प्रायश्चित को वह मानते नहीं
प्रभु ख्रीष्ट को चाहते नहीं।

४. अैसे लोग सब अधम है
अपने पाप में मरते हैं
वे तारक को नहीं चाहते हैं
तारक बिना भारत हैं।

५. प्रतीत करो लोगो सब
प्रभु यिशु ख्रीष्ट को अब
स्वयं ईश्वर वही है
प्रायश्चित कारण मरा हैं ।।

६. जो जो तुम्हारे पातक हैं
सबको मिटा सकता है
जीवित ईश्वर स्वयंभू
रचा जिसने खग और भू ।।

७. उसकी शक्ति से क्या न होय
प्रतीत करो सब कुछ होय
प्रभु यिशु तारणहार
जग का कर्त्ता सृजन हार ।।

८. मानो उसको जीव जान से
है पाप का मोचन उसी से
जो चाहे उससे निस्तार पाय
और अन्त में स्वर्ग को चले जाय ।।

एक सौ उन्हत्तरवाँ गीत

१. आज प्रभु ख्रीष्ट जी उठा है
खुश हो वो लोगो सब
आज मुक्त का काम सिद्ध हुआ है
आस रखो मुक्त की अब ।

२. क्या काम है तुम्हें दुनिया से
लीन हो वो प्रभु में
आज जी उठा के सब कुछ से
ध्यान लगाव यिशु से ।

३. वह जीया मरा उठा फेर
तुम्ह सबको करने त्राण
वह स्वर्ग से आया गया फेर
अब आत्मा करे दान ।

४. और जब यह चोला छूटेगा
तब देगा मुक्ति वह
और देह को फेर उठावेगा
तुम्हारे मौत से वह ॥
५. तो गाव अै लोगों स्तुति गाव
हमारे प्रभुको
तुम्ह प्रभु ख्रीष्ट के यश मनाव
है आशा मुक्ति की

एक सौ चौवालीसवां गीत

ख्रीष्ट के प्यार से कोई नहीं जुदा कर सकता है ॥

१. ख्रीष्ट के प्यार से मुझे जुदा कोई नहीं कर सकता है
मेरा दिल तो होवे जुदा ख्रीष्ट नहीं छोड़ देता है ॥
२. पापी दिल को बाँधों प्रभु
क्रूश के साथ तुम्हारे
भटकूं नहीं मैं तुम्हसे कभू
पहूंचू पास तुम्हारे ॥
३. असर तुम्हारे प्यार का होवे
मेरे दिल पर सदा
उसी प्यार से मुक्ति होवे
देह से जब हो ंजुदा ॥

निण्याणवे गीत

१. प्रभु मैं हूं दीन हीन
अधम लाचार शक्ति हीन
दया करो प्रभु अब
दया बिना तरूँ कब ॥
२. हां मैं निपट अधम हूँ
सबमें प्रधान पापी हूँ
तुम्हीं हो करुणामय
लिया हूँ तुम्हारे आश्रय ॥

३. करो प्रभु मुझ पर दृष्ट
वनाव मुझे नवा सृष्ट
धोवो मेरे हृदय को
ख्रीष्ट के लहु से शुद्ध कर देव
४. आस है मुझे इसी से
जगदीश के मरण से
उसके गुण से तरूं मैं
उसके नाम से पार हूँ मैं ।।
५. करो प्रभु दया अब
मोचन करो पातक सब
मुझे प्रेम से निस्तारो
निश्चय मेरा तारक हो ।

सताणवे गीत

१. मैं पापी अधम हूँ
हे प्रभु करो पार
मैं आपकी मौत का आश्रित हूं
हे प्रभु मेरे तारनहार ।।
२. कोई आशा मुझे नहीं
मैं पाप से निरास हूँ
मैं कर्म की आशा रखूं नहीं
अकर्मी धर्म हीन हूँ ।
३. हे प्रभु दया दान
मुक्तदाता मेरे हो
आस मुक्त की मुझे करो दान
संपूर्ण मुक्ति देव ।।
मैं गावुंगा तेरे जश
आनंद से जीवते में
बाद मौत के गावुंगा वही जश
आनन्द से स्वर्ग ही में ।।

जान अधम के भजन

जय प्रभु यीशु जय प्रभु यीशु, जय प्रभु यीशु दानी ।
परमपदारथ के अधिकारी सद्गुण के तुम खानी ।।
दुखितन के दुःखहरता तुमहीं शील सरल सनमानी ।
जग में जेते जीव चराचर धारण कर निज प्राणी ।
नित दिन ताके पोषण करता, भक्षण आगे आनी ।।
जों कृतघ्न पापिन नरनारी, क्रूर कुटिल अज्ञानी ।
कर सुखदायक तबहु नमू नत पालत निज जन जानी ।।
दय चित तिहि गुन मिलजुल गाओ, चेतन जेते प्राणी ।
जान अधम नर शुभ इत लहिहें उन लहिहैं मति ज्ञाणी ।।

गीत २७

१. भोर भयो तू अब लों सोवत, उठ यीशु गुन गावो रे ।
प्रात समय नव गीतहि गायें, चरणन सीस नवावो रे ।
२. भोरहि भैरो राग अलापो, प्रेम सुतान मिलावो रे ।।
बीन मजीरा मोरे पखावज, ऊँचहि नाद सुनावो रे ।।
३. हिरदै जंत्र सुतन्त्रहि साधो सत्कृत ताल लगावो रे ।
तानपुरा सुरनाई नादो, भक्ति सुधारस पावो रे ।।
४. गावन को गुण जोई सिखावत देत मधुर सुर भावो रे ।
जान अधम तुम सद्गुण ताके अतहि गाव रिझावो रे ।।

३१. प्रभु हे प्रातहि तव गुन गावों ।
१. दुह्व कर जोरे हिय मुख खोटे, मन अनुराग सुनावों ।।
२. दो नैनन पट तुमहीं खोल्यो देखि प्रभा सुख पावों ।
३. असन बसन बिनु कारण दायक किन यह हाथ उठावों ।
४. खग धरणी के तुमही धारी चरणन सीस नवाधों ।
५. और न दाता तुम सम दूजा जिनके दास कहावों ।।
६. पुत्र दयो मन तारण कारण यीशु प्रेम सुभावों ।।
७. जान अधम तब गुण नित गैहें, जिन तिहिं दूर दुरावों ।।

१३. हिंदी कन्वेन्शन गीतावली से
कौन करे मोहि पार तुम बिन ।
१. दीनदयाल दयामय स्वामी दुख सुख पालन हार ।।

२. नर अपराधी कैसे तरहिं, दारुन भव नद धार ॥
३. माया जलनिधि केवट दामा । इच्छा घरे मतिमार ॥
४. तृष्णा तरंग पवन उठावत । कपट पाल अहंकार ॥
५. मोह जलधर गरजन लागे । छदम लियो करुआर ॥
६. कामिन दामिनि ऐसी चमकत, झहरत नैन निहार ॥
७. आसा लंगर तोहि पर बांधो । तुमही मन कड़िहार ।
८. जान अधम भव अरनव बूड़त कोई न आवत कार ।

मसीही भजन

गीत नम्बर १९

राम-रसिया के तौर पर

कोरस—गुनहगारों के बचाने को आया मसीहा ।

१. इस संसार में पाप बहुत हैं ।
कर कर पाप हुये दुखिया ।
२. यीशु अवतार में सिफत बहुत है
सदहा मरीज किये सुखिया ।
३. अभही छोड़ो बुत पूजा को ।
लाओ विश्वास रहो सुखिया ।
४. आसी की बिनती सुनो प्यारे लोगो ।
जीवन जल मुक्ति लेओ दुखिया ।

गीत नम्बर २२

कोरस—लाओ रे तुम यीशु पर ईमान ।

१. पापों से मुआफ़ी मिल जाये रे ।
और मिले मुक्त का ज्ञान
२. मुक्ति का रास्ता मिल जावे रे ।
और बच जाये तेरा प्रान ॥
३. सब जाते पास बुलावे रे ।
तुम क्यों होते नादान ॥
४. वह दिल साफ करे सो रे ।
सब मुशकल करे आसान ॥
५. आसी की बिन्ती सुन लो रे ।
वह दिई सलीब पर जान ॥

भजन नम्बर २७

कोरस—अपना ज़रा दिखा दीदार जग के गुनाह मिटाने वाले ।

१. तू है राजों का महाराज,
आया छोड़ स्वर्ग का राज,
लेकर आदम का औतार
सबकी मुक्ति कराने वाले ।

२. तूने रोक दिया तूफान,
जब तू आया बीच जहान,
तेरे चेले ये हैं ॥

३. लअजर पड़ा रहा लाचार,
मुर्दः कबर में वह दिन चार,
कौन जिन्दः होके पुकार,
मुर्दः फिर से जिलाने वाले ।

४. सुनले जिसके होवे कान,
इसको सच करके तू मान ।
दे दे सलीब के ऊपर जान,
वाह रे प्रीत निभाने वाले ।

५. आसी कहता सच्ची बात,
जिससे लगे मुक्त की घात
उसको मुफ्त मिले न जात
दिल ईसा से लगाने वाले ।

१० वाँ संस्करण—दि नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रस्ट ऐंड बुक सोसाइटी, इलाहाबाद ।

(हिंदी कन्वेन्शन गीतावली) से

४०. प्रभु यीशु मसीह बिन कौन हमारो ।
हम तो हैं प्रभु दास तिहारो ॥

१. पाप की अग्नि अति दुःखदाई, इस अग्नि को निबारो ॥
२. मेरो मन प्रभु मानत नाहीं, अपनी दया तें सुधारो ॥
३. दीन हीन हम हैं बिचारे, कृपा दृष्टि निहारो ।
४. मैं अति पापी कर्म को नाहीं, आप निबाहन हारो ।
५. यीशु है दुःख बूझनहारो तुम बिन कौन हमारो ।

६. पापिन कारण प्राण दियो है, पाप का भार उतारो ॥
७. आसी तुम्हारी शरण गहत है, मेरो पाप बिसारो ॥

२३५. यीशु मसीह मेरो प्राण बचैया ।

१. जो पापी यीशु कने आवे ।
यीशु है वाकी मुक्ति करैया ।
२. यीशु मसीह की मैं बलिबलि जैहूं ।
यीशु है मेरो त्राण करैया ।
३. गहरी वह नदिया नाव पुरानी
यीशु है मेरो पार करैया ॥
४. दीनानाथ अनाथ के बंधू ।
तुम ही हो प्रभु पाप हरैया ।
५. आसी को अपनी शरण में रखियो ।
अन्त समय मेरी लीजे खबरिया ।

———

परिशिष्ट १ (क)

सहायक और संबंधित ग्रंथ (अंग्रेजी)

1. FERGUSSON—Dictionary of Hindustani Language, 1773.
2. KIRKPATRIC, W.—A vocubulary, Persian, Arabic and English, 1785.
3. SHAKESPEARE—1. Grammar of the Hindustani Language to which is added A Short Grammar of the Dakhini.
   2. An Introduction to the Hindustani. Designed especially for the use of those who have not an Instructor.
   3. Muntakhabat—Hindi or Selections in Hindustani.
4. NATRAJAN—A History of the Press in India.
5. ADAM— Hindi Kosha, a Dictionary of the Hindi Language, Cal:, 1829.
   Dictionary, English and Hindi Cal, 1838.
6. FOSTER—Early European Travellers.
7. FALLON & KAMARUDDIN—A Classical History of Urdu Literature.
8. STANFORD ARNOT—The Native Press of India, 1829.
9. STENBERG, S. H. —Five hundred years Printing.
10. GREAVES—Notes on the Grammar of Tulsidas, Ramayan, 1875.
11. ROBERT N. CUST—A Sketch of the Modern Languages of the East India.
12. JACOLLIAT LOUIS—The Bible in India.
13. HOOPER—The Bible in India.

14. THOMAS PAUL—Christians in India.
15. SANDY—Christian Missions.
16. ALBANGH—Between Two Centuries.
17. B. K. BOMAN—Educational Controversies.
18. JAMES FORBES—Oriental Memoirs.
19. W. TENANT—Thoughts on the effects of the British Government in the State of India.
20. MAJOR STEEMAN—Journey through the Kingdom of Oudh.
21. C. W. JHONSON—The Stranger in India.
22. I. N. CARPENTER—The Theology of Tulsidas—The Christian Literary Society, Madras, 1918.
23. BEAMS JOHN—Memoirs of a Bengal Civilian.
24. SAHA—A Grammar of the pure and mixed East Indian Dialects.
25. MAYHEW—Christianity and the Govt. of India.
26. F. S. GROWSE—Ramayan of Tulsidas—(translation), 1877-80.
27. VOGEL J. PH.—The contribution of the University of Leyden to Oriental Regions.
28. MONIER WILLIAM--Ed. Original Papers, illustrating the History of the Application of the Roman Alphabet to the Languages of India, 1859, London.
29. GILCHRIST, J.B.—The Hindi-Roman Orthoepigraphical or a systematic Discriminative view of oriental and occidental visible sounds on fixed and practical principles for speedily acquiring the most accurate pronunciation of many oriental languages exemplified in on hundred popular anecdotes, tales, jests, maxims and proverbs of the Hindoostanee Story Talk, 1820.
30. CROOK, WILLIAM—A Rural and Agricultural Glossary for the North Western Provinces and Oudh.
31. J. R. REID—Azamgarh Glossary.
32. REV. NEWTON—Ludhiana Punjabi Dictionary.

33. MARSHMAN—The Story of Carey.
34. MATHEW—The Church takes root in India.
35. SIR ANIL CHATTERJI AND SIR RICHARD BUN—British Contribution to Indian Studies.
36. V. RAGHAVAN—Sanskrit and Allied Indological Studies in Europe.
37. H. R. JAMES—Education and States—Manship in India.
38. DANDEKAR—Progress in Indology since 1948.
39. K. K. DUTTA—Dawn of Rena Scent India.
40. BEAMES JOHN—Outlines of Indian Philology.
41. BLOACH. M. JULES—La Langua Braj.
42. FALLON, S. W.—Dictionary of Hindustani Proevrbs.
43. PHILLO, D. C.—Hindustani Stumbling Blocks.
44. PINCOT—Hindi Mannual.
45. LEITNER (Dr.)—Linguistic Fragments, 1882.
46. JOHN GUMREZ & WALTER LEH—Hindi Exercises & Readings.
47. HARRIS – Dictionary, English and Hindustani printed at Madras, 1790.
48. WILLIAM HUNTER (Dr.)—Dictionary Hindustani and English Cal., 1808.
49. DOUGHLAS P. HILL (W.)—Holy lake of the Acts of Rama Baptist Mission Press, 1952.
50. BAILY.T.GRAHAM—Studies in North Indian Languages.
51. FELIOT, H. M.—A Glossary of Indian Terms, Agra, 1845.
52. WILSON,H.H.—A Glossary of gudicial & Revenue Terms.
53. KEAY, F. E.—A History of Hindi Literature, 1920.
54. ANDERSON, J. D.—Collection of Kachari folktales and rhymes intended as a supplement to Rev. S. Endles, Kachari Grammar, 1895.
55. TASSY M. De.—History of Hindi Literature, Benares.
56. DAVIDSON, C. I. C.—Diary of Travels and Adventures in Upper India.
57. William Hores—Travels in India, 1780-83.

58. MIRZAKHAN—A Grammar of the Braj Bhakha.
Ed. by M. Ziauddin, Vishwa Bharti Workshop.
59. B. D. BASU—History of Education in India under East India Company.
60. K.K. DUTT—Studies in the History of the Bengal Subah, 1740-70.
61. HARD. I. R —Early English Administration of Bihar, 1781-85.
62. H SHARP,—Edited by, Selections from Educational records 1781-1839. Indian National Archives.
63. THOMAS ROCBUC— The Annuls of the College of Fort William.
64. NURULLAH AND NAYAK—History of Education.
65. REGIONAL HATER—Narrative of a Journey through the Upper Provinces of India.
66. MAJOR SREEMAN—Rambles and Reflections.
67. FORBES-Duncan HindustaniManual—W.H. Allen & Co.
68. GARLAND CAMENT—Oriental Jones—Asiatic Publishing House, Calcutta.
69. GILCHRIST, J. B & MIR ABDULLAH MISKIN— The Hindi Manual or Casket of India—Calcutta—1802.
70. STEWART—The History of Bengal.
71. SCOTT—A Short Review of Transaction in Bengal.
72. BHATNAGAR—Rise and Growth of Hindi Journalism, Allahabad.
73. LANG. J.—Eastern Proverbs and Emblems, London 1881.
74. CHRISTIAN, JOHN—Behar Proverbs-Kegan Paul, London, 1891.
75. A. G. SHERRIF—Hindi Folk Songs.
76. ALFRED LYALL—Warren Hastings.
77. GEORGE CLIFFORD WHITWORK—Anglo-Indian Dictionary.
78. MADAN GOPAL—The Hindi and Devanagri.

79. A. F. RUDOLF HOERNLE—Comparative Dictionary of Bihari Language, Bengal Secretariat Press, Calcutta,1885.

80. JOHN PARSON & JOHN CHRISTIAN— A Collection of Hymn of Daily Worship, Baptist Mission Press, 4th Ed. 1879.

81. Report of the General Missionary Conference, Allahabad, 1869-73.

82. Memoirs of the Missionaries of Serampore.

83. Vocabulary, Khureebolee and English of the Principal words occurring in the Premsagar, Hindustani Press, Cal., 1825.

84. Original Papers mentioning the History of the Application of the Roman Alphabet to the Languages of India, Ed. by Monier William, 1859, London.

85. JOHN BORTHWICK—The Hindi-Roman Orthoepigraphical Ultimatum.

86. Gilchrist, LL. D. Second Ed.—1820.

87. Court Character and Primary Education in N. W. P.

88. Official correspondence Regarding Court Language. A defence of Urdu Language and Character (Reply to Court Character and Primary Education).

89. Vernacular Controversy.

90. Nagri Memorial.

91. National Script for India.

92. Influence of Portuguese. Vocable in Asiatic Languages. Oriental Institute, Baroda.

93. Education Commission evidence of B. Harish Chandra.

94. The Hindi and Devanagri.

———

परिशिष्ट १ (ख)

राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ते में उपलब्ध हिंदी और हिंदुस्तानी-विषयक यूरोपियनों के ग्रंथों की सूची, जिससे पुस्तक-लेखन में अत्र-तत्र सहायता ली गई।

HINDI LANGUAGE AND LITERATURE :

1. BRETON (P.)—A Vocabulary of the names of the various parts of the Human Body and of Medical and Technical Terms in English, Arabic, Persian, Hindee and Sanskrit, etc. Calcutta, 1825. 4.
2. GARCIN DE TASSY (J.H.)--Histoire de la litterature Hindoui et Hindoustani, 2 tom. Paris, 1839, 47. 8.
3. O'BRIEN (J.)—A Glossary of Revenue Technicalities, in the vernacular language, with copious English Significations. To which are added forms of Revenue Accounts, & C. Agra, 1840. 4.
4. GARCIN DE TASSY (J. H.)—Cours d'Hindoustani-Urdu et Hindi-Discours d'ouverture, 2 pts. Paris, 1865, 68. 8.
5. ETHERINGTON (Rev. W.)—The Student's Grammar of the Hindi Language, Benares, 1870. 8.
6. BATE (Rev. J.D.)—A Dictionary of the Hindee Language, Benares, 1875. 8.
7. KELLOGG (Rev. S.H.)—A Grammar of the Hindi Language: in which are treated the standard Hindi, Braj and the eastern Hindi of the Ramayan of Tulsi Das, also the coloquial dialects of Marwar, Kumaon, Avadh, Baghelkhand, Bhojpur, etc. Allahabad, 1876. 8.

8. HOERNLE (A. F. R.)—A Grammar of the Eastern Hindi compared with the other Gaudian Languages, London, 1880. 8.

9. PLATES (J.T.)—A Dictionary of Urdu, classical Hindi and English, London, 1884. 8. 6.G.

10. GREAVES (E.)—A Grammar of Modern Hindi, Banares, 1896.

HINDUSTANI LANGUAGE :

11. SCHULZ (B.) Viri plur. Reverendi B. Schulzii—Gramma tica Hindostani..Edidit et de suscipienda barbararum linguarum cultura praefactus est D.J.H. Callenberg, Haloe, 1745. 4.

12. ALPHABETUM—Brammanicum seu indosianum universitatis Kasi, Romoe, 1771. 8.

13. HADLEY (G.)-Grammatical Remarks on the practical and vulgar dialect of the Indostan language, commonly called Moors..The whole calculated for common practice in Bengal. London, 1774. 8.

14. GRAMATICA INDOSTANA a mais vulgar que se practica no Imperio do gram Mogol, Roma, 1778. 8.

15. GILCHRIST (J. B.)—A Grammar of the Hindoostanee Language, or part third of volume first, of a system of Hindoostanee Philogogy. Calcutta, 1796. 4.

16. THE ORIENTAL LINGUIST-an easy and familiar introduction to the popular language of Hindoostan. [By J. Gilchrist], Calcutta, 1798. 4.

17. A SERIES of questions on the Grammatical Principles of the Arabic, Persian and Hindoostanee languages. For the use of the College of Fort William, Calcutta, 1808. 8.

18. THE STRANGERS'—East Indian Guide to the Hindoostanee, or grand popular language of India, (By J. Gilchrist). Calcutta, 1808. 8.

19. TAYLOR (Capt. J.)—A Dictionary—Hindoostanee and English, 2 Vols. Calcutta, 1808. 4.
20. HINDEE and Hindoostanee Selections : to which are prefixed the rudiments of Hindoostanee and Braj B'hak'ha Grammar. Compiled for the use of the interpreters to the Native Corps of the Bengal Army. Vol. 1. Calcutta, 1827. 4.
21. YATES (Rev. W.)—Introduction to the Hindustani Language, Calcutta, 1843. 8.
22. EASTWICK (Lieut. E. B.)—A Concise Grammar of the Hindustani Language, London, 1847. 12.
23. FORBES (D.)—A Grammar of the Hindustani Language, in the Oriental and Roman Character, London, 1855. 8.
24. GARCIN DE TASSY (J.H.)—Les Auteurs Hindoustanis et leurs ouvrages D'apres les biographies originales, Paris, 1868. 8.
25. GRANT (F.N.)—The Pocket Hindoostanee Vocabulary, 2 pts. Calcutta, 1869. Obl. 8.
26. DAWSON (J.)—A Grammar of the Urdu or Hindustani Language. London, 1872. 8.
27. DIAS (D. F. X.) A Vocabulary in five languages, English, Portuguese, Goa, Murathi and Hindustani, Printed in the Roman character, etc. [Compiled by D. F. X. Dias) Satara, 1878. 8.
28. VAZ (A.—The Marine Officer's Hindustani Interpreter, Bombay, 1879. 8.
29 LYALL (C. J.)—A Sketch of the Hindustani Language. Edinburgh, 1880. 8.
30. PALMER (E. H.) Simplified Grammar of Hindustani, Persian and Arabic, London, 1882. 8.
31. KEMPSON (M.)—The Syntax and Idioms of Hindustani, London, 1890. 8.
32. PHILLIPS (Col. A.N.)-Hindustani Idioms, London, 1892. 8.
33. GREEN (Lieut. Col. A. O.) A Practical Hindustani Grammar. 2 Pts. Oxford, 1895. 8.

34. RANKING (Surg. Lieut. Col.G.S.A.)--A Guide to Hindustani specially designed for the use of officers and men serving in India. Calcutta, 1895. 8.

35. TEZA (E.)—Dei Primi studi sulle lingue indostaniche. Alle note di G. A. Grierson nota del socio E. Teza, Roma, 1895. 8.

36. VINSON (J.)—Manuel de la langue Hindostani-Urdu et Hindi, etc. Paris, 1899. 8.

37. MORRIS (J.)-English Proverbs, with Hindustani parallels, Lahore. (1900) 16.

38. POLLOCK (W.) and MUHAMMAD HUSSAIN—Pollock's Pocket Hindustani, Calcutta, 1900. 16.

39. TWEEDIE (J.)—Hindustani as it ought to be spoken, Calcutta, 1990. 8.

40. WEITBRECHT (H. U.)—The Urdu New Testament. A History of its language and its versions. London, 1900. 8. Pam. 13.

41. THIMM (C. A.)—Hindustani Self-taught, London, 1902. 8.

BIBLIOGRAPHY :

42. BLUMHARDT (J. F.) Catalogue of Hindustani printed books in the Library of the British Museum, London, 1889. 4.

43. BODLEIAN LIBRARY-Catalogue of the Persian, Turkish, Hindustani and Pushtu Manuscripts in the Bodleian Library, Oxford, 1889, etc. 4.

DICTIONARIES :

44. GILCHRIST (J.B.) [Appendix to the English and Hindustani Dictionary], [Calcutta, 1800]. 4.

45. A DICTIONARY of the Principal Languages spoken in the Bengal Presidency, viz. English, Bengali and Hindustani. In the Roman Character. P. S. D'Rozario, Calcutta, 1837. 8.

46. THOMPSON (Rev. J. T.)—A Dictionary in Oordoo and English, etc. Serampore, 1838. 8

47. CROW (M.)—Suggestions for the preparation of a Glossary of Indian Technical Terms as proposed by the Hon'ble Court of Directors, etc. Calcutta, 1845. 8.
48. YATES (Rev. W.)-A Dictionary, Hindustani and English : Cal., 1847. 8.
49. FORBES (D.)—A Dictionary, Hindustani and English : to which is added a reversed part, English and Hindustani 2 prt. London, 1848. 8.
50. THE ANGLO-HINDOOSTANEE HAND-BOOK : or stranger's self-interpreter and guide to colloquial and general intercourse with the natives of India, etc. Calculta, 1850. 8.
51. RAVERTY (Maj. H. G.) Thesaurus or English and Hindustani technical terms used in building and other useful arts, etc. Hertford, 1859. 8.
52. MATHER (C.)—Glossary, Hindustani & English, to the New Testament and Psalms, London, 1861. 16. 177. B. 53.
53. HAZELGROVE (G. P.)—A Vocabulary, English and Hindoostanee, Bombay, 1865. 8.
54. FORBES (D.)—A Dictionary, Hindustani and English : to which is added a reversed part English and Hindustani. 2 Pts. London, 1866. 8.
55. ROMANIZED—School Dictionary, English and Urdu. Calcutta, 1857. 8.
56. GRANT (F. N.)—The Pocket Hindoostanee Vocabulary, 2 pts. Calcutta, 1869. obl. 8
57. FURRELL (J. W.)—Hindustani Synonyms—a collection of proximately synonymous words in daily use in the Hindustani language, etc. Calcutta, 1873. 16. 177. B. 59.
58. HOMEM (P. M.) Novo Vocabulario em Portuguez, Concanim, Ingleze Hindustani. . Tomo 1. Bomba [1874] 16.
59. A ROMANIZED Dictionary in English and Hindustani. . Enlarged, Lucknow, 1875, 4.

60. GARNEGY (P.) Kachhahri Technicalities or a glossary of terms, rural, offical, and general, in daily use in the Courts of Law and in illustration of the tenures, customs, arts and manufactures of Industan, Allahabad, 1877. 8

61. FALLON (S. W.)—A New Hindustani-English Dictionary. Banaras, 1879. 8.

62. BRICE (N.) A Romanized Hindustani and English Dictionary. Banaras, 1880. 8.

63. CRAVEN (Rev. T.) The Gem Dictionary in English and Hindustani, Lucknow, 1881. 16.

64. ROEBUCK (Capt. T.)—A Laskari Dictionary : or, Anglo-Indian Vocabulary of nautical terms and phrases in English and Hindustani, chiefly in the corrupt jargon in use among Laskars or Indian sailors. London, 1886. 8.

65. MEDLEY (Maj. Cen. J. G.) A Vocabulary of Common and Technical Words, In English and Urdu. Roorkee, 1888. 8.

66. CRAVEN (Rev.T.)—The Popular Dictionary. English and Hindustani and Hindustani and English..Enlarged edition, Lucknow, 1889. 8.

67. WHYTE (R. R.)—The New Century English-Urdu Dictionary, pronouncing and literary, etc..Madras, 1905. 8.

GRAMMAR :

68. BALLANTYNE (J. R.)—A Grammar of the Hindustani Language with brief notices of the Braj and Dakhani dialects, London, 1842. 8.

परिशिष्ट—१ (ग)

सहायक और संबंधित ग्रंथ (हिंदी)

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल
२. उन्नीसवीं शताब्दी—डा० लक्ष्मीशंकर वार्ष्णेय
३. आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका—,,
४. भारतीय-आर्य भाषा—अनु० ,, मूल लेखक—ब्लाख
५. इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐन्दूई ए० हिंदुस्तानी—गार्सा द तासी
६. उपदेश कथा—१८२५ ई० (ईसाई साहित्य)
७. भारत का भाषा-सर्वेक्षण—ग्रियर्सन—अनु० उदयनारायण तिवारी प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग—उ० प्र०।
८. जगत का उजियाला—(ईसाई साहित्य)।
९. पुरानी हिंदी—चंद्रधर शर्मा गुलेरी—१९४८ ई०।
१०. दक्खिनी का पद्य और गद्य—श्री श्रीराम शर्मा—हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद।
११. खत्री—अभिनंदन ग्रंथ—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
१२. पंजाबी और हिंदी का भाषा विज्ञान—दुनीचंद, पंजाब यूनिवर्सिटी।
१३. भाषा-भास्कर—एथरिंगटन।
१४. मुक्ति मुक्तावली—अधमजात, मिशन प्रेस, १८७२ ई०।
१५. लालचंद्रिका—लल्लूलाल—संपादक—जी० ए० ग्रियसर्न, नागरी प्रचारिणी सभा।
१६. पादरी डफ साहिब का वृत्तान्त—पादरी जे० सी० आयूंइग
१७. प्रभु यीशु की कथा—पादरी ग्रीक, नार्थइंडियन क्रिश्चियन सोसाइटी, इलाहाबाद, १९२० ई०।
१८. हिंदी और उर्दू की लड़ाई—सोहन प्रसाद मुदर्रिस, १८८४ ई०।
१९. दाऊद माला—१८८४ ई०।

२०. मानस की रूसी भूमिका—ए० पी० बरन्निकोव। अनुवादक—डा० केसरी नारायण शुक्ल। विद्यामंदिर रानीकटरा, लखनऊ, १९५५ ई०।
२१. पुरानी राजस्थानी—टेसीटोरी, अनु०—नामवर सिंह।
२२. बिहार का साहित्य—बिहार प्रा० हिं० सा० सम्मेलन।
२३. अंग्रेज लेखकों की दृष्टि में हिंदी—कृष्णाचार्य।
२४. फोर्ट विलियम कालेज—डा० वार्ष्णेय।
२५. प्रभु यीशु मसीह का जीवन-चरित्र—विलियम केरी।
२६. नील पंछी—अनु०—कामिल बुल्के।
२७. रामकथा का विकास— ,,
२८. हिंदी के स्वीकृत शोध प्रबंध—उदय भानु सिंह।
२९. हिंदी के स्वीकृत प्रबंध—कृष्णाचार्य।
३०. हिंदी कोविद रत्नमाला—दूसरा भाग, श्यामसुन्दर दास।
३१. द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ—ना० प्र० सभा।
३२. दाऊद के गीत—जे० टी० तामसेन—तामसेन—दि सांग्स आफ डेविड, श्रीरामपुर के मिशनरियों द्वारा प्रकाशित, बापटिस्ट मिशन प्रेस।
३३. फूलों का हार—१८५० ई०, छठा भाग।
३४. पाल का चरित्र—१८५२ ई० कलकत्ता।
३५. वेदांत मत विचार—१८५३ ई० मिर्जापुर।
३६. मुमुक्षु वृत्तान्त या एक हिंदू यात्री का वृत्तांत—(१८५४ ई०) मिसेज एम० एम०
३७. शेरवुड के इंडियन पिलग्रिम का अनुवाद।
३८. गीतसंग्रह—जान पारसंस द्वारा संकलित, बैपटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, १८४५ ई०।
३९. उत्पत्ति की पुस्तक—१८५१ ई०।
४० गीत और भजन—नार्थ इंडिया ट्रैक्ट सोसाइटी फार सण्डे स्कूल्स, इलाहाबाद मिशन प्रेस, १८७५ ई०।
४१. सत्य शतक—जानक्रिश्चियन—बैपटिस्ट मिशन प्रेस, १८६०।
४२. ज्ञान शतक—आर्फन प्रेस, मिर्जापुर।
४३. भजन संग्रह— ,, ,,
४४. मसीही भजन ,, ,,

४५. पवित्र आत्मा—रेव—एम० ई० की डी० लिट् ।
४६. हिंदी कंवेंशन गीतावली ।
४७. भक्ति बोधक—जान पारसन, १८६४ई० संस्करण।
४८. ज्योतिकिरण भाग १, २—सेरा जोसफ—१८८७ ई० ।
४९. ज्योतिरुदय—लेसली साहिबा—१८७५ ई०।
५०. ख्रीष्टीय मंडली का वृत्तांत—सी० स० बार्थ ।
५१. मूर्ति मुद्गर—टी० एवेन्स ।
५२. संसार का प्राचीन संक्षेप इतिहास—ब० फ० जानसन
५३. उत्पत्ति की पुस्तक का अभिप्राय—जे० जे० लूकस ।
५४. ख्रीष्टानुकरण—जान ह्यूलेट—आर्फन प्रेस, मिर्जापुर, १८७८ ई० ।
५५. हिंदूमत और मसीही धर्म—ग्रीफ्स
५६. ईश्वर का अवतार लेना— ,,
५७. यीशु के कई दृष्टांत इग्रीकस साहब, १८८० ई०
५८. पादरी डफ साहब का वृत्तांत—पादरी जे० सी० चूइंग—१८८९ ई० ।
५९. मालवीय शती विशेषांक—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
६०. खड़ी बोली नाम का इतिहास—निबन्ध, माताबदल जायसवाल, हिंदी अनुशीलन, २०११ वि०

उर्दू

१. गिलक्रिस्ट और उसका अहद—आतिक सिद्दीकी ।

———

पारिशिष्ठ-२ (क)

इंडिया आफिस लाइब्रेरी की ग्रंथसूची से संकलित सूचना (खंड २, भाग ३, १९०२ ई० में प्रकाशित, लंदन) के अनुसार यूरोपियनों के लिखित ग्रंथ।

1. Bohu, F. Rev. Sakshivani, 1870.
   Hymns for use in Nagpur Missions, pp. 247.

2. Brodhead. A. Rev. Git aur Bhajan
   Hindi Hymn Book, 1875.

3. Broughton, Thomas Duer.
   Selection from Popular Poetry.

4. Budden J. H. Rev.
   Hindi Bhasha Ka Vyakaran, Agra, 185.
   Mumukshu Vrittanta—Mrs. Sherwood's' Indian Pilgrim Fully translated by J. H. Budden 2nd Edition pp. 4, 245. London 1861.

5. Cesary, C. Rev.
   Isvari Maton Ki Vidya—Discourses on the teachings of the Roman Catholic religion. pp. 14, 431. cal. 1878.

6. Soldier's Manual for the use of Infantry in the Nagri and English character, Pt. I, pp. 6, I01, Calcutta, 1824. Pt. II, By John Staples Hariob, Serampur, 1828.

7. Jhonson, W. F. Rev.
   धर्मवार्ता Discussion on Christianity by the Rev. W. F. Jhonson. PP. 44. Allahabad 1871.
   गुरुपरीक्षा PP. 48. Ludhiana, 1870.
   किसान का वृत्तांत PP. 44. Allahabad, 1872.
   शिव-परीक्षा PP. 26. Calcutta, 1876.

8. Joseph Sarah Miss.
छोटे हेनरी का इतिहास—'Henry and his Bearer'. Translated from the English by Sarah Joseph.

9. Mac Mohan, J. J.
हिंदी की दूसरी पुस्तक—Hindi Second Book for use in Mission Schools, Lucknow, 1877.

10. Mc Master W. Rev.
गंगा का वृत्तांत—A tract on the folly of believing in the sanctity of the Ganges, PP. 26.
रीतिदर्पण—A tract against customs.

11. Newton J. Rev.
धर्मसार—Bible Teaching in Verse by the Rev. J. Newton, 2pts I2 mo, Ludhiana.
जमींदार का वृतांत—PP. 42.
मुक्ति अर्थीकी प्रार्थना—PP. 4.
प्रथम पाप का बर्णन—PP. 32.
राम परीक्षा—PP. 28.
रेल का टिकट—A tract in Verse, PP. 9, Ludhiana, 1870.
स्वर्ण मूर्ति—The Golden Image of Nebuchaduezzar in verse, PP. 20, Ludhiana, 1870.

12. Neill S. W. Rev.
Catechism on Prayer and the Sacraments and Rites of the Church.

13. Pincott.
बालदीपक—A new Series of Hindi Readers for the use of Schools and Pathshalas By Fredrick Pincott, P.I. Kaithi Character PP. 68 Bankipur, 1888.

14. Robson John.
Selection of Khyals or Marwari Plays—With an introduction and glossory by John Robson, PP. 16, 80, 15 Beawar, 1866.

15. Roive, Mrs.
मूलसूत्र – A Hindi Spelling Book by Mrs. Roive Rudolph. of Digah.

एशियाटिक सोसाइटी जर्नल में प्रकाशित हार्नली के निबंध :

Essays in aid of a Comparative Grammar of the Gaudian languages—J.L. 1872, XLI (I), 120-174

„ 1873, XI, II, (I) 59-106

„ 1874, XLIII, 22-27

A Collection of Hindi roots with remarks on their Derivation and Classification.

J. L. 1880, XLIX (I) 33-8I

एशियाटिक सोसाइटी जर्नल में ग्राउज के निबंध :

Some Objections to the Modern Style of official Hindustani.

J. L. 1866, XXXV (I) 136-142

On the transliteration of Indian Alphabet in Roman characters.

J. L., 1867, XXXVI, 136-142

The poems of Chand Bardai

J. L. 1868, XXXVII, 119-134

For the notes on the Prithviraj Rayasa

J. L. 1869, XXXVIII, (I) 1-13

Translations from Chand.

J. L. 1869—XXXVIII (I) : 161

J. L. 1870—XXX 52-58

A Metrical Version of the opening stranger of the Prithiviraj Raso with a critical commentary.

J. L. 1873—XLII (I) 329-342

The Prologue to the Ramayan of Tulsidas—A Specimen of Translation.

J. L. 1876—XLV (I) : 1-29

P. – 1876 81 – 2

हिंदी-हिंदुस्तानी-विषयक अन्य निबंध :

Leech (Robr)—Notes on, and a short vocabulary of the Hinduvee dialect of Bundelkhand.

J. L. 1843, XII 1086-1103

Less—(W. Nassar) On the application of the character of the Roman alphabet to Oriental language.
J. L. 1854, XXIII : 345-3.59

Kirkpatric—(W) A Comparative vocabulary of the language of European Gypsis or Romanical and colloquial Hindustani.
J. L.—1913, N. S. IX 93-105

Jones (William)
A Dissertation on the Orthography of Asiatick words in Roman letters. A. R.—1788-1 1-56

Hall titz. Edward.
Letter on Hindi & Urdu Hindi Tazkiras.

Grignard (A)
Our Romanised Hindustani-English Dictionaries, their partial inefficiency and its remedies – J. L. 1924-N. S. XX : 85-98.

Gilchrist (John) Account of the Hindustanee Horometry.
AR. 1797—V : 81-89.

Spranger (Aloys) Early Hinustany Poetry.
J. L. 1853—XXII 442-44.

1. Hindustani publications in the College of Fort William. (1800-1820)—Priyaranjan Sen, Vol. IX-pp. 1329-40.
2. Hindustani poetry in India, beginning of H. C. Ray, Vol VIII-pp. 865-66.
3- A. Barankoo-Modern Literary Hindi—in Indian and Iranian studies, published, in the Bulletin of the School of Oriental Studies, Vol. VIII, 936.
4. Some Notes on the Grammar of old and Westen Hindustani I. A. 1915.
5. Earliest Jesuit Printing in India—K. A. S. J. of Bengal-1913, pages 149-168.
6. Inquiry on the existence of pure Passive voice in Hindustani Syntax, Morisy John., Vol. 1866 page 469.

परिशिष्ट २ (ख)

ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी की ग्रन्थसूची में हिंदी-हिंदुस्तानी विषयक महत्त्वपूर्ण के ग्रंथ।

१. पादरी आदमसाहिब रचित-हिंदी भाषा का व्याकरण Cal. 1827.

२. हिंदी कोष-संग्रह किया हुआ पादरी आदम साहिब का M. T. Ada.m

3. उपदेश कथा—Translated by W. T. Adam Stewart (Captain)—उपदेश कथा। आर इंगलैंड की उपास्थान का चुमुक

4. आल्हखण्ड–The ndian Antiquary Vol. XIV pp. 209-255 Short Translation by J. A. Grierson.

A translation by W. Waterfield of the first portion of a Kanauji version is published in the Calcutta Review-Vol. 61-63 Dr. Walker विद्यार्थी की प्रथम पुस्तक—1869.

5. Arnold (Sir Edwin)—Shakespeares' Marchant of Venice-translated into Hindi prose, 1888.

6. Ballantyne—James Robert–The Tark Sang rah with a Hindi paraphrase of Edited by I. R. B., 1851.

7. Batth (Christian Gottlob धर्म पुस्तक के इतिहास, A translation of Dr. Barth's Bible stories for the young, Ludhian 1867.

8. Beawer-(Johan)-Chund—1869

Jham Bir Rai—1875 (Journal of Asiatic Society Bengal, Vol. XLIV pp. 192.

पाठशाला के बैठावनेंकी रीति

9- Bill-(Andrew) धर्म की पोथी

10. W. Carry— Serampore mi sion
,, उत्पत्ति की पुस्तक
1860.

11. A. Lestid—The New Testament in the Hindi language 1848. मंत्री रचित मंगल A. Lestic & Parsons

12. Bowley (William)—The Holy Bible Translated.

13. मुमुक्ष वृतान्त-अर्थात् एक हिंदू यात्री का इतिहास
Mrs. Sherwood's Indian Pilgrim.
Freely translated by J. H. Bricldun.

14. Sherring—Mathew Atmore—मनोरंजक वृतान्त, 1860.

15. Christian (John) सत्यशतक, 1861.

16. Eastwick (Edward Backhouse) Baital Pachisi, translation by Barker.

17. Ethirington (William) भाषाभास्कर 1873.

18. Gilchrist—The Hindi Story text 1802.
The Oriental Fabulist 1803.

19. Grierson & Hoernle–A comparative Dictionary of the Bihari language 1889.
Some Behari Folk songs—
R. A. J. B. Vol. XVI, pp. 196-296-1884.
Twenty one—Vaishnava Hymn, Vol. LIII Pt. I

20. Grouse-The poems of Chand Barday-Vol. XXXVII, pp. 119-134.
XXXVIII, pp. 1-13.
Mathura Note XLVII-pp. 97-183.

21. Haemmerhem (Thomas) A Kupics
ख्रीस्तानुकरण लाटिन से अनुवादित
By John Hewett.

22. Hindi Selections—Originally compiled by W. Bruice & Tarinicharan Mitra, 1830.

23. Hooper (William) Rev. नये नियम के लिये यवन भाषा का कोष हिंदी में।

24. Hume-(Allan Octavian) Hindi version of the I. P. C. Translated by A. O. H. and Kour Lachman Singh, 1861, Etawa हिंदुस्थानका दण्डसंग्रह

25. Kempon (S. Mathew Edim) Being an English Version of Raja Shivaprasad's इतिहास तिमिरनाशक

26. Ramsay (Adrews Anbas) रोगांतक सार या मेटीरिया मेडिका Compiled by A. F. R, with the assistance of Capt John. Taylor

27. Scott. (Thomas Jefferson Taylor.) सत्यधर्म विचार १८८०

18. Tocker (Charlote) Miss अरुणोदय इंगलस्तान —में1870.

———

परिशिष्ट-३ (क)

सर जार्ज ग्रियर्सन की हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित प्रकाशित रचनाओं की श्री एडिथ एन० वाइट द्वारा संकलित कालक्रमानुसार सूची के आधार पर प्रस्तुत।

ABBREVIATIONS

BSOS. : Bulletin of the School of Oriental Studies.

IA. : Indian Antiquary.

JAOS. : Journal of the American Oriental Society.

JASB. : Journal of the Asiatic Society of Bengal.

JRAS. : Journal of Royal Asiatic Society.

Mem. ASB. : Memoirs of the Asiatic Society of Bengal.

Pr. ASB. : Proceedings of the Asiatic Society of Bengal.

ZDMG. : Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft.

PART I. BOOKS, ARTICLES, etc.

1881

A handbook to the Kayathi character, Calcutta, 1881.

An introduction to the Maithili language of North Bihar, containing a grammar, chrestomathy and vocabulary. (JASB., XLIX and LI, Pt. 1, Special numbers, 1881-2).

Maithili folk-lore Vararuchi as a guesser of acrostics., (IA., X, PP. 366-370).

Hindi and the Bihar dialects. (Calcutta Review, Vol. LXXIII, PP. 363-377).

1883

Seven Grammars of the dialects and subdialects of the Bihari language, 8 Parts, Calcutta, 1883-7.

Folklore from Eastern Gorakhpur (N. W. P.), By Hugh Fraser..Edited by G. A. Grierson. (Notes on dialectic peculiarities by G. A. Grierson.) (JASB., LII, Pt. 1, PP. 1-32).

Essays on Bihari declension and conjugation, (JASB., LII, Pt. 1, PP. 119-159).

1884

The song of Bijai Mal. Edited and translated. (JASB., LIII, Pt. 1, Special number, PP. 94-150).

Some Bihari folk,songs. (JRAS., 1884, PP. 196-246).

1885

A comparative dictionary of the Bihari language. Compiled by A. F. Rudolf Hoernle..and George A. Grierson. (Index to the Ramayan of Tulsi Das.) Part I, Calcutta, 1885.

Part II, Calcutta, 1889. No more published.

Selected specimens of the Bihari language. Edited and translated. (ZDMG., XXXIX, PP. 617-673, Part 1. The Maithili dialect, XLIII, PP. 468-524, Part II, the Bhojpuri dialect).

The battle of Kanarpi Ghat, edited and translated by Sri Narayan Singh and G. A. Grierson. (JASB., LIV, Pt. 1, PP. 16-35).

Two versions of the song of Gopi Chand. Edited and translated (JASB., LIV, Pt. I, PP. 35-55).

Curiosities of Indian literature. (IA., XIV, PP. 124, 206, 236. 261, 292, 323, XV, 281-2, 318-19, 348. SVI, 46-8, 78 199-200, 226-7, 256, 284, 315. XVII, 60, 88).

A summary of the Alha Khand. (IA., XIV, PP. 255-260).

1886

Some Bhojpuri folk-songs. (JRAS., 1886, PP. 207, 267).

Progress of European scholarship. (IA., XV, PP. 342-5. XVI, 75-8, 110-12, 198-9, 28-4, 313-15. XVII, 24-9, 321-8. XVIII, 26-30, 88-90, 125-7, 246-8. XIX, 72-5. XX, 116-19, 293-7, 394-6. XXIII, 109-12).

1887

Hints to Oriental Students. No. 1. Some useful Hind books. (JRAS , 1887, PP. 138-144).

Language of Magahiya Doms. (IA., XVI, P. 284).

1888

The mediaeval vernacular literature of Hindustan with special reference to Tulsi Das (Verhandlungen des VII. Internationalen Orientalisten, Congresses, Arische Section, PP. 157-210). Wien, 1888.

1889

The modern vernacular literature of Hindustan. (JASB., LVII, Pt. 1, Special number).

1890

A Grammar of the dialect of Chhattisgarh in the Central Provinces. Written in Hindi by Mr. Hiralal Kavyopadhyaya.. translated and edited by George A. Grierson. (JASB., LIX, Pt. 1, PP. 1-49, 101, 153).

1993

On the early study of Indian vernaculars in Europe. (JASB., LXII, Pt. 1, PP. 41-52).

1893

A specimen of the Padmawati. Analysis of the Padumawati. (JASB., LXII, Pt. 1, pp. 127-210).

Obituary notice of the death of Mr. F. S. Growse. (Pr. ASB., 1893, pp. 119-120).

Notes on Tulsi Das. (IA., XXII, pp. 89-98, 122-9, 197-206, 225-236, 253-274).

1894

The Bhasha-bhushana of Jaswant Singh. Edited and translated by G. A. Grierson. (IA., XXIII, pp. 215-222, 225-238, 265-296, 305-333, 345-352).

1895

On the phonology of the modern Indo-Aryan vernaculars. (ZDMG., XLIX, pp. 393-421 and 1, pp. 1-42).

On the radical and participial tenses of the modern Indo-Aryan Languages. (JASB., LXIV, Pt. I, pp. 352-375).

On the stress-accent in the modern Indo-Aryan vernaculars. (JRAS., 1895, pp. 139-147).

The geographical distribution and mutual affinities of the Indo-Aryan vernaculars. (Calcutta Review, Vol. CI., pp. 258-274).

Curiosities of Indian Literature. Selected and translated by G. A. Grierson..edited..by..Ramadina Sinha (From IA., XIVXVII), Bankipore, 1895.

1896

The Padumawati of Malik Muhammad Jaisi. Edited, with a commentary translation, and critical notes by G. A. Grierson..and Mahamahopadhyaya Sudhakara Dvivedi. Vol. I, Text, commentary and critical notes. Cantos I-XXXV (Vv. 1-286). (Bibliotheca Indica.) Calcutta, 1896-1811. Only six fasciculi published. The Satsaiya of Bihari, with a comentary entitled the Lala Chandrika by Sri Lallu Lal Kavi...Edited with an introduction and notes by G. A. Grierson, Calcutta, 1896.

On irregular casual verbs in the Indo-Aryan Vernaculars (JASB , LXV, Pt, 1. pp. 1-5).

1898

Note on the date of the composition of the Kavitta Ramayana of Tulsi Das. (Pr. ASB., 1898, pp. 113-115).

A further note on Tulsi Das and the plague in Benares. (Pr. ASB., 1898, pp. 147-8).

1899

A handbook of the Kaithi character. Second, revised, edition. Calcutta, 1899.

On the genuineness of the grant of Civa-sinha to Vidyapati-Thakkura.(JASB., LXVIII, Pt. 1, pp. 96).

On the East-Central group of Indo-Aryan vernaculors. (IA., XXVIII, pp. 262-8).

1901

Note on the principal Rajasthani dialects. (JRAS., 1901, pp. 787-808).

1902

John Beames. (Obituary notice). (JRAS,, 1902, pp. 722-5).

1903

Linguistice Survey of India. 11 volumes Calcutta, 1903-1928.

1903

The languages of India, being a reprint of the Chapterof Languages contributed by George Abraham Griersan..to the Report on the Census of India, 1901, together with the Census statistics of language. Calcutta, 1003.

An instance of a prosthetic in an Indo-Aryan language, (Pr. ASB., 1903, pp. 125-6).

Languages in India. (JRAS, 1903, pp. 425-7).

Tulsi Das, poet and religious reformer. (JRAS., 1903, pp. 447-466).

A bibliography of Western Hindi, including Hindostani. (Based on the Linguistic Survey of India. (IA., XXXII, pp. 16-25, 59-76, 160-179, 262-5).

The early publications of the Serampore missionaries. (A contribution to Indian bibliography). (IA., XXXII, pp. 241-254).

On certain suffixes in the modern Indo-Aryan vernacu lars. (Zeitschrift fur vergleichende Sprachforschung, XXXVIII, pp. 473-491).

1904

On the modern Indo-Aryan alphabets of North-Western India. (JRAS., 1904, pp. 67-73).

The languages of India and the Census of 1901. (Asiatic Quarterly Review, XVII, pp. 267-286).

1905

Vidyapati Thakur. (JASB., New Series, I, pp. 228-9).

1906

Dallana and Bhoja. (JRAS., 1906, pp. 692-3).

The languages of India and the Linguistic Survey. (Papert and discussion). (Journal of the Society of Arts., LIV. pp. 581-600).

The Languages of India and the Linguistic Survey. (Repor of a lecture. (Indian Magazine and Review, 1906, pp. 100-2).

1907

The Imperial Gazetteer of India. The Indian Empire. New edition, Oxford, 1907-9. (Vol. I, chapter VII, Languages. Vol. II, chapter XI, Vernacular literature).

A verse from the Bhaktamala. (JRAS, 1907, pp. 679-681).

An orthographic convention in the Nagari character. (JRAS. 1907, pp. 1057-9).

1908

Encyclopaedia of Religion and Ethics. Edited by James Hastings. Edinburgh, New York, 1908-1926.

The following articles :—Alakhnamis, Alakhgirs, or Alaokhiyas : Atheism (Indian, modern) : Atits..: Baba Lalis : Bhaktmarga: Bhils (Language): Charan Dasis : Dards : Ganapatyas : Gaya : Gorakhnath : Harishchandis : Kanchuliyas : Karalingis : Kararis, Khakis : Khos : Literature (Indian vernacular): Madhvas, Madhvacharis : Maluk Dasis : Nagas : Pisachas : Prannathis : Prapattimarga : Radhavallabis : Rai Dasis : Ramanandis, Ramawats : Rukhars, Sukhars, Ukhars : Sadhs : Sadhan-panthis : Sadhu : Sakhibhavas : Satnamis : Saura-

patas, Sauras, or Sauryas, Senapanthis: Shins : Siva Narayanis : Tulasi-Dasa. Krisna Datta Misra, Kesava-dasa, and the Prabodha Chandrodaya. (JRAS., 1908, pp. 1136-8).

1909

Folk-etymology and its consequences. (JRAS., 1909 p. 164)

A folk-tale parallel. (JRAS, 1909, pp. 448-9)

Gleanings from the Bhkta-mala. (JARS., 1909, pp. 607-644). 1910. pp. 87-109, 269-306.

1910

The Encyclopaedia Britannica..Eleventh edition. Cambridge, 1910-1911.

An introduction to the Maithili dialect of the Bihari Language as spoken in North Bihar..Second edition. Part 1. Grammar. (JASB., New Series, V. Extra No. 2),

The Modern Indo-Aryan polite imperative. (JRAS., 1910, pp. 162-3).

A specimen of the Kumauni language. Extracts from the compositions of Krishna Pande. Translated by Ganga Datt Upreti. Communicated (with an intro ductory note) By G. A. Grierson. (IA., XXXIX, pp. 78-82).

1912

The ethnology, languages, literature and religions of India. Reprinted from the Third Edition of the Imperial Gazetteer of India. Oxford, 1912. (Chapter VII, Languages, and chapter XI, Vernacular literature).

1913

Is the Ramayana of Tulasi Das a trantslation ? (JRAS., 1913, pp. 133-141).

1914

The Pahari language. (Based on the Linguistic Survey of India). (IA. XLIII, pp. 142-151, 159-166).

1918

Indo-Aryan vernaculars. (SBOS., Vol. I, Part II (1918), pp. 47-81, and Part III (1920), pp. 51-85). Reprinted in IA., LX, Supplement, pp. 6-52.

The Siva Narayanis. (JRAS., 1918, pp. 114-17).

1919

The Linguistic Survey of India and the Census of 1911. Calcutta, 1919.

Augustus Frederic Rudolf Hoernle. (Obituary notice). (JRAS., 1919, pp. 114-124).

A new book in Maithili. (JRAS., 1919, pp. 235-6).

1920

The popular literature of Northern India. (BSOS., Vol. I, part III, pp. 87-122).

The home of Ramananda. (JRAS., 1920, pp. 591-6).

1921

A grammar of the Chattisgarhi dialect of Eastern Hindi. Originally written in Hindi by Hira Lal Kavyopadhyaya.. and translated by Sir George A. Grierson.. Revised and enlarged by Pandit Lochan Prasad Kavya-Vinod under the supervision of Rai Bahadur Hira Lal. Calcutta. (First published JASB., LIX, part 1, 1890).

Notes on Tulsi Das. (from IA., XX). Allahabad, 1921.

1923

The lay of Alha. A saga of Rajput chivalry as sung by minstrels of northern India. Partly translated in English ballad metre by.. William Waterfield..with an introduction and abstracts of the untranslated portions by Sir George Grierson. Oxford, 1923. The lay of Brahma's marriage : an episode of the Alh-khand. Translated by Sir George A. Grierson. (BSOS., II, (1921-3), pp. 573-608).

Sortes Tulasiane. (Beitrage zue literaturwissenschaft und Geistesgeschichte Indians. Festgabe Hermann Jacobi.... 1925, pp. 449-455). Bonn, 1926.

1929

The birth of Lorik (Magahi text). Edited by Sir George A. Grierson. (BSOI., V (1928-1930), pp. 591-9).

The birth of Lorik. (Translation) (Indian studies in honour of Charles Rockwell Lanman, pp. 243-245). Cambridge, Mass., 1929.

1931

On the modern Indo-Aryan vernaculars. (IA., LX-LXII, Supplement).

1933

Hindustan and Hindostan. (BSOS., VII (1933-5), pp. 257-260).

PART II REVIEWS

Bailey (T. Grahame). The languages of the northern Himalayas, being studies in the grammar of twenty-six Hima layan dialects. (Asiatic Society monographs, Vol. XII) London, 1908. (JRAS., 1909. pp. 184-9).

Banerji-Sastri (Anantaprasad). Evolution of Magadhi...– Introduction, Oxford, 1922. (BSOS., II, pp. 805-7).

Bhagawan Prasad (Sitarama-sarana). (The Bhakta mala.. with the Tika of Priya-dasa, and with a commentary entitled the Bhakti-sudha-svadu of Sri Sitarama-sarana Bhagawan Prasad (Rup-kala). Lucknow, 1926). (JRAS., 1928, p. 169).

Bhatta (Ramesvara). (The Vinaya-patrika of Tulasi dasa. With a commentary by..Ramesvara Bhatta. Allahabad, 1913). (BSOS., II, pp. 810-12).

Blumhardt (J. F.). A supplementary catalogue of Hindi books in the Library of the British Museum acquired..1893 1912. London, (1913). (JRAS., 1913. pp. 1084-7).

Dwivedi (Sudhakara). Ramakahani Balakanda in easy Hindi. (Benares), 1908, (JRAS, 1909, pp. 511-16).

Dwivedi (Sudhakara) and Misra (Suryaprasada). (Manasapatrika. Benares, 1904). (JRAS., 1905, pp. 369-370).

Phillott (D. C.) Hindustani Manual....Third edition. Calcutt, 1918. (JRAS., 1919, pp. 435 7).

Ratnakara (Jagannatha Dasa). (Bihari Ratnakara, arthat Bihari Satsai, par Ratnakari Tika. Lucknow, 1926). (JRAS. 1927, pp. 157 160).

Tessitori (L. P.). II "Ramacaritamanasa" "Ramayana". (In Giornale della Societa Asiatic Italiana, XXIV). (JRAS., 1912, pp. 794-8).

Westcott (G. H.). Kabir and the Kabir Panth. Cawnpore, 1907. (JRAS., 1908, pp. 245-8).

———

परिशिष्ट ३. (ख)

जान बीम्स की रचनाएँ

Bibliography of the writings of John Beams concerning Hindi Language and Literature.

BOOKS :

1. Comparative Grammar of the Modern Indian Languages of India. 3 Vol., London 1872—79.
2. Outlines of Indian Philology with a Map showing the Distribution of Indian Languages. Calcutta, 1867. 2nd Ed., 1868. Urdu translation (Hindustani Lisaniyat ka khakah) Lucknow, 1948.

BOOKS EDITED :

Eliot, Henry M. Memoires on the History folk-lore and Distribution of Races of the North Western Provinces of India. Being an Amplified Edition of the Original Supple mental Glossary of Indian Terms, edited and revised 2 Vol., 1869.

CONTRIBUTION TO THE JOURNAL OF THE ROYAL ASIATIC SOCIETY

1. Bhojpuri Dialect of Hindi 1868, p. 483.
2. The Nexus in Neo—Aryan Languages in India, 1871. 149.

Contribution to the Proceeding (P) and Journal of letters (JL) of the Asiatic Society of Bengal.

1. On the Proposed Edition of the Poems of Chand. p. 1868, 242.
2. The Nineteenth Book of the Gests of Prithviraj by Chand Bardai, entitled 'The Marriage with Padmavati', literally translated from the Old Hindi, p. 1869, 285.

3. Rhapsodics of Gambhir Rai, the Bard of Nurpur (A. D. 1650) p. 1872—156.
4. On the Edition of Chand. p, 1873—122.
5. On 'A Comparative Dictionary of the Bihari Language' p. 1885-95.
6. Outlines of a plea for the Arabic Element in Official Hindustani JL. 1866, 1.
7. On the Arabic Element in Official Hindustani, No. 2, JL, 1869, 145.
8. The Nineteenth Book of the Gests of Prithiraj by Chand Bardai, entitled the "The Marriage of Padmavati", literally translated from the Old Hindi, with Notes by Mr. Grouse, JL-1869, 145.
9. Translations of Selected Portions of Book I of Chand Bardai's Epic JL-1872, 42 and p-1871, 57.
10. Studies in the Grammar of Chand Bardai—JL-1873, 165.

CONTRIBUTIONS TO THE INDIAN ANTIQUARY

1. On the present Position of Old Hindi in Oriental Philology 1, 2.
2. Translation from the First Book of Prithviraj Rasou by Kavi Chand Bardai, I 269.
3. Dowson's Grammar of the Urdu of Hindustani language II, 56.
4. Chand's Mention of Sri Harsa, II, 240.
5. The Genitive Post-Positions-III, 31.
6. On the Age and country of Bidyapati, IV, 299.
7. Pincot's Sakuntala in Hindi, V, 327.
8. Grierson's Grammar of the Dialects and Sub-dialects of the Bihari Language, XIV, 206.

परिशिष्ट ३ (ग)

१८०० ई० के पूर्व प्रकाशित 'हिंदुस्तानी ग्रामरों' की कालक्रमानुसार सूची (डा० महादेव साहा द्वारा सम्पादित)

Ketellar, Joan Joshua,—Instructive oft onderwijsinge der Hindostanse en Persiaanse talen, nevens hare declinatic en conjugatic, alsmede vergeleijking, der hindoustanse med de hollandse maat en gewighten mits gaders beduydingh eeniger moorse namen etc. Door Joan Josua Ketellar, elbigensem. En gecopieert door vsaaq vander Hoeve, van Uytrecht. Tot Leckenauw, A. D. 1698.

[Introduction or Teaching of the Hindustani and Persian Languages, also their declension and conjugation, together with a comparison of the Hindustani measures and weights with the Dutch, moreover the meaning of some Moorish names etc. by John Joshua Ketellaar of Elbing. Copied by Issac Vander Helbe of Utrecht, at Lucknow, A. D. 1698.]

Millii, Davidis,—Theelogiae D. ejusdemque, nec non Antiquitatum sacraum, and Linguarum orientalium in Academia Trajectina, Professoris ordinarii, Dissertationes seleotae, varia S. Litterarum et Antiquitatis orientalis Capita exponentes et ileustrantes. Curis secundis. Novisque, Dissertationibus, Orationibus, et Miscellaneis Orientallibus auctae, Lugduni Batavorun, 1743.

Oraito dominica in diversas omnium fore Gentium Linguas versa et propros cujusque Linguae Characteribus express, una cum Dissertationibus nonnulis de Linguarum Origine,

variisque ipsarum Permutationibus, Editore Jon. Chamberlanio Anglo-Brittano, Regiae Societatis Londinensis Socio, Amstelodami, typis Guil et David, Goerel, 1715.

(Schultze) viri plur. Reverendi Benjamin Schultzii Missionarii Evangelici Grammatiea Hindostanica collectis in diuturna inter Hindostanos Commeratione, in justum Ordinem redactis ac larga Exemporum (sic) Luce perfusis Regulis constans et Missionariorum Usui consecrata. Edidit et de suscipienda barbararum Linguarum Cultura prefatus est D. Jo. Henr. Callenberg. Halae Saxonum, 1744 (some copies are dated 1745).

Anon—Grammatica Indostana. Lisbon, 1778. (In Portuguese) This is far in advance of Hadley.

Hadley, George—Grammatical Remarks on the Practical and vulgar Dialect of Indostan Language, commonly called Moors, with a vocabulary, English and Moors. The spelling according to the Persian Orthography, wherein are reference between words resembling each other in sound, and different in significations, with literal Translations and Explanation of the compounded words and circumlocutory Expressions, for the more easy attaining the Idiom of the Language. The whole calculated for the common practice in Bengal. London, 1772; 2nd Edition, London, 1774; 3rd Edition, corrected and enlarged with familiar Phrases and Dialogues, London, 1784; Fourth Edition, London, 1797; Fifth Edition, a Compendius Grammar of the current and correct corrupt Dialect of the Jargon of Hindostan (commonly called Moors), with a vocabulary, English and Moors, Moors and English, with references between words,.........with notes descriptive of various Customs and Manners of Bengal.......by G. H. corrected and much enlarged by Mirza Mohummud Fitrut, a native of Lucknow. (London, 1801. Another Edition, London, 1804. Seventh Edition improved and much enlarged, London, 1809.

Hadley George—A Short Grammar of the Moors Language London, 1779.

Fergusson, John—A dictionary of the Hindostan Language, I. English and Hindostan. II. Hindostan and English. To which is prefixed a Grammar of the Hindostan Language. London, 1773.

Anon—Grammatica Indostana a Mais vulgar que se practica no Imperio do gram Mogol offerecida aos muitos reverendos Padres Missionarios do ditto Imperio. Em Roma, 1778 Na Estamperia da Sagrada Congregaao de Propaganda Fide. Second Edition. Lisbon, 1805.

Gilchrist, John Borthwick—A Dictionry, English and Hindoostanee, in which the words are marked with their distinguishing initials as Hinduwee, Arabic, and Persian with an Appendix. Calcutta, 1787-96. Hindoostanee Philology, a comprising a Dictionary English and Hindoostanee, also Hindoostanee and English; with a Grammetical Introduction. Second Edition, with many additions and improvements, by Th. Roebuck. Edinburgh, 1810. The same with a Grammatical Introduction. London, 1825.

Gilchrist, John Borthwick—A Grammar of the Hindoostanee Language, or Part Third of Volume First of a System of Hindoostanee Philology, Calcutte, 1796.

Gilchrist John Borthwick—The Oriental Linguist, an easy and familiar Introduction to the popular Language of Hindoostan, comprising the Rudiments of the Tongue with an extensive vocabulary, English and Hindoostanee; Hindoostanee and English; to which is added the English and Hindoostanee part of the Articles of War (from W. Scott's translation), with practical Notes and Observations. Calcutta, 1798; 2nd Edition, Calcutta, 1802.

Gilchrist, John Borthwick—The Anti-jargonist, or a short Introduction to the Hindoostanee Language (called Moors), comprising the Rudiments of that Tongue, with an extensive Vocabulary English and Hindoostanee, and Hindoostanee and English, Calcutta, 1800.

(This is partly an abridgement of The Oriental Linguist.)

परिशिष्ट ४--(क)

फोर्ट विलियम कॉलेज की सामग्री का अंश

विलियम चैपलिन की थीसिस—१८०३

वाद

सती होने की रीति हिंदुओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है।

क्या ईसवी क्या और अच्छी जातों के लोग किसी पंथ के होय जाना जाता है कि मेरे याद के मिटाने को कोई ऐकभी प्रमान न ला सकेगा हे महाराजो मेरी बुद्धि से तो यिह रीति प्रसिद्ध सांच ही जानी जाती है और यह भी निश्चय कर जानता हूं कि इस कठिन औ अनजानी बोली में सकत जैसी चाहिए वैसी नहीं रखता कि इस बात को भली-भांति से व्योरे समते समझाऊं तिस परभी मन चलाय बुद्धि दौड़ाता हूँ सो मेरे वंचनों को ध्यान देकर सुनों तो आपके मन की दुवधा जाय सच है जो इस भयानक चालका सार जिसे अब मैं दोषता हूँ जब धीरज की दृष्टि से देखियेगा तब इसकी अनीति और कठोरी और कुरीतिको जानियेगा तो आपकी मति भी मेरी ही मति के समान हो जायगी।

रीति व्याह की सुदेसों में इसलिये है कि दोनों ओर प्रीति हो औ आपस में हित से सेवा करें और स्त्री पुरुष अपने-अपने विसन छोड़ ऐक-ऐक बसमें रहे जो कि यिह बात सांच है तो हिंदुओं में अकेली अवला स्वामी के मरे से क्यूं जल मरती है यिह कैसा न्याय है। इस भांति का मरना लोगों में हुलास से हो के बल से पर व्याह के फलकी आस का वैरी है और सुधर्म सुदेस के चलने से जो पालना बालकों का पिता को उचित है तो उसके मुए पर उनकी माता को दूना है, इसलिए नारी को जोग है कि पति के मेरे पीछे अपने लड़कों को सुमाता की चाल से पाले जो कि तुरक जिनकी अनीति स्त्रीयों के नीमित्त में हमारे यहाँ कहावत है सो वे भी अपनी नारियों

के ऊपर ऐसी अनीति पति के मरे पीछे नहीं करते जो उन्हें बिन मृत्यु जीतेजी मार डालें महाराजो इस रीति की विपरीत के लिए मेरा अधिक कहना वृथा है बहुत जातों का चलन जोहार इस भांति का है, ईसा पंथियों के समान उनमें सुमानसी बहुत थोड़ी पाई जाती है वरन् कुछ भी नहीं और जिनके धर्म में ऐसा हिंसा है कि नारी को मरे स्वामी पर बल देते हैं उन्हीं की तो क्या चरचा है क्यूँकि सच्च ही यिह रीति मनुष्यता से बाहर है जाना चाहिए कि जब मनुष्य मनुष्यता के चलन से अनजान थे तबसे यिह भोंड़ी रीति चली है के किसी कुचाली कठोर ने सैकड़ों बरस पीछे जनम की प्रीति की डोरियां मनों से काट दीं उस समें की गृहस्ती धर्म चलाने के लिए दोनों ओर नेहकी जड़ जमी हुई थी सारे संसार में जो मैं ढूँढूँगा तो ऐसे पाप का दृष्टांत कहीं न पाऊँगा पंचो अब उचित है कि मैं ऐसी चालको निरी मूरखता कहूँ कि जिसके करने से पशु को भी लाज आवे जो नर अपने को मनुष जानता है तिस पर उसको पंथ ने भी माया मोह सिखाया है वुह अपने शास्त्र के पटकी ओट में हो माँ बहन हितू को बिन सोंच संकोच मार डालकर लालो-लाल हो इस अकारथ प्रसन्नता के लिए ऐसा बड़ा अधर्म भरा हो जैजैकार करे।

डरकर इस बात से मैं चौंकता हूँ और भगवान की दया दृष्टि से चाहता हूँ कि साँचे पंथ के चलाने से यिह रीति घिनावनी औ अनीति की मूल से जाती रहे और प्रगट जानी जाती है कि यिह चाल मन की तरंग से निराली है क्यूँकि माता की ममता के बंधन छूट जाते हैं और वुह सुख आस भरा दरस कि जो सुमाता को अपने प्यारे लड़कों के पालने में नेमधर्म से है सो कुसमें धूँधला हो जाता है सती के धुएँ से और बुद्धि लोगों की रंडी के जल मरने को नहीं चाहती इसलिए कि मति ऐसे मरने की रीति को अज्ञान देगी पर कुपंथही में यिह अंधेर है जो सच पूछो तो मूरत पूजनेवाले निर्दई ब्राह्मन के वचन से है जिसकी दया मया और बातों में प्रसिद्ध है वो ही इस हत्या की सीख देता है ह्यांतक कि उसको सोच विचार के लिए ऐक पल भी छुट्टी नहीं देता जो मरे हुए प्यारे प्रीतम के दुख से आपको बचावे भला हयां किसी का ऐसा मन कठिन है जो हमारा साथी होके उन बिन अपराध स्त्रीयों के मरने पर जो सदा ऐसी बुरी रीति में जीव देती हैं पछतावा न करे जो तुम मनुष्य हो तो तुम्हारी माया मोह में इतनी दुवधा नहीं औ जो ईसा पंथी हो तो कुछ भी नहीं जैसी घिन हमें इस पाप से है वैसी हम कथ नहीं सकते यिह अन्याव

बढ़ता है परोहित के बहकाने से कि वुह कहता है जो ऐसा कर्म करे सो धर्म के वृक्ष छांह तले रहे हा कैसी उल्टी आज्ञा है कि सत के लिए जीव रक्षक के शब्दको जो विधाता के अतमघात के बचाने को देह में उपजाया है रोकता है सब कोई चाहता होगा कि यिह कुचाल किसी ढब से उठ जाय और मुझे निपट हुलास होता जो हमारी ओर से उसी रीति पर कुछेक उकासी होती ओ सुबुद्धिता से यिह भी जाना जाता है कि लोगों की पछ और हठ को जो धर्म के लिए है किसी बात पर ऐकाऐकी उठा देना बहुत कठिन है जो किसी उपाय से यिह कहना सिद्ध हो सके उन लोगों में जो अपने धर्म ओ निरफल काज के बस हैं तो ईसापंथियों के संतसंग से हो तो हो यिह बड़ा मनसा सिद्ध होनी समे पर है और निपट अनीति ओ अन्याव होता जो कोई धर्म के काजों में लोगों का मनोरथ बल से न होने देता मनुष्य के लिए इन बातों में आसा भरोसा ही उपदसी है क्यूँकि मनुष का चित अन्याव से अज्ञाकार नहीं होता विशेष धर्म-कर्म में जिसे नित का सुख जानते हैं चाहिए कि जुगत महाराज अंगरेज की बुद्धि के विचार के साथ निदान काज आवे क्यूँकि एकदिन ऐक सदा अकारथ है।

आगे मेरा कहना वृथा इसलिए मैं जानता हूँ तुम्हारे जी में वो ही ध्यान है जो मेरे हिरदे समाया है इस कारण मैं सुनने को लौ लगाये हूँ हे महाराजो मैं देखूँ तो तुम कैसो कैसी पकड़े करते हो यिह मैं बिन लगाव कहता हूँ जो कोई मेरे वाद को कुछ भी झुठावे वो ही बड़ा ज्ञानी है।

(माडरेटर-गिलक्रिस्ट) (नागरीलिपि)

—:o:—

परिशिष्ट ४ (ख)

फोर्ट विलियम की हिंदवी

श्री एच० पी० फोस्टेर

हरी ऐक मोकदीमा में जो हूकूमनामा के फरीआदी वो असम्मी ईआ उन सभी के गवाह लोग ईआ डीकरी के जारी करने ईया सदर दीवानी अदालत के और दरपैसी काम के वाबत में कुछ हुकुम जारी करके वास्ते मोफसील कोट अपील के साहेब लोग के नाम पर सदर दीवानी अदालत से जारी होऐ मोफसील कोट अपील के साहेब लोग को चाहिअ के हुकूम जारी करके उस हुकूमनामे को मोकररी मेंआद में सदर दीवानी अदालत के साहेब लोग के पास फेर भेजा है ईआ उसके नहीं जारी होने का सबब लीख ही वो चाहिअ के उस हुकुमनामे का जवाब खाह हुकुमनामे के पीठ पर खाह जूदा कागज में लीख के उस हुकुमनामे के साथ साट के भेजा है अगर हुकुमनामे का जवाब जूदा कागज में लीखने का ईतफाक होए मोफसील कोट अपील के साहेब लोग को चाहिओ के उस हुकुमनामे के पीठ पर ऐता लीखे ही के उसका जवाब जुदा कागज में लिखा गआ वो उस हुकुमनामे वो उसके जवाब का फल अपने अदालत के सीरीसता में रखही वो जीस बखत सदर दीवानी अदालत के साहेब लोग कोई मोकदीमा के फरिआदी ईआ असामी के ऊपर हुकुम जारि करने के वास्ते मोफसील कोट अपील के अदालत में हुकुमनामा जारी कर ही अगर अह आदमी बहोत खोजने से नहीं मीले ईआ रूपोस होऐ ईआ अपने घर ईआ और के घर में छीपा रहे के जीस सबब से उसके ऊपर हुकुमनामा जारी में नहीं होए मोफसील कोट अपील के साहेब लोग एक ईसतहारनामा उसमें उस हुकुम का नकल ईस मजमुन का अपने अदालत के कचहरी के देखारे जगह में लटकावही के अमर उअह उस हुकुम का मोकररी मे उन में अमल में नहीं लावे सदर दीवानी अदालत के लोग साहेब दुसरे खबर

को हुकुम के भेजने वगैर उसके गैरहाजिरी में उस मुकदिमे का तजवीज वो इनफसाल करहीगे वो जो ईसतहारनामा फारसी भाखे वो अछर वो हीनदोसतानी वो नागरी अछर में लिखा जाए वो मोफसील कोट अपील को भी चाहिए के उस ईसतहारनामे के नकल को जेता ज्यादा हो सके उस आदमी के रहने की हवेली के दरवाजे से ईआ मौजे में उअह आदमी रहे उसके देखारे जगह में लटका वो उस हुकुमनामे का जवाब ऊपर के लीखने के तरह हुकुम के जारी का कैफीअत लीख के सदर दीवानी अदालत में भेज ही—

ए ट्रू ट्रांसलेशन

(अंग्रेजी सन् १८०३ ई० साल ५, आइन १४—हिंदी गद्य का निर्माण चन्द्रबली पांडे पर उद्धृत)

परिशिष्ट ४ (ग)

फोर्ट विलियम कॉलेज की प्रश्नावली

फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदुस्तानी का स्टैंडर्ड कैसा था, यह दिखलाने के लिए हम नीचे उस प्रश्नावली के कुछ अंश देते हैं जो आज लगभग १७२ वर्ष बाद भी रोचक और ज्ञानवर्द्धक हैं। ये प्रश्न व्याकरण-संबंधी हैं और यह सूचित करते हैं कि हिंदुस्तानी शिक्षा में व्याकरण का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था। १८०८ में फोर्ट विलियम कॉलेज से एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसका नाम था "ए सीरीज़ ऑफ क्वेसचन्स ऑन दि ग्रामाटिकल प्रिन्सपल्स आफ द अरेविक, पर्शियन एंड हिन्दुस्तानी लैंग्वेज"। यह थामस हर्वर्ड द्वारा हिंदुस्तानी प्रेस, काशीटोला नं० ७१ से प्रकाशित हुआ था।

OF LETTERS :

What letters, Indian, Persian and Arabian, are used for the Hindustanee language? Express them alphabetically in the Nagree and Persian Characters, and in the Roman characters.

NOUNS SUBSTANTIVE :

How many cases are recognized in the declaration of Hindoostanee nouns, and what are the signs of each? If any case have more than one sign, state the whole, with example.

How do Hindoostanee substantive from their plurals? And are there any, and what general signs of the plural number?

How are masculine nouns in Hindoostanee converted into feminine?

OF ADJECTIVES :

To what inflections of case and number are Hindoostanee adjectives liable ? Decline as many as may be requisite to illustrate the answer to this question and state what adjectives are not subject to inflection ?
How are the cordinals converted into ordinal number ?

OF PRONOUNS :

What are the Hindustanee personal pronouns and how are they inflected ?

OF VERBS :

What is considered the root of the Hindoostani Verb ? And in what manner are the several moods and tenses formed from it ? Conjugate the verb Dekhna, to see, in the active voice, as far as may be necessary to exemplify.
What descriptions of compound verbs occur in the Hindoostani language ? State any classes of them which may be known to you, with their mode of formation respectively, and an example of each.
Are Hindee verbs ever formed from Arabic and Persian words ? If so give examples.

In how many ways and how is the Imperfect Participle of Hindee verbs formed ?

OF SYNTAX :

What effect has the participle 're' on the nouns or pronouns to which it is affixed ? And with what verbs and what tenses only can this affix be properly used in construction ? State any of these which do not admit it.

What concords occur between the substantive and adjective in the construction of Hindoostanee sentence ? And are these invariably observed or when are they commonly omitted ? State Examples.

What is the usual position of an active verb used with its

agent and object ? And of a passive verb used in like manner ? State examples of each.

Is the sign of the accusative case ever used to express the genetive or vice-versa ?

What is the effect of repeating a noun substantive or adjective, with the sign of the genetive inserted between ?

(ख) रोबक के अनुसार कॉलेज के प्रकाशन—ऐनल्स का विवरण

Thomas Roebuck's The Annals of the College of Fort William :—

1. Premsagar, or the History of the Hindoo Deity, Shri Krishna contained in the 10th Chapter of Shri Bhagwat of Vyasdeva, translated at the desire of John Gilchrist, into Hinduvi, from the Braj Bhasha of Chutoor Bhooj Misr. by Shri Lallu Lal Kavi, Bhasha Moonshee in the College of Fort William, Calcutta, printed at the Sanskrit Press in one Vol. 4 to, 1810.

2. A vocabulary, Khuree Bolee and English of the principal words, occuring in the Premsagar by Lieut William Price, Assistant Professor of the Bungalee and Sanskrit languages in the College of Fort William. Printed at the Hindoostanee Press in one vol. 4 to 1810.

3. Rajneeti or tales exhibiting the Moral Doctrines and the Civil and Militarv polity of the Hindoos. Transalated from the Original Sanskrit of Narain Pandit into Braj Bhasha at the desire of John Gilchrist by Shree Laloo Lal Kavi, Bhasha Moonshee in the College of Fort William, Printed at the Hindoostanee in one vol 8v. 1809.

4. General Principals of Inflexion and Conjugation in the Braj Bhasha, of the language spoken by the Hindoos in the country of Braj in the District of Gowaliyur, in the dominions of the Raja of Bhuratpoor, Utur Bed and Bundelkhand composed for the use of Hindoostani students by Shri Laloo Lal Kavi, Bhasha Moonshee at the College of Fort William. Printed at the Indian Grzettee Press in one vol. third 4to., 1811.

परिशिष्ट : ४ (ङ)

गिलक्रिस्ट के स्ट्रैन्जर्स ईस्ट इंडियन गाइड से उद्धरण (पेज ११०)

Whatever may be aserted, on the brilliancy of fancy, which sparkles through many literary works in the East, few men will dispute the palm in favour of the oriental writers, for that correct taste and sound judgment, which are so conspicuous on comparison in the classics of the west. Among many other instances of bad taste, the most prominent, in my estimation, is the pedantic style, which disfigures almost every prose production, now extant in the Hindoostanee language; and which renders it often wholly unintelligible to every reader, who is not as deep in Arabic or Persian lore, as the learned man who composed the book itself. If excellence, in a popular tongue, consisted in writing any thing far above the conception of the people, for whom it is intended every body must allow, that the Hindoostanee authors and translators stand unrivalled in this species of composition. In fact to say the least that can be observed, on so absurd a perversion of talents and learning, most of the literary efforts of this description that I have yet seen, might be very good Arabic or Persian, for any thing I know to the contrary, were they not disjoined and disfigured by the occasional introduction of a Hindoostanee postposition or verb, which like the casual flash of lightning in a dreary night, serve but to render the surrounding darkness still more visble. This false taste is no where more discernible and preposterous, than in the prefaces of Oriental works, which are in general composed in an affected idiom, so much

beyond the level of ordinary capacities and acquirements, that very few of the men who can comprehend the body of the publication itself, are qualified to wade through the wonderful display of erudition, which announces its birth, such a profound harbinger, one would imagine, is absolutely requisite in India, to stamp a proper value on any literary performance; of which, in the preliminary portion at least, it may commonly be asserted with great truth, that it must be an incomparable book, because no body can well understand the introduction to its contents. To expose and explode this monstrous abuse of a living colloquial, language, by giving it a new and impartial bias, has been my constant study, for some years past, and I am not altogether without hopes of yet establishing my success, on the broad basis of public utility to ourselves, as the Rulers of the country, and to its inhabitants of every description also, as our subjects. If we are to indulge any prepossessions on the score of language or laws, I think sound policy and justice, will point out the Hindoos, as the most proper objects, being still the great, ancient, and useful mass of the people, in the British Indian Empire. At all events it cannot be disputed, that our Magistrates ought to be as well qualified, to comprehend a Hindoo's complaint, *Viva voce et propria* persona, as to understand a Moosulman of any rank or description whatever. In spite of the clamour which the FAITHFUL, and their abettors, in this country, may raise against all my exertions of the present nature, I shall persevere in the great work of reform which I have so successfully begun. As nothing can facilitate this object more, than easy familiar, and accurate translations, from one tongue to the others; the learner is here presented with the first Fable in Dodsley's excellent Collection, as a specimen of all the rest, which will soon be published in that plain, general, useful, middle style, which ought ever to take the lead in a popular speech, whose worth depends much less on its literature, when contrasted with the languages of Europe,

than on its general prevalence and utility, when compared with any other Oriental tongue, in the extensive regions of India. Those Moosulmans, who, from local circumstances, and an habitual tendency to pendantry, know little of the wonderful pliancy and copiousness of the Hindoostanee tongue, independent of its modern sources, will no doubt odject to many Hinduwee words that may be safely introduced into the broad, conciliating, uneffected style, which I have recommended. To them, from real experience, I can oppose a whole host of Hindoos, with a potent band of those Mooslims also, who in Hindoostan maintain that intercourse with the bulk of the people, among whom they have resided for centuries, which is so favourable to the formation and existence of a grand popular language. When Moosulmans treat of abstruse and scientific subjects they must lean to Arabic; as the Hindoos coeteri paribus will do to Sunskrit; but in the ordinary concerns of life, and in the judicial, military, commercial, and revenue departments, no such necessity or predilection exists, except where local dialects impose a preference, to the partial exclusion of some, or all the rests.

परिशिष्ट : ५ (क)

शुल्जे की लैटिन भूमिका (१७४१)

PRAEFATIO AUTORIS

Annus jam agitur decimus tertius, ex quo parvas linguæ Telugicae institutiones conscripsi. Quaetune temporis mihi ratio fuit illam Grammaticam condendi, eadem quoque ratio mihi hoc anno est hanc componendi. Etenim cum haec lingua Hindostanica in magni Mogulis regno vernacula sit, in eoque major pars incolarum adhuc gentilitati sit addi Eta, & his misellis quoque gratia DEI in Christo Redemptore sit annuncianda, ac Novum Testamentum, ut optimum instrumentum animas hominum ad Christum convertendi, nec non Liber Psalmorum Davidis, Daniel Propheta, item Trium Virorum Hymnologia. historia Sosannae, Belis & Dracconis, Genesecos quatuor capita priora etc. in hanc linguam jam fint translata; meum duxi officium esse, ut Hindostanicam linguam fibi familiarem reddere geftituris Miffionariis manum porrigerem adjutricem, illisque viam demonstrarem, hanc linguam facillimo modo discendi. Lingua in se est omnium facillima, verum mihi, oam addiscere incipienti, omnium, quos antea didiceram, linguarum, cerre difficillima fuit. Namque eam me docturus magister, ignarus aliarum linguarum mentum fuam mihi Tamulico & Telugico sermone exprimere volebat; fed in his duabus linguis tiro tantum erat, vix balbutiebat, adeque ad quaeftiones propositas minums recte respondere valebat. Sed cum amor hanc linguam discendi mole-ftiam omnem vinceret; poft duos menses, magna ex parte saltem, has difficultates eluctari, aerumnae finem attingere, nec non patientiæ exercitium absolvere coepi. Cumque a principio

ftatim necessaries observationes circe hanc linguam, ejusque constructionem fedulo notarem. Grammaticam conscribendi materia sufficiens ad manus parata erat; cujus potiorem partem deinde in ordinem nedegi. Hxe qualiscunque Grammatica futuris Missionari is infervire poteft. Perspicuitas & brevitas se ubique lectori commendabit. Ad illam pertinet & honus ordo & pronunciatio, quae per integram Grammaticam omnibus vocibus Hindostanieis apposita est. Brevitatem animadvertere licet ex capitum paucitate & rerum, in illis expositarum, tractatione fummaria. Alias brevitas obscuritatem parit; fed ipsius linguae indoles hanc prostigavit, Insolitum illud, quod est in structure vocum, & Hindostanis, Tamulis & Teluguvandlis commune est, paullum ultra principium progressees nullam amplius pariet offensionem, Grammatica sex capitibus comprehenditur. Caput I, de literis agit. demonstrando & characteres persicos modernos &figures litterarum antiquissiamas, fimulque suppeditat, quae syllabas legendi exercitio infervire possunt. Caput II, de Nominibus & substantivis & indicat, formationem eorum multiplicem oftendit, & horum copia, quae in usu funt, adjuncta, ultimo loco Numeralia, tam cardinalia, quam ordinalia exhibet. Caput III. in Pronomtinibus occupatur Caput IV. de Verbis auxiliarbus. simplicibus & compositis agit; caput V. de Particulis, i. e. de Postpofionibus, Adverbitis, Interjectionibas & Conjunctionibus, Adverblis, Interjectionibus & Conjunctionibus tractat; capit VI. Syntaxin tradit. Equidem Grammaticam hanc, apposita vocibus hindostanicis pronunciatione, intellectu faciliorem reddere studuimus; num vero in formanpa illa rem acu ubique tetigerim, dubito. Ejusmodi scrupulum imprimismihi littera Gjim injicit. quae non est Germanicum & nec Hebraicum sin vel Schin, fed medium tenet inter haec duo; & ad Gallorum Gi vel Anglorum Sb proxime accedit: jam Anglorum Sb ob certas rationes eligere placuit. Sed eos, quilitteraturam arabicam & persicam ante attigerunt, quam studium conferunt ad Hindustanicam, ista

difficultas non multum remorabitur. Litterae & H. non auditur sonus; igitur nec hic in pronunciationis indicatura exprimendus erat. Denique inter sunt, in pronunciatione nulla est differentia, sed utrobique bei dicendum est. (1) Numini Optimo Maximo sit laus, & gloria pro omnibus benefictis, corporalibus & Spiritualibus, benedicat Verbo suo Veritatis, advenire jubeat regnum Jesu Christi, defendat suos fideles contra omnem malitiam inimici, & concedat omnibus suis fanctis beatiffimum introitum in fempiternam requiem vitae gloriofae ! Amen.

Madrastae, in littore Coromandelino
1741 die 30 Junii st. n.

Benjaminus Schulzius,

MISSIONARIUS EVANGELICUS.

———

1. Caeterum bic non roticendum est, doctissimum atque celeberrimum Sacrarum Linguarum Orientalium professorem ordinarium in Academia Trajectina, in Miscellaneis Orientalibus, quoe Dissertationibus ejus inserta babentur, Grammaticum aliquam Hindostanicam anno 1743. Jam publicasse. Verum ille non autor est bujus Grammaticae, sed noblissimus Io bannes Iosua Ketelaer Societatis Indicae Orientalis ad Magnum Mogulem quondam Legatus; qui cum Agrae per aliquod tempus degeret, sermone Belgico Miscellanea quaedma de lingua. Hindostanica chartae mandavit. Certe studium Optimi Viri, ut decet, collaudamus : quoniam ita buic linguae famam conciliavit, exoticarum linguarum studiosis eam commendavit, atque observationibus suis institutiones. Optandum fuisset, ut Vir Nobliffimus Verba Hindostanica characteribus Persicis expressisset atque illorum addidisset pronunciationem. Fortassis etiam non deerit, qui emendet ea, quae in compesito ab illo Decablog, Symbolo Apostolico oratione Dominica a structurae Hindostanicae regula aliena esse video. I. N. J.

परिशिष्ट ५ (ख)

लेबेडेफ के व्याकरण का कुछ अंश

At one place the author (Lebedeff) gives the different forms of Jargon mixed dialect. Regular mixed dialect and Civilmixed dialect. It seems that by Civil Mixed dialect he means good or standard Hindustani. See the following table :

Karoc Cases	Jargonmixed dialect	Regular mixed dialect	Civilmixed dialect	Declension of the pronoun of the Second Person
	AK VACHAN			SINGULAR
Noun	To, Too, or	Ta	Toou	thou
Gen.	Tor, Tare, Tar, Teric	Tar, Tara	Toomara, or Toomare	Of thee or There
Dat.	Tooz-ko or Tooj-ko	Tako	Toom-ko	To thee or to thou
Ac.	Tooz-ko	Ta-ko	Toom- Toom-ko	Thou, thee
Voc.	Hy too, or Hay too	Hiy ta,	Hy toom	O ! thou, O ! thee
Abl.	Tor, or Tare marfot	Tara marfot or tare marfot or tare-marfot	Toomare-marfot Toomara-marfot Toomara-marfot	By thou, by thee

Tare-pas	Tarapas	Toomara pas	by thou, by thee or near to thou near to thou
Tooz-se or Tooj-se	Ta-se, or Tara-pas-se	Toomara-pas-se	fram thou or
Tare-waste	Tara-waste (tar)	Toomare-waste	for thou or
Tor waste	Tara-waste (Tar)	Toomare-waste	for thee
Tooz-me	Tame	Toom-me	In thou, or
Tooj-ma	Tama	Toom-ma	In thee

Some Hindustani sentences given as Translation of English under the heading 'Promiscuous Examples' on p. 93 are interesting as a specimen of the language, with which the Europeans were familiar in that period.

Khoda paida-Korne-wolla hay,	God is the creator
Dooneeaka, bhestaka, Jomeenka.	Of the world, of heaven, of earth
Are Sabke pas.	And of all
Sab-cooch jo khoda keia-ha.	Whatsoever God has created
Eia rahega hamesa.	Shall for ever
Ayko koy combes Korne sakega nay	To it nothing can be added.
Are koy cooch saktenay ootnega	Nor anything can be taken from
Kisko Toom kaito ho saheb.	To whom do you speak, Sir ?
Ham kaite ha toomko.	I speak to you
Jody toomara coosie hay ay soone.	If you please to hear it
Jo toomara coosie hoe korneko ea meherbangie	It it is agreeable to you to do me the favour

Ham apko bouro bas hoonge.	I shall be much obliged to you
Ham Janta-ha jo khodaka akelke marfot	I know, that by the wisdom of God.
Bhestke-sab are boura oojila-sab banata hay.	The heavens and the great lights are made.
Shoo-ros dinka sorwake waste	The sun to rule the day
Chondor are setara-sab ratke dara Korneka waste	The Moon and stars to givenne the night.
Horieak chies eiam-me sayict hota hay.	Everything in its season has produced.
Are ak cooht hay horieakka Sekier Bhestke niche.	And a tune is for each purpose under Heaven.
Bath Chiete	Dialogue
Coried-korna, are bechenga	Of a buying and selling
Kiachees hay toomara doocanme	What (things) have you got in yours shop.
Meharban, kia ap mante ho	Pray, what do you want ?
Toomara pas cooch	Have you any ?
Acha mehie banat, sootra fetee	Fine woolen cloth, handsome
Toopie are mooja hay	ribbons hats or stockings ?
Haa Saheb hay	Yes, Sir, I have
Sahar ka ooparie	As good as are to be had in town
As saharme aor acha	in this town
Toomsakte nay milenga	You cannot find better
Ay soch hay	Is that true ?
Haa saheb soch hay	Yes, Sir it is true
Deklao hamko ak tan	Show me one piece
Acha banat cala range	Of fine (woolen) cloth of blackcolour.
Ay ak tav hay	Here is a very
Mehie banat saheb	Excellent piece, Sir
Are iskrange ham	And the colur
Boojte-ha apke-posondene hoe	I think will please you.
Kie mool toom beste-ho	How do you sell it ?

Kie-do iska gaz (gaji)	What is it a yard ?
Iska teak dor hay ath roopiay	It is really worth eight ruppes
Kia, ath roopiay	What ! eight rupees
A hoga nay saheb.	Impossible, Sir
Tome booje ho	Do you think
Hamko asa oome hay	I am so ignorant ?
Nay saheb maf koro	No, Sir, excuse me.

P. 108

(A Grammar of the Pure and Mixed East Indian Dialects Ed. by Mahadeo Prasad Saha).

———

परिशिष्ट ६ (क)

प्राचीन हिंदी पुस्तकों के अंग्रेजी अनुवाद :

हीरराँझा—वारिसशाह कृत का अंग्रेजी अनुवाद जी० सी० अजबोर्न ने इंडियन ऐन्टीक्वेरी में निकाला था, १९२१ ई०। इस कहानी का अनुवाद तासी ने भी किया था। देखिए तासी का प्रसंग।

सभाविलास—इसका अनुवाद जी० डब्लू० गिलबर्टन ने 'दि एसेम्बली आफ मर्थ' नाम से किया था, जो मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से १९०० ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं।

कवितावली—इसका एक अनुवाद एफ० आर० अलीची ने लंदन से प्रकाशित किया। इस अनुवाद में तुलसीदास के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है और शंकर के अद्वैतमत और रामानुज के विशिष्टाद्वैत की चर्चा करते हुए तुलसी की भक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

छत्रप्रकाश—गोरेलाल पुरोहित—लाल कवि के छत्र प्रकाश का अनुवाद तासी के अनुसार कैप्टेन नेपागसन ने 'ए हिस्ट्री आफ दि बुन्देलाज' नान से किया।

गंभीरराय—शाहजहाँ के विरुद्ध मऊ के जगतसिंह के विद्रोह का वर्णन गभीर राय ने किया था। मूल और उसके एक अंश का अनुवाद बीम्स ने जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग ४४ (१७९५) ई०, में प्रकाशित किया है।

प्रेमसागर के अनुवाद—१८४८ ई० में बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री की ४९वीं रेजीमेंट के कैप्टन डब्लू० होलिंग्स ने प्रेमसागर का अनुवाद छपाया था। इसमें प्रेमसागर की भाषा को विशुद्ध कहा गया है। ई० बी० ईस्टविक ने नागरी में मूल प्रेमसागर देकर और प्राइस के शब्दकोश में अपनी ओर से २०००

शब्द जोड़कर एक अनुवाद १८५१ ई० में छपाया था। इसका अंग्रेजी नाम 'दि ओशन आफ लव' था। यह हर्टफोर्ट से निकला था।

ईस्टविक के अनुवाद का संशोधन कर एक महत्त्पूर्ण आमुख के साथ फ्रेडरिक पिनकाट ने १८९७ ई० में प्रकाशित किया था।

इसका एक अनुवाद पेरिस से 'ले प्रेमसागर ओशन द एमर' नाम से आदुई पार ई० लेमेरेसे ने १८९३ ई० में प्रकाशित किया था।

जे० एफ० बर्नस द्वारा एक अनुवाद 'सेलेक्शन्स फ्रॉम प्रेमसागर' १८७७ ई० में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। यह प्रेमसागर का संक्षिप्त संस्करण था और प्रत्येक पृष्ठ पर हिन्दी और अंग्रेजी दो कालम में मुद्रित था।

प्राइस ने १८१४ ई० में प्रेमसागर के कठिन शब्दों का हिंदी-अंग्रेजी कोश तैयार किया और १८२५ ई० में हिन्दी हिदुस्तानी सेलेक्शन की दो जिल्दों में से एक में प्रेमसागर और उसकी शब्दावली दी गयी। इसकी दो जिल्दों का क्रमशः १२ रु० और ८ रु० मूल्य था। यह मूल्यवान संस्करण भी शीघ्र बिक गया और १८३० ई० में इसका द्वितीय संस्करण निकला। (मालवीय शती विशेषांक—नागरी—प्रचारिणी पत्रिका, २०१८ वि०)

बैताल पचीसी—(१८०२ और १८०५ ई० में प्रकाशित)

यह प्रथम बार १८०२ ई०में हिन्दी मैनुअल में सम्मिलित किया गया था। १८५५ ई० में मि० बार्कर द्वारा हर्टफोर्ट से और १८५७ ई० में डकंन फोर्क द्वारा नोट और शब्दकोश सहित लंदन से प्रकाशित हुआ था।

सिंहासन बतीसी—जवां के साथ हरकारा प्रेस कलकत्ते से प्रकाशित। यह भी हिन्दी मैनुअल में सम्मिलित हुआ था। १८६७ ई० में सैयद अब्दुल्लाकृत संस्करण इंगलैंड से अंग्रेजी अनुवाद सहित निकला।

राजनीति—१८२७ ई० में प्राइस के सेलेक्शन्स में इसे स्थान मिला था। १८५४ ई० में इसे मिशन प्रेस, इलाहाबाद से भूमिका टिप्पणी और कोश सहित एफ० ई० हाल ने प्रकाशित किया था। सन् १८६९ में पुनः सी० डब्लू० बोडलर वेल ने अंग्रेजी अनुवाद सहित कलकत्ता से छपाया।

राजनीति और उसका अंग्रेजी अनुवाद

यह पुस्तक १८९४ ई० में छटवीं बार मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में छपी थी। मूल पुस्तक में लेखक ने डाक्टर विलयम हंटर और अब्राहम का

उल्लेख किया है। इस संस्करण के सम्बन्ध में हाल साहब और कोलिन ब्रोनिंग का इन शब्दों में उल्लेख हैं।

"श्रीयुत महाशय विद्वच्छिरोमणि हाल साहब इंगलण्डीय विचारसिकों को ब्रजभाषा के उद्गारार्थ इंगलण्डीय भाषा में कठिन शब्दों का कोष परिभाषा सहित रचना कर विद्यागुण ग्राहक विद्वत्वृन्द शिरोमणि महाराजधिराज कालिन ब्रोनिंग साहब एम० ए० अवधदेशीय डेरेक्टर वीरेश ने इंगलण्डीय विद्यानुरागियों को ब्रजभाषा में अधिक काम और उद्गार कराने के निमित्त कोष को घटाय वढ़ाय हिन्दी भाषा में ही रचना कर मुन्शी नवलकिशोर के यन्त्रालय में मुद्रित करा।

लल्लूजी ने अपने को 'सहस्र अवदीच' लिखा है। इस शब्द पर हाल साहब को इस व्याख्या से अच्छा प्रकाश पड़ता है। किसी अन्य हिन्दी कोष में सहस्र अवदीच को स्पष्ट नहीं किया है, अतः हाल साहब की परिभाषा यहाँ दी जा रही है।

'सहस्र अवदीच—ये गुजराती ब्राह्मणों का उपनाम है कि इन लोगों ने सहस्र अर्थात् हजार पुरुषाओं से सरस्वती नदी के पश्चिोत्तर देशों को परित्याग कर गुजरात का निवास अंगीकार किया।'

(ख) हिन्दी के यूरोपियन डाक्टर :

१. इटली के एल० पी० टेसीटोरी ने १९१० ई० में फ्लोरेंस विश्वविद्यालय के प्रो० पेवोलिनी के निर्देशन में 'रामचरित और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन' इटेलियन भाषा में लिखा। इस पर पी० एच-डी० की उपाधि मिली। यह १९११ ई० में प्रकाशित हुआ। यह हिंदी-सम्बन्धी प्रथम शोधकार्य है।

२. जे० एन० कार्पेन्टर ने 'थियोलाजी ऑफ तुलसीदास' पर लन्दन विश्वविद्यालय से १९१८ में डी० डी० (डाक्टर ऑफ डिविनटी) की उपाधि प्राप्त की।

३. एफ० ई० को 'कबीर ऐंड हिज फालोअर्स' पर लन्दन वि० वि० से १९३१ ई० ये पी० एच-डी० की उपाधि मिली।

४. शा० वोदविल—'रामचरित मानस के स्रोत और उसकी रचना' पर आपको पेरिस वि० वि० से डी० लिट्० की डिग्री मिली।

५. एल०टी० वाल्कट—आपका शोध विषय है—'ए स्टडी ऑफ द तुलसीकृत राम चरितमानस विद ए व्यू टु टेस्टींग द क्लेम फार कन्सेप्ट्स (इन तुलसीदास) सिमिलर आर पैरलल टु दि कन्सेप्ट आफ द न्यू टेस्टामेंट।'

(ग) यूरोप के विश्वविद्यालयों से हिन्दी में डाक्टर की उपाधि प्राप्त-भारतीय विद्वान् :

१. १६३० में मोहिउद्दीन कादिरी ने 'हिन्दुस्तानी फॉ-नोटिक्स' पर लन्दन विश्वविद्यालय से पी एच० डी० की उपाधि पायी। यह आंशिक रूप से १९३० ई० में प्रकाशित हुआ।

२. डॉ० जनार्दन मिश्र—'रेलिजस पोइट्री ऑफ सूरदास' पर १६३४ ई० को निग्सबर्ग वि० वि०, जर्मनी से पी एच० डी० की उपाधि मिली।

३. डा० धीरेन्द्र वर्मा—'ब्रजभाषा' पर पेरिस वि० वि० से डी० लिट्० की उपाधि मिली।

४. डा० विश्वनाथ प्रसाद—'भोजपुरी ध्वनियों और ध्वनिप्रक्रिया का अध्ययन' विषय पर लन्दन वि० वि० से १६५० में पी एच० डी०।

५. डा० माहेश्वरी सिंह—'मध्यकालीन हिन्दी छन्द का ऐतिहासिक विकास' पर लन्दन वि० वि० से १६५० ई० में पी एच० डी० की उपाधि।

६. डा० शारदा वेदालंकार—'हिन्दी गद्य का विकास' (१८००-१८५६) ई० पर १६५६ ई० में लन्दन वि० वि० से पी एच० डी०।

७. डा० लक्ष्मीधर—'ए लिग्विस्टिक स्टडी आफ द सिक्सटीन्थ सेन्चुरी हिन्दी (अवधी)' पी एच० डी० १६४० वि०।

८. डा० हरिश्चन्द्र राय—'हिन्दी साहित्य में महाकाव्य'—पी एच० डी० १६४६ ई०।

लेखक-परिचय

(डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव)

जन्म और शिक्षा : जन्म—३१ मार्च, १९११, प्रयाग। पितृभूमि—बिहार का पश्चिमी सीमान्त, इतिहास-प्रसिद्ध स्थल—चौसा (भोजपुर)। पिता समाजसेवी स्व० श्रीधर प्रसाद जी, पत्रकार और शिक्षाप्रेमी। पिता का कर्मक्षेत्र मुख्यतः प्रयाग और काशी होने के कारण वहीं शिक्षा। सेंट्रल हिंदू स्कूल, वाराणसी तथा ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज और इलाहाबाद विश्व-विद्यालय। हाईस्कूल १९२६, बी० ए० १९३०, एल० एल० बी० १९३२, साहित्यरत्न (स्वर्णपदक) १९३१।

जीवन-क्रम : आरंभिक कुछ वर्ष वकालत के पेशे में, किंतु साथ-साथ हिंदी-लेखन भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में चलता रहा। साहित्य-संस्कार प्रथम पुस्तक के रूप में अध्ययन-काल में ही प्रस्फुटित 'मीराबाई का काव्य' (१९३१ में लिखित), जिसके भूमिका-लेखक थे गुरुवर धीरेन्द्र वर्मा और प्रकाशन किया साहित्य भवन लि० ने। अब 'मीराँ-दर्शन' के रूप में वह उपलब्ध है। कविताएँ और आलोचनात्मक निबंध १९२७ से ही यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। १९३७-३८ में राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजी के आदेश से हिंदी-प्रचार-समिति, वर्धा से संबद्ध। वहाँ राष्ट्रभाषा-प्रचार और साहित्य का प्रणयन। हिंदी-हिन्दुस्तानी के तत्कालीन संघर्ष में हिंदी का पक्ष-पोषण।

जीवन की दिशा में नया मोड़—१९४१ में पटना वि० वि० से स्वतंत्र छात्र के रूप में हिंदी में एम० ए० कर डी० ए० वी० कालेज से प्राध्यापकीय जीवन का आरंभ। १९४५ में राजेन्द्र कॉलेज में हिंदी-प्राध्यापक। १९४९ से विभागाध्यक्ष। १९५८ से १९६१ तक डुमरी और खगौल-कॉलेजों में प्राचार्य। पुनः, १९६१ में राजेन्द्र कॉलेज में और १९६४ से उपप्राचार्य। १९६७ में पटना विश्वविद्यालय से स्वतंत्र रूप में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त। १९७१ से राजेन्द्र कॉलेज से प्राचार्य पद पर कार्य करते हुए १९७३ के अंत में सेवा-निवृत्त।

बिहार के वरिष्ठ कवियों की श्रेणी में समादृत तथा साहित्य-संस्कृति के मंच के एक ओजस्वी वक्ता और हिंदी के विद्वान आचार्य के रूप में आप बिहार

और राज्य के बाहर भी प्रसिद्ध हैं। देश की हिंदी की प्रमुख प्रतिनिधि संस्थाओं- सम्मेलन, ना० प्र० सभा, भा० हि० परिषद् आदि से सक्रिय रूप में सम्बद्ध रह चुके हैं। राज्य की हिंदी-प्रगति-समिति के भी सदस्य रहे हैं। षष्ठिपूर्ति-समारोह के अवसर पर बिहार के राज्यपाल श्री बरुआ ने आपकी दीर्घकालीन साहित्य-सेवा के लिए अभिनंदित किया और पटना तथा छपरा की अनेक संस्थाओं ने इस अवसर पर आपको सम्मानित किया। संप्रति आपका अवकाशकाल सारस्वत-साधना को ही समर्पित है। आप भारत, भारती और भारतीयता के पुजारी हैं। सरल जीवन, चिंतन और अनुशीलन की प्रवृत्ति। आप विशाल भारत का साक्षात्कार करने के लिए नेपाल और लघुभारत—मारीशस का सांस्कृतिक अभियान के निमित्त यात्रा कर चुके हैं।

हिंदी-भाषा की प्रकृति के मर्मज्ञ और व्याकरण-तत्त्व में अभिरुचि के अतिरिक्त आप हिंदी काव्य के भी अधिकारी विद्वान हैं।

प्रमुख कृतियां—

कविता—वल्लरी (१९४६), कुटी का क्रंदन (१९५२), गीतांजलि (१९६१), मुरली-दोहावली (१९७१)।

आलोचना—मीरां-दर्शन (१९५६), दिनकर की काव्य-साधना (१९५२), युगकवि दिनकर (१९६३)।

भाषा—हिंदी तद्भवशास्त्र (१९६१), हिंदी धातुकोश (१९७०), एलिमेंट्स ऑफ हिंदी ग्रामर (१९६९)।

सम्प्रति साखी-भाष्य, और आर्यावर्त्त का भाषिक इतिहास रचने में प्रवृत्त हैं।

★

